स्वातंत्र्य सेनानी नारायण दास बौखल:
व्यक्तित्व एवं कृतित्व-
एक आलोचनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
की
पी.एच.डी उपाधि हेतु
प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी
रीडर/अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अतर्रा पोस्ट ग्रेज्युएट कालेज,
अतर्रा (बाँदा)

शोध कर्त्री
अणिमा खरे
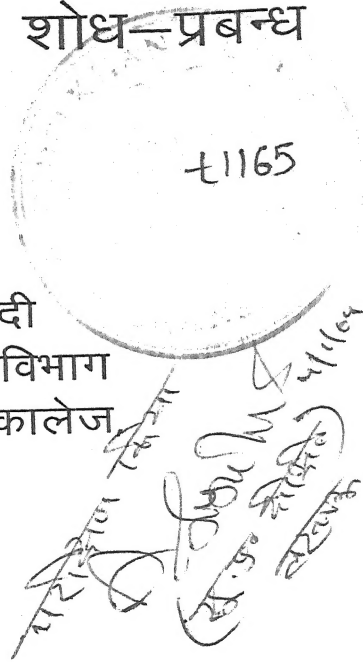
2002

शोध केन्द्र

अतर्रा पोस्ट ग्रेज्युएट कालेज, अतर्रा (बाँदा)

निज जिम बीती कस कहौं, भाषा भेद अपार ।
हिय अनुभव औषधि अधर, जानहिं जानन हार ॥

रामनरायन उर्फ नारायणदास 'बौखल'

कर्वी (बाँदा) उत्तर प्रदेश

डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी
रीडर/अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अतर्रा पो. ग्रे. कालेज,
अतर्रा.

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है, कि श्रीमती अणिमा खरे ने "स्वातंत्र्य सेनानी नारायण दास बौखल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व– एक आलोचनात्मक अध्ययन" नामक शोध प्रबन्ध मेरे निर्देशन में किया है । विश्वविद्यालय के प्रावधान के अनुसार इन्होंने अपनी उपस्थिति पूर्ण की है । यह शोध प्रबन्ध मौलिक है ।

(डॉ. वेद प्रकाश द्विवेदी)
रीडर/ अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अतर्रा पो. ग्रे. कालेज,
अतर्रा

उपागम

काव्य साधना के साथ साधनों की सांयोगिकता भी उतनी ही अनिवार्य है जितनी भावों के लिये वाणी की । बिन वाणी भाव गूंगे का गुड़ है और बिना प्रकाशन के साधनों के काव्य साधना 'निहितं गुहायाम्' है । किसी भी कवि का सृजन कार्य उसकी वैयक्तिक साधना का मूर्तरूप होता है । स्वान्तः सुखाय होना उसकी पहली शर्त होती है भले ही उसका रचना संसार समष्टि को कोण प्रतिकोण देखकर उसका प्रतिरूप अपने सृजन में उपस्थित कर रहा हो अथवा आध्यात्मिक, दार्शनिक या भौतिक संसार और वैज्ञानिक विषयों पर लेखनी चला रहा हो । पहला सत्य यही है कि ऐसा करना उसे अच्छा लगता है और उसका स्वयं का मनः प्रसाद ही समष्टि को मिलता है। यही उसकी वैयक्तिक साधना है ।

काव्य कवि की अन्तर्मुखता को वाह्यमुखी बनाता है तभी उसकी साधना मसि कागज से संयोग करती है, परन्तु यह संयोग मात्र पाण्डुलिपियों तक सीमित रह जाता है, यदि उसे प्रकाश में लाने के लिये उपयुक्त, पर्याप्त साधन न हो — इसीलिये साधना के साथ साधन की अनिवार्यता सिद्ध होती है ।

महाकवि श्री रामनारायण उर्फ श्री नारायणदास 'बौखल' के विषय में यह उक्ति अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है । वे कविता कला के एकान्त साधक थे । उन्होंने अपने जीवन के अधिकांश भाग में केवल लिखा ही परन्तु उसे किसी को बताया नहीं, यह भी सम्भव है कि उन्हें कोई सुनने वाला समानधर्मा न मिला हो, समझने वाला मन का मीत न मिला हो । फिर भी वे लिखते रहे, लिखना सम्भवतः उनके अन्तःकरण की आकुलता की बाध्यता थी और उसकी गुह्यता उनकी मनस्तुष्टि । इसीलिये उनके इस भावसागर की थाह तो क्या उसका परिचय भी कोई न पा सका । कोई नहीं जान पाया कि यह फक्कड़ फकीर कवि भी है ।

दूसरी बात कि श्री 'बौखल' का जीवन और समय तो परमार्थ के लिये समर्पित हुआ था— उन्होंने एक स्थान पर अपने माता पिता को यह कर प्रणाम किया है कि— ''माता पिता पैंया परौं जिन जनम्यों पर काज ।'' वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी थे, स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय सहयोग देना उनकी अस्मिता का प्रश्न था और देश के प्रति समर्पिति उनकी आस्था की मूल्यवत्ता । ऐसा प्रतीत होता है मानो श्री 'बौखल' दो मन रखते थे एक मन खुली किताब सा जिसमें देश व समाज की ईमानदार खुशहाल छवियों की इबारत लिखी होती और दूसरा मन कमल कोष सा जिसमें उनकी आत्मा की गुनगुन भौंरे की तरह बन्द रहती ।

इस कमल कोष को तो सूर्य की पहली किरण ही खोल सकती थी और वह किरण उन्हें बाँदा आकर एक सामान्य से घर के अगवाड़े के खपरैल से झाँकती हुई मिली जिसने कमल कोष को तो

खोला ही साथ ही उसके भीतर छिपी गुनगुन को अन्य किरणों से मिलाकर वर्तुल में फैला भी दिया। इस प्रकार कवि के आत्मालाप को तीन पुस्तकों का कलेवर मिला— (1) नारायण नैवेद्य (2) नारायण अंजलि भाग—1, (3) नारायण अंजलि भाग—2। पुस्तकें अपने अन्तःस्थल के आविष्कर्ता श्री देवेन्द्रनाथ खरे, प्रवक्ता डी० ए० वी० इण्टर कालेज, बाँदा के सद्प्रयास और सक्रिय सहयोग से छप तो गयीं परन्तु फिर वही बात कि साधना के साथ साधनों की भी अनिवार्यता होती है और श्री 'बौखल' के पास साधन नहीं थे। वे मुद्रण निरुद्यमी तो थे ही, प्रकाशन निरुत्साही भी थे, तीन पुस्तकें मुद्रित हो जाने के बाद भी वे उनको प्रसार में नहीं ला सके। न वे उन्हें पुस्तकालयों तक, विश्वविद्यालयों तक पहुँचा सके और न सुधी आलोचकों के दृष्टिपथ में ला सके, नही सहृदय पाठकों को उपलब्ध करा सके और वह रत्न मंजूषा इन पुस्तकों में ही बन्द रही।

मेरे गुरुवर, पूज्य पिता श्री देवेन्द्रनाथ खरे ने मुझे प्रेरणा दी कि मैं इस मंजूषा को खोलूँ और इसमें भरी रत्न राशि को सहृदयों तक पहुँचाने के लिये इस पर शोध करूँ। यही प्रेरणा इस शोध कार्य की पृष्ठभूमि बनी।

मैंने कवि की पीड़ाओं को, उच्छ्वासों को, उनके रहस्यवाद एवं दार्शनिकता की भंगिमाओं को, उनकी विरहाग्नि की अर्चियों को, शृंगार की चटकीली रंगत को व उनकी निर्लेप आत्मस्वीकृतियों को उनके बेलौस कथ्य में खोजने का विनम्र प्रयत्न किया है। साथ ही उनकी जन सामान्य के प्रति सहृदयता को, शोषण व अन्याय के प्रति बिफरते हुये आक्रोशों को, सामाजिक वैषम्य के प्रति जलती मशाल बने उद्गारों को, उत्पीड़न से लहू लुहान बने विवशता के प्रतिमानों की व्यथा को, लोकतंत्र के रहनुमा की स्वातन्त्र्योत्तरकाल में उपजी भग्नाशा को और फिर भी, आज भी वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को छाती से लगाये रहने वाले दासानुदास के निर्मल निवेदनों को उनकी वाणी में से खोजना अपना नम्र कर्तव्य माना है। श्री 'बौखल' जिनकी विरह की पीर के लिये श्री चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' प्रवक्ता पं० जवाहर लाल नेहरू डिग्री कालेज, बाँदा ने कहा है—

रस लाग्यो रसखान को, घन आनन्द की पीर।

विरह बुन्देले को लग्यो, 'बौखल' सन्त कबीर।।

किन्तु श्री 'बौखल' ने तो अपने लिये यही कहा है—

मैं तो सबको दास हौं, रहौं जनम भर दास

जदपि उपेक्षित नित रहौं, होउँ न कबहुँ उदास।। तथा

मेरे तो साईं सबै, मैं सबहिन पग धूल

गाथा गाऊँ मानसिक, गुदरी ओढ़ि दुकूल।।

मैंने उस गुदरी के भीतर छिपे लालों को— जो भीतर ही भीतर प्रकाशित हो रहे थे बाहर के प्रकाश में लाने का सीमित प्रयास किया है और यही मेरी उनके प्रति नम्र श्रद्धांजलि है। उनके काव्य की तीन प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त उनका गद्य साहित्य तथा उर्दू भाषा में लिखा हुआ गज़ल, नज़्म आदि का साहित्य भी कुछ अपूर्ण, कुछ अव्यवस्थित रूप में मुझे मिला जिसे मैंने संयोजित करने का प्रयत्न किया है जिससे उनके अप्रकाशित साहित्य का कुछ परिचय मिल सके। साथ ही उनकी प्रतिभा के वेपाश्र्व भी प्रकाश में आ सकें जो उन्हें कवि के अतिरिक्त एक बौद्धिक विचारक, कल्पनाशील व्यंग्यकार व शायर सिद्धकरने में समर्थ हैं। इस बहुमुखी प्रतिभा लेखक के धनी महामना के रससागर से मैं कुछ बूंदे ही उठा सकी हूँ। मेरा यह लघु प्रयास यदि महानुभावों को इस दिशा में दृष्टि निक्षेप करने के लिये कुछ सामग्री दे सका तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूंगी क्योंकि कहावत है कि—

ज्यों बड़री अँखियां निरखि, आँखिन को सुख होत।

प्रस्तुत विषय को अपने शोध हेतु चुनने के लिये मेरे पिता श्री देवेन्द्रनाथ खरे ने मुझे निरन्तर प्रेरित किया तथा श्री 'बौखल' के साहित्य में संचित मधुकोष को रसपान हेतु प्राकट्य में विचारों के रूप में प्रस्तुत करने में मुझे मानसिक व आत्मिक सम्बल प्रदान किया। मैं आशीष हेतु उनके सम्मुख शीश झुकाती हूँ। मेरी माँ श्रीमती शान्ती खरे, जो जन्म से लेकर वर्तमान तक पग—पग पर मेरी पथ—प्रदर्शिका रही हैं, इस कार्य को पूर्ण करने में उनका सहयोग अतुलनीय है। मैं उनके आशीर्वाद हेतु प्रणाम करती हूँ। मेरे शोध—निर्देशक डॉ0 वेद प्रकाश द्विवेदी, रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा को मैं नमन करती हूँ। उनके अग्रज तुल्य स्नेह व मार्गदर्शन ने मुझे इस लक्ष्य को प्राप्त करने में निरन्तर सहयोग किया। मैं आभारी हूँ। मैं अपने पति श्री आदेश श्रीवास्तव के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपनी शासकीय व पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ—साथ मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने में मुझे पूरा सहयोग दिया। मेरे श्वसुर श्री बी0 एल0 खरे व माता जी श्रीमती आशा खरे के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी व्यस्तताओं में मेरी जिम्मेदारियों को वहन किया तथा मुझे इस कार्य को पूर्ण करने में मेरा साथ दिया। मुझसे छोटे परिवारीजन स्नेह व आशीष के पात्र हैं, जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य को पूर्ण करने में अपना यथेष्ट योगदान दिया। मैं स्नेह की आकांक्षी हूँ भाई श्री सुधीर, श्री अमिताभ खरे व नीलाभ खरे व दीपा भाभी व जया भाभी की तथा छोटी बहन कु0 गरिमा को आशीष, मेरी पुत्रियों पारुल व परिधि को मेरा ढेर सारा प्यार जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में मेरी अनुपस्थिति के समय धैर्य व सहयोग के साथ मुझे अवकाश दिया। साथ ही सभी परिचितों व स्नेही इष्टजनों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

अणिमा खरे

अणिमा खरे
ए—488, शाहपुरा

विषय-अनुक्रमणिका

अध्याय – 1

बाँदा जिले में स्वातंत्र्य संग्राम एवं नारायण दास 'बौखल'

अध्याय - 1
बाँदा जिले में स्वातंत्र्य संग्राम एवं नारायण दास 'बौखल'

आज दीपावली है, दीपों की अवली के सत्संकल्प व साहस की विस्तारिका। गहन अंधियारी भरी अमावस की तमिस्रा को, उसकी घनघोरता को चुनौती देने वाली प्रकाशावलि। ज्ञान, बोध, और ऐश्वर्य की अधीश्वरी—लक्ष्मी के आगमन की रात्रि को अपने योगदान से ऐश्वर्यमयी बनाती हुई दीपमालिका।

दीपावली की बात इसलिये आई क्योंकि इस दिन की तमिस्रा-भेदन-प्रक्रिया में लघु दीपकों के साहसिक संकल्प की अमरता व्याप्त है। लघुता विराट् भाव का सूक्ष्म अंकन है, उसका अस्तित्वमूलक तत्व है, उसका लघु संस्करण है, उसका अन्तर्निहित वैशिष्ट्य है; अतः लघु के योगदान का महत्व विराट की प्रभापूर्य सीमा से किसी भी प्रकार से कम नहीं है।
भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में, स्वाधीनता प्राप्ति हेतु किये गये विराट् यज्ञ में जिन-जिन लघु आयोजनों नें अपने को अर्पित किया, उनका महत्व भी इसी प्रकार से यज्ञ में डाली गई लघु आहुतियों के समान ही उसे पूर्णता तक ले जाने में हैं।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में बाँदा जनपद के योगदान के परिप्रेक्ष्य में यह टिप्पणी है। देश के मध्य भाग में स्थित बुन्देलखण्ड का पवित्र स्थल अपने स्वाभिमान धनी सपूतों के शौर्य, वीरता और साहस का शताब्दियों से परिचय देता रहा है। यहाँ बुन्देला राजाओं का शासन रहा जिनमें से कितनों ने ही अपनी मातृभूमि की रक्षा उत्तरदायित्व वहन करते हुये अपने प्राणों की बलि दी है। उन राजाओं के गर्म लहू से स्नात, बुन्देलखण्ड की यह वीर प्रसू तपस्विनी भूमि आज भी अपने शहीद हुये सपूतों की यशगाथा गा रही है। यहाँ के बुन्देला नरेशों में स्वनामधन्य चम्पतराय तथा वीर सिंह देव का नाम उनकी अप्रतिम वीरता के कारण अमर है, जिन्होंने अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट की सेनाओं से लोहा लिया और उन्हें परास्त कर विजय-श्री का वरण किया था।

इस पावन भू—खण्ड के अंतर्गत अनेक जनपद हैं, जो अपनी पृथक—पृथक विशेषतायें रखते हैं, परन्तु उन सबमें 'बाँदा' जनपद अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण बुन्देलखण्ड का एक प्रख्यात जनपद है। महर्षि वामदेव का आश्रम यही पुराकाल में होने के कारण इसका नाम वामेश्वर हुआ था जो कालान्तर में बदलकर अब 'बाँदा' हो गया। इस जनपद को महाराजा विराट की नगरी होने का सौभाग्य प्राप्त रहा है जहाँ पाण्डुपुत्र अर्जुन ने एक वर्ष निवास किया था तथा अति विपन्नावस्था में सब भाइयों ने शरण पायी थी। मन्दाकिनी पयस्विनी की पवित्र धारा से घिरा हुआ चित्रकूट का परम रमणीय तीर्थस्थल यहीं पर है जहाँ अग्नितत्व सम्भूत, नर रूप में नारायण भगवान राम ने भ्राता लक्ष्मण व सहधर्मिणी सीता के साथ अपने वनवास के बारह वर्ष व्यतीत किये थे। ऐतिहासिक पुरुष वीर शिरोमणि आल्हा ऊदल की कर्मस्थली 'महोबा' भी इसी जनपद के अंतर्गत थी (जो महोबा अभी हाल में ही स्वतंत्र जनपद बन गया है) जिसने उनके शौर्य की गाथा को अपने वक्ष में संजो रखा है। कहते हैं यहाँ हुये संग्राम में

इतना रक्तपात हुआ था कि उसकी माटी आज भी लाल है। कालकूट विष को परास्त करने वाले भगवान शिव ने हलाहलपान की वेदना को इसी जनपद के कालिंजर (कालं + जर) नामक स्थान पर शान्त किया था। इस कालिंजर का अभेद्य दुर्ग आज भी स्वाभिमान से सिर ऊँचा किये खड़ा है और शौर्यवानों को चुनौती दे रहा है, भगवान शिव के एक रूप नीलकण्ठ का सुप्रसिद्ध मंदिर भी यहीं पर स्थित है। बाँदा जनपद के अंतर्गत ही आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का आश्रम लालापुर नामक ग्राम में है जहाँ से उन्होंने भगवान राम को उनके उपयुक्त निवास स्थान चित्रकूट को बताया था। ललित काव्यधारा के धनी श्री 'पद्माकर' कवि का जन्म बाँदा में ही हुआ था जिनके द्वारा प्रणीत अनेक काव्य ग्रन्थों में 'गंगा लहरी' का स्थान बहुत ऊँचा है। कविवर 'बोधा' इसी जनपद के राजापुर ग्राम में जन्मे व बसे थे जिन्होंने सरस काव्य की धारा बहाई थी। इसी जनपद की एक तहसील 'मऊ' जिसका प्राचीन नाम 'कोसम' था, कोशल नरेश प्रसेनजित की राजधानी 'कौशाम्बी' नाम से थी, इनकी बहिन कोशला (वासवी) राजा बिम्बिसार की रानी थीं। मगध राज्य के मंत्री और वृहत्कथा के लेखक 'वररुचि' की जन्मभूमि भी यहीं थी। भगवान राम की गाथा को 'रामचरित मानस' में अमर करने वाले महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म स्थान बाँदा के राजापुर ग्राम में हुआ था जो यमुना के किनारे बसा हुआ है और अभी भी जहाँ के तुलसी मंदिर में गोस्वामी जी के हाथ की लिखी हुई अयोध्या काण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है। तुलसी ने तो राम की प्रशस्ति में प्रबंध काव्य लिखा परन्तु यहाँ के कवियों ने तुलसी की प्रशस्ति लिख करअपनी वाणी को धन्य किया।

राम छोड़कर और की जिसने कभी न आस की।
राम चरित मानस कमल', जय हो तुलसी दास की।। (1)
आज हैं संसार की आशा लतायें शुष्क झुलसी।
है प्रभो ! फिर भेज दो तुम एक तुलसी, एक तुलसी।। (2)

बुन्देलों के बाद बाँदा में नवाबी शासन प्रारंभ हो गया था। इन नवाबों ने बाँदा में कई स्मरणीय स्थलों का जैसे नवाब साहब का तालाब व जामा मस्जिद का निर्माण कराया। अंग्रेजों से युद्ध चलते रहते थे। अंतिम नवाब अली बहादुर द्वितीय ने इस जनपद की ओर से अंग्रेजों से 1857 के युद्ध में लोहा लिया था। उन्होंने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को व चरखारी के राजा के विरूद्ध तात्याँ टोपे को सैनिक मदद भेजी थी। तत्कालीन कलेक्टर 'मेन' ने अपना विचार व्यक्त किया था कि ''बाँदा जनपद के नक्शे में कोई भी गाँव नहीं था जिसने क्रांति में भाग न लिया हो। क्रांति पूर्ण थी।''

मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ 'गालिब' सन् 1827 में कलकत्ता जाते हुये बाँदा से गुजरे तथा छः माह तक रूके। उनका निवास मौलवी मुहम्मद अमीन के घर पर था। उन्होंने ग़ज़ल लिखी थी—
''गालिब खुदा करे कि सवारे समंद नाज़। देखूं अली बहादुर गुहर को मैं।।" (3)
वे चिल्लातारा होते हुये नाव से कलकत्ता गये। साहित्य क्षेत्र में भी बाँदा जनपद का नाम अग्रणी रहा है। तुलसी से लेकर आधुनिक काल के जनकवि 'केदार' तक शताधिक कवियों की वाणी यहाँ

(1) श्री जयशंकर 'प्रसाद' (2) सुभद्रा कुमारी चौहान
(3) बाँदा वैभव – श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव.

गूंजी है। रीतिकाल के अनन्तर भारतेन्दु युग के अंतिम चरण में 'रामरसिकेन्द्र' मुंशी शीतल प्रसाद तथा शारदा प्रसाद 'शारद रसेन्द्र' चित्रकूट मंडल के निकट अपनी वाणी का वरदान बाँटते रहे; तथा गद्य के कलेवर को अपनी रचनाओं से अलंकृत करने वाले साहित्यकारों में वर्तमान में गोविन्द मिश्र व अजित पुष्कल के नाम गिनाये जा सकते हैं। इनके पूर्व व समकालीन लेखक– सर्वश्री हर प्रसाद शर्मा, नरेन्द्र 'पुण्डरीक', रामभजन निगम, जयकांत शर्मा, कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, राजाराम श्रीवास्तव गुलाब सिंह, कृष्ण मुरारी पहाड़िया, सावित्री श्रीवास्तव, कान्ति खरे, आशा श्रीवास्तव आदि शताधिक संख्या में हैं।

इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और साहित्यिक परम्पराओं से समृद्ध इस जनपद का कण कण शौर्य, त्याग, तपस्या, पवित्रता, शान्ति, साहस व नैतिकता की यशस्विनी गाथाओं से सुरभित हो रहा है। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से इस जनपद की गणना 'पाठा' क्षेत्र के अंतर्गत होती है और यहाँ 'सूखा' आदि की भीषण आपदायें प्रायः आती रहती हैं तथापि यहाँ के निवासियों की प्रबुद्ध चेतना और मानसिक सन्तुलन ने कभी किसी के आगे हार नहीं मानी। संभवतः यही कारण है कि यहाँ के निवासियों में आपदाओं से संघर्ष करने और संघर्ष झेलने की अद्‌भुत क्षमता आ गई है। उनका चरित्र भी एक प्रकार से बेलाग–लपेट वाला जुझारू व मानधनी हो गया है। स्वयं सिद्ध है कि ऐसा दृढ़ संकल्पी और परम्परा–समृद्ध जनपद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कभी पीछे नहीं रह सकता था। देश की आजादी के लिए दीवाने बने यहाँ के सपूत विदेशी शासन को जड़मूल से उखाड़ने के लिये हँसते हँसते मौत को गले लगाने के लिये तत्पर हो उठे थे। जनपदीय स्वतंत्रता संग्राम व उसके सेनानियों का वर्णन आगे के पृष्ठों में किया जा रहा है।

बाँदा जनपद की असहयोग आन्दोलन में भागीदारी

सन् 1857 की क्राँति के विफल हो जाने व अंग्रेजों के क्रूर दमन चक्र के नीचे पिस कर भारतीय जनता के मन में बसी हुई स्वाधीनता की लौ यद्यपि मंद पड़ गई थी परन्तु वह धुंधुवाती हुई लकड़ियों की भाँति भीतर ही भीतर सुलग भी रही थी। प्रथम विश्व युद्ध में भारत ने अंग्रेजी सेना का साथ दिया था, उन्हें अपनी स्वामिभक्ति का विश्वास दिया था, परन्तु युद्ध की समाप्ति तक स्थिति बदल गई थी। जहाँ एक ओर यह युद्ध महाशक्तियों के बीच शक्ति संतुलन का निर्णयक सिद्ध हुआ वहीं दूसरी ओर भारत के लिये यह आँख खोलने वाला भी सिद्ध हुआ। विश्व युद्ध के दौरान महात्मा गाँधी आदि शीर्ष नेता ब्रिटिश सत्ता की सदस्यता पर विश्वास रखने वाले उनके हितैषी थे, परंतु युद्ध के बाद उनका मोहभंग हुआ और विदेशी शासन द्वारा उनकी स्वदेशी शासन की माँग न मानी जाने पर वे असहयोगी बन गये। अब दासता से मुक्ति पाने व ऐतिहासिक स्वतंत्रता संग्राम के पावन अस्त्र से पराधीनता की बेड़ियां काटने के लिये देश कटिबद्ध हुआ और असहयोग आंदोलन के महाअभियान के चक्र के चक्र चलने लगे। तब चारों दिशाओं से इसकी सफलता की चेतना उद्‌बुद्ध होने लगी। इस जनपद के वीर सपूत भी उस रणयज्ञ में अपनी आहुति देने के लिए प्राणपण से तत्पर हो उठे। महात्मा गांधी ने इस अभियान का प्रारंभ निम्न छः सूत्री कार्यक्रम प्रस्तावित करके किया-

1. भारतीयों द्वारा उन सरकारी पदवियों– जैसे, सर, रायबहादुर, राय साहब आदि जो अंग्रेजों की ओर से दी जाती थीं– उनका परित्याग करना।

2. सरकारी नौकरियां छोड़ना।
3. सरकारी स्कूलों की शिक्षा का त्याग करना।
4. सरकारी अदालतों का बहिष्कार करना।
5. मद्य निषेद्य यानी शराब बन्दी।
6. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना।

बाँदा जनपद में इन छहों सूत्रों पर आम सहमति बनी व नागरिकों ने स्वेच्छया इन्हें अपनाया। पूरा जनपद ही स्वातंत्र्य संग्राम के परचम के नीचे अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह का बिगुल बजाता हुआ इकट्ठा हो गया। दुःशासन की गतिविधियों के कुचक्र को उद्घाटित करने व आत्मोत्सर्ग करने वालों के मार्गदर्शन व नेतृत्व के लिये अनेक दिशाओं से प्रयत्न होने लगे।

बाँदा नगर व आस पास के कस्बों से असहयोगियों की टोलियाँ एक स्थान पर एकत्र होकर सभायें करने व जुलूस निकालने की योजनायें बनाने लगीं। पत्रकारों, बुद्धिजीवियों ने उन्हें सही मार्गदर्शन देने के लिये जोशीले साहित्य का प्रणयन किया। कवियों ने भैरव गर्जना के गीत गाये। महिलाओं ने पर्दे से बाहर आकर संगठनात्मक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया। उस समय 'खादी' एक महान मंत्र बन कर जप की तरह लोगों के ह्रदय में बस गया, जगह जगह खादी भण्डारों को खोले जाने के प्रयास प्रारंभ हुये। स्थान स्थान पर स्वराज्य आश्रम, चर्खा आश्रम आदि स्थापित किये गये।

ऐसे समय में बाँदा जनपद को सुदृढ़ नेतृत्व देने के लिये इस संग्राम के सूत्रधार के रूप में त्यागमूर्ति पं. लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री जी का आगमन हुआ। उनके साथ कुँवर हर प्रसाद सिंह, मास्टर नारायण प्रसाद, श्री सुखवासी लाल तथा कुँवर जुगुल किशोर के नाम, उनके तपःपूत और साहसी नेतृत्व के कारण स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे, जिन्होंने देश के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले सहस्त्रों बलिदानी व त्यागमयी विभूतियों को इस महान संग्राम में हुत होने की प्रेरणा, मार्गदर्शन व अनुशासनात्मक नेतृत्व दिया। मास्टर नारायण दास 'बौरवल' भी इसी की एक कड़ी थे। जैसा कि मैंने पहिले कहा कि लघुतम का योगदान भी यज्ञ की पूर्णाहुति तक अपना महत्व रखता है— इस बाँदा जनपद के योगदान का महत्व भी भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक स्मरण रखा जायेगा।

दूसरों को सिखाने के पूर्व आदर्शों को पहिले अपने आचरण में उतारा जाता है तभी वह प्रभावी होता है। उपर्युक्त महानुभावों में पं. लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री जी ने राजकीय विद्यालय का शिक्षक पद त्यागा, मास्टर नारायण प्रसाद, श्री सुखवासीलाल एस.डी.आई. एवं कुँ. जुगुल किशोर सिंह ने इंजीनियर नगर पालिका इलाहाबाद का पद त्याग दिया। कुँ. हर प्रसाद ने वकालत छोड़ दी। श्री शम्भूदयाल श्रीवास्तव वन विभाग छिंदवाड़ा की नौकरी छोड़ आये तथा सर्वश्री श्याम सुन्दर श्रीवास्तव, शम्भूनाथ सिन्हा, भूपेन्द्र निगम, गिरजा शंकर पाण्डेय, सत्य नारायण पांडे, राधेश्याम, भगवान दास, मिथला शरण आदि ने शिक्षा का बहिष्कार किया। स्वतंत्र रूप से शिक्षा देने हेतु नगर में एक राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना श्री कालूराम वैद्य के निजी प्रयासों से 'कालूराम मनसुखराम गोदाम' में हुई। इस विद्यालय में उपरिलिखित सज्जनों में से कुछ लोग शिक्षक बने। (1)

---

(1) 'बाँदा वैभव', पृ. 159 — श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

1. पं. लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री — गीता का एक श्लोक है—

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत् तदेवावगच्छ त्वं मम् तेजोंऽशसम्भवम् ।। (1)

(जो भी प्राणी गौरव, चारूता और शक्ति से युक्त है तू समझ ले कि वह मेरे ही अंश से उत्पन्न हुआ है ।)

इसके अनुसार पं. अग्निहोत्री जी का संसार में प्रादुर्भाव मानो इसी रूप में हुआ था। श्लोक के एक—एक वर्ण में जो दीप्ति और ऊर्जा भरी है, उसी ने मानो पं. जी की काया में अपना रूपान्तरण कर लिया था। "त्याग और बलिदानों के सोपानों पर निरंतर गतिशील रहने पर व्यक्ति विभुत्व की श्रेणी भी प्राप्त कर सकता है। वह अपनी साधना में संलग्न रहकर सिद्धि को अनायास ही वरण कर लेता है। प्रस्तुत लेख में विचार प्रवण लेखक- (श्री देवेन्द्र नाथ खरे, एम.ए., एल.टी;सा.रत्न. प्रवक्ता डी.ए.वी. कालेज बाँदा) ने बाँदा जनपद के गाँधी, श्रद्धेय पं. लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री के इन्हीं देव दुर्लभ गुणों का आँकलन कर उन्हें स्वाधीनता संग्राम से संपृक्त करने का स्तुत्य प्रयास किया है जो भविष्य में जनपदीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास लेखन के लिये अत्यन्त उपयुक्त है।" (2)

पं. लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री जी में शक्ति, शील और सौंदर्य के जीवन्त मूर्तिमन्त आदर्श प्रत्यक्ष होते थे। आर्य्योचित दिव्यदेह, भव्य मुखाकृति, उन्नत ललाट, प्रतिभाभास्वर नेत्र, मत्थे पर गौरवपूर्ण चिन्तन की रेखायें, आजानु बाहुओं में कर्मठता की अग्नि, चरणों में वामन की गति और घुंघराले बालों में विष्णु की मोहिनी छवि की प्रतिमूर्ति— जिसने भी एक बार पं. जी को देखा वह सदा के लिये उन्हीं का होकर रह गया और जीवन पर्यन्त उनके आदेशों, अनुरोधों, अनुग्रहों और अनुकंपाओं के लिये उनकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। तो ऐसा विभव था पंडित लक्ष्मी नारायण जी के व्यक्तित्व में। गाँधीजी ने अपने सैनिक में दो गुणों की कामना की थी— उदार हृदय और संदेह से परे निष्कलंक चरित्र। उनका कथन था कि इन दोनों गुणों के होने पर सत्याग्रही के लिये आवश्यक अन्य गुण अपने आप ही अनिवार्य रूप से आ जाते हैं। पंडित जी में दोनों गुणों का समावेश चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। वे हृदय से फूल के समान कोमल व अनुशासन तथा व्यवस्था पालन के लिये वज्र से भी अधिक कठोर थे। प्रखर प्रतिभा सम्पन्न होने के कारण उन्होंने देश की राजनीतिक गतिविधियों का गहन अध्ययन किया और पाया कि कठोर से कठोरतर होता जाता हुआ शासन से विद्रोह करने वाला क्रांतिविहग अपनी शक्तिशाली उड़ानों से स्वाधीनता को निकट लाने के लिये प्रयासरत् है तो उन्होंने अपने लिये काँटों भरा मार्ग अपना लिया, स्वयं शिक्षक पद छोड़ा पर शिक्षक की गरिमा में लेश मात्र भी आंच न आने दी। इसी कारण वे अपने सहकर्मियों व सत्याग्रही वीरव्रतीजनों में अग्रणी बन गये।

सन् 1920 तक आते आते देश में स्वराज्य प्राप्ति हेतु आन्दोलन की भूमिका तैयार हो गई थी, परन्तु लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की आकस्मिक मृत्यु से राष्ट्रीय प्रगति को बड़ा आघात लगा; तब गांधीजी ने आन्दोलन का श्री गणेश करके देश को उस स्थिति से उबारा। पं. जी उसी समय जेल गये, 2 वर्ष की सजा काटी। छूट कर आने पर वे राष्ट्रीय विद्यालय में शिक्षक बने। साथ ही खादी प्रचार व ग्रामोद्धार की योजनाओं में अपना तन मन लगा दिया। वे पैदल गांवों की यात्रा

(1) 'श्रीमद्भगवतगीता' — दशम अध्याय, श्लोक—41

(2) 'कामद क्रान्ति' पृ. 5 — टिप्पणी — संपादक, 'कामद क्रान्ति'

करने व संघर्षों का सामना करते इस उक्ति को चरितार्थ करते थे—

''क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महताम् नोपकरणे'' । (1)

इनके साथ विद्यालय छोड़ने वाले तथा अन्य अनेक जोशीले नवयुवक व प्रौढ़ नागरिक थे जो नित्य प्रातः उठकर 4 बजे से प्रभात फेरियाँ निकालते, राष्ट्रगान गाते हुये विदेशी कपड़े इकट्ठे करते, उनकी होली जलाते, पिकेटिंग करते व विदेशी बहिष्कार का मन्त्र लोगों में फूंकते थे। धीरे—धीरे इन लोगों का मजाक उड़ाने वाले नागरिक व अधिकारी भी इनके साथ होने लगे।

चौरी चौरा काण्ड के बाद जब आंदोलन धीमा पड़ने लगा तब गांधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रमों की ओर उसे मोड़ दिया। पंडित जी गाँव—गाँव में खादी प्रचार करने व खादी आश्रम खुलवाने आदि में लगे। वे क्रांतिकारियों को हर संभव सहायता पहुँचाते रहते थे। सन् 30 से पंडित जी की गतिविधियों पर गुप्तचर विभाग की पूरी नजर रहने लगी। उनकी डायरियों में इनके कार्यक्रमों का पूरा ब्यौरा रहता था— उदा. "12 अप्रैल सन् 1930- ''बाबा रामचन्द्र गिरवाँ गया शाम को वापस आया। झंडा खद्दर भंडार से उठाया गया, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में खड़े होकर गाना गाया गया चलती वक्त में गवर्नमेंटबर्बाद बोले, अलीगंज घूमे, सेठ विष्णु करण के हाते में एक कमीज़ की होली जलायी गयी, वहाँ से खाई पार घूमे, मुलवा चमार के मकान के सामने खतम किया। मुलवा चमार के चतूतरे पर सब बैठे, चमारों का बुलाया गया उनको बाबा रामचन्द्र ने समझाया, कालूराम ने भी । मास्टर नारैनन प्रसाद ने शराब पीने को मना करा गया और बेगारी देने को मना करा गया । इसका असर । इस पंचायत में थे कुँवर हर प्रसाद सिंह, सेठ विष्णु करण, कालूराम गौड़, दुग्गा प्रसाद, गंगादीन चमार । भूरा महाराज, मोतीलाल, अगरवात और सब लड़के। . . रामलीला मैंदान में नमक कानून भंग करा जायेगा। महोबा से मोटर पर 10 बजे मिथला आया नं. 58/कर्वी से मास्टर लक्ष्मी नारायण जत्था लेकर बाँदा आये । . .बाबा महावीर का जत्था वापस गया ।"

पंडित जी के साथ महादेव भाई, रामसेवक खरे, रामगोपाल भाई, गोकुल भाई, मिथला शरण आदि सदा रहते थे। पं. जी 18-01-33 को पुनः गिरफ्तार किये गये लखनऊ में। वहाँ से छूटने पर 1935 में बुन्देलखण्ड के संगठनकर्ता बने। इसके बाद कुं. हरप्रसाद सिंह, विष्णुकरण सेठ, बलदेव प्रसाद रहतिया आदि ने कार्यों में सहयोग दिया।

इस प्रकार अपना संपूर्ण जीवन स्वाधीनता संग्राम की बलिवेदी पर समर्पित करने वाले पं. अग्निहोत्री ने रीढ़ की हड्डी में लोहे का तार चुभने, फलतः टिटनेस हो जाने से अपनी इह लीला समाप्त की। (2)

2. **कुँवर हरप्रसाद सिंह एडवोकेट** — बाँदा जनपद के दूसरे अन्यतम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी कुँवर हर प्रसाद सिंह एडवोकेट थे। पिता श्री हीरालाल व माता गौरा देवी के पुत्र कुँवर साहब शौर्य और साहस के प्रतीक, परम निर्भीक, कानूनविद् एवं प्रखर वक्ता थे। उन्होंने महर्षि दयानन्द के सामाजिक व धार्मिक सुधारों के साथ—साथ राष्ट्रीय भावनाओं को आत्मसात करके महात्मा गाँधी के सत्य, अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन में बुन्देलखण्ड में बाँदा जनपद का नाम अग्रणी कराने में विशिष्ट योगदान किया था। वे बाँदा की कचेहरी के सबसे मुखर, स्पष्टवादी

---

(1) सूक्ति संग्रह (2)श्री देवेन्द्रनाथ खरे, एम.ए. , एल.टी. , साहित्यरत्न द्वारा 'कामद क्रान्ति' में पंडित लक्ष्मी नारायण अग्निहोत्री जी पर लिखे हुए संपूर्ण परिचयात्मक लेख पर आधारित.

ामशरण गर्ग ऐंचवारा
बांदा

श्री शिवबालक राम गुप्ता,
दविवजार बांदा

श्री विष्णुकरण जी मेहता

जगन्नाथ बाँबा
करहुली

श्री रुद्रदेव शर्मा बांदा

श्री गोपीकृष्ण आजाद
ग्राम–पारा, जिला–बांदा

श्री गंगाशरण भारतीय

श्री विन्द्रावन मिश्र चित्रकूट

रामकिशोर उर्फ पाठा गान्धी
कमाखुर्द कर्वी, बांदा

श्री लल्लूराम बांदा

मनबोधन उर्फ सुदामा
कोर्रम ववेरू बांदा

श्री रामसिंह ग्राम बाधा
विसंडा, बांदा

कुं० श्री हरप्रसाद सिंह
नकील बाँदा

श्री मा० शम्भूदयाल जी
जन्म सन् २०-८-१८९५

श्री बिहारीलाल
सेमदी बांदा

राजबहादुर सिंह
इँगुवा बांदा

7

प्रखर प्रतिभा सम्पन्न एडवोकेट थे। उनमें राणा प्रताप की देशभक्ति, गुरू गोविन्द सिंह की संगठन क्षमता, शिवाजी की नीति कुशलता, छत्रसाल का शौर्य तथा भामा शाह की दानवीरता व चाणक्य की सी विलक्षण बुद्धि थी। बाँदा से एन्ट्रेंस परीक्षा पास करके वे 'प्लीडर' की परीक्षा के लिये इलाहाबाद गये जहाँ श्री मोतीलाल नेहरू, प्यारेलाल बनर्जी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन व सेठ दामोदर दास वकील के निकट संपर्क में आये और तभी से उनके मन में राजनीतिक चेतना ने पंख पसारे और बाँदा लौटकर कचेहरी में वकालत शुरू कर दी। राजर्षि टंडन जी के संपर्क ने उन्हें प्रगाढ़ हिन्दी सेवी बना दिया जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया।

वे अप्रतिम सूझ बूझ के धनी थे, उनके हाथों में मिट्टी को सोना बना देने की शक्ति थी, उनकी वाक्पटु पद्धति से उनकी तिजोरी हमेशा भरी रहती थी। समृद्ध होने के कारण कांग्रेस की बड़ी बड़ी गतिविधियों का केन्द्र उनका ही घर होता था। सन् 21 के आंदोलन में भाग लेने के बाद उनका घर क्रांतिकारियों का व स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का तीर्थ बन गया था। सन् 1930 में गाँधीजी बाँदा आये थे तो उन्हीं के घर पर रूके थे, पं. जवाहर लाल नेहरू भी उन्हीं के घर आये व लगभग एक पखवाड़े तक वहीं रूक कर रूसी क्रांति का उद्‌बोधन लोगों को देते रहे।
उन्हें सन् 30 से 34 तक का कारावास मिला। छूटकर आने पर पुनः सन् 41 से 42 तक की सजा काटी। इन पर भी गुप्तचर विभाग की नजर रहती थी। उस डायरी में लिखा एक उद्धरण :—

7 अप्रैल 30 - "झंडा मै वालन्टियर हर प्रसाद के यहाँ से उठे झाड़ी लाल के मकान में झंडा गाड़ा, लक्ष्मी नारायण, रामचन्दर, छावनी कायम किया पैदल चलकर नवाब साहब के तालाब पर इधर मिथला की मोटर पर कर्वी गये कुँवर हर प्रसाद सिंह, कालूराम, रामचन्दर, मूलचन्द्र वैश्य, प्रेमसिंह महोबा, लक्ष्मी नारायण, मंगल सिंह, दीनानाथ, बलदेव भाई, विचित्र नारायण, पुल्न बाम्हन, बैजनाथ, प्रचार करने कर्वी गये, शाम को झंडा उठा शहर घूमकर खद्दर भण्डार पर खतम किया। दुर्गा प्रसाद गौड़, विष्णु करण सेठ, मास्टर नारायण प्रसाद, महाशय मोतीलाल भार्गव, नन्द किशोर वर्मा का छोटा भाई।"

सन् 41 के व्यक्तिगत सत्याग्रह व 42 के भारत छोड़ो आन्दोलन जिसमें कुँवर सा. को कारावास हुआ था— के समय बाँदा में जिलाधीश श्री गिल साहब थे, उन्होंने इन्हें बहुत खतरनाक व्यक्ति समझा था इसी कारण इन्हें जेल भेजा गया था। उनके जेल जाने से भी आन्दोलनकारियों की कोई गतिविधियां नहीं रूकीं वे लगातार सूचनायें, बुलेटिन निकालते रहे। तत्कालीन कोतवाल मुहम्मद अली साहब ने गिल सा. को सलाह दी कि कुँवर सा. अकेले को पकड़ने से कुछ न होगा, उनके मुंशी जी को पकड़ना जरूरी है, परिणामतः मुंशी जी— श्री मथुरा प्रसाद खरे— के घर कई बार तलाशी हुई और डुप्लीकेटर मशीन का बहाना लेकर मुंशीजी को भी जेल भेज दिया गया। 3 माह बाद पुलिस द्वारा मशीन की हालत देख लिये जाने पर मुंशी जी को छोड़ा गया परन्तु कुँवर सा. जेल में बीमार हो गये अतः उन्हें बलरामपुर अस्पताल भेजे जाने की सलाह दी गई। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत कुँवर सा. की विधि योग्यता पर बड़े प्रसन्न रहते थे और जिले के प्रशासन में उनकी रूचि का ध्यान रखते थे।

जेल में छूटने पर उन्होंने पुनः संगठन का कार्य संभाला और बाँदा विधान सभा क्षेत्र से अपने प्रत्याशी श्री बी.एन. वर्मा को विजयी बनवाया। उनका वैभव तो बढ़ता गया पर शरीर अस्वस्थ हो गया और 6 जून 1951 को उन कर्मठ स्वतंत्रचेता व्यक्ति का निधन हो गया। मृत्यु उनके शरीर को ले जा सकी पर उनके द्वारा बाँदा में स्वाधीनता प्राप्ति हेतु जो अलख जगाया गया उसकी ज्योति कभी मंद नहीं पड़ी। (1)

3. मुंशी मथुरा प्रसाद जी खरे — सम्वत् 1942 में अजयगढ़ में जन्में मुंशी मथुरा प्रसाद जी खरे का भारत वर्ष के स्वातंत्र्य—यज्ञ में बाँदा जनपद की ओर से महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व रहा है। छोटे कद किन्तु अत्यन्त विशाल ह्रदय तथा कर्मठ व्यक्तित्व के स्वामी मुंशी जी ने कुँवर हरप्रसाद जी के साथ मिलकर हिन्दी तथा माँ भारती के स्वाभिमान की रक्षा के लिये कार्य किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्वदेशी, स्वभाषा और स्वराज के त्रिसूत्रीय कार्यक्रम को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर मुंशी जी ने 1913 में राजर्षि पुरषोत्तम दास जी टण्डन के बाँदा आगमन तथा आव्हान पर बाँदा जनपद के न्यायालयों में नागरी लिपि के प्रवेश हेतु प्रयास आरंभ किए। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाने हेतु मुंशी जी ने फारसी तथा रोमन लिपि के शिकंजे को तोड़ने का कठिन एवं काँटों भरा मार्ग चुना। अनेक व्यवधानों के बाद भी दृढ़ संकल्पी मुंशी जी को उत्तर प्रदेश में नागरी लिपि में सबसे अधिक कचेहरी का काम करने के फलस्वरूप पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में चांदी का कलमदान तथा प्रमाण पत्र प्रदान किया गया।

1917 में आपने नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय का प्रारंभ किया। 1925 में राय साहब बाबू केदारनाथ जी के आदेश व प्रेरणा के फलस्वरूप दयानन्द पुस्तकालय की स्थापना की। दोनों पुस्तकालयों में श्रेष्ठतम पुस्तकों का संग्रह किया। ये पुस्तकालय न केवल अध्ययन केन्द्र थे वरन् भारतमाता को परतन्त्रता के पाश से मुक्त कराने वालों के निर्माण केन्द्र भी थे। स्वाधीनता हेतु संग्राम में इनके सबसे बड़े सहयोगी व सहभागी कुँवर हर प्रसाद जी ने मुंशी जी को आग्रह पूर्वक निर्देश दिया हुआ था कि वे कारागार से बाहर ही रहकर आंदोलनों का संचालन करें। दोनों व्यक्ति एक—दूसरे के पूरक थे तथा दोनों में मणि—कांचन संयोग था। कुँवर साहब प्रायः जेल में रहते थे। अतः मुंशी जी जेल के बाहर माँ भारती, माँ सरस्वती की सेवा भी अत्यन्त कर्मठता से करते थे तथा उसी लगन से वे कुँवर साहब की पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी अपने परिवार की जिम्मेदारियों के साथ—साथ वहन करते थे। इन्होंने हिन्दी की ओर पढ़े—लिखे वर्ग को आकर्षित करने हेतु हस्तलिखित पत्रिकाओं के संपादन का कार्य प्रारंभ किया।

बाबू केदारनाथ जी की मृत्यु के कारण कुछ समय के लिए दयानन्द पुस्तकालय को सुचारू रूप से चलाने में व्यवधान उत्पन्न हुआ। मुंशीजी को इससे मर्मान्तक पीड़ा हुई। 1937 में उ.प्र. में कांग्रेस सरकार की स्थापना से इन्होंने पुस्तकालय का पुनरूद्धार किया।

राष्ट्रीय आंदोलन को गति देने में सहायक प्रत्येक आंदोलन में वे बड़ी तत्परता व लगन से शामिल होते थे। 1919 में गाँधीजी के 'असहयोग आंदोलन' में मुंशीजी ने अत्यन्त आर्थिक कष्टों को झेलने पर भी मुहर्रिरी छोड़ दी तथा आंदोलन में शामिल हुए। खद्दर का प्रचार—प्रसार करने हेतु

---

(1) स्रोत —'कामद क्रान्ति', श्रीमती शान्ती खरे, एम. ए. बी.टी. के लेख पर आधारित.

बाँदा में बाहर से खद्दर मंगाकर दुकान खोली तथा भारत माता की सेवा में जुट गए । 'पं. सुन्दरलाल शर्मा' की पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज्य' को अंग्रेजी शासन द्वारा जब्त किए जाने के बाद मुंशीजी ने बिना किसी भय के संपूर्ण जनपद में इसकी प्रतियां प्रसारित की। 1930 में बाँदा से सत्याग्रही अखबार इन्हीं की प्रेरणा से निकाला गया।

आर्य-समाज राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण केन्द्र था। 1925 में दयानन्द जन्मशताब्दी में अनेक राष्ट्रीय नेताओं को बाँदा आमंत्रित करके उनके ओजस्वी व अमूल्य विचारों को जनता तक पहुंचाया। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, देशी रियासतों तथा मध्यप्रदेश के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में पुस्तकों के गट्ठर लादकर पहुँचाने जैसा कठिन कार्य भी मुंशी जी ने किया। श्रद्धेय टण्डन जी के कथनानुसार हिन्दी को सशक्त बनाने के लिए प्रांतीय व जनपद स्तर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्थापित किए गए। वृद्धावस्था व आर्थिक विपन्नता के बावजूद मुंशीजी ने झाँसी मण्डल में जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलनों की स्थापना की। 1953—54 में अतर्रा में उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन कराया। 1942 में यह प्रखर व्यक्तित्व शासन की पकड़ में आ गया तथा इन्हें 3 मास का कारावास भी हुआ। किंतु कुँवर साहब व मुंशीजी दोनों के साथ—साथ कारागार जाने से आन्दोलन का संचालन डगमगा गया। अतः 3 मास बाद बाहर आते ही ये पुनः आंदोलन में जुट गये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हिन्दी को प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दिलाने हेतु प्रयास जारी रहे। कटरा स्थित पुस्तकालय के नवीन भवन में राजर्षि टण्डन जी के अतिरिक्त डॉ. रामविलास शर्मा, महादेव सहाय व नागार्जुन जी को आमंत्रित किया। उनके द्वारा स्थापित पुस्तकालय सामाजिक, राजनैतिक व साहित्यिक कार्यकर्त्ताओं का संगम था।

निरंतर संघर्ष व कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण मुंशी जी का स्वास्थ्य उनका साथ छोड़ने लगा। ये 1964 से 1968 तक निरंतर अस्वस्थ रहे तथा 7 फरवरी 1968 में मध्याह्न बेलामें मुंशी जी ने महाप्रयाण किया।

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार "बज्जर बुन्देली धरती पर केन के किनारे स्थित बाँदा नगर में मुंशी जी ने खपरैलों से छाये घर में गेंदे के पेड़ लगाए तथा साथ में बज्जर धरती में हिन्दी का प्रेम जगाया।" (1)

4. बाबा महावीर दास — बाँदा जनपद के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी 'साकार दिव्य गौरव विराट्' जैसे पावन चरित्र के धनी बाबा महावीर दास का नाम सदैव अमर रहेगा। उन तपःपूत महर्षि के आत्मोत्सर्गी व्यक्तित्व ने जनता जनार्दन के हृदय में देश प्रेम व राष्ट्रीयता की दिव्य ज्योति जगाने में अग्रणी नेता का काम किया था।

सन् 1892 में श्री देवी प्रसाद के घर जन्मे बाबा आजन्म ब्रम्हचारी रहे, उनके छोटे भाई सहादेव भी उसी प्रकार वैवाहिक बंधन से दूर रहे। फतेहपुर के मूल जन्म स्थान के होने पर भी बाबा का कर्मक्षेत्र आजीवन बाँदा ही रहा। उनमें भारतीय शूरों का शौर्य, ऋषियों का त्याग, राष्ट्रभक्ति व सांस्कृतिक गौरव के प्रति उन्मत्तता की सीमा तक पहुंची भावुकता व दीनों के प्रति अटूट करुणा भरी

(1) स्रोत — श्री रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रवक्ता डी.ए.वी. इण्टर कालेज द्वारा 'कामद क्रान्ति' के संघर्ष खण्ड में लिखित लेख.

थी। उस समय अंग्रेजों के दमन से जनता इतनी भयभीत रहती थी कि गाँवों के लोग भी सरकारी खिलाफत की बात सुनकर दहल उठते थे; परन्तु बाबा के अप्रतिम साहस से उन लोगों में भी कुछ करने का जज्बा जागता था। बेधड़क साफगोई और संकल्प दृढ़ता के धनी बाबा 1921 से लेकर सन् 42 तक होने वाले प्रत्येक आंदोलन में जेल जाते रहे। व्यक्तिगत आंदोलन के सिलसिले में भारत प्रतिरक्षा की धारा 38(1) के अंतर्गत उन्हें 25 जनवरी 41 को 14 माह की सजा मिली और उसी धारा के ही भीतर 9 अगस्त 42 से 12 जनवरी 44 तक की नजरबंदी मिली। तब भी— रूपौलिहा जी के अनुसार उन्होंने जेल की रोटी नहीं खाई। विवश होकर जेल वालों को उन्हें आटा बर्तन आदि देने पड़े, वे जेल में भी सत्याग्रही रहे। उनके किये कार्यों का ब्यौरा गुप्तचर विभाग की डायरी में नोट होता रहता था— *"9 अप्रैल सन् 30, — झण्डा यानी जुलूस उठा शहर भर घूमा। प्रायवेट मीटिंग किया। पुस्तकालय (नागरी प्रचारक, बाँदा में)। सेठ विष्णु करण, मास्टर नारायण प्रसाद, मोतीलाल अग्रवाल, मिथलाजी ने वालन्टियर भेजने को तय किया (देहातों में भेजने के लिये), बाबा महावीर दास, प्रेमसिंह महोबा, (पं. प्रेमनारायण त्रिपाठी जो यहाँ प्रेमसिंह के नाम से काम करते थे। दनकू टेलर बाद में जिसने आर्य समाजी होने के कारण नाम कुँवर वेदसिंह रख लिया। राम सेवक खरे महोबा, गोपाल भाई हमीरपुर, रामगोपाल गुप्त मौदहा, भानु सिंह (भतीजा— कुँवर हर प्रसाद सिंह) बाँदा, श्याम बिहारी बाँदा।" (सी.आई.डी. पुलिस बाँदा)।* (1)

बाबा नीलगाय पर सवार होकर नित्य खादी प्रचार के लिये ग्रामों में भ्रमण करते थे। अनेक क्रांतिकारी आपके घर आकर ठहरते थे। यहाँ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री रूपौलिहा जी के अनुसार सन् 1925 या 26 को मैनपुरी के तत्कालीन क्रांतिकारी राजा सिंह तथा सन् 1927 में चन्द्रशेखर आज़ाद स्वतंत्रता का शंखनाद गुंजाने के लिये बाँदा आये थे व एक रात रूपौलिहा जी के पुरवा में ठहरे थे। गिरफ्तारी के भय से वे बाँदा में सामुद्रिक रेखा विशेषज्ञ के रूप में हस्तरेखा विशारद बनकर रहे थे। मिथला भाई ने भी इन बाबा के नेतृत्व में यूथ लीग, नवजवान सभा आदि के लिये कार्य किया।

तत्कालीन सी.आई.डी. पुलिस की रिपोर्टों से व जन जागृति के कार्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय पुरुषों व महिलाओं में समान रूप से राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हो रही थी। ऐसे वातावरण में निर्भीक, सर्वस्व त्यागी बाबा का जीवन स्व. संग्राम सेनानियों के लिये स्वतः स्फूर्त प्रेरणा बना था।

5. पं. गोदीन शर्मा — बाँदा के गाँधी श्रद्धेय अग्निहोत्री के द्वारा जिन्हें 'चित्रकूट का शेर' की उपाधि प्रदत्त की गई थी— ऐसे स्व. संग्राम सेनानी, पत्रकार, निर्भीक समाज सेवी और निष्ठावान शिक्षक के रूप में पं. गोदीन शर्मा की जनपद सेवा अविस्मरणीय है। बाँदा के 'कामता' ग्राम में 7 फरवरी 1892 को जन्मे इस बालक के पिता का निधन मात्र 8 दिन की अवस्था में हो गया था। माता सुभीती देवी द्वारा पालित यह बालक अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, गहन अध्ययन, अटूट देशप्रेम व स्वदेशी की भावना से ओतप्रोत होकर अपनी कर्तव्य परायणता व ओजस्विता से 'चित्रकूट का शेर' उपाधि से विभूषित हुआ। अग्निहोत्री जी ने इनके अध्ययन में बड़ी मदद की थी। कांग्रेस का कार्य

(1) स्रोत — श्री जगत प्रसाद द्विवेदी, द्वारा 'कामद क्रान्ति' में लिखित लेख पृ. 75

करते हुये समयाभाव के कारण ये बी.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये थे परन्तु उस समय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बिहार विद्यापीठ के प्राचार्य थे । उन्होंने इस कर्मठ कार्यकर्ता की लगन व प्रतिभा से प्रभावित होकर इन्हें द्वितीय वर्ष की परीक्षा में बैठने की अनुमति दे दी थी । विद्यालय द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र में स्पष्ट लिखा गया है—

" Godin Sharma was student of this college from July 1921 to June 1922, He was in the first year class. He failed to pass the first exam. In consideration of the fact that hedid congress work, he was allowed to join the 2nd year class. "

कांग्रेस की आर्थिक न्यूनता देख कर पं. जी ने स्वयं को बेचकर धनार्जन करने की घोषणा की थी। वस्तुतः उस समय कांग्रेस को ऐसे ही त्यागी, समर्पित सेवकों की आवश्यकता थी। पं. जवाहरलाल नेहरू ने इन्हें अपनी अध्यक्षता में 'तिलक स्वराज्य आश्रम' का प्रबंधक नियुक्त किया था। उन्हें अपने कार्यों के लिये— जो वे जन जागृति व संगठन के लिये करते थे— सन् 1930 में 9 माह की सज़ा मिली, फिर 1934 में 'जागीर कामता रजौला' की ओर से 6 माह की जेल तथा 1937 में पुनः इसी ओर से 3 माह की सज़ा मिली थी। व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में 9 माह का कठोर कारावास बाँदा, झाँसी तथा मलाका जेलों में बिताया व 1942 में पुनः 15 माह की नजरबंदी की सज़ा भोगी। ये सारी सज़ायें कर्मठ कार्यकर्ता ने हँसकर झेली और न केवल राजनीति वरन् साहित्यिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में इनका योगदान रहा कई पुस्तकें व बाल साहित्य के प्रणेता रहे। स्वतंत्रता की रजत जयन्ती पर इन्हें भारत सरकार की ओर से ताम्र पत्र (नं. 78) देकर सेवाओं को सम्मानित किया गया। इनका उद्‌बोधन गीत था— (1)

"दुष्कंटकों से पूर्ण विपिन में हमारा वास हो। खाने पड़े पत्ते मगर नहीं दासता का त्रास हो।"

6. देशभक्त गज्जू खाँ — आज के समय में भारत वर्ष में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक जैसी साम्प्रदायिक भावनायें भड़का कर वैमनस्यता की गहरी खाई ने देश के ह्रदय को टुकड़ों में चीर दिया है। राजनीति के क्षेत्र से उठने वाली स्वार्थपरक कुलिप्साओं ने देश के पारस्परिक सौहार्द्र को तार-तार करने में ही अपनी सार्थकता स्वीकार कर ली है।

जिस समय देश की आज़ादी के लिये दीवाने कार्यकर्ता अपने जाति धर्म, भाषा, वेश व क्षेत्र के सारे अलगावों को भुलाकर एकमेव देश के मान की रक्षा व स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये कटिबद्ध हो रहे थे, उस समय किसी को यह सोचने का भी अवकाश न था कि हमारा अमुक साथ अमुक जाति का होने के कारण विश्वास का पात्र है भी या नहीं, यह स्पृश्य है या अस्पृश्य, छोटा है या बड़ा, दीन है या समृद्ध यह सोचने की बात ही नहीं थी। तब तो सभी सर पर कफन बाँधकर मर मिटने की तमन्ना में विभोर रहते थे।

बाँदा जनपद के अंतर्गत बबेरू तहसील के निवासी स्वतंत्रता प्रेमी, खादी प्रचारक श्री गज्जू खाँ साहब इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी रहे हैं। तत्परता, देशभक्ति, समाज सेवा व अपूर्व निष्ठावान खाँ सा. गाँधी जी के आंदोलनों में भी उतनी ही लगन व भक्ति के साथ लगे रहते थे जितने अपने दीन व ईमान के प्रति। वे पक्के नमाज़ी थे व हज़ करके काज़ी भी बन गये थे।

(1) स्रोत — श्री श्याम मोहन त्रिवेदी, प्रवक्ता राजकीय इण्टर कालेज बाँदा द्वारा 'कामद क्रान्ति' में लिखित लेख.

उन्हें खादी प्रचार का काम सौंपा गया था जिसे वे एक छोटे टट्टू पर बैठकर गाँव गाँव दौरा करके बेचते थे। सन् 1929 में गाँधी जी के बाँदा आने पर वे उनके साथ रहे व अग्रिम दौरों में भी कर्वी, कुलपहाड़ तक गये। नमक सत्याग्रह में भाग लेने में इन्हें कठिनाई आ रही थी क्योंकि इन्हें कोई जानता न था, पर जब एक सेठ ने जमानत लेने की पेशकस की तब ये सत्याग्रही मान लिये गये। पिकेटिंग करते समय पकड़े जाने पर ईसापुर जेल में चार माह रहे, छूटने पर पता चला कि घर पर पुलिस का कब्जा हो गया है तब भी इन्होंने अपनी राह नहीं छोड़ी। सन् 1932 में छः माह का कारावास मिला, उस समय पैरों के तलुओं में बेंत मारे जाते व मूँज बटवाई जाती थी— जब तक कलेक्टर न जाये तब तक बेड़ी युक्त तनहाई मिलती थी। इसके बाद कलकत्ते में फिर गिरफ्तार किये गये, 41 में फिर सत्याग्रही बनकर जेल भेजे गये। इनका व्यवहार जेल में बहुत अच्छा था। चन्द्रभान गुप्त व गंगा खरे द्वारा दी गई दावत में जेल के खुरशेदलाल के साथ शामिल हुये। यह जनपद का सौभाग्य था कि उसे इतना बहादुर, निर्भीक, भेदभाव शून्य व उत्साही मुसलमान कार्यकर्ता मिला। उन्हें सन् 42 में भी 14—15 माह की कड़ी सज़ा मिली थी जहाँ से वापस आकर वे चुनाव प्रचार में लगे व कभी आंदोलन से अलग नहीं रहे। (1)

7. क्रांति के सशक्त हस्ताक्षर— मिथिला भाई — बाँदा जनपद के स्वतंत्रता संग्राम में मिथिला भाई एक ऐसे अनोखे व्यक्तित्व का नाम रहा है जो देश प्रेम के मतवालेपन में त्वरित बुद्धि, पैनी सूझ बूझ, चुस्ती, चालाकी, निर्भीकता व कुशल खिलाड़ी जैसे चौकन्नेपन से गुप्तचर विभाग, अधिकारियों व पुलिस को छकाने में माहिर था। बाँदा के मदनपुर तहसील में श्री गयादीन के घर जन्मे श्री मिथिला भाई का पूरा क्रांतिकारी जीवन रहस्य रोमांच से भरपूर रहा है।

गाँव से पढ़कर आगे अध्ययन के लिये बाँदा आने पर यहां की आंदोलित गतिविधियों से परिचय प्राप्त करके ये पं. लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री व कुँवर हर प्रसाद सिंह के संपर्क में आये तथा सन् 1921 से लेकर सन् 42 तक जितने भी आंदोलन हुये— असहयोग, नमक कानून, सविनय अवज्ञा व सत्याग्रह— सभी को धार देने में इनका प्रखर योगदान रहा। सजायें पाईं। एक ओर गाँधीजी के साथ मिलकर काम करते व दूसरी ओर क्रांतिकारी कार्यों को अंजाम देते। गुप्तचर विभाग तो इनके प्रति इतना चौकन्ना रहता था कि दिन प्रतिदिन की घटनाओं का ब्यौरा इकट्ठा करता रहता व ऊपर भेजता रहता था परंतु शायद ही पुलिस का दस्ता उन्हें किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर प्राप्त कर पाया हो कभी भी।

एक ओर इतना जागरूक मस्तिष्क दूसरी ओर सहृदयता व सौजन्य की प्रतिमूर्ति। इनकी प्रेरणा से ही जगन्नाथ भाई व महादेव भाई सपत्नीक जेल गये। महादेव भाई का घर क्रांतिकारियों का अड्डा व इन लोगों के गुप्त मंत्रणा का स्थान नागरी प्रचारक पुस्तकालय होता था। गुप्तचर डायरी का एक अंश — *"20 फरवरी सन् 30- मिथला महोबा गया 10 बजे दिन की ट्रेन से। 23 मार्च 30- मिथला शरण नं. 58 महोबा से वक्त 8 बजे रात को आया। मुकीम रहा, धिरेन्दर बनारस का बंगाली। गोरेलाल ब्रहमन कुलपहाण। 25 मार्च 30 को मिथला महोबा 10 बजे वाली ट्रेन से गया। कुँवर हरप्रसाद सिंह गुप्त बात कर गया। दिनांक 2 अप्रैल बलदेव भाई ने स्पीच दिया नमक खद्दर के बाबत्। मिथला मय मोहर के आया शाम को 58 प्रेम सिंह महोबा।"*

---

(1) स्रोत — श्री हरीश खरे, साहित्य रत्न द्वारा 'कामद क्रान्ति' में लिखित लेख.

इस प्रकार 31 दिसम्बर 30 तक की मिथला भाई की पूरी खोज खबर गुप्तचर विभाग के पास थी। यूथ लीग व नौजवान भारत सभा आदि में कार्य करते हुये मिथला भाई जनपदीय आंदोलन की अनिवार्य हस्ती बन गये थे। (1)

8. महादेव भाई — सन् 1906 में जब बंग भंग की ज्वाला पूरे देश में धधक रही थी तब इसी वर्ष खपटिहा कलाँ बाँदा में श्री रामचरण के घर जन्मे महादेव प्रसाद ने बचपन से ही वह सुलगता हुआ वातावरण अपने आस पास पाया। वयस्क होने पर पहिले शिक्षक फिर मुहर्रिर हुये। आंदोलन में दोनों को त्यागा व 30 के आंदोलन में जेल गये। यहीं पर मिथला भाई से परिचय हुआ तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में भागीदारी करने लगे, उनके घर में महीनों तक अस्त्र शस्त्र छिपाये जाने व क्रांतिकारियों के लिये सुरक्षित स्थान दिये जाने की सुविधा हो गई। यह मकान महेश्वरी देवी के पीछे की गली में था। एक पत्र 'सत्याग्रही' निकलता था उसके मुद्रण में इनका विशेष हाथ रहता था। इनके साथ इनकी पत्नी कमला देवी भी जेल जाती थीं, असहयोग आंदोलन में कारावास की सजा काट कर आये और गाँधी आश्रम से खद्दर भण्डार की एजेंसी ले ली। फिर 42 के आंदोलन में पुनः जेल यात्रा व छूटने पर भी काँटों भरी राह अपनायी, जीविका हेतु चाय की दूकान चलाई। अंत में इनकी सेवाओं के फलस्वरूप श्रीमती इंदिरा गाँधी ने स्वतंत्रता की रजत जयंती में इन्हें सम्मानित किया और इस प्रकार इस जनपद का माथा ऊँचा हुआ। (2)

9. श्री रामसनेही 'भारतीय' — भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों में श्री भारतीय जी का विशिष्ट स्थान है। 14 जून 1918 में जन्मे इस अदम्य साहसी, विश्वसनीय और जागरूक प्रहरी ने कांग्रेस सत्याग्रह शिविर में आकर प्रशिक्षण लिया व फिर प्रशिक्षक का कार्य किया। आंदोलनों में गिरफ्तार होकर जेल जाते रहे। सन् 36 में बबेरू सेवा दल के सदस्य बने व 42 में व्यक्तिगत सत्याग्रही बनकर पुनः 9 माह की सजा पायी। फिर बबेरू विधान सभा के सदस्य चुने जाने पर जनपद के लिये शैक्षिक व जनहित कार्यों में अपना योगदान दिया। (3)

10. ब्रजमोहन लाल गुप्त — 23 नवम्बर 1923 को श्री धनीराम गुप्त के पुत्र श्री ब्रजमोहन की रूचि बचपन से ही कांग्रेस में काम करने व खादी पहिनने की रहती थी जिसे घरवालों के विरोध पर अपने साथियों के यहाँ बैठकर पूरा करते थे। कांग्रेस दिवस मनाने पर छः माह की सजा हुई। 100 रू. जुर्माना भी। गोकुल भाई व मिथला भाई के साथ मिलकर काम करने लगे व घर से फरार होकर राठ, ग्वालियर, झाँसी आदि होकर मेरठ में श्री कृपलानी जी से मिले। कांस्प्रेसी (बलिया) काण्ड में शामिल होने के कारण छः मास की सजा व 42 में भारत छोड़ो आंदोलन में भी जेल जाना पड़ा। अपनी सेवाओं के फलस्वरूप बाँदा क्षेत्र से एम.एल.ए. चुने गये। (4)

---

(1) स्रोत — श्रीमती शशिप्रभा दीक्षित द्वारा 'कामद क्रान्ति' में लिखित लेख.
(2), (3), (4) स्रोत — 'कामद क्रान्ति' में छपे लेख.

न्हैयालाल विद्यार्थी
अलीगंज बांदा

श्री पिछौरिहा जी

बृजविहारी चित्रकूट

चौधरी चन्द्रभूषण सिंह

वरलाल मऊ बांदा

श्रीमती बोवीसिंह बांदा

रामगोपाल तिवारी पलरा बांदा
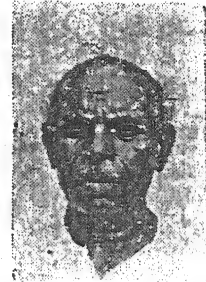
श्री कु० वेद सिंह बांदा

महादे भाई

जगन्नाथप्रसाद करवरिया

श्री गोपी दनादन
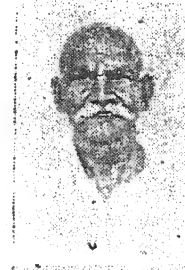
श्री जगदेवप्रसाद नेवाइच

भगवानदास गुप्त
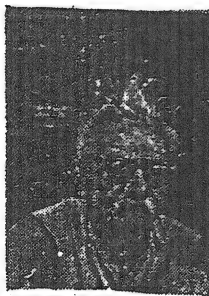
श्री गोपीनाथ नेता

श्री रामसनेही भारतीय

रामेश्वर गुप्त बाँदा

11. **जमुना प्रसाद बोस** — 'पूत के पाँव पालने में ही देखे जाते हैं' इस उक्ति के अनुसार एक सामान्य मध्यम वर्गीय परिवार में श्री आनन्दी प्रसाद निगम के घर जन्म लेने वाले जमुना प्रसाद की वृत्ति प्रारंभ से ही देश भक्ति की ओर हो गई थी। वे गहन अध्यवसायी, गंभीर विचारक व कठोर परिश्रमी थे। इनकी अद्‌भुत कार्य क्षमता व दृढ़ता को देखकर साथियों ने इन्हें 'बोस' उप नाम दिया था। प्रचण्डता व संयम का अद्‌भुत संगम था बोस में। उनकी लेखनी व भाषण कला से अग्नि के प्रज्ज्वलित कण छूटते थे । वे पत्रकारिता में अग्रणी थे। 26 जनवरी 43 को उन्हें जेल की सजा मिली। उन्हें गरीबों का दु:ख देखकर बड़ी पीड़ा होती थी— उन्होंने सदैव उनकी स्थिति सुधारने का यत्न किया। स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात् उन्होंने जनता दल की सरकार की ओर से ग्रामीण विकास मंत्री का पद सुशोभित किया। (1)

12. **चौधरी चन्द्रभूषण सिंह** — प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर जब अंग्रेजों का दमन चक्र भारत की जनता पर इस प्रकार चल रहा था कि उसकी कराह भी बाहर न सुनाई पड़े तभी 1919 में जलियाँवाला बाग का क्रूरतम अमानुषीय काण्ड हुआ। इससे पुनः भारतीयों का खून खौल उठा। ऐसे समय में बाँदा जनपद के अनेक नवयुवकों के साथ चौधरी भूषण बाबू भी असहयोग आंदोलन (सन् 1920—21) में कूद पड़े। 29 में गाँधीजी के बाँदा आने पर उनकी सारी व्यवस्था संभालने का भार इन्हें दिया गया जिसे बखूबी निभाते हुये इन्होंने आंदोलन को सृजनात्मक दिशा दी। सन् 30—31 के नमक आंदोलन व सन् 35, 41—42 के भी आंदोलनों में भाग लेकर जेलयात्रायें की, यातनायें भोगी। वे सेनानी होने के अतिरिक्त व्यापार व खेल जगत में भी अग्रणी रहे। स्काउटिंग के कार्यक्रमों में भाग लेकर उसे देश—नरेश—महेश की सेवा का साधन बनाया। (2)

13. **श्रीराम सरन खरे** — कर्वी निवासी श्री खरे अपने जीवन के प्रभात से ही कांग्रेस के कार्यक्रमों से जुड़ गये थे और गहन जुड़ाव के साथ प्रमुख कार्यकर्ताओं के साथ खादी प्रचार, विदेशी बहिष्कार, जेल यात्राओं व सत्याग्रह में भाग लेते रहे। विशेष बात यह थी कि इनकी पत्नी श्रीमती रामादेवी भी कांग्रेस के कार्यों से जुड़ी रहती थी उन्होंने स्त्रियों के अंदर राष्ट्रीय भावनायें भरने व उन्हें जागृत करने का कार्य किया था। वे कर्वी नोटीफाइड एरिया का चुनाव जीतकर वहाँ की चेयनमैन बनी थीं। (3)

14. **गंगा प्रसाद खरे** — सन् 1916 में जन्मे श्री शिवनंदन— बिलगाँव निवासी के पुत्र गंगा कट्टर कांग्रेसी थे, उनमें युवा शक्ति का सागर लहराता रहता था, अच्छे संगठनकर्ता व प्रचारक श्री गंगा प्रसाद जी ने संसद भवन पर झण्डा फहराने के आरोप में 1 वर्ष की कैद व सौ रूपये जुर्माने की सज़ा भोगी। पुनः 8 अगस्त 42 को 3 माह व 24 अप्रैल 44 में 6 माह की सज़ा काटी। सरकारी आंकड़े बताते है कि गंगा प्रसाद जी विदेशी शासन को क्षार करने के लिये मशाल के समान थे। इस तपे तपाये कर्मठ कार्यकर्ता की हेकड़ी के आगे कोई ठहर नहीं सकता था। (4)

---

(1), (2) स्रोत — 'कामद क्रान्ति' में छपे लेख.

(3), (4) स्रोत — 'बाँदा वैभव'— लेखक श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव .

15. केशव प्रसाद खरे — बाँदा अंतर्गत पिस्टा ग्राम के निवासी श्री शिव प्रसाद खरे के पुत्र केशव व गंगा दोनों ही युवा अग्निशलाका के समान थे। जेल की यातनायें हँसकर झेलते हुये अदम्य ऊर्जा संपन्न ये बारह मास का कारावास व बारह माह की ही नजरबंदी काटकर बाँदा आये। आने पर दुगने जोश से संगठन के कार्य में लगे रहते थे। (1)

16. कालूराम वैद्य — बाँदा के बन्यौटा मुहल्ले में श्री कामता प्रसाद वैश्य के पुत्र श्री कालूराम पुराने अनुभवी वैद्य थे जिनका बड़ा सम्मान था— वे सपरिवार कांग्रेसी थे उनकी पुत्री श्रीमती सुभद्रा देवी व भगिनी श्रीमती राजकुमारी गुप्ता भी कांग्रेस के कार्यों जुलूस निकालने, झंडा उठाने व विदेशी बहिष्कार में भाग लेती थी। इन्होंने स्वयं भी सन् 30 में छः मास की जेल की सज़ा पाई थी। अपने कार्यानुभव के कारण ये श्रीमती इन्दिरा गाँधी के निकट संपर्क में रहते थे। (2)

17. कुँवर वेद सिंह उर्फ दनकू मास्टर — आर्य समाजी कुँवर वेद सिंह पेशे से टेलर मास्टर थे, पिता तेजपाल सिंह की प्रेरणा से व समसामयिक गति विधियों को देखकर इन्हें असहयोग आंदोलन में सक्रिय भागीदारी का अवसर मिला। इनकी दूकान महेश्वरी देवी मुहल्ले में थी जहाँ सदैव कांग्रेसियों का जमावड़ा लगा रहता था। सन् 30 में 3 माह की सजा मिली और सन् 42 के सत्याग्रह आंदोलन में भी लाठी चार्ज वगैरह खाकर लौटते व सजा काटी थी।

बाँदा जनपद के इस लम्बे स्वतंत्रता संग्राम में अपनी सेवायें समर्पित करने वाले सेनानियों को सूची बड़ी लम्बी है। 200 से अधिक ज्ञात व न जाने कितने अज्ञात बलिदानियों ने इसमें अपनी आत्माहुति दी है उनकी यशःगाथाएं सदा सदा के लिये अमर हो गई हैं। ये सभी त्यागी बलिदानी पुरुष सजायाफ्ता होते थे। नजरबंदी, बेड़ी लाठी चार्ज व अन्य अमानुषीय यातनायें भोगते थे।(3)

बाँदा जनपद के स्वतंत्रता संग्राम में नारियों का योगदान—

शक्ति स्वरूपा नारी बुद्धि, ऊर्जा और कौशल किसी भी दृष्टि से पुरुष से कम नहीं है। यह बात दूसरी है कि उनका कार्यक्षेत्र दुनिया को खुशहाल, निश्चिन्त, समृद्ध और कार्यक्षम बनाने के लिये थोड़ा सीमित अर्थात् गृह स्वामिनी के रूप में निर्धारित किया गया है जहाँ से वे अपनी कुशलता का परिचय देते हुये समाज को अधिक सुविधा प्रदान करने में सक्षम हैं; परन्तु इसका यह आशय नहीं कि वे गृह के बाहर के कार्यों को करने में अक्षम हैं। जब जब आवश्यकता पड़ी है, देश पर विपत्ति आई है, समाज में विश्रृँखलता फैली है, दैवी आपत्तियों ने घेरा है; तब तब उन्होंने घर से बाहर आकर कठिन से कठिन कार्यों के करने में भी पैर पीछे नहीं हटाये। यही बात सेनानी बनने के बारे में भी कही जा सकती है। भारत के सभी प्रान्तों में नारियों का योगदान शीर्ष पर रहा है। बाँदा जनपद भी उनके योगदान से अछूता नहीं रहा।

महिलाओं के द्वारा सामूहिक रूप में किये जाने वाले कार्य थे— खादी पहिनना व घर—घर जाकर महिलाओं को खादी अपनाने के लिये प्रेरणा देना। तकली व चर्खा चलाकर सूत कातना व उन्हें बुनकरों को सौंपना, सभायें करना, नारे लगाना, जुलूस निकालना व झंडा उठाना, राष्ट्रीय गान गाते हुये बाजार में हड़ताल करवाना, वालन्टियरों को देश सेवा हेतु तैयारी कराना, आर्य

(1), (2), (3) स्रोत — 'बाँदा वैभव'— लेखक श्री रमेश चन्द्र श्रीवास्तव .

समाज से प्रेरणा गृहण कर स्त्रियों को पर्दे से बाहर लाना, चन्दा वसूल करना, सत्याग्रहियों को शरण देना व उन्हें भोजन कराना। विलायती कपड़ों को घरों से ला ला कर एकत्र करना व उनकी सामूहिक होली जलवाना, शराब की दूकानों पर धरना देना पिकेटिंग करना, क्रांतिकारियों के गुप्त सामानों, कागजात इत्यादि की सुरक्षा करना ताकि वे निश्चिन्त होकर अपना अभियान चलाते रहें। छात्राओं के लिये खोले गये विद्यालयों में स्वेच्छया अध्यापन कार्य करना, गाँवों में जाकर, उत्साही नवयुवकों को आंदोलन के लिये तैयार करना, सेवादल तैयार करना, क्रांतिकारी साहित्य को यत्नपूर्वक छिपाकर घरों तक पहुँचाना आदि कितने ही ऐसे साहसपूर्ण कार्य थे जिन्हें ये स्त्रियां समाज की आलोचना की परवाह किये बिना निर्भीकता से करती थीं।

इस क्षेत्र में कार्य कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली प्रमुख महिलाएं इस प्रकार हैं –

1.	श्रीमती भगवती देवी सक्सेना	पत्नी डॉ. गिरवर सहाय सक्सेना
2.	श्रीमती रूपकुमारी निगम	भगिनी श्री भूपत निगम, एडवोकेट
3.	श्रीमती कंचन कुमारी	माता श्री समर सिंह
4.	श्रीमती सावित्री देवी	पत्नी श्री नारायण प्रसाद, केसरी प्रेस
5.	श्रीमती राजकुमारी	भगिनी श्री कालूराम वैद्य
6.	श्रीमती सुभद्रा देवी	पुत्री श्री कालूराम वैद्य
7.	स्व. श्रीमती मनोरमा देवी	पत्नी श्री कालूराम वैद्य
8.	श्रीमती कमला देवी	पत्नी श्री महादेव भाई
9.	श्रीमती विजय लक्ष्मी	पत्नी श्री राजाराम रूपौलिहा
10.	श्रीमती रामा देवी	पत्नी श्री रामशरण खरे
11.	श्रीमती रामकली	पत्नी श्री तुलसीदास

विशिष्ट रूप से योगदान–

1. श्रीमती भगवती देवी – महिला सभा का आयोजन करने व जुलूस निकालने में अग्रणी रहती थीं। इनकी प्रेरणा से इनका पूरा परिवार खादीधारी व कांग्रेसी बना। आर्य कन्या पाठशाला में सभायें करती थीं।

2. श्रीमती राजकुमारी – सन् 1920–21 से विदेशी कपड़ों की होली जलाने में आगे रहती थीं। सन् 30 में गाँधीजी के बाँदा आने पर उनकी प्रेरणा से मीटिंग करके सत्याग्रह किया और सन् 32 में भी जुलूस निकाल कर व्याख्यान दिया। उसी समय गिरफ्तार की गईं। पहिले फतेहपुर फिर फतेहगढ़ में छः माह की सजा पाई। 50 रू. जुर्माना हुआ था, न देने पर 3 माह की सजा और पाई। गोद में छोटे बच्चे को लेकर सभी आंदोलनों में भाग लिया। सन् 1931–32 में अपने कपड़ों में पिस्तौल छिपाकर स्थान–स्थान पहुँचाया, एक बार 8 रिवाल्वर भी इसी प्रकार छिपाकर इधर उधर पहुँचाये।

3. श्रीमती सुभद्रा देवी – इनके घर में 'सत्याग्रही' पत्र छापने की मशीन थी– ये छोटी आयु से ही कांग्रेस के कार्यों में भाग लेतीं व अखबार खुद छापती थीं। पुलिस मशीन का पता लगाने आती पर ये इस कुशलता से उसे छिपाती कि कभी भी पुलिस मशीन का पता न लगा पाई। एक बार दरोगा स्वयं

मशीन के ऊपर खड़ा रहा पर रात के 8 बजे तक तलाशी देने के बाद भी जब पता न लगा सका तो खीझकर यह कहता चला गया कि 'मशीन तो चिड़िया बनकर उड़ गई।'

4. श्रीमती कमला देवी – इन्होंने व जगन्नाथ प्रसाद की पत्नी पार्वती देवी ने सन् 31 में कई बार जुलूस निकाले व सरकार विरोधी नारे लगाये। सन् 32 में कोतवाली के सामने सेठ फूलचंद की कपड़े की दुकान में दोनों ने धरना दिया व पकड़ी गई। 22 फरवरी सन् 1932 को एस.डी.एम. बाँदा के कोर्ट से दफ़ा आर्डिनेन्स 32 के अनुसार 3 माह की कैद व 30 रू. जुर्माना हुआ। न देने पर एक माह की कैद और बढ़ाई गई। स्वतंत्रता की रजत जयंती के अवसर पर श्रीमती कमला देवी को मुख्यमंत्री कमलापति त्रिपाठी द्वारा हस्ताक्षरित (15 अगस्त 72) एक ताम्रपत्र भेंटकर उनके त्याग व सेवा का सम्मान किया गया।

5. श्रीमती रामा देवी – पति श्री रामशरण खरे, कर्वी निवासी ने पति के साथ काँग्रेस के कार्यों में सतत् भाग लिया। सूत कातने के लिये अपने घर में करघा लगाया। पति के जेल चले जाने पर चन्दा वसूली कर करके उन परिवारों को राहत पहुँचाई, जहाँ के पुरुष जेल चले गये थे। कर्वी टाउन एरिया की प्रेसीडेंट चुनी गईं व उस कार्य का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। एक हरिजन विद्यालय का कार्यभार भी संभाला।

6. श्रीमती रामकली – पत्नी श्री तुलसीदास, इनके घर के पीछे बम का कुछ सामान मिला, घर की तलाशी में तो कुछ न मिला पर पीछे सामान मिलने के कारण पति पत्नी दोनों गिरफ्तार हो गये। पत्नी को जमानत तो मिल गई परन्तु उन्हें एक दिन की जेल व 50 रू. का जुर्माना हुआ।

गुप्तचर की डायरी के अंश –

1. "25 अगस्त सन् 30, आर्यकन्या पाठशाला से औरतों का झंडा उठा। गिरवर सहाय के घर, राज बहादुर के घर भर, कालूराम के घर भर थे। 200 औरतें थीं।"
2. "(सन् 30) औरतों की सभा हुई प्रेसीडेन्ट बनी रामप्रसाद सिंह की औरत (कंचन कुमारी देवी) चन्दा लड़की मूलचन्द्र सेठ की देवी, सहोदरा कालूराम की लड़की, गिरवर की औरत, राम गिरवर सहाय का लेक्चर हुआ। राज बहादुर हरताल को कहा, कुँवर हर प्रसाद की लड़की ने कहा पहली दफ़ा।"
3. "15 मई 30- औरतों का जत्था निकला लीडर गिरवार सहाय की औरत नारैन प्रसाद की औरत है।"

इन सब के अतिरिक्त कितने ही और आज़ादी के दीवाने थे जो रात दिन जान हथेली पर लिये हुये खतरनाक कामों को करते रहते और अपने कौशल से पुलिस व अधिकारियों को नाकों चने चबवाते रहते थे। इनमें सर्व श्री जगदीश करवरिया, गोपीनेता, कन्हैयालाल विद्यार्थी, गोपीनाथ दनादन, राजाराम रूपौलिया, रामनाथ भुर्जी, सेठ भगवानदास, झांड़ी नाना, गंगाशरण भारतीय, जगन्नाथ भाई, सेठ बलभद्र प्रसाद, रत्ती बेहना, बलदेव प्रसाद गुप्त, जगन्नाथ करवरिया, राज बहादुर वकील आदि प्रमुख थे, जिनके जीवन का व्रत ही भारत की आज़ादी प्राप्त कराना था। (1)

(1) स्रोत – 'कामद क्रान्ति' में प्रकाशित कु. शशि रस्तोगी का लेख.

'सत्याग्रही' पत्र की भूमिका –

किसी भी देश व जाति की जागरूकता का प्रमाण वहाँ की प्रबुद्ध पत्रकारिता होती है। बाँदा जनपद में तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांति का शंखनाद करने वाला व जन जन में स्वाधीनता की लपट जगाने वाला एकमात्र पत्र था 'सत्याग्रही' जो कई वर्षों तक साइक्लोस्टाइल होकर जनता के बीच बँटता व पढ़ा जाता रहा जबकि उस समय प्रेस पर बंदिश लगी हुई थी। ऐसे समय में पत्र निकालना जोखिम भरा काम था, पर आज़ादी के दीवानों के लिये कुछ भी असंभव नहीं था।

इस पत्र के बारे में इतनी रोचक कथायें बन गई थी उस समय कि किन किन नये नये तरीकों से पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर पत्र के लेखन, संपादन, मुद्रण व वितरण का कार्य किया जाता था। एक बार शक के आधार पर पुलिस ने एक मकान पर छापा मारा, बड़ा बाक्स देखकर उसको खोलवाना चाहा, पर यह कहने पर कि चाबी लेकर मालिक बाहर चला गया है– पुलिस ने ताला तोड़ दिया पर खोलने पर उसमें पुराने जूते भरे पाये और शर्मिन्दा होकर वापस हो गई। कभी पुलिस ट्रेन के डिब्बों में तलाशी लेकर लौट आती अखबार कहीं न मिलता पर उसी समय स्वयं सेवक दो डिब्बों के बीच की जगह से बंधे हुये बंडल निकाल लाते और वह शहर में बंट जाता– यहाँ तक कि कोतवाली तक में पहुँच जाता।

तो यह थी बाँदा जनपद के स्वतंत्रता के तीनों चरणों की कथा संक्षेप में। तीनों चरण अर्थात् सन् 1920 से 1930 तक प्रथम, सन् 1929 में रावी तट पर पं. नेहरू द्वारा की गई घोषणा कि 'हमारा ध्येय पूर्ण स्वराज्य है' से लेकर सन् 40 तक द्वितीय तथा तृतीय चरण सन् 41–42 के सत्याग्रह आंदोलन से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक का समय।

अब मैं अपने शोध कार्य के केन्द्र बिन्दु श्री नारायण दास 'बौरवल' जी के जीवन व कार्य विधि एवं उनके व्यक्तित्व के मूल घटक उनकी कविता और उस पर आधारित जीवन पद्धति एवं काव्य की विशेषताएं बताते हुये उस अद्भुत नर पुङ्गव के रहस्य रोमांच भरे जीवन पर कुछ प्रकाश डाल रही हूं।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री नारायण दास 'बौरवल'–

मास्टर नारायण दास बौरवल का जन्म सहारनपुर के रूड़की नामक नगर में सन् 1904 में एक समृद्ध और सम्माननीय परिवार में हुआ था। पिता श्री रामकृष्ण रेलवे में कर्मचारी थे तथा माता इतवरिया घर गृहस्थी चलाने में कुशल गृहिणी थी। इनके दो भाई एक बहिन श्यामकली, शिव प्रसाद व लक्ष्मीचन्द थे। परिवार संयुक्त था, सबके साथ समायोजन करके चलना माता की परोक्ष सीख थी, साथ ही साथ बालक को आत्मनिर्भर बनाना उनका प्रथम ध्येय था। उस समय जो समाज में प्रचलित रीति रिवाज़ व परम्परायें थी उनका निर्वाह करते हुये माँ ने बालक में उन संस्कारों को भरा जिनसे उसने जीवन भर प्रेरणा ग्रहण की। शिशु रामनारायण पर माता के साथ एक अन्य महिला रामदेई का भी बड़ा प्रभाव पड़ा जो स्वयं सन्यासिनी थी और भिक्षा हेतु हवेली में आया करती थी उनके पास बड़ा ही सुललित कण्ठ था और वे भक्ति, ज्ञान व वैराग्य के सुमधुर पद गाया करती थीं। बालक में इन संस्कारों का बीज तभी पड़ा व उदय समय आने पर हुआ और वह एक संयत व

निर्भीक साथ ही सरल, भक्तिभावी व निरासक्त व्यक्तित्व का धनी बना। संगीत उसी समय से रामनारायण का मनचाहा मीत बन गया आगे चलकर जब कवि की चेतना लोक से जुड़ी तब भांति भांति के लोकगीतों का चयन करने व उन्हें लोकधुनों में बांधकर गाना कवि का स्वस्थ मनोरंजन बना। उनकी बहिन श्यामकली का विवाह बाँदा जनपद के 'कर्वी' नामक कस्बे में हुआ था। रूड़की में जन्मे, अम्बाला सहारनपुर में कुछ समय बिताने के बाद पारिवारिक परिस्थितियों वश उन्हें बहिन के पास कर्वी आना पड़ा, यहीं से कवि का कर्मक्षेत्र बाँदा व बुन्देलखण्ड बना, उनका निवास स्थान कर्वी व बाँदा दोनों स्थानों पर रहा।

शिक्षा के लिये बालक रामनारायण को मौलवी बसीरूद्दीन के संरक्षण में रखा गया जहाँ इस औपचारिक शिक्षण में इनका मन नहीं लगा। प्रकृति की पाठशाला ही इनकी सबसे बड़ी शिक्षिका बनी । स्वयं रूह वृक्ष के समान प्रकृति से ही जीवन शक्ति व व्यवहार की शिक्षा पाई।

कुछ बड़े होने पर अम्बाला में सिलाई का काम सीखना आरंभ किया आगे यही काम जीविका का साधन बनना था। बचपन से ही पढ़ाई लिखाई में मन न लगने के कारण अक्षर ज्ञान तो न हो सका परन्तु हृदय के भीतर का कवि सदा आकुल व्याकुल होता रहता क्योंकि मन में उमड़ घुमड़ उठने वाली भावनाओं को व्यक्त होने का अवसर अक्षर ज्ञान के बिना कैसे संभव था। कवि के स्वयं के शब्द हैं— 'आयु हती, जब तीस की, तबैं लागि आखर एक न आयो।' इसके बाद से ही अक्षर ज्ञान के लिये प्रयत्न किये और पढ़ाइ- लिखाई व काव्य-रचना तीनों एक साथ चलने लगे सन् 1938 से। फिर तो कवि की आत्मानुभूति कल्पना की शबलता से मंडित होकर भावपूर्ण रचनायें करने में समर्थ हो गई। उस समय रीतिकालीन शैलियों का अधिक प्रचलन था, उन्हीं विभिन्न शैलियों तथा विशिष्ट छन्द 'दोहा' एवं 'पद' में कवि की रचनाधर्मिता प्रकट होने लगी। इस काव्य साधना में श्री 'शारद रसेन्द्र' उनके गुरू बने तथा उन्हें प्रोत्साहन मिलने लगा श्री दिल दरियाव सिंह से जिन्होंने इस कवि के भीतर रची बसी कल्पना के निखार को भलीभाँति निरख परख लिया था। 'दोहा' छन्द कवि को सबसे अधिक प्रिय लगा कारण यह कि जैसा स्वच्छन्द व्यक्तित्व कवि ने पाया उसी के अनुरूप स्वच्छन्द छन्द 'दोहा' में अपने हृदय के भाव सुमनों को गूंथ दिया। कवि के स्वयं के शब्दों में—

"लौकिक और अलौकिक अनुभवों और अनुभूतियों को स्वहस्तगत बनाने में छन्द का लघुतम रूप सहायक होता है। विचार दोहन से उपलब्ध मुक्ता को दोहे की शुचिता में सुरक्षित कर देना सहज क्रिया न होने पर भी आवरण और आवृत्त को टकसाली रूप देने में सक्षम होता है अतः अंजलि के दोनों में भाव सम्पदा सिक्कों के उस लघुतम रूप में आपको अर्पित है जिनसे आदान प्रदान की सुविधा के साथ-साथ संचय में प्रयत्न लाघव और लोकहित सन्निहित है।"

उन्होंने 'धरणीधर' विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी इस बात का उल्लेख उनकी मौखिक वार्ता से कभी ज्ञात होता था। संगीत पर उनका अधिकार था और लोकगीत गायन में उस समय रस वर्षण होने लगता था जब वे भाई-बहिन के प्रेम व दुलार भरे गीतों में बहिन द्वारा भाई के भोजन हेतु "मुंगिया कै दार मोती झिनुआ के चाउर सासू जिमाऊँ अपने बीर कंह" पंक्तियां गाकर सुनाते थे।

श्री 'बौरवल' जी का जीवन व व्यक्तित्व ऐसा द्विपार्श्वी हीरा है जिसके एक पार्श्व में हथकड़ी बेड़ी की झनझनाहट, तसलों की खनखनाहट और बेतों की मार से गूँजती हुई जेल की नजरबंदी की तनहाई वाली मोटी काली दीवारों का अक्स झलक रहा है तो दूसरे पार्श्व में अन्तरतम के किसी शुभ्र निरभ्र कोने में अनुभूतियों की गहनता से उद्भूत काव्य की मंदाकिनी का मंथर, कलकल प्रवाह दृष्टिगोचर हो रहा है।

आजीवन अविवाहित, घर गृहस्थी के झंझटों से दूर रहा आग का यह शोला अंग्रेजी शासन की क्रूरता, अमानुषीयता, दमन व दुरभिसन्धियों से देश की जड़ों को खोखला बना डालने वाली मानसिकता से सदैव भड़का ही रहता था। जब, जहाँ, जैसे भी इस शासन की नींव की ईंटें उखाड़ने का संकल्प होता, 'बौरवल्ल' का हट्टा कट्टा शरीर आगे बढ़कर पहिला हथौड़ा मारने में ही अपना दिन सार्थक समझता। देश हित के लिये कैसा भी त्याग करना व बलिदान देना पड़े, कितनी भी शारीरिक यातना झेलनी पड़े, किस तरह सत्ता के नुमाइन्दों से निर्भीकता से बात करनी हो और कैसे भी पुलिस व बड़े अधिकारियों को धता बताकर अपने कार्य साधने हों 'बौरवल' हर क्षण तत्पर मिलते और बेलाग खरी खोटी कहने में कहीं भी जरा सा संकोच या चूक नहीं करते; परन्तु इसी व्यक्ति ने जब कभी लेखनी उठायी तो वह कागद पर मधुरस ही चुवाती चली, कण कण रसभीगा, ऐहिक और पारलौकिक रहस्यों के रसकलश से छलके अमृत बिन्दुओं से। कैसा विचित्र विरोधाभास समाया था इस व्यक्तिक्व में इसे अनवरत् नैकट्य के द्वारा ही जाना जा सकता था। बाँदा नगर के प्रख्यात विचारक, चिन्तक, मनीषी श्री देवेन्द्रनाथ खरे ने इस अद्भुत रहस्यमयता संमिश्रित व्यक्तित्व को उनके नितांत निजी क्षणों में नितांत निजता से देखा, समझा और परखा था तथा स्वयं उसी मनोदशा में तल्लीन होकर उनके भीतर की तरल गुह्यता को बाहर लाकर प्रकाशित कराया था। महाकवि भवभूति ने "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" की उक्ति यों ही नहीं लिखी होगी उनके सामने भूधर, पृथ्वी और सुवर्ण की अविगलित, अविचल दृढ़ता रही होगी और तीनों के भीतर समायी मृदुता का अनुमान भी उन्होंने किया होगा। भूधर के उर में समायी छलछल निनादिनी निर्झरणी का माधुर्य, धरती के अन्तस्तल में गमकती मानवता की सुगंध और सुवर्ण का गलनांक तक पहुँच कर पिघलना उन्होंने बखूबी देखा होगा।

तो ऐसा था महाकवि 'बौरवल' का जीवनवृत्त। दिन भर बाँदा के धूल धूसरित मार्गों पर जुलूसों के साथ घूमना, झंडा उठाना, नारे लगाना, धरना पर बैठना, पिकेटिंग करना और लाठी चार्ज से लहूलुहान देह पर हवालात में बेतों की मार खाते हुये बलिदानी गीत गाना-यह थी दिन की दिनचर्या। रात के अंधेरे में मिट्टी के तेल की ढिबरी जलाकर यही व्यक्ति जब बादामी कागज पर पेंसिल से-नहीं-नहीं-अपने रक्त की लालिमा से वर्ण- वर्ण में, शब्द-शब्द में गुंथी राग व योग की लड़ियाँ उतारता रहा होगा तो साक्षात् नारायण का भोग लगाने की तैयारी होती रही होगी (उनकी प्रथम प्रकाशित एक पुस्तक का नाम 'नारायण नैवेद्य' है)।

सोच में कम्युनिस्ट की सी विचारधारा और अणु-अणु में नारायण का दर्शन, अणु परमाणु में विभुता की अछोर व्याप्ति की अनुभूति। कम्युनिज्म से आगे बढ़कर आध्यात्मिक समाजवाद की

ओर मनश्चेतना जब लौटी तब श्रम और पूँजी का गहन अन्तराल समझ में आने लगा। 'श्रमिक सर्वोपरि प्राणी है और ऐश्वर्य श्रमाधारित है' यह बीजमंत्र जीवन और लेखन दोनों के भीतर समा गया। योगी, कवि व विज्ञानी यदि एक ही व्यक्तित्व में समाहित हो तो उसका स्वयं का और समाज का पथ सुगम एवं प्रशस्त हो जाता है। स्वान्तः सुखाय रचना करने पर भी वह समाज से जुड़ा रहता है। आध्यात्मिक समाजवाद ऐश्वर्य को श्रमिक के जीवनाधार के रूप में उसकी उपलब्धि मानकर उसके उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग को पूर्ण रूपेण उसी के नियंत्रण में रखने का समर्थक है, परोपजीवता को इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मानता है। यही कारण है कि कवि के लिये गुरू वन्दन—

बन्दौ गुरु रज कंज पद, भरि हिय अमित हुलास।
जग जिज्ञासक जानि मम, दियो सुविमल विकास।। (1)

के अनन्तर वीणा पाणि वन्दन—

वाणी वीणा वादिनी, रहस्यमयी उद्‌गार।
उर तंत्री नित झंकृतित, उदय अलंकृत सार।। (2)

हृदय को प्रकाश में भरने के लिये वाणी की ज्योति का आवाहन उसके कविकर्म का प्रथम व्याख्यान बनता है; परन्तु इसके तुरंत बाद ही वह श्रमिक की वन्दना करना सर्वोपरि मानता है क्योंकि आध्यात्मिक समाजवाद की आधारशिला ही श्रमिक व श्रमजीविता है—

बन्दौं श्रमजीवी सृजन, जौन जगत का मूल
पालहिं उपजीवी सदा, स्वतः खाय मुख धूल। (3)

श्रमजीवी उपजीवियों को पालते हुय स्वयं मुख में धूल खाने के लिये अभिशप्त है यही कवि की सबसे बड़ी मानसिक पीड़ा है जिसके प्रतिकार के लिये उसने आवाज़ बुलन्द की है— शोषित को ललकारा है—

शोषित समता चाहै सामाजिक, जगत स्नेह अपारी।
उत्पादन, विनिमय, वितरण में रहे न अन्तर भारी।
शोषक हुल्लड़ निशिदिन चाहै, निज तन साज सँवारी।
दाँव पेंच करि श्रम धन लूटै, स्वतः भोगि पर नारी।
गदर मचावै न्याय बतावै, भगवन पूजि पुकारी।
बौरवल' शोषित जन जग जावौ, अपनी डगर सुधारी।। (4)

उपर्युक्त पद कवि की सामाजिक समताधारित सोच का दर्पण है जिसमें सयाने पूँजीपतियों और सामन्तों की भयानक कुलिप्सायें तथा सब ओर से त्रासित, शोषण, वंचित, प्रवंचित, दमित श्रमिक की अर्न्तव्यथा प्रतिबिम्बित हो उठी हैं।

इस साहित्य सृजन की पीठिका के रूप में दृष्टिगोचर होता है कवि का प्रारंभिक जीवन जब उसने पराधीन देश के ऊपर संकट के बादल मंडराते हुये देखे, माँ की पुकार पर बलिदान होने

नारायण अंजलि भाग–I:—(1)(2)(3) दो.क्र.—1,12,11 पृ.क्र.—01,
नारायण नैवेद्यः—(4) पद क्र.— पृ.क्र.—

वालों के हौंसले व कष्ट सहन की अपार क्षमता से रोमांचित होते हुये उसने स्वयं भी उस यज्ञ में अपनी आहुति देने का निर्णय ले डाला। मूल रूप से रूड़की निवासी यह नवयुवक उस समय बाँदा जिले के कर्वी नामक एक छोटे कस्बे में आने को बाध्य हुआ जब जलियाँवाला बाग काण्ड के माइकेल डायर द्वारा किये गये जघन्य हत्याकाण्ड से देश का जर्रा जर्रा थरथरा उठा था, उसकी अमानुषीयता एवं बर्बरता से देशवासियों का मन घृणा और प्रतिशोध से भर उठा था और किसी भी कीमत पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आज़ादी पाने के लिये देश की जवानी मचल रही थी। लगभग 27 वर्ष की आयु में वे कर्वी में थे और उसी समय 'साइमन कमीशन' भारत का दौरा करके राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन कर रहा था। देशभक्तों ने साइमन कमीशन के विरोध में 'साइमन गो बैक', 'साइमन कमीशन वापस जाओ' का नारा बुलन्द किया तब इन्होंने भी चन्द्रकिशोर मुख्तार के साथ काले झण्डे लेकर प्रदर्शनकारियों का साथ दिया फलस्वरूप पुलिस ने दोनों को गिरफ्तार कर लिया और 24 घण्टे तक थाने में बिठाये रखा। मारपीट की यातना तथा अनेक धमकियों के साथ लात घूंसे भी जड़े और निकाल दिया।

सन् 1930 में गाँधीजी का 'नमक सत्याग्रह' शुरू हुआ जिसकी लहर देश के कोने कोने मै। फैल गई। इन्होंने भी कर्वी के घुस के मैदान में एक हंडिया में नमक बनाने का प्रयत्न किया। पुलिस की निगाहें देशभक्तों के कार्यकलाप पर रहती थी ही अतः उन्होंने इनको घेर लिया– हंडिया फोड़ डाली और जो लातें जमकर छाती में लगाईं कि उनका दर्द जीवन भर सालता रहा।

उन्हीं दिनों विदेशी बहिष्कार का अभियान भी चल रहा था, इन्होंने पं. राम बहोरी करवरिया के साथ कर्वी, चित्रकूट और गाँवों का दौरा किया व बदौसा में विदेशी वस्त्रों पर सील मोहर लगाने गये जबकि कर्वी में एक दिन होली जला चुके थे। पुलिस इनको गिरफ्तार करने की ताक में रहती थी पर पकड़ न पायी ये लोग भागकर अन्यत्र छिप गये।

एक अन्य अभियान मादक द्रव्यों की खरीद फरोख्त रोकना व उसका बहिष्कार करना भी चल रहा था क्योंकि गाँधी जी का बड़ा कठोर विरोध था इन वस्तुओं से। ये अपने साथियों सहित प्रायः आबकारी में जाकर धरना देते, शराब पीने वालों की भर्त्सना करते व बोतलें फोड़ डालते थे। एक बार तो ठेकेदार की अनुपस्थिति में उसकी दूकान में आग भी लगा दी थी।

उस समय के दमन चक्र का यह हाल था कि न तो कोई गाँधी जी की जय बोल सकता था न तिरंगा उठा सकता था लेकिन फिर भी कर्वी के सत्याग्रहियों का नेतृत्व मास्टर नारायण दास ही करते थे, रोज रोज गाँधीजी की जयजयकार करते हुये झण्डा उठाया जाता और सरकार विरोधी नारे लगाये जाते थे। पुलिस व गुप्तचर विभाग को चकमा देते हुये सत्याग्रही अपने कार्यक्रम जारी रखते थे। जो गीत इन जुलूसों में गाये जाते थे उनमें अंग्रेजों के जुल्मों की वेदना और आजादी की तड़प भरी होती थी–

इलाही कैसी मुसीबतों में ये हिन्द वाले पड़े हुये हैं
हमारे खातिर कदम कदम पे सितम के भाले गड़े हुये हैं। (अप्रकाशित साहित्य)

लेकिन दृढ़ निश्चय भी कितना भरा होता था उन जोशीलों के खून में—

अब भेड़ और बकरी बन कर न हम रहेंगे।

कर देंगे जालिमों का हम खत्म जुल्म ढाना।। (अप्रकाशित साहित्य)

इन अभियानों के साथ जंगल सत्याग्रह भी चलता रहता था जिसमें जंगल (सरकारी) की लकड़ी काटना मुख्य रहता था। महाकवि 'बौरवल' (मास्टर साहब) ने मारकुण्डी निवासी साधो प्रसाद के साथ जंगल सत्याग्रह आरंभ किया था जिसमें ये हीरालाल, गजराज, रामकिशोर, गयाप्रसाद, जुराखन व शिव कुमार आदि अन्य सत्याग्रहियों के साथ पकड़े जाकर जेल भेज दिये गये। 4 अगस्त सन् 30 को सत्याग्रहियों ने शराब की निकासी रोकना तय किया व सब रास्ते रोक दिये गये। शराब उठवाकर तहसीलदार साहब के यहाँ रखवा दी गई। छः अगस्त को ज्यों ही ठेकेदार सा. शराब लेकर चले तो 50—60 सत्याग्रहियों ने उन्हें घेरकर रोका और यह गीत गाते हुये— ''नहि रखनी सरकार जालिम नहिं रखनी'' साढ़े छः टीन शराब डिवीजनल मैजिस्ट्रेट के बंगले पर गिरा दी गई। आठ अगस्त 30 को मास्टर साहब को छः, सात आदमियों के साथ पकड़ा गया और 10 अगस्त को छः माह की जेल हो गई।

जेल में भी वहाँ की अव्यवस्था के प्रति नाराज होकर मास्टर साहब ने लोहे के तसलों में दाल दिये जाने का विरोध किया और जेल के सत्याग्रही कैदियों के हित संबंधी छः शर्तें सुपरिन्टेन्डेन्ट के सामने रखी गईं जिनमें अच्छा खाना, रोशनी व सफाई का प्रबंध, लोहे के तसलों की मनाही, व सभी को साथ—साथ रखने की सुविधायें शामिल थीं। ये शर्तें नहीं मानी गईं तो मास्टर साहब व 33 सत्याग्रहियों ने अनशन कर दिया जिसे बाँदा के जज व कलेक्टर आदि ने समझाकर तुड़वाया परन्तु मास्टर साहब सहित छः लोगों को एक एक माह की काल कोठरी की सज़ा दी गई। एक बार कलेक्टर अली जहीर जेल का निरीक्षण करने आये, जब वे मास्टर साहब की बैरक में सामने से निकले— मास्टर साहब ने हाथ बाहर निकाल कर अपना लोहे का तसला उसके पुट्ठे पर दे मारा। इस अपराध पर उन्हें एक सप्ताह की खड़ी कड़ी की सज़ा दी गई जिसमें व्यक्ति को हथकड़ियां पहिनाकर पंजों के बल खड़ा करके ऊपर टांग दिया जाता था।

छः माह के बाद जब मास्टर साहब जेल से बाहर आये तब उन्होंने अनेक क्रांतिकारियों के साथ उनके कार्यक्रमों में भागीदारी की। तभी 1935 में फेडरेशन एक्ट आया, देशभक्तों के द्वारा उसे 'काला कानून' कहकर प्रचारित किया गया था। 9 अगस्त 42 को अकस्मात् मास्टर साहब को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और डी.आई.आर. की दफा 26 के अनुसार 9 माह की सज़ा के लिये बाँदा जेल भेज दिया गया। वह सज़ा पूरी करने के बाद सन् 1947 में उन्होंने भारत की आज़ादी का नया प्रभात देखा और शांति से जीवनयापन की बात सोची परन्तु सन् 1958—1964 और 1966 में पुनः इसी धारा के अंतर्गत गिरफ्तारी की सज़ा पाई। इस प्रकार इस जुझारू व्यक्तित्व का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा।

स्वतंत्रता के पूर्व तो बलिदानियों ने देश की आज़ादी के लिये यातनायें झेली थीं क्योंकि तब शासन विदेशी था; परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की राजनीति ने जो करवट ली उसमें पूरे

देश के स्वाभिमान व नैतिकता को ताक पर रख दिया गया और फिर जो देश में स्वार्थी तत्वों का बोलबाला हुआ उसने बलिदानी सेनानियों के सारे किये कराये पर पानी फेर दिया और भारत एक दिन अमन चैन की सांस न ले सका। जीवित बचे स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के हृदयों की भावनायें चकनाचूर हो गई, अपने राज्य में ये दिन देखने पड़ेंगे— इसकी उन्हें आशा न थी। मास्टर साहब भी उन्हीं भग्नहृदयों में थे; परन्तु उन्होंने इस स्वार्थी कुत्सित तांडव में भी हार नहीं मानी और अनीतियुक्त शासन की गतिविधियों का खुलकर विरोध उन्होंने जारी रखा। राजनीति उनसे कभी छूटी नहीं और न वे कभी स्वयं राजनीति के गंदे दलदल में फंसे बल्कि जब उन्होंने अवसर पाया तभी विरोधियों के झण्डे के नीचे खड़े हो गये और खुलकर शासन व शासकों की आलोचना व विरोध किया। यही कारण था कि स्वतंत्रता के बाद भी वे तीन बार जेल गये। तभी से उनकी कलम ने हृदय के उन उद्‌गारों को— जो पहिले केवल मन के भीतर उबलते रहते थे— लिखित रूप, वह भी नितांत एकांत में— देना आरंभ किया। उस समय कोई भी यह न जानता था कि इस दीवाने; मुखर बलिदानी के भीतर कहीं काव्य की मन्दाकिनी भी छलछलाती रहती है।

आज़ादी के बाद की परिस्थितियों में मास्टर साहब ने राजनीति के पंकिल सरोवर में प्रवेश किये हुये एक से एक बढ़कर बने ठने सफेद बगुलों को अपने चरित्र में कीचड़ लपेटते हुये देखा, स्वार्थ की गंध से बजबजाते कमरों में रंगे चुंगे नेताओं द्वारा जनहित को साफ शफ्फाक योजनायें बनाते हुये देखा, धन की कुलिप्सा में सराबोर हुये जनप्रतिनिधियों को नैतिकता के भाषण देते हुये सुना तथा उनके चेहरों की लाली और सम्मान में मिले दुशालों की चमक देखी— तब उनके विद्रोही मन ने इस सबका पर्दाफाश किया अपने भाषणों में, प्रचार के लिये लिखे गये पर्चों में, सामने शेखी बघारने वालों को फटकारने में। अधिकारियों के सामने निडर होकर बेलाग व दो टूक सच बोलकर भी नेताओं की असलियत खोली; परन्तु हृदय के यही शोले जब एकान्त में फूटे तब उन्हीं बगुला भगतों की पर्त दर पर्त चढ़ी कलई खोलते चले गये वे अपने दोहों व पदों में—

बनो भेड़िया चौधरी, निज पालै परिवार।
ऊंची नीची बात कहि, भेड़िन करत अहार।। (1)

भाषाविद भाषण भनै, गिनै न सिंह सियार।
बौरवल भाषा बैकली, सुनि दे लोग पिछार।। (2)

लम्पट लंबे नौ गुणा, काँधे धरे कंदील।
डूबि मरै लै मंडली, बिन नदिया नद झील।। (3)

भ्रष्टाचार की मार से राष्ट्र किस तरह से विशृंखलित हो जाता है— इसका उदाहरण देखें—

अर्जित पूंजी राष्ट्र की, भ्रष्टाचार बगारि
ज्यों ज्यों बढ़ै, अतावजग, जोग भोग विस्तारि।। (4)

नारायण अंजलि भाग–II:–(1) दो.क्र.–1169 पृ.क्र.–90, (3) दो.क्र.–348 पृ.क्र.–25.
नारायण अंजलि भाग–I:–(1)दो.क्र.–1714 पृ.क्र.–207,(4) दो.क्र.–1330 पृ.क्र.–100,

जन जीवन में अर्थवाद के लंबे पैर पसरते व इसमें गरीब को हर तरह से ठगे जाते उन्होंने अनुभव किया—

अर्थवाद ऐसो बढ़ो, आध्यात्म अवसान।
गई समाजिक साधना, घर घर तीर कमान।। (1)

ऐसे ही वर्ग भेद फैलाने वाली राजनीति के कारनामें उन्होंने बताये—

भयी राजनीति बर्गी मयी, द्वन्द्व मचै चहुँ ओर।
गठन समाजिक धँसि परै, धरि जन उपल बटोर।। (2)

बड़बोले जन नेताओं से ठगा हुआ शोषित व्यक्ति कैसी गुहार लगाता है—

बात करै सौ साठ की, पास न खोट छदाम।
इनको पतियाये अली, हाट हाड़ बिकि चाम।। (3)

उस गरीब शोषित को तो राजनीति से भय ही लगता है बजाय कोई हित होने के—

राजनीति निर्भय नहीं, भय अनेक उपजाय।
संख्य समर सिरजै सहज, खोजहु विविध उपाय।। (4)

वर्णव्यवस्था और सामाजिक ऊँच नीच ने भी कवि को बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया है—

हम तो रोवैं राह में, अपनो ठोंकि लिलार।
ऊँच नीच की मान्यता, विविध दीन करतार।। (5)
नीचे तो भुइयां बसें, ऊंचे बसै अकास।
ऊँच नीच के न्याय की, होवै कबै अभास।। (6)

छल, कपट, द्वेष दंभ और पाखण्ड के इस भँवर जाल में पड़े हुये कवि का हृदय जब कहीं अपने लिये विश्राम का कोई स्थल खोजता है तब उसे उसी सृष्टि नियंता की शरण में आश्रय मिलता है, जिसकी प्रभुता विश्व के कण कण में व्याप्त है — वह अनेक प्रकार से अपनी आत्मा की आकुल पुकार को उस तक पहुँचाना चाहता है—

चल सजनी अपने पिय की नगरिया
ऊंच नीच रहिया रपटीलो, पांव नहीं ठहराये
सत्य असत्य परखि नहि पावै, बुधिया मरम बहेरिया।..... (7)
श्याम तुम काहे हमें बिसारो
चातक आश कीन्ह जलधर की, पी पी परम पुकारो।
करि कृपा अवसर छिन आयो, स्वाति जल मुख डारो।
आठौ याम शरण रटै उर रसना; 'बौरवल' नाम तिहारो
केवल शरण आश अब तेरी, चाहै बोरि उबारो।। (8)

नारायण अंजलि भाग–I:—(1)दो.क्र.—1303 पृ.क्र.—98,(2) दो.क्र.—2564 पृ.क्र.—195, (3) दो.क्र.—565 पृ.क्र.—42,(4) दो.क्र.—2565 पृ.क्र.—195

नारायण अंजलि भाग–II:—(5)दो.क्र.—1183 पृ.क्र.—91,(6) दो.क्र.—1184 पृ.क्र.—91,

नारायण नैवेद्यः—(7) पद क्र.— पृ.क्र.— (8) पद क्र.— पृ.क्र.—

भक्तिकालीन कवियों की सी भक्ति, विरह, आत्मा परमात्मा के मिलन की तड़प वाले पद कवि ने रचे जहाँ रहस्यवाद के दर्शन होते हैं; परन्तु साथ ही रीतिकाल की श्रृँगार भावना, नायिका नखशिख वर्णन तथा प्रेम और सौंदर्य के चटकीले चित्र भी उकेरे– ''अरध नयन चितवत चलति मधुरस मदन चुराय'' । तथा ''बाँधत वेणी जुलुम करि, लोचन तीर चलाये ।'' जैसी शारीरिक क्रियाओं के मोहक रूप पदे-पदे दृष्टिगोचर होते हैं । विदग्धा नायिका का उदाहरण–

''वक्रनयन चितवत चलै, नैनन नेह छिपाय ।
आपन बिम्ब निहारती, पिय को बिम्ब जनाय ।।'' और भी (1)
''कनक अंग अति कामिनी, अटा सुखावति केश ।
ससि सुधा हित नभ उयो, नैनन ओट दिनेश ।।'' (2)

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि साहित्य का यह मौन साधक जहाँ एक ओर प्रिय मिलन की आस में विरहिणी आत्मा की तड़प परमात्मा तक पहुँचाने की व्यथा लिखता है वहीं वह अणु परमाणु में विश्व नियंता के दर्शन करता, जीवन मरण की शाश्वतता के रहस्यमय गीत गाता है, प्रकृति के सहचर्य से मानव मन की गाँठें खोलता और मदन के मधुरस से छकी हुई नायिकाओं की भावभंगिमाओं के दर्शन भी कराता है । साथ ही वह राजनीति की शतरंजी चालों, पूंजीपतियों के सामन्ती रवैये और नेताओं के बहुरूपियेपन को उजागर करते हुये शोषित वर्ग के श्रमजीवियों की गुहार को भी वाणी देता है । संसार व्यवहार की पाटी पढ़कर ही संसार कहलाने का अधिकारी होता है अतः कवि मानव समाज के पारस्परिक व्यवहार के अनगिनत पहलुओं को रोशनी देता और अर्थतंत्र की मौद्रिक भंगिमाओं में जनता जनार्दन की गुप्त व प्रकट प्रतिच्छवियों को अंकित करता चलता है ।

इस प्रकार उस महामानव का साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक पटु व आध्यात्मिक स्वरूप उनकी रचनाओं में प्रतिफलित होता चलता है जिसे प्रकाश में लाने का मैंने प्रयास किया है ।

नारायण अंजलि भाग–II:–(1) दो.क्र.–1516 पृ.क्र.–117,(2) दो.क्र.–2789 पृ.क्र–215.

अध्याय – 2

महाकवि बौखल का समग्र साहित्य

अध्याय - 2

महाकवि बौखल का समग्र साहित्य

मौलिक प्रतिभा ईश्वरीय वरदान होती है, यदि उसके साथ बौद्धिकता, अध्ययनशीलता, सत्संगति, नैतिकता, परिवेशीय सजगता, दार्शनिकता, सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टि, आदर्शोन्मुखता, भाषा वैदिग्ध्य व कल्पना की स्वच्छन्द उड़ानें सम्मिलित हो जाये तो सोने में सुहागा की कहावत चरितार्थ होने लगती है। महाकवि बौखल द्वारा सृजित साहित्यिक संसार इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उनके द्वारा लिखा हुआ जितना साहित्य (काव्य) प्रकाशित हो गया है, अप्रकाशित साहित्य भी परिमाण में उससे कम न होगा। उन्होंने गद्य साहित्य का भी प्रचुर मात्र में प्रणयन किया है। अनेक विषयों पर विचार अभिव्यक्ति के माध्यम बने निबन्ध, आर्थिक परियोजनायें, वैज्ञानिक आविष्कार, कथायें और कल्पनाधारित लघु उपन्यास आदि। राजनीति तो उनका व्यवहार्य विषय था। इस पर अनेक व्यंग्य लिखे हैं, परन्तु वह साहित्य इतना अव्यवस्थित और यत्र-तत्र बिखरा हुआ है कि उसका संयोजन करना परिश्रम साध्य कार्य है। गद्य के अतिरिक्त काव्य की विविध विधायें, कवित्त, सवैया, धनाक्षरी आदि तथा उर्दू भाषा में गज़लें, नज़्म इत्यादि की शायरी भी है। आश्चर्य होता है पढ़कर कि उन्हें उर्दू भाषा का भी अच्छा ज्ञान था जबकि उन्होंने उसकी नियमित शिक्षा कहीं नहीं ली थी। वे इतने स्वान्तः सुखाय और मुद्रण निरुद्यमी साहित्यकार थे कि निभृत एकान्त में लिखना, केवल लिखते जाना और उसे अस्त व्यस्त ढंग से कहीं भी रखते जाना ही उनकी साधना थी। उन्होंने जाने कब व कितना लिखा, किसी को पता नहीं। उन्होंने उसके प्रकाशन का सम्भवतः स्वप्न भी नहीं देखा होगा कि विधि विधान से उनका सम्पर्क बाँदा के श्री दयानन्द पुस्तकालय वाचनालय के संस्थापक श्री मथुरा प्रसाद मुंशी के परिवार से हुआ।

वे कर्वी से प्रायः बाँदा आते जाते रहते थे कचेहरी के कामों से तभी किसी समय कचेहरी में उनकी भेंट श्रीयुत् मुंशी जी से हुई और फिर इस बुद्धिजीवी, आदर्शोन्मुखी परिवार से उनका परिचय बना जो धीरे–धीरे प्रगाढ़तर होता गया। उस परिवार के बड़े पुत्र श्री देवेन्द्र नाथ खरे जिनकी वैचारिक आधारभूमि और दार्शनिक तथा आध्यात्मिक चिन्तन की सरणि से श्री बौखल की मानसिक बौद्धिक संरचना इतना मेल खा गयी कि प्रतीत हुआ मानो उनका यह मिलाप जन्मान्तर से रहा हो, दोनो वैचारिकों में भिन्नता खोजना असम्भव हो गया– लगता था जैसे दो साधको ने एक दूसरे में अपने-अपने पूरक, अपने इष्ट पा लिये हों। वही बौद्धिक गहराइयाँ, वैसा ही दार्शनिक सोच, अन्तश्चेतना की वही निर्मलता, आध्यात्मिक तत्वों की खोज में वही तन्मयता, अध्ययन-मनन की उतनी ही लगन, प्रकृति में वैसा ही फकीरी और अपने "स्व" को ऐसे आवेष्ठन में गुह्य रखने की प्रवृत्ति कि कोई कहीं से उसकी झलक भी न पा सके। किसी चुम्बकीय शक्ति से मानो दो पारस मिल गये हों। अन्तर केवल बाह्य आचार शास्त्र में था। मा० नारायण दास 'बौखल' राजनीति के

मैदानी खिलाड़ी थे, श्री खरे राजनीति के सचेतक और भावी दृष्टा। जैसा कि मास्टर साहब के जीवन परिचय से ज्ञात होता है कि वे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रहे थे, जेल जाना, लाठियाँ खाना, सत्याग्रहियों की अगुवाई करना, धरने देना, जुलूसों में नारे लगाना, कभी मैदानी कभी फरारी का जीवन बिताना आदि आदि जो भी काम स्वतंत्रता सेनानियों के होते थे, सब में उनका सक्रिय योगदान रहता था। घर गृहस्थी से कोई नाता नहीं था। अतः देश की पुकार पर जूझने के लिये तन-मन से पूरे समय के लिये समर्पित रहते थे, साथ ही शोषितों, पीड़ितों के लिये बढ़-चढ़कर काम करते थे। फक्कड़ फकीरों का सा जीवन, पर कोई नहीं जानता था कि इस कठकरेज शरीर के भीतर कहीं सुकुमार भावनाओं की अन्तः सलिला स्रोतस्विनी भी लहराती रहती है।

जब दो साधक आमने सामने हुये तो एक की पारखी दृष्टि ने गड़े हुये धन को पहिचान लिया। बातचीत में पटु दोनों साधक आपस में घंटों तक वार्तालाप करते रहते, विविध विषय माध्यम बनते। इसी बातचीत के बीच में उस गड़े खजाने की झलक मिलने लगती क्योंकि समानधर्मी प्रवृत्तियाँ स्वयं एक दूसरे की पहिचान कर लेती हैं। फिर तो महाकवि कालिदास की वे पंक्तियां सार्थक होने लगती - ''न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हित तत्'' (रत्न किसी को नहीं खोजता वह तो खोजा जाता है)। इसके पश्चात वह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसमें कुप्पी की रोशनी में लाल, मटमैले कागजों पर पेन्सिल या होल्डर से गूंथी गयी भाव सुमनों की लड़ियाँ बस्तों की अँधेरी गुफा से निकल-निकल कर बाहर जानें लगीं। कवि की प्रत्यक्ष दार्शनिक अनुभूतियों के माध्यम से ब्रह्माण्ड की रचना अणु परमाणुओं के घात प्रतिघात की लीला को वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने लगीं। मधुमती भूमिका में उतर कर 'रसो वै सः' की उपलब्धि सम्भव होने लगी। तब उन भाव सुमनों की लड़ियों और इन नवीन उपलब्धियों ने प्रेस की स्याही का काला चोला पहिना और 'ज्यों—ज्यों बूड़ै श्याम रंग, त्यों—त्यों उज्ज्वल होय' की तर्ज पर शब्द ब्रह्म के आलोक से जगमगाती हुई वे 'अंजलियाँ' बनी एवं नारायण नैवेद्य बनने को आतुर हो उठीं। नारायण अंजलि भाग 1 व 2 तथा नारायण नैवेद्य के रूप में अवधी, ब्रज, पूर्वी, बुन्देली, बघेली व ग्राम्या बोलियों के कलेवर में सज हिन्दी भाषा का श्री बौखल का काव्य जगत इस प्रकार प्रकाशित हुआ।

प्रत्येक कवि, लेखक, कलाकार की यह स्वाभाविक, हार्दिक बलवती इच्छा होती है कि वह अपने लेखन को प्रकाशित होता हुआ देखे। श्री बौखल ने इस काव्य विधा के अतिरिक्त गद्य की विधा में तथा उर्दू भाषा की गज़ल नज़्म आदि के रूप में विपुल साहित्य रचा था। गद्य में निबन्ध, विचार संग्रह कथायें व लघु उपन्यास लिखे और हिन्दी में कवित्त, सवैये, घनाक्षरी आदि छन्द जो उपर्युक्त ग्रन्थों में नहीं आ सके थे-भी लिखे थे। तीन पुस्तकें जिनका नाम ऊपर आया है तो उनके समान धर्मा श्री खरे के प्रयासों से छप गयीं परन्तु शेष सामग्री को प्रकाशित कराने की योजना में वे लगे रहे जो योजना पूरी न हो सकी। गद्य संग्रह पर कार्य करने की योजना बनती ही रह गयी। संस्कृत का एक श्लोक याद आ रहा है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः।

इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे, हा मूलतः कमलिनीं गज उज्जहार।।

और वे चले गये। कारण कई हो गये— सत्याग्रही का चोटें खाया शरीर, बढ़ती अवस्था, परिश्रमी शक्ति का ह्रास और अर्थाभाव। 'सब ठाठ धरा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा' के अनुसार वह बंजारा अपना अप्रकाशित ठाठ धरा का धरा छोड़कर बिना कुछ लादे खाली हाथों चला गया। एक शायर के शब्दों में—

फिर चल दिया वो हंसा अपने तईं अकेला।'

नारायण दास बौखल का प्रकाशित साहित्य

"उदय कल्पना नाचि नित, काव्य धुरी आधार।

मनकाया विच जीव अलि, बौखल करत विहार।" अंजलि 1/परिचय

रचनाकार का रचना संसार उसके बाल्यकाल से प्रारम्भ हुये मानव जीवन के भिन्न-भिन्न रूपों के दर्शन तथा मानव रूप में स्वयं के अनुभवों पर आधारित होता है। किसी व्यक्ति के साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत होने में उसके चारो ओर के वातावरण तथा परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। संवेदनशील व्यक्तित्व प्रकृति के परिधान को नित नूतन अलंकरण प्रदान करने का दृढ़ संकल्प लेकर अपनी कल्पना तथा अनुभव जन्य विचारों से साहित्य की सृष्टि करता है।

मास्टर नारायण दास 'बौखल' ने पयपान के साथ अपनी माता से भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों को ग्रहण किया। संयुक्त परिवार में रहते हुये भी 'स्व' के विकास में माता की शिक्षा-दीक्षा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तत्कालीन परतंत्र समाज में स्वतंत्र विचारधारा को पोषित, पल्लवित करने की सहज शक्ति बौखल जी के बचपन में ही विकसित हो गयी थी। इसी समय उन्हें सन्यासिनी रामदेई के भक्ति रसामृत सिक्त भजनों के गायन ने निर्गुण व सगुण ब्रह्म के विविध रूपों से परिचित कराया। युवावस्था आते-आते युवक नारायण दास एक ऐसे संतुलित व स्वतंत्र व्यक्तित्व के स्वामी बन गये थे जो कि अपनी मातृभूमि को विदेशियों की जंजीरों में जकड़ा देखकर 'स्व' की आहुति स्वतंत्रता की यज्ञ वेदी में देने को तत्पर था।

आयु के 30 सोपान पार कर मास्टर साहब ने औपचारिक शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया। प्रकृति की पाठशाला में सीखे गये व्यावहारिक ज्ञान को अक्षरबद्ध करने के लिये जिस ज्ञान की आवश्यकता थी, वह 30 वर्ष की आयु से मास्टर साहब ने ग्रहण किया। स्वातंत्र्य युद्ध में निरन्तर भाग लेते हुये भी मास्टर साहब ने साहित्य रचना को निरन्तर गति प्रदान की।

मास्टर साहब ने अपने साहित्याकाश में पद तथा दोहे जैसे काव्य रूपों को स्थान दिया है। जीवन को सत्याग्रह से जीतने वाले बाबा बौखल ने अपनी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं को अवधूती शैली में पद तथा दोहों में संरक्षित किया है। बौखल साहब का जितना अधिकार अपनी मातृभाषा हिन्दी पर है उतना ही समान अधिकार उनका तत्कालीन समाज में प्रचलित उर्दू व फारसी

पर भी है। उर्दू भाषा में 'बौखल' ने अनेक गज़लें व नज़्में रची हैं साथ ही उनका विशाल गद्य भण्डार भी हिन्दी व उर्दू मिश्रित हिन्दी की धरोहर का दर्पण है।

मास्टर साहब के रचना कर्म के पुंजीभूत उदाहरण उनके तीन प्रकाशित ग्रन्थ है। ये ग्रन्थ हैं— (1) नारायण नैवेद्य (2) नारायण अंजलि भाग-1, (3) नारायण अंजलि भाग—2. इनमें से नारायण नैवेद्य उनके द्वारा रचे गये पदों का संकलन ग्रन्थ है। शेष दोनों ग्रन्थ शुक्ता में मुक्ता धारण करने समान छन्द दोहों के संकलन हैं।

आगे के पृष्ठों में हम मास्टर साहब की रचना धर्मिता व उनके कवि कर्म फल रूप साहित्य चेतना का प्रकाशित ग्रन्थों में क्रमशः परिचय पायेगें।

(1) <u>नारायण नैवेद्य</u> : नारायण दास बौखल का प्रथम ग्रन्थ नारायण नैवेद्य 1976 को प्रकाशित हुआ। प्राचीन भारत की गौरवशाली परम्परा व संस्कृति से भलीभाँति परिचित मास्टर साहब ने अपने प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ का नामकरण 'नारायण—नैवेद्य' करके हमारी धर्माधारित सामाजिक चेतना में अपना सुदृढ़ विश्वास प्रकट किया है। उनका यह ग्रन्थ भारतीय आध्यात्मिक समाजवाद की पृष्ठ भूमि है। भारतवर्ष का पुराना नाम अजनाभ वर्ष है। पौराणिक परिकल्पना के आधार पर शेषशायी नारायण की नाभि से ब्रह्मा उत्पन्न हुये हैं और ब्रह्मा की नाभि से सृष्टि का श्री गणेश हुआ है। शेष (Space) के असीम विस्तार में विराट अनन्त की लीला ही सृष्टि के विकास एवं विनाश का आदि एवं शाश्वत कारण है। विराट विभु ही नारायण है। अणुओं के संघात से नारायण शेष के विराटतम आयाम पर सृष्टि का प्रक्षेप करते हैं। यह प्रक्षेपण ही ब्रह्मा हैं। उनके द्वारा सर्जित अजनाभ वर्ष सारी सृष्टि की कर्मभूमि है। यह सारी प्रक्रिया धर्म कहलाती है। चूंकि धरा धर्म का आधार है, अतः यह धरा धर्म क्षेत्र भी है। नारायण नैवेद्य, कवि का ईश्वर, ब्रह्म को अर्पित प्रथम काव्य पुष्प है। हिन्दू धर्म में ईश आराधना में नैवेद्य अर्पण एक निश्चित व्यवस्था है।

नारायण नैवेद्य भारतीय आध्यात्मिक समाजवाद की पृष्ठभूमि है। यह ऊर्णनाभ प्राणी को अजनाभ बनाने की दिशा में प्रथम व्यावहारिक व स्तुत्य प्रयास है। कवि क्रान्ति दृष्टा है। वह परिभू और स्वयंभू होता है। उसमें विराट की व्यापकता में व्याप्त का निर्धारण करने की अद्भुत क्षमता होती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति, प्रकृति और पुरुष के क्रियाकलापों के उचित तालमेल से जीवन का निकष प्राप्त होता है। युग दृष्टा कवि सतत् जागरूक निरीक्षण करके अभिव्यक्ति स्वरूप साहित्य को जन्म देता है।

कवि बौखल ने अपने ग्रन्थ नारायण नैवेद्य में सामान्य भारतीय कृषक व श्रमिक, जो कि प्रकृति की पाठशाला के जागरूक व दत्तचित्त छात्र हैं, के माध्यम से औपचारिक शिक्षा व ज्ञान को चुनौती दी है। ये जन ज्ञान के अगम रहस्यों का उद्घाटन कर अनुभूति के नूतन कीर्तिमान स्थापित करते हैं। शून्य के विराट पट पर पुरुष और प्रकृति की अनादि व अनन्त लीला कवि को दिव्यदृष्टा बनाती है तथा तब जन्मा काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर मात्र न रहकर सच्चिदानन्द बन जाता है।

कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में जीवन की अबूझ पहेली को सुलझाने के लिये सृष्टि के आरम्भ से चल रहे प्रयासों में अपना भी स्तुत्य योगदान किया है। जीवन के सम्बन्ध में मुण्डे मुण्डे मतिः भिन्नाः उसे एक पहेली के रूप में स्थापित करती है तथा इस पहेली को हल करने के प्रयत्नों के परिणामों की समग्र संज्ञा दर्शन है। दर्शन के वैचारिक पक्ष में व्यावहारिकता का योग सभ्यता और संस्कृति का निर्माण करते हैं। भारतीय दर्शन व चिन्तन जीवन की अबूझ पहेली को सुलझाने का अभूतपूर्व तथा सार्थक प्रयास है। जीवन से मुक्ति के लिये अनवरत प्रयास ही स्वयं जीवन है। भारतीय जीवन दर्शन स्थान और समय की विराटतम और लघुतम अनुभूति को 'अणोरणीयान महतो महीयान' कहकर व्यक्त करता है।

कवि ने आध्यात्मिक समाजवाद के रूप में अपनी सुस्पष्ट एवं तटस्थ विचारधारा को स्थापित किया है। आज की भौतिकताप्रिय तथा भटकी हुई मानवता को सही दिशा की ओर प्रेरित करने में यह आध्यात्मिक समाजवाद की पीठिका अवश्य ही सहायक है। यहां कवि ने श्रमिक व कृषक को जगत में सर्वोपरि प्राणी मानते हुये परोपजीविता को मानवता के उत्थान में सबसे बड़ा अवरोध बताया है। परिश्रम व श्रमिक की सत्ता ही उसकी दृष्टि में सर्वोपरि है—

''श्रमिक सर्वोपरि जग प्राणी

प्रकृति के बाह्य रूप हित, बनि मानव वैज्ञानी

उपयोगी साधन सहकारी, करि श्रम अनुसन्धानी

गठन समाज सजि हितकारी, आदिम युग प्रमाणी

जीवन सम्बन्धी रचि रचना, नैतिक नियम महानी

मानव आदि वंश अपनायो, कहि इतिहास बखानी

युग परिवर्तन की परिभाषा, कथा नवीन पुरानी

परिश्रम परितोष पावनी, लब्ध अर्थ मनमानी

'बौखल' खाद्य खनिज सुखदायक, भूमिमात महारानी।'' पद-3 पृ0-1,

कवि ने वर्तमान राजनीतिक दशा पर भी अपना दृष्टि निक्षेप किया है। लोकतंत्र की दुहाई देने वाले नेतागण तथा राजनीतिज्ञ किस प्रकार देश में दुर्दशा के भागीदार हैं, यह इस प्रकार वर्णित है—

''कैसो लोकतंत्र पतियाना

ग्राम देव धन धान्य पुजारी आपन रचै विधाना

परोपजीवी बने हितैषी, आनन्द भोगि निधाना

न्यायी बनि हित करै आपनो, वेतन भार महाना

जीवन सम्बन्धि उत्पादन, भेदभाव उपजाना

दूषित अर्थ धरै तहखाना, निज रक्षा अपनाना

भाव हिये जनसेवी उपजै, जन अधिकार भुलाना

केन्द्र उचित सेवा करि निश दिन, जन धन बचो पचाना

बौखल न्याय सुखद जग आवै, समदर्शी पहिचाना। पृ0-20, पद-66

दूसरे के श्रम पर आश्रित परोपजीवी जन अर्थव्यवस्था को स्वयं के हित में लगाते हैं। जो श्रम करता है, दिन भर कड़ी मेहनत करके अन्न उपजाता है वह तो जीवन भर दो जून की रोटी के लिये तरसता है और नेतागण, महंत या व्यवस्थाओं के नियामक जन आराम से जीवन-यापन करते रहते हैं।

मेरे मन मन्दिर में आवो

शीश जटा तन भसम रमाए, आलिंगन मृग छाला।

ठाढ़ो तिलक हाथ में माला, तेहु तोहि नहिं भावो

अटपट पंथ परै पग मेरे, सूधी राह न सूझै

मूढ़मति दुर्गत बहु भांति, जलधि अगाध डुबावौ

अन्ध ज्ञान विश्वास अधूरो, दुर्गम मिलन पिया को

हियाजिर में विकल आत्मा, करुणाकर अपनावो

सकल यतन करि बौखल हारे, औषधि वैद्य बतावो

अन्तिम अनुनय विनय हमारी, बिरहा तपन बुझावो। पद-40, पृष्ठ—13

जीव की ब्रह्म से मिलन हेतु कैसी आकुल विनय है। इस संसार में माया प्रेरित भव—बाधाओं में फंसकर जीव निरन्तर भ्रमित होता जाता है तथा अपने प्रिय (ईश) से मिलन मार्ग से भटक जाता है। जब उसे स्मरण आता है कि वह ब्रह्म का एक छिटका हुआ अंश है तब वह इस मायाचक्र से निकलने हेतु विकल भाव से प्रार्थना करता है।

प्रेम बिन सूनो सब संसार

चोंच पसारि मौन मन चातक रीतो गगन निहार

क्षितिज आलिंगन अश्रुधार लै, पखना प्रीत पसार

स्वाती चाह चौगुणी बाढ़ि, बिरहा पीर अपार

कैसे प्राण रहे या देही, जीवित अधर अधार

चैत चांदनी चमचम चमके, ऋतुपति साजि सिंगार

कूकि कूकि कोयल नित नाचे, तरु रसाल की डार

'बौखल' प्रेम पियो जिन प्याला, पाय पंथ विस्तार

जन जीवन की अँखियां झूलै, दै गयो जग आचार।। पद-244, पृष्ठ—71

कवि ने नारायण नैवेद्य में जीवन के सभी पक्षों के रंगों को अनुस्यूत किया है। समाज, अध्यात्म, प्रेम, लोकतंत्र विविध छटाओं से सज्जित है उनका यह ग्रन्थ।

नारायण नैवेद्य के पदों में विश्व कान्तार में अर्जित भोजन, शयन, मैथुन सुरक्षा और अध्यात्म की तुष्टि के लिये किये गये प्रयासों, परिष्कारों, सुविधाओं, अवरोधों आदि का भावनात्मक धरातल में भौतिक विश्लेषण है। कवि राजनीति की गुत्थियाँ सुलझाने में सक्रिय है, आर्थिक व्यवस्था के प्रति जागरूक है, जीवन की पहेली के समाधान में समग्र व्यक्तित्व लगा हुआ है। दार्शनिक उपलब्धियों को मार्मिक लोकधुनों में पिरोकर तथा सृष्टि के गहनतम रहस्यों को, सहज सरलवाणी में निःसृत कर कवि ने स्थूल से सूक्ष्म की उपलब्धि को सम्भव बनाया है।

गणनायक गणित निधान की वन्दना कर कवि ने विघ्न विनाशक देव से विनम्र अंजलिबद्ध प्रार्थना की है कि वे सृष्टि के विभिन्न रहस्यों में उलझे मानव जीवन को सुलझाने में मानव मात्र के सहायक हों।

भारतीय आध्यात्मिक समाजवाद की स्थापना में नारायण नैवेद्य के सूत्र व व्याख्या परक पद आवश्यक रूप से व्यावहारिक मार्गदर्शन करते हैं।

(2) नारायण अंजलि भाग–1 : नारायण के सृष्टि यज्ञ में नर मेधा के माध्यम से आहुति देता है। कवि क्रान्ति दृष्टा व युग दृष्टा होता है। नारायण नैवेद्य के पदों के रचयिता महाकवि बौखल की दूसरी कृति नारायण अंजलि भाग-1 इसी सूत्र को संपुष्ट करती है। अणुओं के संयोग और वियोग के निरन्तर प्रयोग जीव के विकास के विभिन्न स्तरों के निर्माण के कारक हैं। सृष्टि व्यवहार में सृजन और ह्रास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। ब्रह्मा का सृजन, विष्णु का पालन और रुद्र का संहार प्रभु की लीला का शेष के विराट आयाम पर प्रक्षेपण मात्र है, जो प्रकृति के नैसर्गिक कृत्य के रूप में विद्यमान है। प्रकृति में स्थित पदार्थ पर सौन्दर्य का आकर्षण भावनात्मक रूप ग्रहण कर शिव और अशिव के रूप में जीव के बन्धन का कारण बनता है। वास्तविकता का आवरण घटाटोप अन्धकार के रूप में परिवर्तित होकर प्रकाश का अवरोधक बनता है। संसार के चक्रव्यूह में जीव इसी अन्धकार रूपी अज्ञान के द्वारा घूमता रहता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का संदेश उस आवरण को भेद कर 'असतो मा सद्‌गमय' का वाहक बनता है तथा प्रकाश पुंज की उपलब्धि आत्मा के परमात्मा से साक्षात्कार में सहायक होती है। 'मृत्योर्माऽमृतम् गमय' तब जीवन का मूल मंत्र बनता है तथा तमिस्रा भेदन में जीव का सहायक होता है।

इस सत्य के प्रकाश के माध्यम से नीर क्षीर विवेकी सन्त सत्य पर पड़े हुये भौतिक आवरण को दूर करते हैं। वे हंस के समान माया व सत्य के बीच वास्तविकता का चयन करते हैं। स्मृति और अनुभूति की अभिव्यक्ति स्वरों और व्यंजनों के सहारे कविता को शक्ति व सौन्दर्य से पूरित करती है। कवि अपने भावों के सहारे समभाव की शक्ति धारण करता है तथा तब कालजयी कविता का जन्म होता है। ऋषि की श्रुति वाणी में आकर शाश्वत हो जाती है। यहां आकर 'आप्तोपदेशः शब्दः' को प्रामाणिकता प्राप्त होती है।

नारायण अंजलि भाग–1 में कवि बौखल ने भारतीय आध्यात्मिक समाजवाद के सूत्रों को व्यावहारिकता प्रदान करने की पीठिका प्रस्तुत की है। व्यापारिक सहकारिता के स्थान पर व्यावहारिक सहकारिता की प्रतिष्ठा कवि के विचार में लोक मंगल की विधायिनी है। इसके द्वारा त्रि-तापों से संतप्त मानवता को शीतल जलांजलि मिलती है। स्वर्गलोक का संदेश न लाकर श्रम व सहयोग के द्वारा भूतल को ही स्वर्ग बनाने का विचार प्रबल होता है। अहिंसा व प्रेम के द्वारा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा दानवीय शक्तियों पर प्रेम की विजय स्थापित कराती है।

कवि ने अपने दोहों में अंग्रेजी राज में भोगी गयी शारीरिक व मानसिक पीड़ा को स्थान दिया है। इन्होंने अपनी साहित्यिक साधना के द्वारा अपनी प्रतिभा का उपयोग मानवीय संस्कृति के पुनर्निर्माण के लिये किया है। गांधी के सर्वोदय पर आधारित ग्राम राज्य व रामराज्य की स्थापना में सहयोग करने हेतु कवि बौखल ने परम्पराओं व रूढ़ियों से मुक्त स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु समाज सम्बन्धी दोहों को भी इस ग्रन्थ में स्थान दिया है। वर्ग विभेद तथा वर्ण व्यवस्था से कवि खिन्न है। अतः इस पक्ष को भी कवि ने अपने समाज सम्बन्धी दोहो में छुआ है। शताधिक दोहे इस पुस्तक में समाज में परिवर्तन की लालसा तथा वर्तमान स्थिति से विक्षुब्ध होने के प्रमाण स्वरूप संग्रहीत है–

'महानगर बसि आपही, बिन भोजन मरि जाय।

परोपजीवी जीवड़ा, कौन सो करे उपाय।।'' दो. सं. -1706 पृ.-129

मध्यम वर्ग मुरझावहिं, अर्थ पहेली आज।

अपनो साधन साधि कै, साधे साज समाज।।'' दो. सं. -1707 पृ.-129

वर्तमान परिस्थितियों में देश को विकसित देशों के समकक्ष लाने में विज्ञान का अत्यन्त महत्व है। बिना वैज्ञानिक अन्वेषणों व खोजों के विश्व परिदृश्य में एक सुदृढ़ अर्थव्यवस्था तथा मजबूत सैन्य शक्ति की गरिमा प्राप्त करना भारत के लिये सम्भव नहीं। अतः कवि सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक सत्य को स्वीकार कर विज्ञान व वैज्ञानिक की प्रशस्ति भी इस ग्रन्थ में करता है–

'सामाजिक उपयोगिता, सो साधक विज्ञान।

सोयो देश वरिष्ठ जन, उत्पादन सन्धान।।'' दो. सं. -896 पृ.-67

''वैज्ञानिक बन्दौ सुयश, सुख समान विस्तार।

विमल व्यवस्था आर्थिक, हो नैतिक आचार।।'' दो. सं. -15 पृ.-2

प्रस्तुत ग्रन्थ में संग्रहीत दोहों के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वस्तुतः महाकवि बौखल एक यथार्थ चिन्तक, सफल राष्ट्रीय कवि, समाज सेवी व श्रम का सही मूल्यांकन करने वाले व्यक्ति है। इन्होंने अपने काव्य में वास्तविक लोकतंत्र का चित्रण किया है तथा परोपजीविता से देश को मुक्त कराने का स्वप्न संजोया है। इस दृष्टिकोण को लेकर यदि सुधी पाठक जन नारायण अंजलि–1 का पठन करते हैं तथा इन सूत्रों को अपने व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में उतारने की चेष्टा करते हैं तभी एक सच्चे राष्ट्रवादी साधक की जीवन पर्यन्त की गयी देश सेवा व साहित्य साधना सफल व सार्थक होगी यही मेरा विचार है।

<u>(3) नारायण अंजली भाग–2</u> : रामनवमी सन् 1977 को अपनी प्रथमांजलि के रूप में नारायण अंजलि भाग–1 अर्पित की। इस प्रकाशन के ठीक 1 वर्ष बाद रामनवमी 1978 को मास्टर नारायण दास बौखल ने नारायण अंजलि–2 का प्रकाशन कराया। इस ग्रन्थ में भी मास्टर साहब ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम 'दोहे' जैसे सूत्रात्मक लघु छन्द को बनाया। वे प्रकृति के बहिरंग और अन्तरंग पक्षों के सशक्त विश्लेषण, विवेचन, परीक्षण व निरीक्षण में लगे रहते हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से उनका कवि मन सृष्टि में घटित होने वाली घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करता है। साथ ही कल्पना शील मानस इन घटनाओं को शब्द चित्रों में परिवर्तित करता है।

''अणु स्वतन्त्र अनादि नभ, अणु गण अनुशासित ग्राम।

अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड रचि, सौर वंश विश्राम।।' दो. सं. -3 पृ.-1

महाकवि बौखल ने अपनी रचनाओं में दर्शन को जीवन की धुरी बनाकर दार्शनिक कवि की भूमिका निभाई है। वे समाज संचालन हेतु व्यापारिक नैतिकता के स्थान पर वास्तविक नैतिकता को प्रतिष्ठापित करना चाहते है। मानव समाज में दिन प्रतिदिन स्वार्थ का जोर अधिक होते जाने से समाज में मौद्रिक प्रणाली को प्रधानता मिल गई तथा इसने स्वार्थो के टकराव को और अधिक प्रश्रय दिया।

''व्यौपारी भगवान बनि, ऊँची खोल दुकान।

देत सबै संग्राम विधि, अलि बुलाय इन्सान।।'' दो. सं. -1192 पृ.-92

योगी, कवि तथा विज्ञानी यदि एक ही व्यक्तित्व में समाहित हों तो उस व्यक्तित्व तथा समाज का पथ सुगम एवं प्रशस्त होता है। तब स्वान्तः सुखाय रचना करने पर भी वह समाज से जुड़ा रहता है। समाज उस विचार भूमि पर समान रूप से विचरण करने में सक्षम न होने पर भी यत्किचिंत ज्ञान का लाभ उठाता है तथा उस जीवन रससिक्त रचना के छींटों से ही सन्तुष्ट होकर गुणा भाग करता रहता है। मास्टर साहब ने अपनी रचनाओं में मनुष्य के लिए इसी भाव भूमि पर यथेष्ट चिन्तन सामग्री प्रस्तुत की है –

'हीरा मन माणिक भयो, जौहरि परख न पाय।

मुक्ता परखि मराल पल, मूढ़ मती भरमाय।।'' दो. सं. -288 पृ.-21

नारायण अंजलि भाग–2 में बौखल जी ने विरह जन्य पीड़ा तथा अनुभूति सिक्त रचनाएं अधिक रखी हैं। विरहाकुल जीव तथा ब्रह्म के सम्बन्ध में प्रिय तथा सजनी के दृष्टान्तों से पूरित अनेक दोहे भाग–2 में संग्रहीत हैं।

''प्रीत होत अलि एक सों, रोय–रोय तजि प्राण।

जाकी प्रीत अनेक संग, सोई धूरि समान।।'' दो. सं. -1787 पृ.-122

"विरहा औषधि सो भली, पिय विष देत पियाय।

पुनि स्वरूप मिलि तत्व रचि, निर्भय चिता जराय।।" दो. सं. -1350 पृ.-104

इसमें व्यक्ति आधारित राजनीति की बुराइयाँ भी कवि की वाणी से मुखर हुई हैं। सामूहिक उत्थान की भावना को सर्वोपरि मानने वाले कवि बौखल का सहज विरोध व्यक्ति केन्द्रित राजनीति से है।

'व्यक्तिवादी देश में, नैतिकता अपराध।

रहे कलेश निरन्तर, 'बौखल पियत अगाध।। दो. सं. -1140 पृ.-88

सन्तों की निर्झर वाणी से बाह्याडम्बरों के प्रति अविश्वास तथा नाराजगी सदैव ही प्रकाश में आयी है। इसी प्रकार बौखल जी कहते हैं—

"विप्रवाद सर्वोपरि, राजनीति भई दास।

निर्धन भयो समाज सब, झूठो लै विश्वास।। दो. सं. -1150 पृ.-89

अनेक दोहो में कवि ने मनुष्य को संयमित जीवन व्यतीत करने हेतु लोकाचारोपदेश युक्त उक्तियां कही हैं—

"धन यौवन लोलुप अलि, माधुर बैन उचारि।

नाग फांस पेती धरे, महुवर लोहनि डारि।। दो. सं. -3117 पृ.-240

नारायण अंजलि भाग—2 में यद्यपि कवि ने अपनी अन्य दोनों पुस्तकों के समान जीवन की बहुरंगी छवि प्रस्तुत की है तथापि शृंगारपरक प्रमुखतः वियोग शृंगारपरक रचनाएं बाहुल्य में मिलती हैं। शृंगार रस की विविध छटाओं का परिपाक नारायण अंजलि भाग—2 के सौन्दर्य को द्विगुणित करता है। शृंगार सिक्त होते हुये भी शालीनता तथा मर्यादा निरन्तर इन दोहों में परिलक्षित होती है।

<u>नारायण दास बौखल का अप्रकाशित साहित्य</u>

(1) अप्रकाशित काव्य — महाकवि 'बौखल' ने जहाँ उर्दू भाषा की नफ़ासत व नज़ाकत को बड़ी गहराई से आत्मसात किया था और उसमें ग़ज़ल नज़्म आदि लिखी थीं वहीं रीतिकालीन छन्द विधान पर भी उनका पूरा अधिकार था। श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जैसे हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के जन्मदाता होते हुये भी बृजभाषा की माधुरी में डूबी हुई रचनायें की थीं, श्री 'बौखल' ने भी उसी लालित्य और माधुर्य से सराबोर कवित्त, सवैये और घनाक्षरी में रचनायें की हैं— ये तीनों प्रकार के छन्द उनके प्रकाशित साहित्य— तीनों पुस्तकों में से प्रयुक्त 'दोहा' व 'पद' छन्दों से नितान्त भिन्न हैं, परन्तु इनका भी प्रकाशन नहीं हो सका।

इन छन्दों में विरचित अनेक विषय के वर्णन में अनुप्रास अलंकार की छटा तथा गीति काव्य की एकान्तिक तन्मयता देखते ही बनती है। कवि का मन जिन विषयों के वर्णन में रमा है— वे हैं— प्रेम

विरह भक्ति, भावना, देश प्रेम, व्यंग्य व सामाजिक समरसता— इन्हीं के भीतर नाना प्रकार की भाव वीचियों की कल्लोल विभिन्न प्रकार के रूप विधानों में अपनी छटा बिखेरती रही हैं, सभी में भाषा की मधुरिमा दृष्टव्य है—

<u>सवैया के उदाहरण—</u>

<u>अध्यात्म—</u> चंदन सूर न मूर खजूर न दूर समीप बसै पिय प्यारो
खोजत काह फिरै मन मूरख, खोजत नाहि हिये उजियारो
पावक पौन पषाण में नाहिं, जु व्यापि रहो नहिं खम्भ सहारो
'बौखल' बात कहौ न कहौ, चुप कैसे रहो हिय पीर पुकारो।।

<u>मैत्री —</u> प्रीति भली परतीत भली अरु रीति भली जु गहे परछाई
नीति भली अरु गीत भली, जग जीत भली जु सबै हरषाई
शीत भली हिय अंग न व्याधत ज्वाल भली जु न अंग जराई
'बौखल' जामि जरै न बरै अरु, जीवन लौं निभि जाय मिताई।।

<u>शोषक वर्ग—</u> झौरन झौर पराग हितै, चखि फूलन गंध सुगंध अपारी
दौरि मछेह फिरै बन मांहि, पराग संजोवति पेट पेटारी
औरन को धन धाम बटोरिबे, मानव बांधि विशाल कटारी
'बौखल' शोषक संघ सजाय, मनोगत रीत नवीन विचारी।।

<u>व्यंग्य—</u> पाथर पूजि पुजाय जहान गँवाय इमान भयो सन्यासी।
रोट लंगोट खसोट नितै अरु पाप विनाषि बसै पुरकासी
काषयि पाट पटोर कमंडल, पादुक पाय परी अमरासी
'बौखल' साजि मतंग चलो, मग हार सिंगार जु पूजत दासी।।

<u>भक्ति—</u> प्रेम सुमान महीपति आन न कोई लखै दुइ नैन निहारे।
बाँधत हौ तुम ही जग में नित प्रीति गुणी हिय टूटन हारे।
प्रेम समीप बसै सबही जिमि, चन्द समीप बसै नित तारे
'बौखल' आपन काह कहै, जब चाकर है चक्रधार तिहारे।।

<u>घनाक्षरी छन्द में लिखी रचनायें—</u>

<u>भक्ति—</u> राम के अजान में न लागत चित्त पल एक, पल पल पलक उघार देखत वन में
कबहुंक नदी नार चढ़ कै शीकर गैल, लाग कै समाधि में नैन चिते गगन में
कबहुंक भंगिया चढ़ाय प्रमत्त भांड़ नाचत मगन छवि देखि निज तन में
'बौखल' भनत ऐसो चंचल चपल क्रूर ध्यान जगदीश पल नाहि लायो मन में।।

<u>जगरीति—</u>एक दिन ऐसो बन्धु बान्धव सो प्रीति घनी, एक दिन ऐसो बहु होत कडुवाई है

एक दिन ऐसो नारि भरैं पदत्रणि सैंची एक दिन नारि चरण दबाई है।

एक दिन ऐसो पेट भोजन को तरसत एक दिन ऐसो खूब करत कमाई है।

एक दिन ऐसो विप्र लगन धराई रुचि एक दिन ऐसो चिता चन्दन जराई है।।

<u>गांधी महिमा—</u>गांधी बाबा निमक बनावन की ठानी ठान सबहिन जानि परे कौतुक कमनियाँ

कोउ तो कहत अस मिलत सुराज कहूं कोउ कहै बावरो भयो है आजु बनियाँ

बिजली सी दौरि पीर न न कर टूटत है, कोउ कहै लेओन विदेसी परदनियाँ

लाख नर नारि जब रेल पेल कीनो जेल, भारत की बल देखि चकित बृटानियाँ ।।

<u>शोषित जन—</u>दीन है किसान दुख रोवै है द्वार तेरे विनय न करत बनै कंठ रुधि न्यारे हैं

थर थर कांपे है गात मुख ते न निकसे बात उष्ण जल नैन सों चरण निज पखारे हैं।

भोजन बिन पेट ऐंठ बढ़्यो है पीठ पाप दुर्बल सो गात शिशु शासकन उधारे हैं।

रैयत बेहाल देखि काके घटै न वक्ष ऊबें कस नींद नृप नैन मतवारे हैं।।

इस प्रकार देखते हैं कि यदि अवसर मिला होता तो श्री बौखल का यह अप्रकाशित साहित्य भी उतनी ही भव्यता को प्राप्त होता जितना उनका प्रकाशित साहित्य है।

(2) उर्दू भाषा की रचनाएं — श्री बौखल ने हिन्दी में पदों व दोहों (प्रकाशित) व गद्य भाग (अप्रकाशित) के अतिरिक्त उर्दू भाषा में भी साहित्य रचना की है जो यत्र तत्र ग़ज़ल, नज़्म व शेर के रूप में बिखरा मिलता है। उनकी उन रचनाओं को पढ़कर आश्चर्य होता है कि स्वयं को 30 वर्ष की आयु तक अनपढ़ मानने वाले कवि की अभिव्यक्तियों का क्षेत्र कितना विस्तृत है। हिन्दी भाषा व उसके छन्द विधान पर कवि का जितना अधिकार है उतना ही उर्दू भाषा पर भी है। कवि का रचना कर्म उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। श्री बौखल का व्यक्तित्व सन्त के वैराग्य और भक्त के अथवा प्रेमी के अनुराग के तानों बानों से गुंथकर बना है। इसीलिये जहाँ उन्होंने संसार की क्षणभंगुरता की वास्तविकता से परिचित कराकर मनुवा को सावधान रहने की भाषा बोली है वहीं प्रियतम की राह जोहते-जोहते पथरा जाने वाली आंखों की करुण कातर दशा का भी वर्णन किया है। कवि ने इन्हीं भावों को लेकर उर्दू भाषा में भी इश्क़ हक़ीक़ी व इश्क़ मजाजी दोनों तरह का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है।

इसके अतिरिक्त कवि के व्यक्तित्व का एक तीसरा आयाम भी है जहाँ वह समाज का एक निष्कलुष प्राणी होने का गौरव धारण किये हुये है और राजनीति के दोगले चेहरे को उजागर करना अपना पुनीत कर्तव्य मानता है, वह देश के प्रति पूरी तरह से समर्पित है, देश के लिये वफादार और बलिदानी होना उसके जीवन की अनिवार्य शर्त है।

इन्हीं सब मिले—जुले भावों को लेकर कवि की उर्दू भाषा में लिखी यत्र तत्र बिखरी रचनाओं को उद्धृत कर रही हूं जिन्हें प्रकाशन का सौभाग्य नहीं मिला।

(1) हिन्द ये लुट गया है किसने बताया है तुम्हें
आप ही लुट गये हो किसने लुटाया है तुम्हें
बकरियाँ बन के लगे चीखने ऐ बन्दे खुदा!
वोह भी है शेर जिसने सताया है तुम्हें
अपने ही कातिल को खुद ही बुला लाया घर
उसी ने कैद किया फांसी पे चढ़ाया है तुम्हें
साया जो तेरा नहीं उसी के हम साया बने
उसी ने धोखा दे खाक में मिलाया है तुम्हें
होके बेदार जरा देख तो क्या है लुटा
पिला के जाम गुलाबी का सुलाया है तुम्हें।

(2) क्यों पड़ा सोता है गाफिल हजरते इन्सान तू
करवटें क्यों दम बदल लेता है परेशान तू
कूवते बाजू तेरा मशहूर दुनिया ने किया
सांस लेता आखिरी क्यों शेर हो बेजान तू
दुनियाये महफिल में चर्चा यों तेरी हिम्मत की है
गैर को मेहमां बनाकर खुद बना मेहमान तू
अपने ही भाई बिरादर का ही तू जालिम बना
हैरतो गैरत भी खोई शर्म यों नादान तू
ऐशो अशरत और आजादी को खोई फूट में
आ गया है वक्त बौखल कुछ तो ले पहचान तू

(3) इज्जत प्यारे मुल्क की शायर के हाथ है
बेदार बना डाले या मुरदार बना डाले
दुश्मन ही बना डाले या मेल करा दे

रहबर ही बना डाले या गद्दार बना डाले

हिम्मत हर एक फन की पयदा करैं मुर्दे में

ये हजरते इन्सान का करदार बना डाले।।

(4) हमीं इन्कलॉबी के दफ्तर बनेंगे

आजादी के मैदाँ बख्तर बनेंगे

यही दावा दायर सरे दर अदालत

खुदी हिंद का हिन्द रहबर बनेंगे

किसी का इजारा दखल इसमें क्या है

हमीं आलावदरख्वाह अवतर बनेंगे

वतन के हजारों हुये आज दुश्मन

रसाई से उनके बिरादर बनेंगे

बनो मुल्क के इश्क में तुम दीवाने

यही कहते हम दर बदर दर फिरेगें।

(5) बुलबुल ने रोकर कहा बागवां से, लुटा जा रहा है चमन धीरे-धीरे।

तसल्ली कहाँ है हमें बेबसी में, आयेगा एक दिन अमन धीरे-धीरे।

सितम की भी हद होती है वहीं तक, अरमाँ हुये हैं दफन धीरे-धीरे।

तालिये सियासत का ये हाले शरीफाना, जमाना हुआ राहजन धीरे-धीरे।

सूखते लोलू रोशन सहरमे की, मिली खाक में शबनम धीरे-धीरे।

सोया हुआ बेखबर वासवाँ तू, उजड़ा हमारा चमन धीरे-धीरे।

बढ़ा जा रहा है दमन धीरे—धीरे, मुहब्बत में पैदा जलन धीरे-धीरे।।

(6) शेख सियासत का बहदानियत का हामी

आता नहीं समझ में ये दरिया दिली कैसी

जाहिद का राज कुछ नहिं मुश्किल सबूत है

मुंह फेर के पी लेता है ये काबा दिली वैसी

सिरीन्द यो कहता है पियूंगा मैं उमर भर

राहे मयकदा हैं बादम फिर वस्ता दिली कैसी।।

(7) मक्कारी छोड़ दे ऐ दिल हबीबे रहनुमाई बन
मेशये जालिमों का तरक तू खिदमत खुदाई बन
हविश को दूरकर तू जिन्दी दिल परवाना बनने की
जुड़ेगें गिरद परवाने शमा सा तू गदाई बन
तसव्वुर में तू इख्लाकी को पैदा हद से ज्यादा कर
बदी के कीड़ों से मत डर, जायका जद मिठाई बन
न पिछड़ा ही समझ अपने को दुनिया के मुकाबिल तू
तूही देगा दिखाई सरजमी मजनू हवाई बन
तू पैदा कर असर हर दिल में तासीरे मुहब्बत बन
फिदी बौखल पे दुनिया हो तू दुनिया पै फिदाई बन।।

(8) पीरे मुगा से बेहतर है जाहिद का जमाना
पीता न पिलाता न करता है बहाना।
अरमाँ का खून हो सके मौसम बहार में
सैय्याद को पसन्द अब बुलबुल का तराना।
बेखबर इन्सां नफ्स अम्मारा का नाम दुनियाँ
बिजली को कब पसन्द आबाद आशियाना।
ये दौरे जिन्दगी का है हाल फकीराना
गुल के लिये बुलबुल का यों रंज उठाना।
पीने वाले तो पीते हैं या सर दे देते हैं
परवाह अब किसे है काबा हो या बुतखाना
ये शाने तकव्वुर की हैं नेक निगाहें
जो जल चुका है उसको जल जल के जलाना।

(9) कुछ बेबसी की हद होती है जमाने वालो
इन्सानियत खत्म क्या इस ढंग से ठुकराने वालो
तमामे उमर तड़प रहे राही दाने वतन
कफस से पहिले मगर आज आशियाने मे।
हुआ बेखौफ ये सय्याद गुलशन को लुटाने में

हम अब रोकता है दाग दिल अपना दिखाने में

सितम अफलाक का बाजू लगा है आजमाने में

शमा खूबी है क्या तेरी जले को फिर जलाने में

लुत्फ क्या है किसी बेकस को अब ज्यादा सताने में

मुझे क्या है तुही बदनाम होगा इस जमाने में

जबां रुकती नहीं रोके दर्दे दिल को सुनाने में

ये माना है खफा सैय्याद मेरे गम बताने में

जमाना मुझसे फिर जाये मरे आंसू बहाने में

फलक अंगड़ाइयाँ लेता है मेरे तड़फड़ाने में

गिरफ्ता दिल मगर मैयत लगी है, तड़फड़ाने में ।।

(10) दिल दे के मुझे बनाया था अपना दीवाना

वाजिब है कहाँ तक मुझे अब कहना बिगाना ।

दिल में ख्याल आता है बेवतनी से उनकी

आह की बिजली से जल जाये आशियाना

मैं तो परेजगार था देहों हरम का हामी

उल्फत का जाम पिला बनाया मुझे मस्ताना

निगाहें तीर तेरी काम कर गयीं अपना

रंजूर दिल हमारा गाता तेरा तराना

मैं दागे दिल छिपा लूं लेकिन है अश्क जारी

यह जुलुम तुम्हारा कभी देखेगा जमाना

साकी की बद निगाहों ने बदनाम कर दिया

आदी हुआ तो फिर न पिलाया मुझे पैमाना

कोई ठिकाना नहिं मेरा ये खाक रहवरी उनकी

ये हौसला है उनका मंजिल में भूल जाना ।

(11) तुम बिन दुनिया में अब मेरा कौन सुनेगा अफसाना

कैसे गवारा तुम्हें हो रहा है सैय्याद मेरा यों तड़फाना

छाले जिगर के बेदम किये जा रहे हैं जवाजा रहा आंसू बहाना

परवाह इसकी किसी को पड़ी क्या खुदगर्ज बेगम है ये जमाना

तमन्ना किसी की लुटी जा रही है अरमाँ की बस्ती बसी जा रही है

हस्ती किसी की मिटी जा रही है, बिजली का पेशा जलों को जलाना ।।

(12) मैं क्या कहूं किसी से जमाना बदल गया

बुलबुल ने रो के ये कहा सय्याद हू बहू है

साथ में चमन के आशियाना बदल गया

मोमिन को पिलाता है दावन में छिपाकर

साकी तो वो ही रिन्दो मयखाना बदल गया

हर कूचवाँ बाजार में जुन्नार की चरचा

बुत तो वो ही है मगर बुतखाना बदल गया

चरमा तो फलसफा का होता है जोरदार

दुनिया में हकीकत का अफसाना बदल गया

बदली जमीन और ये बदला न आसमां

'बौखल' मगर तौर ठिकाना बदल गया ।।

(13) 'बौखल' ने मुझसे पूंछा क्या चाहिये तुम्हें

मैंने कहा कि यार का दीदार चाहिये

रुसवा न कहीं कर दे इलाजे दर्द मेरा

मातम के लिये परदये दीवार चाहिये

देखे न कहीं मुफ्ती व मुअज्जन मेरी हालत

यों आशियां मुझको मेरा मिसमार चाहिये

दुनियां की नजर टेढ़ी हो जाय बला से

बेखौफ मुझे दिलरुबा का प्यार चाहिये ।

अप्रकाशित गद्य साहित्य

कथा साहित्य

1. कहानी (व्यंग्य) –

जन्नत के बड़े बाबू ने अल्लाह मियां से शैतान की बात सुनाई तो अल्लाह मियां को जलाल आ गया और बड़े बाबू से कहा कि अशराफील को बुलाकर कयामत का सूर फुंकवा दो, बात की बात में शैतान की फौज फना हो जायेगी और जन्नत का अमनो अमान खतरे से बचा रहेगा।

बड़े बाबू ने अल्लाह मियां की बात सुन करके कहा कि चौदहवीं हिज्री के पहिले कयामत बुलाना कानूने जन्नत की इज्जत को खाक में मिलाना इससे जो मोमिन चिल्लाकशी किये हुये वजिफा पढ़ रहे हैं, उनकी हक तलबी होगी– इन मोमिनों वजिफे में जितने जुमले थे सभी कामतलब अवजद की रूह से 420 की गिनती होती थी। तीसरे महमाने जन्नत के इस्तकबाल का सरो सामान तैयार नहीं है, चौथे बहुत सी हूरें बुढ़ि हो गयी हैं इनको बरखास्त करना और इनकी जगह जवान हूरें लाना फिर बाकी है।

अल्लाह मियां ने कहा कि हूरों की जवानी बुढ़ापे का तुम ख्याल मत करो बूढ़े को जवान बनाने वाले 420 नुस्खे मेरे तोसााखाने में धरे हैं। एक बार मैंने जिब्राइल फरिश्ते से कहा था कि बुढ़ापे को जवानी में बदलने वाला कोई नुस्खा तैयार करो वोह नोफुल बादशाह के तोसाखाने से एक कागज का पुलिन्दा उठा लाये जिसे मैंने पढ़ा उसमें लिखा था कि नुस्खा इश्किया इसके इस्तेमाल से रूठी जवानी अजसरे नौ आ धमकती हैं इसमें कुछ नुस्खे ऐसे हैं जो बुढ़ापे में जवानी की मिठास पैदा करते हैं जो मोसीनो के लिये बड़ा ही मुफीद नुस्खा है।

बड़े बाबू ने कहा यह बात सब सच है किन्तु मोमीनो की हकतलबी का क्या जवाब है। अल्लाह मियां ने बताया कि सबको जन्नत दे दी जाये। बड़े बाबू ने कहा कि अगर अपने गुनहगारों को भी जन्नत दे दी तो फिर दोजख में कौन जायेगा।

अल्लाह मियां ने एक बात बड़े बाबू को याद दिलाई कि मुनकीर नकीर की बहियों में नेकी बदी का ठीक ठाक पता लगा लिया जाये उसी हिसाब से दोजख जन्नत दी जाये। बड़े बाबू ने कहा कि मेरे हकताला तो यह बात ठीक है मगर उन रूहों का पता हिसाब की बहियों से लग सकता है जो रूहें मर चुकी हैं पर जो रूहें अभी जिन्दा है और वह रूहें जो इबादत में मशगूल हैं, जिनकी नेकी बदी का कोई हिसाब नही है चौदहवीं हिजरी में कयामत होगी और सभी रूहों की नेकी बदी का फैसला होगा बाद फैसले के नेकी बदी का बदला जन्नत दोजख दी जायेगी क्योंकि कयामत के सिर्फ 26 साल रह गये हैं इसलिये तमाम मखलूक में अल्लाह की इबादत और सुधार जोरों से जारी है। इस वक्त नेकी का पल्ला भारी है और बदी का पल्ला हलका है मेरे जिल्ले सुबाहनहू इसका क्या होगा और नेकी रुपये में सात आने और बदी रुपये में नौ आने हो या यों कहिये कि नेकी बदी बराबर

बराबर हों तो फिर क्या किया जायेगा दोजख जन्नत के अलावा हमारे पास कोई और मुकाम नहीं है सराय आलमे अरवाह में रूहे वापस जा ही नहीं सकती।

अल्लाह मियां ने बताया कि बदी के हिसाब से उतनी सजा दोजख की नेकी के बदले में उतनी ही दिन जन्नत में रूह रहेगी अपने अपने नेकी बदी के हिसाब से रूहें उधर से इधर से उधर बदलती रहेंगी। बड़े बाबू ने कहा कि इस इन्तजाम से तो रूहों और मोमीनों दोनो को राहत न मिलेगी और इनकी मोहब्बत खतरे में पड़ी सिसकती रहेगी और इस अदला बदली में जन्नत के कर्मचारियों को कभी फूरसत न मिलेगी, बेचारों को रात दिन काम करना पड़ेगा और बुढ़ापे में पेन्शन न मिलेगी बेचारे जिन्दगी भर कारगुजारी की चक्की में पिसते रहेंगे राहत नसीब न होगी।

अल्लाह मियां ने बताया कि हमने सत्तर हजार फरिश्ते इसीलिये पैदा किये और कयामत की अैबसे पाक रखा और दोजख नहीं भेजा। बड़े बाबू ने अल्लाह मियां से पूछा कि दोजख जन्नत की सजा पूरी होने पर रूहें कहां जायेंगी उनका क्या होगा?

अल्लाह मियां ने बताया कि उसके बाद सभी रूहें जाया कर दी जायेगी दोजख जन्नत मिस्मार कर दिये जायेगें फरिश्तों को पेन्शन दे दी जायेगी और ये चौदह तबक तोड़ डाले जायेगे यह तहतून कन्दील कंगूरे सब को तोड़कर मैं फिर चैन से सोऊंगा।

बड़े बाबू ने लम्बी सांस लेकर पूछा कि मेरा क्या हशर होगा। अल्लाह मियां बड़े बाबू के सवाल का जवाब दिये बिना ही उठकर चल दिये। चलते वक्त इतना इतना जरूर कहा कि मुझे पाखाना लगा है। बड़े बाबू सालों जवाब के लिये दीवान खाने में पड़े रहे मगर न अल्लाह मियां आये न सवाल का जवाब आया। बेचारे पूरा दिल लेकर गये थे आधा दिल लेकर लौटे। जब मैंने देखा तो घोड़े को तो उसी वक्त अस्तबल में बांध दिया और बड़े बाबू को हाथ मुंह धोने के लिये गुलाबजल ले आया ताकि दिल मुअत्तर हो जाये इसके बाद बागे आम के अफसर रीजवा ने अन्नास भेजे थे नास्ते में वही लाकर रख दिये बड़े बाबू का चेहरा फक देखकर पहिले तो मुझे सदमा हुआ कि बड़े बाबू जब अल्लाह मियाँ से मिलने गये थे तो खूब रूहें थीं चेहरे पर मगर जब लौटे तो चेहरा चितकबरा हो गया था जरूर कोई बात है दिल ने कहा— चौथी मुलाकात है। मैंने अपने दिल दिमाग का उसी वक्त इलाज करा लिया और बड़े बाबू से पूछा कि क्या बात है इतने दिन में लौटे क्या काम बहुत ज्यादा था अगर सफरी थकान हो तो खिदमत के लिये किसी को बुलाऊँ।

बड़े बाबू ने यह कहकर मेरी बात का जवाब दिया कि नौकरी बुरी चीज है पर किये बिना काम नहिं बनता क्या करूँ कहाँ जाऊँ बड़ी मुश्किल है। एक ऐसी कौम का सरगना बनाया गया जिसका जाति पढ़—लिखकर नौकरी करना है जिसमें आजकल जिन्दगी बवाल है जिला मुहाल है वंश चलाने वाला एक भी लड़का नहि दूसरों का घर आबाद करने वाली सात लड़कियाँ हैं जिनकी शादी में पचास पचास हजार रुपया दहेज में देना होगा बिना करारदाद के शादी न होगी घर का खर्चीली शादी है दिल बड़ा शौकीन है तनख्वाह खर्च के हिसाब से बरायेनाम है खुदा दाद आमदनी पर ही जिन्दगी का दारोमदार है एक पैसा भी बचत की पूंजी में नहि जाता बड़ी लड़की कुसुम कुमारी की

उम्र अठारह वर्ष की और छोटी की उमर तीन साल की है दुधमुंही बच्ची है मुझे इस बात का फिकर दावनगीर है कि छोटी लड़की की उम जब अठारह साल की होगी तब तक मेरे लिये नौकरी करना जरूरी है और लड़का एक भी नहीं है जिससे सहारा मिलता।

मैंने कहा कि बाबू जी रंज करने की कौन सी बात है भगवान की लम्बी भुजायें हैं न मालूम कब क्या वर्षा दे दुनिया में सभी अपने भाग्य का खाते हैं। बड़े बाबू ने कहा कि मेरी कौम में लड़कियां कम और लड़के ज्यादा हैं उनके घर में हमेशा शादियाना नक्कारा बजता रहता है और जिनके लड़कियां अधिक होती हैं उनकी जिन्दगी मौत से भी बदतर होती है।

मैंने बड़े बाबू को सलाह दी कि इस समस्या को सुलझाने के लिये आप अपनी कौम की एक सभा बुलायें और उसमें एक प्रस्ताव इस प्रकार का रखें कि मेरी कौम जब अपनी लड़की की शादी करें तो करार दाद रस्म अदा करें और जब लड़के की शादी हो तो करारदाद की रस्म को दफना दे इस तरीके से कौम के दुश्मनों का पता लग जायेगा कि कितने हैं। दुनिया की सभ्य कौमों में ब्राह्मण और कायस्थ ही गिने जाते हैं कायस्थ कुल में आप और ब्राह्मण कुल में मैं जन्मा हूँ लेकिन दोनों कौमें अपनी अक्लमन्दी की वजह से जलीला रव्वार हैं और दिन ब दिन दूसरों की नजरों में गिरती जाती हैं।

बड़े बाबू को मेरी सलाह पसन्द आ गयी उन्होंने फौरन सों इस काठ यंत्र अपनी कौम से अपील की के मैं चित्रगुप्त महाराज बैकुण्ठ से बोल रहा हूं और मेरी कायस्थ कौम करारदार शादी के मस्लहे को हल करने के लिये 25 जून दिन इतवार सन 57 को एक सभा का आयोजन करें जिसकी सदारत मैं खुद आकर करूंगा। चित्रगुप्त महाराज का इलहाम पढ़ कर कायस्थ समाज में बेचैनी कुछ कम हुई जिनके लड़के थे इस मुकर्रर तारीख के पहिले रकम ऐंठने की गरज से लड़के फरोख्तगी का कारोबार तेजी से शुरू हो गया मगर इधर लड़की वालों ने यह तय किया कि सभा में चित्रगुप्त महाराज जी क्या तय करते हैं देख लिया जाये फिर कहीं रिश्ता तय किया जाये।

सभा की खुशी में बड़ा रुपया खर्च किया कायस्थ समाज ने, पंडाल विलोचिस्तान के ऊंचे पठार पर जून के महीने में हुई कायस्थों की बहुत बड़ी रकम खाने कपड़े और चन्दा देने में खर्च हुई। चित्रगुप्त महाराज ठीक समय पर सभा में पहुंचे सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

चित्रगुप्त महाराज ने अपना प्रस्ताव सभा में उपस्थित महानुभावों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये एक छोटा सा व्याख्यान दिया जिसमें यह बताया कि दुनिया की जंगली कौम इन्सान की खरीद फरोख्त किया करती थी और बिका हुआ इन्सान अपने को खरीददार का गुलाम मानता और कहता था लेकिन मेरी पढ़ी लिखी कौमें भी जंगली कौम के रिवाज को आज भी जिन्दा बनाये है जो कि दुनिया में सभ्य इन्सानों के लिये लज्जा की बात है कि चन्द चांदी के टुकड़ों पर अपनी औलाद अपनी जाति के सम्मुख बेचना कहां तक एक सभ्य जाति के लिये उचित है और वर कन्या दोनों के आत्मस्नेह में बाधा डालना प्राकृतिक विधान के विपरीत है। करारदाद शादियों की आर्थिक पहेली

सुलझाने में मेरी जाति की बौद्धिक शक्ति उलझी रहती है और विश्व में बुद्धिमान जाति ही यशोबलम की अधिकारिणी होती है किन्तु बुद्धि को आघात पहुंचाने वाली यह करारदाद पृथा (प्रथा) से पीछा छुड़ाकर स्वतंत्र जाति जीवन बिताना चाहिये। बौद्धिक गुलामी ही जाति पतन का कारण बनती है इसी पतनावस्था का प्रभाव स्वराष्ट्र पर और इसके पश्चात अन्तर्राष्ट्र पर भी पड़ता है।

अतः अपनी सम्मानित जाति के प्रति अपनी सहानुभूति सहित मेरा यह आदेश है कि करारदाद पृथा (प्रथा) का अन्त करके आर्थिक विसूचिक से मुक्त होकर गौरववान, यशोबलम को प्राप्त हों। यह उपदश देकर चित्रगुप्त अन्तर्ध्यान हो गये तत्पश्चात कायस्थ समाज के नर-नारियों ने उसी मैदान में चित्रगुप्त महाराज के आदेश्रा को पालन करने की प्रतिज्ञा की जय ध्वनि से सभा समाप्त हुई।

2. उपन्यास– मृत पत्नी की खोज

उपन्यास, जो कवि श्री 'बौखल' की भावप्रवण कल्पना का साक्षी है, कवि की भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी उस अनन्यता का द्योतक है जो इसे विश्व की, विशेषकर पश्चिमी जगत की अन्यान्य संस्कृतियों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और आदर्शों के उच्चतम सोपान पर स्थित हुआ मानती है। अपने नायक के चरित्र में जिन संस्कारों की प्रतिष्ठा उन्होंने की है वह भारतीय युवाओं के लिये मार्गदर्शक होने में समर्थ है। ये वे संस्कार हैं जो किसी भी आकर्षण के प्रलोभन को न केवल अस्वीकार कर सकते हैं वरन उन प्रलोभनों का मार्गान्तरीकरण तक इतनी बलवत्ता और सुगमता से कर सकते हैं– 'एष पन्थः विद्यते नान्येः' ही उसका परिणाम होता है।

दूसरे जो इस उपन्यास की विाष्टिता है वह यह उपन्यास कवि की ऐतिहासिक भौगोलिक, भौतिक क्षेत्रों की बहुज्ञता का परिचायक है। भारत के समान ही मिश्र, यूनान आदि देशों की प्राचीन संस्कृतियों की लाक्षणिकता को कथा सूत्र के साथ साथ इस कुशलता से पिरोया गया है कि उनके स्वरूप प्रत्यक्ष हो उठे हैं, वहाँ के रहन सहन, वेशभूषा भाषा, परम्परायें आदि सब इसमें मूर्तिमान हो उठे हैं।

साथ ही विज्ञान की परिलब्धियाँ किस प्रकार नवीन संस्कृति को जन्म देने में सक्षम हैं यह भी इस उपन्यास का चिन्तन विषय है वह नवीन संस्कृति भारतीय संस्कृति से तालमेल बिठाने में कहां तक सफल हो सकती है यही उपन्यास के प्रधान चरित्रों के वाग्विलास से प्रत्यक्ष होता है– मनोविज्ञान और प्रेम प्रणय के शुभ चित्र भी यहाँ देखने को मिलते हैं, और इन प्रगतिशील विचारों का भी नवोन्मेष इस उपन्यास में इस प्रकार हुआ है कि दो विभिन्न संस्कृतियों में पले बढ़े स्त्री व पुरुष यदि परस्पर प्रणय बन्धन में बँधना चाहते हैं तो भारतीय संस्कारों में दृढ़ता से बँधे अभिभावक भी अपनी रूढ़िवादिता को छोड़कर उनसे सहमत होते हैं और परिष्कृत प्रेम व वात्सल्य की गुरुता के आगे रूढ़िबद्धता स्वयमेव पृथक हो जाती है।

उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तरण –

श्री मुक्तालाल एक सफल व सर्वप्रिय वकील है जो निःसंतान होने के कारण सब सुख होने पर भी दुखी रहते हैं, वे सबका भला करते हैं और उन्हें खूब आशीर्वाद मिलते हैं। एक समय में आशीर्वाद फलीभूत होते हैं और उन्हें एक पुत्र प्राप्त होता है जिसका जन्मोत्सव बहुत बड़े समारोह के रूप में मनाया जाता है उसमें देश विदेश के बड़े बड़े नामी गिरामी लोग शामिल होने के लिये आते हैं और अपने देश के चलन के अनुसार उन्हें उपहार भेंट करते हैं।

इस स्थान पर उपन्यासकार की अन्य देशों सम्बन्धी जानकारी का बड़ा रोचक वर्णन मिलता है– ये जानकारी कक्षा सूत्रको आगे बढ़ाने में सहायक होती है–

''मुक्तालाल ने अभ्यागतों का परिचय देते हुये आभार प्रकट किया ये तिब्बत के लामा हैं जो अपने शरीर में बैल की चर्बी लगाये हुये हैं ये मेधावी एवं बौद्धधर्म पर विश्वास करने वालों में से हैं।........ ये चीन के हैं जिन्होंने बौद्ध विहारों का निर्माण अपने देश में कराया है।........... ये मंगोल रेस के हैं ताशकन्द निवासी हैं इनकी वेशभूषा अपने ढंग की निराली है इन्हें मुस्लिम संस्कृति के अग्रगण्य वर्ग विहीन समाज पर अत्यन्त श्रद्धा है।............ ये सज्जन यूरान माउन्ट जो पामीर की पांच श्रेणियों में से एक है इस श्रेणी ने रूस को दो भागों में बांटा है जारशाही से सताये लोगों में होते हुये भी अपने मानवीय अधिकारों के लिये संघर्ष किया है।.............. ये डेन्मार्क निवासी है जो कि उपहार में श्वेत हाथी–ऐरावत जात का– लाये हैं।..............ये प्रशान्त महासागर में अवस्थित नगरी के निवासी हैं जिसकी राजधानी बैकांक है।............... ये मिस्र के निवासी है जिसका इतिहास दुनिया में सबसे पुराना है। जो मुस्लिम संस्कृति के अनुयायी हैं इनका नाम यहिया बिन इच्छुक है।............... ये यूनान के स्पाटी राज्य जिसकी राजधानी कभी सिटी ऑफ ट्राय थी– आज धराशायी होने पर भी विगत इतिहास को संजाये हुये हैं वहां के निवासी हैं। .... ये ईरान के हैं क्यानी खानदान के हैं। इनके देश में शेखसादी शिराजी, उमर खैय्याम, टाफिज मौलाना रूम तथा समशत तबरेज जैसे सूफी विद्वान हुये हैं।............... ईरान के उत्तरी तूरान के शासक जहाकलजी की उपस्थिति में मैं आभार प्रकट करता हूं।............... जर्मनी के आदि निवासी मौनि जाति के सिरमौर उच्च्व कोटि के विचारक एवं कार्ल मार्क्स जैसे सुधारक को जन्म देने वाले के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं।.............. विडालाक्षी देश के निवासी जिनके देश ने क्रान्तिकारी विचारक और वैज्ञानिकों को जन्म दिया– यहां उपस्थित हैं। मैं छहो महाद्वीपों के सज्जनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।.............. पुत्र का नाम मानिकलाल है।

अब मुक्तालाल का पुत्र बड़ा होता है उसकी हिन्दी, उर्दू की शिक्षा हेतु ताहुअर अली को नियुक्त किया गया, गणिताचार्य ने उसकी मेधा की प्रशंसा करते हुये गणित पढ़ाया, फिर उसका जनेऊ कराकर हरिद्वार में संस्कृत की शिक्षा के लिये भेजा गया। इसके पश्चात् वह लड़का इतिहास पढ़ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय इंग्लैण्ड जाता है। एम0 ए0 करके ऐतिहासिक खोज के लिये नार मण्डी फ्रांस जाता है– फ्रांस के फिसैन्डर्स बन्दरगाह में उसकी भेंट एक युवती से होती है। दोनों

बातचीत के सिलसिले में एक दूसरे के ज्ञान की थाह लेते हैं व फिर वह लड़की उसका नाम हेलेन है— मानिक के ज्ञान की परीक्षा लेती है। पूंछती है— काया नर है या नारी ? मानिकलाल उत्तर देता है काया नर व नारी दोनों हैं पर आत्मा न नर है न नारी। हेलन इस उत्तर से प्रभावित होती है। हेलेन विज्ञान की छात्र है उसके गूढ़ ज्ञान से मानिक लाल भी प्रभावित होते हैं। दोनों ऐतिहासिक खोज के लिये चलते हैं घनिष्टता बढ़ती है। मानिकलाल भारतीय संस्कारों वाला सीधा सादा लड़का है परन्तु हेलेन, पश्चात्य सभ्यता में ढली स्वतंत्र बाला है, वह कहती है कि प्रकृति ने मुझे व आपको बिना किसी संकोच या भेदभाव के इस भयंकर विश्व में भेजा है। मानिक ने इसका आशय समझा भी और नहीं भी समझा। वह उत्तर देते हैं कि भारतीय संस्कृति में मैं इतना स्वतंत्र नहीं हूं। मानिक ने कुछ ऐतिहासिक लेख लिखे थे जिन्हें हेलेन पढ़ लेती है और कहती है कि आपने पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों के बारे में जो कुछ लिखा है उनका सम्बन्ध और अन्तर केवल भौगोलिक है मानव मनोविज्ञान हर जगह एक सा है। क्या आप किसी अबला की प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति अपराध मानते हैं ? मानिक उसके पांडित्य पर मुग्ध हो जाते हैं और कहा कि— तुम्हारे मुल्क में दाम्पत्य जीवन के गठन में नायक नायिका स्वतंत्र हैं परन्तु मेरे देश में दाम्पत्य जीवन का गठन परिवार के अधीन है। वाद—विवाद चलता रहा। मानिक ने चार आश्रमों का वर्णन किया और सौ वर्ष की आयु को चार भागों में बांटकर जीवन—यापन के संस्कार बताये। अन्तिम आश्रम सन्यास को वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से परिचालित बताया। हेलेन फिर कहती है कि दाम्पत्य जीवन की रहस्यमय बातों का अधिकार केवल मुझे व आपको है परन्तु मानिक लाल ने यह कहकर कि मैं तुम्हारे साथ दाम्पत्य जीवन बनाने को तैयार हूं परन्तु आपका विवाह संस्कार वैदिक रीति से होगा, स्वीकृत दे दी फिर हेलन के प्रस्ताव पर उन्होंने भेंट स्वरूप अपने जीवन में इतिहास की पाण्डुलिपि दी और कहा कि आज से आप मेरी पत्नी हैं। अब तक हेलेन सोलह संस्कार, चार आश्रम चार वर्णों की बात से काफी परिचित हो चुकी थीं अतः उसने वैदिक रीति से विवाह करने की स्वीकृति दे दी।

हेलेन के माता पिता इस सम्बन्ध से खुश नहीं थे उन्होंने कहा कि तेरा विवाह एक भारतीय से होनेपर सारे योरोपीय सम्बन्ध समाप्त हो जायेगें, तुम यहां उपेक्षिता हो जाओगी। यों भी तुम्हारे भीतर पूर्वी पश्चिमी संस्कृतियों में तालमेल बिठाने का आत्मबल व बौद्धिक विकास होना आवश्यक है।

हेलेन अपने इस मनोविज्ञान वृत्त से टलने के लिये तैयार न हुई। तब माता पिता ने उसे आशीर्वाद देकर विदा किया। हेलन ने माता पिता को उनकी इच्छा पूर्ति का आश्वासन दिया।

हेलेन व मानिक दोनों फ्रांस से इंग्लैण्ड आये और सबसे मिलकर फिर अपने आने की सूचना भारत भेजी। उन्होंने अपने परिवार को बम्बई से सूचना दी कि मेरे साथ फ्रांस की एक कुमारी कन्या भी आ रही है। इस बात से उनकी माता पद्म पुष्पारानी पर घड़ों पानी पड़ गया और वे तरह तरह से विलाप करती हुई शोक करने लगीं कि अब तो मेरे वंश की परम्परा नष्ट हो गयी।

मुक्तालाल उन्हें समझाते हुये कहते हैं कि एलिजावेथ महारानी ने दो तरुण युवतियां शहनशाह अकबर को प्रसन्न करने के लिये भेजी थी परन्तु अकबर ने अपना वैवाहिक सम्बन्ध मान सिंह की

बुआ जोधाबाई से किया था, उनके सलीम पुत्र हुआ और उनका वंश नहीं डूबा यूनान के सेल्यूकस ने अपनी बेटी हेलन चन्द्र गुप्त सम्राट को ब्याही थी।

मुक्तालाल ने पत्नी को समझा बुझाकर शाही तामझाम से जिसमें जर्कीन वर्कीन हीरे जवाहरात जड़े थे— जिसे सोलह कहार उठाते थे तथा तुरही, शहनाई, ढोल, मृदंग, बैंड बाजे के साथ हेलन का स्वागत किया। हेलन आश्चर्य चकित रह गयी कि इस देश में नववधू का स्वागत इस तरह से किया जाता है कि मुझे लेने के लिये हजारों आदमी आये— सब लोग पैदल चल रहे हैं और मैं तामझाम में बैठी हूं। हमारे देश में तो इतना स्वागत साम्राज्ञी का भी नहीं होता है। यहाँ का मानवीय व्यवहार कितना उच्चतम है। विनोद भवन (मानिक का घर) के सामने आने उसकी आरती दासियों ने उतारी, वर वधू का तिलक किया व औरतों ने गाने बजाने के साथ उसे तामझाम से उतारा और पांवड़े बिछाकर भीतर ले गयीं।

तब मुक्तालाल ने मानिक लाल को बुलाकर उस युवती के बारे में पूंछा मानिक ने बताया कि यह एक सामन्त की बेटी है, पर भारत भूमि के लिये तन मन से समर्पित है, विदुषी है, अभी विवाह नहीं हुआ है सगे सम्बन्धियों की अनुमति के बाद वैदिक रीति से विवाह होगा। मानिकलाल पूरी तरह से भारतीय संस्कृति का पालन स्वयं करेगें व हेलेन भी उसका अनुगमन करेगी।

मानिक ने सोचा कि भारत के उत्तरी रेगिस्तान से हूण कुषाणादि आये और भारतीय संस्कृति अपनाकर यहीं के हो गये यद्यपि उनका धर्म इस्लाम था। मत परिवर्तन का अर्थ वंश परिवर्तन नहीं माना जा सकता लेकिन संस्कृति को वंश परिवर्तन कहा जा सकता है। चीन, जापान, ब्रह्मा, लंका, नेपाल, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, साम आदि देशों में बौद्ध मतावलम्बी पाये जाते हैं। चीन, जापान, मंगोल जाति के हैं और कुस्तुन्तुनिया के लोग सेमैटिक जाति के होते हुये भी बौद्धधर्म के अनुयायी बन गये और इनमें कोई वंशगत परिवर्तन नहीं आया। परन्तु यदि ये बौद्धिक वैदिक युगीन संस्कृति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर जीवन निर्वाह करें तो प्राकृतिक दृष्टिकोण में वंशादि की रचना उस समय तक भिन्न रहेगी जब तक कि ये दोनों जाति के लोग मैथुनिक व्यवहार नहीं करते हैं। योरोप के यहूदी आर्य जब अमेरिका पहुंचे और उन्होने मैं और दानव जाति आदि निवासियों से मैथुनिक व्यवहार करने पर जो सन्तति आयी वह नीग्रो के रूप में विद्यमान है। इसलिये मैं अपनी माता से प्रार्थना करूंगा कि हेलन प्राणपण से भारतीय संस्कृति को निभाने में दृढ़ संकल्प है।

फिर मानिक लाल ने अनुनय विनय सहित नमस्कार करके उपर्युक्त विचार माता पद्म पुष्पा रानी के सामने पुष्पांजलि के रूप में प्रेषित किये। कुछ क्षण विचार करने के पश्चात् माता ने अपनी वंशागत की स्वीकृति प्रदान की।

मानिक लाल गद्गद् अवस्था में हेलन के..............

यहाँ से उपन्यास समाप्त जैसा हो जाता है क्योंकि इसके आगे का कोई भी संदर्भ 'बौखल' जी के कागजों में नहीं मिलता है। मेरे विचार से यह उपन्यास यहां पूरा हो जाना चाहिये— क्योंकि रचनाकार भारतीय संस्कृति की जिस विशाल हृदयता को पाठकों के सम्मुख इस दृष्टिकोण से लाना चाहते थे कि वह सभी अन्य संस्कृतियों को अपने अनुकूल बनाकर अपने में सर्वतोभावेन पूर्ण हो जाती है और सबको अपने में समावेषित कर लेती है— वह यहाँ तक आते आते पूर्णरूप से प्रत्यक्ष हो उठती है और इस प्रकार से लेखक का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। विश्व की भिन्न भिन्न संस्कृतियों का एक दूसरे में अन्तर्भाव होना व नई संस्कृति का जन्म व विकास होना आदि वैज्ञानिक शाश्वत नियमों एवं तथ्यों को लेखक ने कथा रूप में रोचक ढंग से संगुफित कर इस उपन्यास का कलेवर गढ़ा है और वे पूर्णतः सफल हुये हैं।

3. मुकदमा (व्यंग्य)

दोजख और जन्नत का युद्व जब चर्मसीमा पर पहुंच गया और दोनो ओर से जय पराजय के कोई लक्षण न दिखाई दिये तो अल्लाहमियां को जलाल चढ गया और उसी वक्त अशराफील फरिश्ते को दुनियॉ को फना फिल्ला कर देने का सूर फूंकने का हुक्म दिया । तब दुनियां की तमाम रूहें फना फिल्ला हो गई । कुछ दिन के बाद अजागीरा फरिश्ता गिरफ्तार हो गया तब अल्लाह मिंया ने पूछा वह बोला कि मेरी पैदाइश आग से है और आप चौदह तबक पर हुकूमत करते थे लिहाजा इस बात का जवाब मैं नहीं बल्कि कोई न्यायाधीश या फौजी कोर्ट मार्शल कर सकता है आप नहीं कर सकते। आपने दुनियां बनाते वक्त फरिश्तों के लिये कानून नहीं बनाया था ।

अल्लाह मिंया ने कहा कि सब कयामत के दिन बुलाये जायेंगे और अगर वे तोबा कर लेते है तो बख्श दिये जायेंगे । अजाजीम उर्फ शैतान बोला तब आपने दुनियाँ में तो शराब हराम और जन्नत में शराब हलाल कैसे की । इस का जवाब वे दे न सके और उसे दोजख में डालने का हुकुम दिया । इसके बाद उन्होने अपने मंत्री चित्रगुप्त से रूहो का फैसला करने की तरकीब पूछी उन्होंने सम्मति दी कि रब्बुल जहान हुकुमत और इन्साफ दोनो जुदा है । उत्तम होगा कि आप एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित कर दे तो इन्साफ निष्पक्ष होगा और आपको कोई झूंठा साबित न कर सकेगा । चुनांचे सभी फरिश्तो ने मंत्री आदि बुलाकर नेक सलाह मांगी । जिबराइल फरिश्ते ने बताया कि हजरत लूत के जमाने मुं मैं गया था पैगाम लेकर तो वहां के लोग मेरी खूबसूरती के ऐसे दीवाने हो गये थे कि हजरत लूत के समझाने पर भी वह रगलाम पर उतारू हो गये थे । जो लोग आपके भेजे नबियो को झूठा बता सकते है वे आपको झूठ न बतायेगें । मुनकीर नकीर ने कहा हारूत मारूत को दुनियां में भेजा था, दुनिया वालो ने इन्हें शराब पिलाना सिखाया, इन्हें अपने जमील चाह जुनखा का गुलाम बनाया । फिर एनाने नमरूद बैलीलोनिया के इन फरिश्तों की चाह बाबुल जो सबसे बडा कुवा था उल्टा लटका दिया । मीकाइल ने कहा जब मैं रीजक बांटता था तब दुनिया के होशियार लोग अपने मातहत की भी रिजक ले लेते थे और उनको पूरा हिस्सा नहीं देते थे । तरह तरह की बुराइयॉ फैली थी इनका फैसला करना बहुत मुश्किल है । अशराफील ने बताया जब मैने सुर फूंका दोजख के

अलावा दो अरब पांच करोड़ इन्सानी रूहे थी तभी मोबाइल से पता चलेगा कि वे कितनी रसद बांटते थे ।

अल्लाह मियां ने फरमाया कि इन्साफ का काम बडा मुश्किल है, बेहतर यही होगा कि सुप्रीम कोर्ट स्थापित की जाये और बजट बनाया जाय ताकि रूपया न कम हो जाये । फरिश्ते बुलाये गये उन्होंने बडी तिकड़म के साथ बजट बनाया जिसमें जन्नत की पंचसाला स्कीम का खर्च भी शामिल था । अदालत बनाई गई न्यायाधीष बने काकातुआ, काकावोरा, सारीका, । सरकारी वकील उल्लू और ए सी जी चित्रगुप्त महाराज और पेशकार नियुक्त किये गये और कोर्ट मारसल के लिये भी चुने गये ।

दोजखी जंग और आठवें आसमान के जंगी रूहों के मुकदमें कोर्ट मार्शल में और वाकिया सुप्रिम कोर्ट में पेश हुये जिसमें पहिला मुकदमा अल्लाह मियां की हकतलबी का आजाजील की ओर से पेश हुआ ।

दुसरा मुकदमा प्रकृति की ओर से पेश हुआ कि मानव ने प्राकृतिक विधान भंग करके मानवी विधान की रचना की, सभी प्राकृतिक साधनों का मनमाने ढंग से दुरूपयोग किया । यह दुरूपयोग वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञों ने मिलकर किया है अभियोग पत्र निम्नलिखित है ।

3 स्वरसती बनाम मानव ने स्वरसती का अपमान प्रत्येक दृष्टि से किया है जिसका अभियोग पत्र इस प्रकार है

4 महिला की ओर से एक अभियोग पत्र आया कि नर मानव ने जन्मभर हम महिलाओं को गुलाम बनाया और मनमान ढंग से दुर्दशा की ।

5 दुधारू पशुओं की ओर से भी एक अभियोग पत्र आया कि हमसे जबर्दस्ती इतना दूध लिया जातास है कि दूध देना हमारे लिये कठिन हो गया है, उस का बटवारा अन्याय से किया गया हमारे बच्चे भूखे रहे ।

6 पशुओं की ओर से अभियोग था कि हमारा मांस अनावश्यक रूप से खाया गया और हमारे साथ जुल्म बर्ता गया ।

7 सूफियों की ओर से अभियोग पत्र आया कि इन वैज्ञानिकों व नीतिज्ञों ने सूफियों को विद्या के कारण प्राण दण्ड दिया ।

8 भोले मानव की ओर से अभियोग प्रस्तुत किया गया कि इन सत्ताधारियों ने हर प्रकार का अन्याय किया है और हमतलफी की है कि हमसे अपने लिये मेहनत कराई और स्वयं जीवन का आनन्द उठाया, हमें नंगा भूखा रखा । इन सत्ताधरियों ने परमेश्वर के नाम पर हमें खूब लूटा और दोजख जन्नत दिखाई ।

9 अल्लाहमियां का अभियोग पत्र इन पुजारियों के खिलाफ आया कि इन लोगो ने मुझ दरकिनार करके पाप पुण्य दोजख जन्नत सबका हिसाब किताब अपने हाथों मे ले लिया ।

नोट— इस खुदाई अदालत के रूपक से कवि श्री बौखल ने यह संदेश देना चाहा है कि विषमता और वर्ग भेद इस संसार में आदि काल से व्याप्त है। अन्याय, अत्याचार, रिश्वत, जमाखोरी तिकडमबाजी, चालाकी आदि सदा से बाहुबलियों के अस्त्र रहे है और सभी दलित, बेजबान जानवर, संत फकीर और सीधे साधे ईमानदार कमेरे इसी तरह शोषण के शिकार हो रहे हैं खुदाई अदालत में भी कहीं सुनवाई की गुंजाइश नहीं है क्योंकि वहां भी शैतान हमेशा खुदा के बरक्स खड़े होने को तैयार रहता है। फिर आदमी की क्या बिसात है।

निबन्ध साहित्य —

1. वैदिक विज्ञान

यजुर्वेद द्वारा वायु का निरूपण किया गया है जिसकी 101 शाखायें हैं इस वायु के 101 भेद आर्य अन्वेशकों ने खोजे हैं। ऋग्वेद द्वारा अग्नि का निरूपण हुआ है जिसके 21 भेद हैं प्रत्येक भेद की शाखा भी है।

सामवेद द्वारा जल का प्रतिपादन हुआ है जिसके 1000 भेद व उतनी ही शाखायें हैं। अर्थवेद द्वारा मृत्यु का प्रतिपादन हुआ है जिसके 9 भेद व उतनी ही शाखायें हैं।

यजुर्वेद की 101 ऋक की 21 साम की 1000, अथर्व की 9 कुल 1131 हैं। प्रकृति के उपरोक्त चार प्रधान तत्व हैं जिनका रूपान्तरण जीव देख रहा है। इन्हीं तत्वों के आधार पर प्रकृति के स्थूल सूक्ष्म विभागों का निर्माण हुआ है। इतनी शाखाओं में से भारत में 6, जर्मनी में 103, और 18 निरुक्त में से भारत में 1 व जर्मनी में 3 हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से जल, वायु और अग्नि मृत्यु का स्वजातीय है। वर्तमान विमान 101 मील तक जा सकता है किन्तु 21 मील तक जा सका है वैदिक वैज्ञानिको ने 18 प्रकार के विमानो का अविष्कार किया था। इन विमानों से सूर्य मण्डल के प्रत्येक ग्रह का अटन कर आते थे किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक अभी पृथ्वी का ही पर्यटन समुचित रीति से नहीं कर सके है।

वैदिक वैज्ञानिक 9 प्रकार की विद्युत का ज्ञान रखते थे। विद्युत दीप जो उत्तरी ध्रुव के नीचे विन्दु सरोवर के ऊपर रखने से समस्त एशिया में जग सुखदायक प्रकाश होता था।

सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व प्राण और मन था, वेद ने उसी मन की ओर संकेत करके सृष्टि के आदि से प्रलय तक यह पाँचो चक्र प्राकृतिक नियमानुसार सनातन रूप में विद्यमान रहते हैं। इन्हीं पाँचो चक्रों के अनुसार कार्य करने को सनातन धर्म और प्रतिकूल कार्य करने को अधर्म कहते हैं।

इन पाँचो चक्रों के नाम इस भॉति है 1 स्वयम्भू, 2 परमेष्ठी, 3 सूर्य, 4 पृथ्वी, 5 चन्द्र है चार चक्रों का स्वयम्भू में विलय प्रलय है। इस पंच मण्डलात्मक सृष्टि को पंच वलशा पुण्डरीकात्मक संसार कहते है पृथ्वी से 8 पद्य योजन अर्थात् 16 पद्यमील (एक योजन 2 मील बराबर) की दूरी पर प्रथम मण्डल स्वयम्भू लोक है, स्वयंभू मण्डल के ऊपर अक्षर मण्डल है जिसको परमाकाश कहते है जिसमें संसार के स्वामी का निवास है जो सब जानता है किन्तु जिसे कोई नहीं जानता।

अक्षर मण्डल से नीचे स्वयभू मण्डल में मन और प्राण वाक नाम जल से बाधित साम्यावस्था में रहते है, यही प्रकृति की प्रारम्भिक अवस्था है । मन और प्राण स्वयं कुछ कार्य नहीं कर सकते वाक नाम जल के सम्मिश्रण से मन और प्राण अपना कार्य संचालन करते हैं इसी से विश्व के बौद्धिक प्राण को जल से उत्पन्न बताते है । सृष्टि के आदि में केवल जल था इसी से संसार उत्पन्न हुआ । अग्नि के ताप से जल भाप बनकर इस रक्त मज्ज और वीर्य बनाता है जो मन और प्राण को वश में करके प्रकृति के नियम निश्चित करके संचालन करता है । मन प्राण वाक् जल और अग्नि के संयोगात्मक चेप का नाम ही प्रकृति है और चेप का निर्माण किस भाति हुया यही प्रकृति का विधान है । प्रत्येक स्थूल पदार्थ में जल रहता है जो अग्नि के ताप से पिघल जाता है । अक्षर मण्डल से एक गोलाकार चमकदार बिन्दु स्वयभू मण्डल में गिरती है इससे स्वयभू मण्डल में वाक् जल में लहर उत्पन्न होती है, इस लहर से वाक् की साम्यावस्था नष्ट होती है इसी कारण मन और प्राण विलग हो जाते है अर्थात् त्रिवाक् मन और प्राण वियोग के कारण फिर से संयोगात्मक अवस्था को प्राप्त होने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं । लहरें अन्त तक जाकर फिर लौटती है जिसके आघात से बिन्दु फूट कर स्वयभू मण्डल के वाक् में निर्वैर भाव से मिल जाता है पुनः मन और प्राण को विलग करके गति देता है ।

अक्षर मण्डल से पवित्र बिन्दु स्वयंभू मण्डल में असंख्य रूप हो गया । यही विराट बिन्दु विश्व के उत्पन्न होने का कारण है । इसी स्वयंभू मण्डल के नीचे असंख्य ब्रम्हाण्ड उत्पन्न होते हैं । इन सौ ब्रम्हाण्डों को मिला कर जितना स्थान होता है उससे तिगुना ऊपर अक्षर मण्डल है अतः जितनी शक्ति इस असंख्य ब्रम्हाण्डाों में है उतनी शक्ति अक्षर मण्डल में है । यही विराट बिन्दु असंख्य ब्रह्माण्डों का कारण है । विराट का पतन ही सृष्टि का प्रथम कारण रूप है । इससे यह सिद्व होता है कि सर्वप्रथम विराट बिन्दु की उत्पत्ति हुई है ।

ज्योतिमान पवित्र विराट बिन्दु स्वंयभू मण्डल में सर्वत्र्याप्त है तथ नाना ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति का कारण है । इन्ही मन और प्राण को सांख्यवादी पुरूष और प्रकृति पुकारते है मन को (सोम) जल प्राण को अग्नि ऐसा उपनिषद मानते है (अग्नि सोमात्कं जगत) अर्थात अग्नि और जल के सयोंग से संसार का जन्म हुआ है । कारण रूप विश्व उत्पत्ति विराट बिन्दु है । माता की अग्नि और पिता के सोम (हेतस्) से जगद्विर्माण हुआ है ।

श्री बौखल संम्भवतः वैदिक विज्ञान पर एक पुस्तक लिखने की तैयारी कर रहे थे क्योंकि उन्होंने आगे के कुछ पृष्ठों में कई अध्याय इस सम्बन्ध के नामांकित किये है —

1 समय - सृष्टि की आयु की गणना से संबधित है

2 आचार्य शिष्य संवाद - सृष्टि सम्बन्धित जिज्ञासा परस्पर वार्तालाप द्वारा ।

3 वैज्ञानिको के कार्य - इस कार्य में विज्ञान कितना सहायक हो सकता है ।

4 सृष्टि कैसे बनी व कैसे नष्ट होगी - वेदो के प्रमाण से इस पर विचार

5 अणुभेद - पूरा ब्रम्हाण्ड अणुओ का संधात व सम्मिश्रण है ।

6 सूर्य आदि ग्रहो की स्थिति उनके आकार व्यास आदि पर संकलित विचार

7 नवग्रहों का परिचालन पृथ्वी से दूरी परिक्रमा की गति प्रकाश गति

8 प्रकृति और विज्ञान

9 मानव जाति कश्यप गोत्र (पश्यक या देखने वाली)

10 ब्रह्माण्ड का प्रारभिक कार्यालय

11 पदार्थ के विशेष संग्रह से परमेष्ठि तेजवान हो जाते है ।

ये सभी अध्याय न क्रमबद्व रूप में है न ही एक स्थान पर मिलते है । कहीं संकेत रूप से कुछ लिखा मिलता है और कहीं छोटी बडी टिप्पणियों के रूप में । विज्ञान पर उनको विशेष झुकाव था ऐसा लगता है, क्योकि किसी भी घटना या दृश्य के अंकन में उनकी साफ सुथरी दृष्टि भावना से परे हट कर उसके वास्तविक रूप की खोज में संलग्न दिखाई देती है

उदाहरण के लिये एक टिप्पणी—

"मानव ने जब से होश संभाला तब से आज तक स्थायी नीति का निर्माण नही कर सका । प्रकृतिवाद, विज्ञानवाद, भौतिकवाद, धर्मवाद और अध्यात्मवाद ये है पंचवाद इन्ही की शाखा प्रशाखा का नाम है उत्पादवाद । ये पंचवाद मूलरूप से सदैव रहते है, इन पांचोवादों के जीवन मरण की कला को मनुष्य सत्यासत्य का रूप देता है ।"

टिप्पणी— 2 हमने यांत्रिक युग के अविष्कार द्वारा वायुयान, जलयान, थलयान और हर प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्रगरम ठंडे बनाये । विशालगगन चुम्बीभवन दुर्ग कृषि विज्ञान के लिये प्राकृतिक नदी समुद्र से जल निकाल कर मानव समाज को पिलाया और खेत वाटिका सींची । गाय, भैंस, बकरी, हाथी, घोडे, बैल आदि पशु प्रकृति के उत्पाद खाते थे और काम कुछ नहीं करते थे । हमने इन्हें पकड़ कर मेहनत करने योग्य बनाया । तोता मैना को वाद विवाद सिखाया । बन्दर भालू शेर आदि को बन्दी बनाकर चक्की चलवाई सर्प के मुख से प्राकृतिक विष का नाश किया अनेको विद्युत दीप जलाये हम तो यही कहेगे कि परमश्वर को सपूर्ण सृष्टि का ज्ञान तो था पर व्यवहार में कुछ नहीं आता था । वैज्ञानिकों ने परमेश्वर की इस कमी को पूरा किया और मानव को सुख के साधन दिये प्रकृति के गर्भ में छिपी वस्तुओं की खोज की क्योंकि प्रजा के सुख की चीजों को चुराये रहना न्याय की बात नही है ।

(2) धर्म

सृष्टि के आदि से दश धर्म प्रवर्तकों ने अपना अपना धर्म अदालत के सामने बयान किया जिसे अदालत ने मानवी अन्वेषण बताया।

सूफियों ने धर्म छाप को विश्व का मानव संगठन बताया और अपना तर्क उपस्थित किया— बताया कि धर्म का अध्यात्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार जिस प्रकार मुर्दे का जिन्दा मानव से कुछ नहीं है। अध्यात्म मेधावी मानव की पराकाष्ठा है, विश्व की सभी वस्तुओं का ज्ञान अध्यात्म द्वारा होता है या सत्यासत्य का अनुभव होता है। इस अध्यात्म पहेली की सहायक प्रणाली दार्शनिकता है जो प्रत्यक्ष वस्तुओं का गुणावगुण शब्दो में बताती है, वस्तुतः अध्यात्म अक्षर से परे ओर निर्लेप अनुभव मात्र की एक विचारधारा है। विश्व में आज तक जितने भी अध्यात्मवादी जन्में हैं कोई भी किसी को अपने अन्तरात्मा का भेद नहिं बता सका क्योंकि शीतोष्ण का तो अनुमान यंत्र है किन्तु अध्यात्म का अनुमान यंत्र स्वात्मा ही है। आपकी आत्मा किसी दूसरे की आत्मा का अनुभव नहीं कर सकती है। आत्मोपम एवम समदर्शी का अर्थ यही है कि पक्षपात रहित दृष्टि से विश्व के जीवधारियों को देखना। आत्मोपम का अर्थ अपनी आत्मा के समान अन्य आत्माओं को मानना है। एक चोर साहूकार की आत्मा को अपनी आत्मा का चोर मानता है। किन्तु साहूकार चोर को साहूकार मानता है यहां आत्मोपम का अर्थ विरोधात्मक है क्योंकि दोनों के कार्य भिन्न भिन्न है।

देखने सुनने से परमात्मा का अनुमान नहिं होता है जो देखने सुनने के पक्षपाती हैं वह बतायें कि क्या उन्होंने क्या सुना। दो व्यक्ति भिन्न भिन्न वस्तु देखते हैं जब यह दोनो किसी स्थान पर मिलते हैं तो अपनी अपनी देखी सुनी वस्तु बताते हैं इसका अर्थ हुआ कि बिना देखे किसी ने भी कुछ नहीं कहा। जहाँ दो व्यक्ति भिन्न भिन्न वस्तुओं का अनुभव करते हैं जब कभी परस्पर मिलते हैं तो अपना अपना अनुभव एक दूसरे को न बता सके दोनो मूक स्थिति में रहे। इसका अर्थ यह है कि यहां मानव रचित भाषा नहिं है यहां आत्म भाषा है जो कही सुनी नहीं जा सकती।

इससे विश्व में न कोई गुरू है न कोई शिष्य केवल मानवी प्रपंच के गुरु व शिष्य हैं अध्यात्म से कोई (मतलब) नहीं है। कोन्टम ने बताया कि मैं जितनी वस्तुयें देखता हूं सब असत्य हैं सत्य नहीं है। कबीर— तुमने जिन वस्तुओं को देखा है उन्हें वास्तविक रूप में समझा नहीं इसी से सत्यासत्य कुछ भी जान नहीं सके। तुमने विश्व के भी मूल समझे जीव वनस्पति और खनिज इन तीनों में प्रधान मूल दो ही हैं— जीवन और खनिज। खनिज अणु का समूह है और अणु का रूपान्तरण वनस्पति है इससे सिद्ध होता है कि विश्व के त्रिमूल नहिं दो हैं जीव और अणु। जब अणु स्वावस्था में हो जाता है तब अकार का नाश हो जाता है किन्तु अणु का नाश नहीं होता है। जीव और अणु के प्रणयसार का नाम वनस्पति है और अणु समूह को खनिज मानते हैं। इन्हीं के रूपों को देखकर तुमने सत्य को भी असत्य सिद्ध कर दिया। रूप नाशवान है किन्तु द्रव्य नाशवान नहीं है, नेत्रों का गुण रूप है, अतः नेत्रों द्वारा सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता।

नेत्रें द्वारा देखी वस्तु अथवा रूप मानव मंडित भाषा में कहे हुये शब्द भी सत्यासत्य का निर्णय नहीं कर सकते, मेधा अथवा प्राज्ञगम्य अनुभव वाणी रहित है, अतः वाणी द्वारा किया गया सत्यासत्य का निर्णय सन्देहास्पद ही होगा।

नासिका द्वारा गन्धानुभव के आधार पर सत्यासत्य का निर्णय अनुचित है क्योंकि गन्ध दो प्रकार की है– एक स्वाणुगन्ध दूसरी मिश्रिताणुगंध अतः नासिका मिश्रिताणुगन्ध का अनुभव करती है, सत्यासत्य निर्णय असम्भव है।

वायु मिश्रित अणु गंध को लेकर प्रवाहित होती है जो कि अणु प्रधान गुण शीतोष्ण है उसी को गंध कहते हैं और यही शीतोष्ण गंध विश्व आधार का मूल कारण है। शीतोष्ण गंध प्राण रूप श्वास हैं जिसे प्राण वायु कहते हैं किन्तु आत्मा का रूप प्राण वायु नहीं है। आत्मा भिन्न वस्तु है और यही शीतोष्ण गंध (अणु गंध) नाना रूप का निर्माता है अन्य कुछ नहीं।

जल जिसका अनुभव रसना करती है, जिस देश में उष्णता नहीं होती जल होता है और जिस स्थान पर जल विशेष होता है उष्णता होती है वहां उष्णता तो होती ही है किन्तु अपने अनुपात के अनुसार होती है। जिस स्थान पर शीतोष्ण समान रूप से रहते हैं।

(3) बुद्धि

(1) बुद्धिवादी– जीव वास्तविक विश्व में बुद्धिजीवी जीवन निर्वाह करना चाहते हैं। ये जीव संसार में प्रत्येक पदार्थ को एक दूसरे से मिलाकर किसी तीसरी क्रिया की प्रतीक्षा करता है। दो पदार्थों को मिलाने से पूर्व तीसरी वस्तु जिसका जन्म होता है उसका ज्ञान पदार्थ संयोजक को पूर्व में नहीं होता है अचानक किसी तीसरी वस्तु के जन्म की क्रिया को विज्ञान कहते हैं।

अब यह प्रश्न उपस्थित है कि इस दो या अधिक पदार्थों के संयोजन की क्रिया का अधिकार जीव को है अथवा नहीं। हमारी सम्मति में तो यह अधिकार जीव को नहीं है क्योंकि पदार्थ संयोजक जीव को पूर्व में तीसरी वस्तु का ज्ञान नहीं है अतः इस भयानक क्रिया प्रयोग का अधिकार जीव को दिया गया तो जीव और प्रकृति में घोर संग्राम हो जायेगा क्योंकि जीव अनभिज्ञता के कारण रासायनिक भयंकर पदार्थों का दुरुपयोग इस रूप में करेगा कि विरोधी अणु मात्र ही संग्राम का कारण बनेगी। क्योंकि विरोधी अणु भयंकर विस्फोटक स्थिति के स्वाभाविक जन्मदाता हैं। प्रकृति संयोजक क्रिया से भलीभांति परिचित है और जीव अपरिचित है अतः विज्ञान अधिकार से वंचित किया जाता है। जो भी पदार्थ प्रकृति द्वारा निर्मित है उन्हीं पदार्थों के उपयोग करने का अधिकार जीव को है क्योंकि एरियन और समेरियन जातियों ने विज्ञान के द्वारा संकर वर्ण (अपूर्ण पदार्थों) के उपयोग पर प्रतिबन्ध अथवा निषेधाज्ञा घोषित की है। अप्राकृतिक गन्दुम और विश्वामित्र कृषि आचार्य द्वारा अप्राकृतिक पदार्थों का निषेध घोषित किया है इसका कारण केवल यह है कि मानव बुद्धि अपरिचित ही है क्योंकि यदि प्राकृतिक संयोजक क्रिया विद्यमान न होती तो मानव की संयोजक क्रिया मान्य होती। इस मानवी क्रिया से तो प्रधान प्राकृतिक क्रिया है। सूफियों ने भी प्रत्येक वस्तु को मानव जीवन का साध्य रूप माना है इसके विपरीत वर्जित माना है।

(2) दुधारू धेनु— चिरायु बनने की इच्छा रखने वाले मानव ने दूध देने वाले पशुओं को अपना गुलाम इसलिये बनाया है कि जीवन तत्व जो वनस्पति के रूप में है इन अणु रूपी वनस्पति का संचय करके दूध अधिक बढ़ाया जाये। अणु का रूप खनिज, खनिज का रूप, वनस्पति, वनस्पति का रूप रक्त, रक्त का रूप दुग्ध, दूध का नाम वैक्टीरिया, वैक्टीरिया का नाम ओवा स्पर्न, ओवा स्पर्न का नाम मानव है। इस क्रिया में अधिक जनसंख्या हुई ऐसी रिपोर्ट परस्पर, चरक, धन्वन्ती, अरस्तू लुकमान की है।

इस क्रिया में सिद्ध हुआ कि मानव ने अणुओं का दुरुपयोग किया है और जनसंख्या बढ़ाकर प्रकृति कार्यों में बाधा डाली।

(4) वैवस्वत मन्वन्तर काल

राजा बलि के समय में इसके मंत्री शुक्राचार्य थे और बावन अवतार जिसने कूटनीति का सहारा लेकर राजा बलि को छल से ठगकर जीवित ही बन्दी बनाया और वाणासुर के साथ सैनिक सन्धि स्थापित थी। इसी राजा बलि के समकालीन राजा दशरथ और दैत्यराज तिमिरध्वज ताडुका के पति— जो केकय देश के दक्षिण में दण्डकारण्य वन में प्रमुख्य वैजयन्त नगर में राज करता था। राजा दशरथ देवासुर संग्राम में तिमिरध्वज से पराजित हो कर घायल हो गये थे, केकई ने युद्धस्थल में अचेत राजा दशरथ को रण प्रांगण से निकाल कर उपचार किया था। राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें वर मांगने को कहा तब उसने राजा से प्रतिज्ञा ली थी कि जो मैं मांगूगी वह आप देगें।

राजा बलि के समय में विश्वामित्र, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, गौतम, जमदाग्नि, भारद्वाज अग्रणी राजनेता थे। आदित्य वसु, रुद्र, विश्वदेव, मरुदगण, अश्विनी कुमार, ऋभुगण देवता थे।

राजा बलि का समकालीन, लंकापति था। बावन ने सहस्त्रबाहु और वाणासुर दोनों से राजनैतिक सन्धि की थी। उस समय दैत्यों के प्रभावशाली राज का भय कोशलपुर नरश को सदा लगा रहता था जो एक ओर राजा बलि और दूसरी ओर लंका तथा और भी बहुत से छोटे मोटे दैत्य राज्य थे, और यही विपत्ति राजा जनक के लिये थी। उस समय की जटिल राजनैतिक समस्या सुझलाना बहुत कठिन था।

रावण की पराजय इसलिये हुई थी कि बलि के बन्दी हो जाने से और सहस्त्रबाहु के विरोधी हो जाने से और इधर बलि की कपट मृत्यु से रावण की सभी राजनैतिक शक्तियाँ (सन्धियाँ) भंग हो गयी थीं। हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष दोनो बलवान दैत्य थे इनकी मृत्यु बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से हुई थी और उसी समय से राजनैतिक विरोध शुरू हुआ था जिसका अन्त लगभग चार साढ़े चार सौ साल में हुआ था।

पिनाक भी एक विवाद ग्रस्त विषय है, इस विषय पर विचार इतिहास की दृष्टि से किया जाये तो कुछ और ही स्वर निकलता है। राजा जनक ने प्रतिज्ञा की थी कि जो राजा पिनाक खण्ड करेगा सीता का वरण उसी से होगा। कुछ मनचले लोगों ने पिनाक का अर्थ लगा लिया 'धनुष' किन्तु शंका

होती है कि शत्रु पर प्रहार करने वाले अस्त्र का खण्ड किया जायेगा या प्रहार किया जायेगा। इससे सिद्ध होता है कि कोई राष्ट्र भूमि है जिसका विभाजन किया जाना आवश्यक था, इसका दूसरा अर्थ यह था कि राजा जनक को भी भय था और पिनाक खण्ड की कठिन कठोर प्रतिज्ञा जनक ने इसलिये की थी कि समीपवर्ती बलवान शासक दैत्य शासन छिन्न–भिन्न हो जाये।

किसी कुम्हार के घर में बैठकर प्रहलाद को एशियन राजनीति समझायी गयी थी जो हिरण्य कश्यप के राज्यान्तर्गत एक विरोधी संस्था थी जिसके नेता प्रहलाद था जिससे राजद्रोह के कारण हिरण्य कश्यप ने अपने पुत्र को यातना दी। इन दो राज्य लोभियों में पिनाक दो भागों में विभाजित किया गया।

यह पिनाक दधीचि द्वारा संगठित किया गया था और इस पिनाक देश पर शंकर भगवान जिनका जन्म नागवंश में हुआ था और जिनकी जन्म भूमि कैलाश पर्वत थी, इसी कैलाश पर्वत में अन्वेषणशाला थी जिसमें नागवंश के लोग विश्व के भौतिक पदार्थों का अन्वेषण करते थे। इसी अन्वेषणशाला के प्रभाव से नागवंशियों का वृहद राज्य था जिनके मुख्य मुख्य स्थान यह हैं– पाताल, कैलाश, और क्षीर सागर तक फैला था। पौराणिक गाथाओं में नाग एरियन सन्धि बहुत कम मिलती है विरोध विषेश मिलता है। श्रीकृष्ण भी इन्हीं नागवंशियों से जीवन भर लड़े– कालिया, तक्षक आदि नाग बहुत सभ्य थे, वासुकी, शेषनाग भौगोल का आचार्य था (मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि गर्ग ने भोगोल विद्या शेषनाग से पढ़ी है) और व्यापार में भी ये लोग कुशल थे। रघु, हेनो नाम के फोनेशियन मिलते हैं इस जाति का किसी न किसी रूप में इतिहास भी मिलता है।

एबीसिनियां देश किसी समय बहुत ही उन्नतशील देश था। इस देश की मल्का एमीशस जिसका नाम देवी पुराण में कालिका लिखा है बहुत ही बलवान थी। यह एक लाख सेना लेकर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था– मार्ग में प्रभावशाली दैत्य कोचक का शिर काटकर अपने गले में पहिन लिया था, इसके प्रधान सेनापति का नाम भैरों था और नागवंश के प्रधान सेनानायक का नाम गणेश था। कालिका के गले में जो मुण्डमाल है वह 108 सेनानियों के कपाल हैं उस समय के युद्ध कौशल का यही प्रमुख्य चिन्ह है।

गणेश जी का जन्म भाद्र शुक्ल पक्ष चौथ को हुआ था, इनके जन्म समय में सभी देवता इनको देखने आये शनी नाम का दैत्य भी आया था उसने गणेश का शिर काट लिया था, देवता जाति के देवता विष्णु की आज्ञा से उस समय के वैद्यों ने हाथी का शिर लगाकर जीवित कर दिया। इस घटना से सिद्ध होता है कि नागवंशियो का वैर शनि आदि से चल रहा था।

शंकर भगवान के ज्येष्ट पुत्र का नाम षडानन था जो देव जाति के सेनापति थे। यह देव जाति ईरान के आसपास आबाद थी जो किसी समय सभ्य जातियों में गिनी जाती थी– इस जाति में बड़े बड़े बलवान सेनानी हुये हैं जिनकी गाथा भारतीय पौराण में रोचक ढंग से गायी गयी है।

टिप्पणी– श्री बौखल के उपर्युक्त व अन्य आलेखों को देखने से ज्ञात होता है कि–

(1) स्वयं उच्च कोटि के विचारक थे उनके निष्कर्ष बुद्धि की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार्य होते थे।

(2) भारतीय जातियों के अतिरिक्त सेमेटिक जातियों का भी उन्होंने अध्ययन किया था।

(3) पौराणिक गाथाओं को भौगोलिक, ऐतिहासिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोंणों से परखकर उनकी विश्वसनीयता स्वीकार करते थे।

(4) भारत के जाति भेद के विष से वे भी मुक्त नहीं थे। स्वयं कुम्हार जाति के होने के कारण उनका स्वाभाविक सम्मान निम्न जातियों और विद्वेष उच्च जातियों से था– दैत्यों, नागों आदि से उनकी सहानुभूति स्वाभाविक थी।

धर्म और सम्प्रदाय नामक तत्व आज जितने विवादास्पद बन गये है, उतने वे कभी नहीं थे। हर सम्प्रदाय व मत को मानने वाले स्वतंत्र रूप से अपने धर्म का पालन करते थे तथा उन्हें ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग ही मानते थे यही कारण था कि भारत में धार्मिक सहिष्णुता यहां की विशेषता रही है। श्री 'बौखल' सच्चे अर्थों में सम्प्रदाय निरपेक्ष प्राणी थे। वे विभिन्न मतों की विद्याओं को पूज्य मानते थे तथा यथा सम्भव व उन्हें सीखने का प्रयास उनकी रचनाओं में पग पग पर मिलता है। उन्होंने सेमेटिव जातियों का इतिहास व उनकी सभ्यता का ज्ञान प्राप्त किया। इस्लाम धर्म की प्रचलित कथाओं व रीति–रिवाजों का अध्ययन किया। हिन्दू धर्म की वैदिक व पौराणिक, आध्यात्मिक मान्यताओं का वास्तविक निरूपण किया।

इसी प्रकार उन्होंने ईसाई धर्म की परम्पराओं और मान्यताओं को भी अपने अध्ययन के द्वारा ग्रहण किया तथा उन पर आस्था जताई। प्रस्तुत लेख में उन्होंने पवित्र बाइबिल के उस अंश को विस्तार दिया है जिसमें पिता ईश्वर के द्वारा सात दिनों में सृष्टि रचना का विधान बताया गया है।

(5) ब्रिटिश एण्ड फॉरन बाईबिल सोसाइटी, इलाहाबाद 1936

आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सिरजा, और पृथ्वी सुनसान पडी थी गहरे जल के ऊपर, अंधेरा था, परमेश्वर की आत्मा जल के ऊपर मण्डलाती थी। परमेश्वर ने कहा कि उजाला हो सो उजाला हो गया। परमेश्वर ने उजाले को देखा और कहा कि अच्छा है परमेश्वर ने उजाले को दिन और अंधेरे को रात कहा।

साँझ हुई फिर भोर हुआ = 1

फिर परमेश्वर ने कहा कि जल के बीच अन्तर हो जाये, अन्तर हो गया ऊपर के जल भाग को परमेश्वर ने आकाश कहा।

सांझ हुई फिर भोर हुआ = 2

परमेश्वर ने आकाश के नीचे वाले जल को इकट्ठा होने की आज्ञा दी जल इकट्ठा हो गया सूखी भूमि दिखायी दी, उसे पृथ्वी और इकट्ठा जल को समुद्र कहा, फिर परमेश्वर ने पृथ्वी से कहा कि हरी घास और छोटे छोटे वृक्ष बीज वाले फलदायक अपनी अपनी जाति के अनुसार फले–फूले। परमेश्वर ने कहा– अच्छा है।

सांझ हुई फिर भोर हुआ = 3

परमेश्वर ने कहा– आकाश के अन्तर दो बडी ज्योतियां हों जो दिन और बरस के कारण ही रात के लिये छोटी ज्योति और दिन के लिये बड़ी ज्योति जो दिन के लिये हो और तारागण को बनाये। परमेश्वर ने कहा अच्छा है

सांझ हुई फिर भोर हुआ = 4

परमेश्वर ने कहा पृथ्वी जल जन्तुओं और पक्षियों से भर जाये। पक्षी आकाश में उड़े और जल जन्तु जल में विहार करे, फले–फूले और बढ़े। परमेश्वर ने ऐसा आशीर्वाद दिया।

सांझ हुई फिर भोर हुआ = 5

फिर परमेश्वर घरैले, बनैले जल जन्तु, पक्षी बनाये। आकाश में उड़ने वाले पक्षी, रेंगने वाले पशु और जल में रहने के लिये मछली भी भांति–भांति की बनायी।

फिर परमेश्वर ने अपने स्वरूप के अनुसार मनुष्य को बनाया और फिर मनुष्य को परमेश्वर ने आशीर्वाद देते हुये अपनी बनायी सृष्टि पर सम्पूर्ण अधिकार फलने–फूलने और दीर्घ संख्या होने का दिया। उनसे कहा– फलो–फूलो और पृथ्वी में भर जाओ और उसको अपने वश में कर लो और समुद्र की मछलियां और आकाश के पक्षियों और पृथ्वी पर रेंगने वाले हरे सब जन्तुओं पर अधिकार रखो। फिर परमेश्वर ने कहा सुनो जितने बीज वाले पेड़ पृथ्वी के ऊपर हैं और जितने वृक्षों में बीज वाले फल होते हैं वह सब मैंने तुमको दिये हैं वे तुम्हारे भोजन के लिये हैं और जितने पृथ्वी के पशु और आकाश के पक्षी हैं और पृथ्वी पर रेंगने वाले जन्तु है। उन सबके खाने के लिये मैंने सब हरे–हरे छोटे–छोटे पेड़ दिये हैं। परमेश्वर ने जो कुछ बनाया था उसे देखा और कहा वह बहुत अच्छा है।

साँझ हुई फिर भोर हुआ = 6

यों आकाश और पृथ्वी और उसकी सारी सेना का बनाना निपट गया और परमेश्वर ने अपना काम जो वह करता था निपटा दिया सो सातवें दिन उसने अपने सारे किये हुये काम से विश्राम किया और परमेश्वर ने सातवें दिन को आशीष दी और पवित्र ठहराया क्योंकि उसमें उसने सृष्टि के अपने सारे काम से विश्राम किया।

(6) विश्व शान्ति धर्म द्वारा सम्भव अथवा विज्ञान द्वारा (विचार बिन्दु)

विश्व में शान्ति अशान्ति नामक दो मानव शक्ति पद्धति हैं। शान्ति का अपभ्रन्शीकृत रूप हैं अशान्ति। शान्ति अशान्ति किनके द्वारा अनुशासित हैं इसके पूर्व अनुशासक का भी परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। विश्व में दो वस्तुएं हैं– एक तो चैतन्य दूसरी जड़ इसके अतिरिक्त तीसरी वस्तु नहिं है। जड़ वस्तु चैतन्यहीन होने के कारण क्रिया शून्य है। अतः क्रियावान चेतना अनुशासन में और जड़ अनुशासित वस्तु है। विश्व का नाम केवल इसलिये रखा गया है कि चैतन्य जीव द्वारा जड़ अणु पदार्थ का सदुपयोग करें।

मनुष्य में दो प्रकार की मेधा बुद्धि है एक तो सकर्मण्य दूसरी अकर्मण्य । सकर्मण्य बुद्धि स्वावलम्बित तथा प्राकृति नियमों में अनुशासित अध्यात्मवाद का अनुशासन करने वाली होती है। ऐसे में प्रधान गुण निम्नलिखित हैं—

आत्मोपम्य, समदर्शी, आत्मविश्वास, संतोष, आत्मशुद्धि, अपहरण, आवश्यक संग्रह, प्रकृति पालन, आत्म अनुसंधान आदि। इन सब गुणों के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म का अवलम्बन मानव के लिये आवश्यक है। ऐसा मनुष्य पूरी तरह से धार्मिक होता है और धर्म के द्वारा वह सहयोग की भावना को बढ़ाता है। अतः इन विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि विश्वशान्ति धर्म के द्वारा ही सम्भव है।

दूसरा पक्ष यह है कि यही गुण उस समय अवगुण हो जाते हैं जब मनुष्य इनको अपने स्वार्थ के लिये प्रयोग में लाता है। जब उसे प्रकृति से अपनी आवश्यकता की पूर्ति असम्भव दिखायी देती है। तब वह विज्ञान का सहारा लेकर पिछड़े हुये कार्यों की पूर्ति करता है उसने प्रकृति द्वारा पिछड़े कार्यों को विज्ञान द्वारा 24 घंटों में पूरा किया और प्रकृति को आराम करने दिया। इस प्रकार के कर्म धर्म के द्वारा नहीं हो सकते, अतः विज्ञान द्वारा प्रकृति की सहायता करके प्रकृति पालन पद्धति को मर्यादा विशेष रूप से सुरक्षित रखना सम्भव है धर्म द्वारा नहीं।

मानव विज्ञान द्वारा ही अपने कर्तव्यों का पालन सुगम रीति से कर सकता है और इस प्रकार विश्व शान्ति करने में सफलीभूत होता है यह कार्य विज्ञान द्वारा सम्भव है— धर्म द्वारा नहीं।

मानव स्वभाव से संग्रहक होता है— धर्म का आदेश है कि अनावश्यक संग्रह मत करो फिर भी मनुष्य की आत्मबुद्धि संग्रह से ही होती है। अतः संग्रह शक्ति का नाश धर्म के द्वारा सम्भव नहीं है, विज्ञान द्वारा सम्भव है क्योंकि वैज्ञानिक प्रकृति पर विजय पाकर मानव की संग्रह वृत्ति पर भी विजय प्राप्त कराता है। अतः विश्वशान्ति विज्ञान द्वारा ही सम्भव है।

<u>नोट—</u> यह श्री बौखल की अद्भुत मेधा का परिचायक एक वाद—विवाद प्रतियोगिता का संक्षिप्त रूपान्तर है जिसे उन्होंने किसी बालक को लिखाया था।

(7) विज्ञानवाद का शंख

विज्ञान वादियों ने तो अपनी शून्य तुला पर विद्व को तौलकर परस मनी वेग में रखकर संसार की सभी शक्तियों को बन्दर बनाकर ऐसा नचाया कि रंग मंच रक्त रंजित हो गया इन वैज्ञानिकों की खोज में शोषित वर्ण के अतिरिक्त और कोई वर्ण ही नहीं रहता। मानव सुख सम्पत्ति विहीन है जन कल्याण केवल कल्पना है जीवन संघर्ष प्रधान है स्थायी जीवन पाषाण प्रतिमा है परिवर्तन अवश्यंभावी है। ईश्वर सत्ता विहीन विश्व प्रकृति नाम मात्र छाया है विज्ञान कला ही प्रमुख कला है।

अर्थ वादियों ने अर्थ छछुंदर को ही मानव जीवन जीवित सुगंध बताकर विश्व में दुर्गन्ध फैलाई कि शुगन नाम की वस्तु का अन्त हो गया अबोध मानव आर्थिक गलित दुर्गन्ध को ही सुगन्ध अनुभव

करने लगा इनका प्रमुख्य सिद्धान्त स्वराष्ट्र का गलितांग बनाना, आर्थिक वैर, आर्थिक भेद, आर्थिक प्रपंच, आर्थिक सभ्यता, आर्थिक स्वास्थ्य, आर्थिक न्याय, आर्थिक संस्कृति, आर्थिक भुखमरी आदि इन अर्थवादियों के मूल मंत्र हैं।

सांस्कृतिक वादियों की सूझ ने चौदह भुवन का सर्वे करके अपना मत स्थापित किया है जिस संस्कृति के विभिन्न नमूने हैं विश्व में जितने लोकान्तर हैं भाषा, बलि, आशा, भोजन, छादन रा० का० लेन देन उठना बैठना, सभी लोकों की प्रतिच्छाया है। इन्द्र लोक की अप्सराएं आदि क्रान्ति दूतों गुलमा पांचवें आसमान के, कहीं सातवें की नकल बिछाकर मानव की बुद्धि में परिवर्तन दिखा दिया जैसे जैसे मानव अपनी विगत जीवन प्रथा को भूलता गया नवीन प्रथा को अपनाता गया। किन्तु इतना ध्यान रखना चाहिये कि मानव संस्कृति बदलती गयी जैसे एक कुर्ता है वह कभी एक बटन कभी पीछे एक बटन कभी सामने गला तो कभी पीछे गला बना दिया— इसी को संस्कृतिक परिवर्तन कहते हैं।

कयामत के दिन जैसे जैसे समीप आते जाते हैं वैसे वैसे मोमीनों का जोश बढ़ता जाता है और विश्व में चारो तरफ सुधार ही नजर आता है प्रत्येक ईमानदार इन्सान यह कहता नजर आता है कि नेकी करो नेकी का पल्ला भारी है जो खुदा का अजाव से नजदीक है दिन हिसाब का पास अल्ला पर भरोसा करो और रात दिन नमाज पढ़ो रोजे रखो जिन्दगी हर सांस इबादत की हो और न खास ख्याल तुम्हारा मखलू की इन्सान अशराफ है अल्लाह ने मुनार्य करके बताया है कि अशराफ इन्सान के लिये मैंने नियामतें पैदा कीं और इन्सान की रहबरी के लिये पैगम्बर उतारे मैंने यकीन लाओ अपने पैगम्बरों पर वह बात सही है जो पैगम्बरे दीन ने कही है इमान लाओ पैगम्बरों की जात और बात पर न छोड़ेगे साथ तुम्हारा और बरूशवाये भेजेगे कयामत गुनाह तुम्हारे अल्लाह बड़ा मेहरबान है।

सुधारवाद को सही सलामत रखने के लिये ताकि दुनिया ने सर बलन्द किया नवीन आविष्कारों के आधार पर सुधार की बुनियाद स्थापित की जो जन्नत जाने के लिये कतिपय सज्जनों ने अपने सुधार भली—भांति कर लिया और उस सुधार में से जरा सा भी हिस्सा किसी को नहीं दिया रहन—सहन, खान—पान—पियन, मान—मर्यादा सभी प्रकार की सुव्यवस्थित स्वसुधार कर लिया जिसकी रूपरेखा कलुषित वातावरण में सदैव रक्त रंजित रहती है एक दूसरे मानव को गुलाम बनाने का प्रयास जाल चारो तरफ बिछा है, मानव के लिये स्वतंत्रता की सांस लेना इसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार नमोनिये के रोगी के लिये सांस लेना दुष्कर है।

बैकुण्ठ लोक पर अधिकार करने वाले धर्मावलम्बी मानव ने धर्म जाल बिछा कर दीन हीन मानव जाति का शिकार स्वतंत्रतापूर्वक करना प्रारम्भ कर दिया इन धर्म ध्वजाधारी महिष बलवान के लिये राष्ट्र विधान और परमेश्वर विधान दोनो ही दुर्बल हैं केवल इसी धर्मधारी का अर्थ सिद्धिक विधान ही सर्वोपरि है और विश्व के सभी विधान अल्प काल्पनिक परिवर्तनशील हैं किन्तु धर्मधारियों का विधान सनातन है इसका कारण ईश्वर द्वारा प्रमाणित किया हुआ सिद्ध किया गया है।

राजनैतिक मतावलम्बी मानव ने भी ईश्वरी शक्ति को गौण और मानव जन्य शक्ति को प्रमुख्य माना है और अपना मनोवैज्ञानिक जाल विशालकाय बिछाकर समस्त विश्व पर अपना मालकाना हक सिद्ध करने में कोई कोर कसर नहीं रखी प्रमत्त गज नीति को स्वीकार न करने वाले के लिये सदैव घूंसा ताने रहते है ।

क्या मजे की बात है हर नहि बरसात है ।

उल्लुओं की घात है शहर नहि ये दिहात है ।

अच्छी खासी मात है ।

(8) पौराणिकता की वास्तविकता

लंका सोने की न थी, सुमेरू सोने का न था, कैलाश चांदी का न था, अमेरिका सोने का स्वामी नहीं है । केवल आर्थिक राजनैतिक पालसी है कि पालसी की प्रतीक्षा 100 वर्ष तक की जाती है जिसकी मध्य आयु 50 वर्ष की होती है यदि पालसी प्रकृति पालसी को अपना कर चलती है तो पालसी प्रकृति पुत्र और प्रकृति माता रक्षक होती है । इसी रक्षित पुत्र की आयु अमर होती है ।

नागवंश की पुरानी राजधानी कैलाश थी । दैत्य राजधानी सुमेरू पर्वत पर थी जब दोनो में राजनीतिक संधि हो गई तब नाग राजधानी, पाताल में स्थापित हुई, इसका कारण कैलाश में विशेष हिमपात है ।

इस हिमपात का प्रभाव आर्यो पर पडा जिसक प्रमुख्य राजधानी अमरावती थी । भारत का वह भाग जो कुमारीकन्या से विन्ध्याचल श्रेणी तक फैला है समुद्र था । जब पृथ्वी ने अपना 24 कोण बनाना आरम्भ किया उसी समय अगस्त मुनी जी मंगोल जाति में पैदा हुये । प्रथम उन्होने इस भूमि का पता लगाया क्योंकि इनका जन्म किसी रेगिस्तान में था जहॉ से राजपूताना भारतीय मरू देश के समीप पडता था । मंगोल और आर्य जातियों में सन्धि हो गई तब दोनो जातियों ने निश्चय किया कि नाग वंश और सुमेरियनो को भारत में स्थान न दिया जाय । यही कारण है कि यदुवंशी आर्यो और नागवशिंयो और सुमेरियनों में मधु जाति मुर जाति से युद्ध होता रहा ।

त्रिपुर - जो कि त्रिराष्ट सन्धि विजेता नागवंशी शंकर भगवान थे जिन्हें त्रिपुरारी की उपाधि दी गई ।

इन नांगवंशियों ने आर्यो को युद्ध में परास्त किया और संन्धि जो लिखी गई उसमें श्रावण मास की शुक्लपंचमी थी जिसका नाम नाग पंचमी रखा गया और दूध भात की चौथ ली जाने लगी ।

इसी नाग चौथ का अन्त करने के लिये कुरू, युदुवंश दोनो ने भरसक प्रयत्न किये । महाभारत इसी लिये रचा गया था कि आर्यो की शत्रु जातियां इस युद्व में खतम हो जाये किन्तु नागवंश तटस्थ रहा । जब राजा परीक्षित को तक्षक नाम के नाग सेनापति ने मार डाला तब उसके पुत्र जनमेजय ने नैष्यि वन में नाग यज्ञ किया और इसी नाग यज्ञ में नाग शक्ति का अन्त हो गया ।

इधर आर्य मंगाल ईरान होकर ईराक गये थे देव वंश का अन्त हो चुका था सुमेरिया की

राजधानी बेबीलोनिया थी । आर्य जाति से यहूदी हुये जो प्रकृति के उपासक है । इन यहूदियों से सुमेरियन को परास्त करके इन्हें अपना गुलाम बना लिया किन्तु इसी जाति में कुछ लोग ऐसे हुये है जिन्होने हजार वर्ष की लंबी अगडाई ली जिससे एक बार यहूदियों का पाला ऐसा हिला कि आज तक वे बेघर बार का जीवन बिता रहे हैं ।

(9) आवश्यकता अविष्कार की जननी है

विज्ञानवादी ने उत्तर देते हुये कहा कि बिना आवश्यकता के अविकार संभव नहीं है । प्राकृतिक विधान स्वयं आवश्यकता का समर्थक है जब कभी जीवो का संख्या अनुपात से अधिक हो जाती है तो प्राकृतिक प्रकोप की आवश्यकता का अनुभव प्रकृति को विशेष जीवों के विनाश जैसे युद्व महा भंयकर रोगादि का प्रत्यक्ष प्रदर्शन होने लगता है ।

सुधारवादी ने आवश्यकता के इस रूप में समर्थन का खंडन करते हुये बताया कि प्राकृतिक विधान की मूल धारा केवल तीन ही है प्रसव, पालन, प्रलय इन्हीं तीनो मुख्य धारा के अन्तर्गत भोजन मैथुन और शयन है जो मूलधारा की उपधारा हैं । मैथुन का अर्थ प्रसव भोजन का अर्थ पालन और शयन का अर्थ प्रलय है । इसी भॉति मूलधारा की पोषक उपधारा हो सकती है और मुख्यधारा पर आघात करने वाली नहीं निस्सन्देह अपभ्रंश धारा कहनी चाहिए । अपभ्रंश धारा को मूल धारा की उपधारा कहना कहॉ तक सार्थक हो सकता है क्योंकि जीव अपनी अपभ्रंश उपधारा को मूलधारा की सहायक उपधारा की मान्यता दे कर फूला नही समाता है । जीव को प्रकृति की ओर से सहायक उपधारा के निर्माण का अधिकार है किन्तु विरोधी उपधारा के निर्माण का अधिकार कदापि नहीं है ।

विज्ञानवादी — जब जीव को अन्धकार में कुछ नहीं दिखाई देता है तब वह प्रकाश के लिये दीपक के अविष्कार की आवश्यकता अनुभव करता है और समय जानने की आवश्यकता होती है तब घडी और जब शरद ऋतु पीडा देती है तब शरीर रक्षण के लिये कम्बल रजाई विशाल भवन आदि के निर्माण की आवश्यकता होती है जैसे क्षुधा लगने पर भोजन, नींद लगने पर भवन, उत्पीडित इन्द्रियों के लिए मैथुन की आवश्यकता अनुभव होती है । इसलिये आवश्यकता अविष्कार की जननी है ।

सुधारवादी — अनायास आवश्यकता को भी जीव ने आवश्यकता मान ली है क्योंकि मानवी अविष्कार को देखने से ज्ञात होता है कि बलात् आवश्यकता को जन्म दिया गया है जिसके बहुत से कारण है बीड़ी, तम्बाकू, पाउडर, इत्र, मिल्क पाउडर आतिशबाजी, कालिज, रेल मोटरकार न्यायालय, चाय आदि । इस अनायास आवश्यकता का मूल कारण क्या है और इस आविष्कार का कारण दाता कौन है क्यों है?

अध्याय – 3

सामाजिक जीवन की अवधारणा

अध्याय - 3
सामाजिक जीवन की अवधारणा

महाकवि बौखल के काव्य में सामाजिक जीवन की अवधारणा को देखने के पूर्व कवि के जीवन की पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालना अनिवार्य है क्योंकि उसकी मानसिक संरचना में तत्कालीन परिस्थिति जन्य परिवेश और सामयिक विचारधाराओं का योगदान होना एक महत्वपूर्ण घटक होता है । व्यक्ति समाज सापेक्ष्य होता है और समाज देश काल सापेक्ष्य । राजनीतिक व्यवस्थायें समाज पर अपना प्रक्षेपण करती हैं, इस प्रकार व्यक्ति, समाज और देश—कालाधारित व्यवस्थायें एक दूसरे से अनिवार्य रूप से जुड़ी होती हैं । व्यक्ति के क्रियाकलापों का केन्द्र समाज ही होता है, उसकी सारी आवश्यकताएं वहीं पूरी होती हैं क्योंकि अर्थ व्यवस्था की धुरी भी उसी समाज पर केन्द्रित होकर घूमती है ।

सन् 1904 में रूड़की में जन्में बालक रामनारायण (नारायण दास "बौखल") को माता इतवारिया देवी के कुशल संरक्षण में पयपान के साथ आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा मिली व एक अन्य सन्यासिनी महिला रामदेई के सान्निध्य में भक्ति, साधना व वैराग्य के पदों को सुनते हुये संगीत व कविता के संस्कार मन में पड़े । औपचारिक शिक्षा से मन उचाट होने के कारण समाज ने ही बालक को अनौपचारिक शिक्षा प्रदान की जिसने उन्हें स्वयंरूह वृक्ष की भाँति अक्षय जीवनी शक्ति का अर्जन करने की क्षमता प्रदान की । वयस्क होने पर इन्होंने अम्बाला जाकर सिलाई का काम सीखा जो आगे चलकर जीविका का साधन बना । प्रकृति की पाठशाला तथा समाज के विशाल अनुभव संसार ने उन्हें मानवीय मेधा का स्वतंत्र उपयोग करने की शिक्षा दी और जीवन ऊँचे— नीचे रास्तों पर सफलता—असफलता, समर्थन व विरोध की सीढ़ियाँ उतरते —चढ़ते हुये चल पड़ा, परन्तु हर सीढ़ी एक संबल के रूप में दृढ़ता, ऊर्जा, उत्साह और प्रेरणा बढ़ाती रही ।

सन् 1924 में देश में साइमन कमीशन दौरा करने आया था, जलियाँवालाबाग काण्ड की पैशाचिक ह्रदय विदारक घटना ने पूरे देश को दहला दिया था । युवक नारायण दास को परिस्थितिं वश उसी समय अपना निवास स्थान छोड़कर कर्वी (जिला—बाँदा) आना पड़ा था जो उसके लिये आजीवन कार्य क्षेत्र बना रहा । उस अमानुषीय घटना से इस स्वतंत्र बौद्धिक प्राणी के भीतर विद्रोह की ज्वाला धधक उठी । देश प्रेम के बीज जो तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से जल, वायु पाकर अंकुरित हो उठे थे, उसके मन में भी लहलहा उठे जिसके परिणाम स्वरूप युवक नारायण दास ने सत्याग्रहियों के साथ जेल यात्राओं व अन्य प्रकार के दमन चक्रों का सामना करते हुये एक प्रकार के क्रान्तिकारी जीवन में प्रवेश किया। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उनकी वैचारिक स्वच्छन्दता ने समय—समय पर उन्हें जेल का मेहमान बनाया । अन्त में स्वतंत्र भारत की अवांछित राजनीतिक विडम्बनाओं ने जैसे अन्य सभी स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के सपने चूर—चूर कर दिये थे, वैसे ही (अब) मास्टर नारायण दास का भी उस शासन व्यवस्था से मोह भंग हुआ और इन्हें समाजवाद के सिद्धांतों ने अपनी ओर आकर्षित किया ।

उनके इस हृदय परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि बाल्यावस्था में रामदेई के द्वारा दिये गये संस्कारों व वर्तमान समय की नोच खसोट आधारित व्यवस्था की पीड़ा ने उनके मन में कविता के संस्कारों को पुनरूज्जीवित कर दिया और उनकी वाणी भगवती शारदा का प्रसाद पाकर मुखरित होने लगी । सर्वप्रथम वाणी वन्दना से ही उन्होंने नवीन विचारों का संचार करने वाली काव्य धारा का प्रणयन प्रारम्भ किया जिसमें उनके आध्यात्मिक समाजवाद की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई । यह समय 1938 का था ।

वन्दौं गिरा सुकण्ठिनी , नित्य नवीन विचार ।
निजपथ लावति खैंचि मन, सफल सबल आधार ।। (1)

वाणी सुमिरौ सारिणी, हिताहित सन्धान
युग युगान्तर की सम्मति, सबहिन देत निधान ।। (2)

विनय सहित कर वन्दना, साधू सन्त समाज
वाणी होय प्रभावती, पाप समाज सुराज ।। (3)

इस दोहे में वर्णित समाज और सुराज यही दो शब्द उनके आध्यात्मिक समाजवाद की नींव के पत्थर बने । प्रकृति के इस अजेय पुत्र ने समाज में श्रमशीलता के सम्मान को जीवन की सबसे बड़ी पूँजी व श्रमिक को सर्वोपरि प्राणी मान कर समाजवाद को जन सामान्य के जीवन में उतारने की ललित अभिव्यक्तियाँ देनी प्रारंभ की । इस प्रक्रिया में उन्होंने अर्थ व्यवस्था की निरंकुशता व सामाजि़क वैषम्य पर तीखी व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ की हैं ।

भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के महामंथन से आर्थिक व सामाजिक बदलाव के कुछ आधारभूत तथ्य व कुछ बुनियादी मूल्य निकलकर आये थे जो तत्कालीन समाज को प्रभावित कर रहे थे। उस समय पूंजीवाद व उपभोक्तावाद जन जीवन में अपने पैर पूरी शिद्धत के साथ पसार रहा था और श्रमजीवी प्राणी उसके भयानक चंगुल में फँसने को अभिशप्त हो रहा था । महात्मा गाँधी पारंपरिक अर्थो में कोई अर्थशास्त्री या समाजशास्त्री नहीं थे पर मानव गरिमा के प्रति अपनी पूर्ण प्रतिबद्धता के कारण वे पश्चिम में पनपी साम्राज्यवादी औद्योगिक सभ्यता के दुर्गुणों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे थे और आजाद भारत में उस पश्चिमी सभ्यता की नकल के विरूद्ध अपना वैकल्पिक वैचारिक आर्थिक चिन्तन प्रस्तुत कर रहे थे जिसकी आधार भूमि नैतिकता थी । उनके अनुसार अर्थशास्त्र को जीवनोन्मुखी तथा व्यापक मानवता के हित में होना चाहिए था पूंजीवाद के चंगुल में नही, क्योंकि उनके लिये पूंजी नहीं मानव विकास अधिक महत्व का था जो समान उत्पादन, समान वितरण व समान उपभोग पर निर्भर था। वे कहते थे कि लोगों को बेकार रखना एक सामाजिक बुराई है । यदि कोई देश अपनी जनता के हुनर और ज्ञान को विकसित करने व उसका सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन में प्रभावी प्रयोग करने में अक्षम है तो उसका समग्र विकास

नारायण अंजलि भाग – I :–(1) दो. सं.–18 पृ.क्र.–2, (2) दो. सं.–76 पृ.क्र.–6, (3) दो. सं.–61 पृ.क्र.–5

असंभव हो जाता है । उनके अनुसार "जब उत्पादन एवं उपभोग दोनों स्थानीय स्तर पर होने लगते हैं तो उत्पादन को किसी भी कीमत पर अंधाधुन्ध बढ़ाने का प्रलोभन खत्म हो जाता है........ इस स्थिति में मुट्ठी भर लोगों के पास संचय और बाकी लोगों के पास अभाव नही होगा जैसा आज हो रहा है ।" इस प्रकार गाँधीजी की चिन्ता में यही विचार उभर कर आता है कि किसी भी समाज को उन्नत बनाने के लिये किसी भी आर्थिक गतिविधि के केन्द्र में आम लोगों की बेहतरी होनी चाहिए । तत्कालीन प्रभावों से प्रभावित श्री बौखल को समाजवाद की इसी अवधारणा ने अपनी ओर खींचा था।

महात्मा गाँधी के समय में ही मशीनीकरण की सुरसावृत्ति का प्रारंभ हो चुका था, पर जैसा उन पर आरोप लगाया जाता था कि वे मशीनीकरण के विरूद्ध थे – सत्य नहीं था; परन्तु वे मशीन के प्रयोग पर उसी हद तक सहमत थे जहाँ तक मानवीय श्रम की अवहेलना न होने पावे क्योंकि मानव श्रम समाज के एक बहुत बड़े वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति करने के साथ–साथ श्रमजीवियों की जीविका का साधन था जिससे हजारों लोगों का पेट चलता था । उनका और भी कहना था कि – "मैं भी सम्पत्ति का केन्द्रीकरण चाहता हूँ परन्तु सिर्फ कुछ लोगों के हाथों में नही बल्कि सभी लोगों के हाथों में । आज मशीनों से, जो कुछ पूंजीपतियों की मालिकाना हसरतें पूरी करती हैं, सिर्फ कुछ लोगों की पीठ पर सवार होने में मदद मिलती है । इस सब के पीछे श्रम की बचत के अन्तर्गत मानव श्रम नही है बल्कि सिर्फ लोभ व लालच है। यही वह व्यवस्था है जिसके खिलाफ मै पूरी ताकत से लड़ रहा हूँ ।" स्पष्ट है कि गाँधी की सोच में सच्चा सामाजिक विकास वही था जो स्थानीय संसाधनों, सक्रिय जनभागीदारी एवं न्याय संगत वितरण पर आधारित हो । यही विचार जनभागीदारी एवं न्याय संगत वितरण पर आधारित हो । यही विचार श्री बौखल की रचना में स्थान–स्थान पर उभर कर आया है –

ऐसो गठन समाज करि, सबहिन को हित होय
उत्पादन मिलि जुल करें, भूखन मरे न कोय ।। (1)

स्वर्ण शोषक श्रमिक धन, दुखद धर्म विज्ञान
विनिमय वितरण दोष मय, थापित संघ महान ।। (2)

भारत का और भारत का ही नहीं, विश्व का आर्थिक विकास इस प्रकार का होना चाहिए कि किसी को भी रोटी, कपड़े की कमी न रहे अर्थात वितरण का वैषम्य खत्म होना चाहिए, हर एक व्यक्ति या परिवार को कम से कम इतना मिलता रहे कि वह अपना गुजारा कर सके और यह आदर्श तभी हर एक के लिये उपयुक्त हो सकता है जब जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन के साधन जन साधारण के नियंत्रण में हों ।

नारायण अंजलि भाग – II :–(1) दो. सं.–1218 पृ.क्र.–94,
(2) दो. सं.–996 पृ.क्र.–77,

गाँधी जी कहते थे कि "जिस प्रकार भगवान के दिये हुये हवा पानी सब को आसानी से प्राप्त होते हैं उसी प्रकार से साधन भी सबको उपलब्ध होने चाहिए, उन्हें दूसरों के शोषण का यंत्र नहीं बनना चाहिए । किसी राष्ट्र, देश या व्यक्ति समूह द्वारा इन साधनों पर अपनी इज़ारेदारी कायम करना अन्याय होगा । इस सामान्य सिद्धान्त की उपेक्षा का ही फल है कि न केवल भारत वरन् दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी गरीबी व अभाव दिखाई पड़ता है ।"

कहना नहीं होगा कि श्री बौखल की सामाजिक जीवन की अवधारणा का यही मूल मंत्र था क्योंकि उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता उसी समय आकार ग्रहण कर रही थी । अतः उन्हें अनुभव हुआ कि सामाजिक विकास का अर्थ कुछ लोगों की बेरोकटोक सम्पन्नता नहीं है बल्कि संसाधनों का सार्वजनिक दोहन व उत्पादन का न्यायोचित वितरण एवं हर हाथ के लिये रोजगार के अवसर का सुलभ होना है । उन्होंने अपने परिवेश से, जो विषमता की चक्की में पिस रहा था — सम्पन्न और विपन्न व्यक्तियों का चित्रण इस प्रकार से किया —

मन मुरहा जग मनुज कहायो
गठन समाजिक ऐसो गाँठो, दुखी समाज बनायो ।
एक ओर तो चढ़ै कढ़ाई, बहु पकवान सजायो ।
दूजी ओर किसान का बेटा, चुनि चुनि काँकर खायो ।
गगन चूमते भव्य भवन जग, रतन अमोल जड़ायो ।
दूजी ओर नित चुवै झुपड़िया, श्रमिक जनम बितायो ।
करमन का फल देत विधाता, करि छल बल समुझायो ।। (1)

समाज की इस अवधारणा को फलने फूलने का अवसर प्रजातंत्र या लोकतंत्र में ही मिल सकता है, जिसमें समाजवादी ढाँचे को निर्मित करने व उसमें रक्त संचार करने का साहस हो और जो जन चेतनाधारित ही न हो बल्कि जन—जन द्वारा स्वीकृत, सुरक्षित कर्मभूमि हो । भूमि के लिये क्षेत्रीयता अनावश्यक है, भूमि क्षेत्रीयता बाधित होकर अपने मंगलमय स्वरूप को क्षत विक्षत कर लेती है और उसकी विडम्बना प्राणिमात्र की विडम्बना हो जाती है जो विपन्नता की जननी होती है और संपन्नता के साधनों का इनकी वर्तमानता में सम्यक सदुपयोग नहीं हो पाता । प्रजातन्त्र एक सामाजिक दर्शन है जो अर्थ को अनर्थ की दिशा में जाने से रोकने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार समाजवाद व प्रजातंत्र का नाता घनिष्ठतर होता जाता है । समाज के ऊपरी उद्वेलन आन्दोलन बनने के लिये निरन्तर प्रयासरत रहते हैं और जनाधार की पीठिका बनाने में लग जाते है । यह वास्तविक समाजवाद का चिन्तन है पर उस समय तथाकथित समाजवादी राष्ट्र पूंजीमुखापेक्षी होकर घुटने टेक चुके थे समृद्ध राष्ट्रों के सामने और उस पूंजी की जकड़ के आगे उनकी सारी अर्थव्यवस्था लुंज पुंज हो गई थी । समाजवाद को राज्य पूंजीवाद से मुक्त कराकर ही समाजवादानुकूल प्रजातंत्र कर निर्माण किया जा सकता है क्योंकि अपनी भूमि, अपनी पूंजी पर

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.— 475 पृ.क्र.—138

जब स्वामित्व हो जायेगा तभी औपनिवेशिक दबाव से मुक्त होकर अपने संसाधनों का उपयुक्त दोहन करके उनसे अपना हित साधा जा सकता है। ऐसी कवि की सुदृढ़ मान्यता थी — पूंजी की बुराइयों को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

पूंजीवादी नीत जग, ठगियन को बाजार
सुख सम्पदा समाज की, सबै विनाश आचार ।। (1)

पूंजी के साई सबै, निर्धन को नहीं कोय
जो निर्धन के मीत बनि, सोई विवेकी होय ।। (2)

इस वैषम्य को मिटाने के लिये कवि की कल्पना है —

पूंजी पसरी पारखी, पूंजी जग व्यौपार
पूंजी पूंजी सम रहें, बनो रहै आचार ।।
पूंजी के पट बन्द करि, पूंजी के पट खोल
पूंजी पूंजी ही रहै, झूंलि अताव हिंडोल ।। (3)

असली पूंजी तो मनुष्यता है इसी के पट खोलना है तो यह पूंजी हमेशा ऐसी ही बनी रहेगी जब कि शोषक पूंजी का अन्त हो जायेगा । इस पूंजीवादी व्यवस्था में सबसे अधिक पिसता है श्रमिक क्योंकि असामाजिक व्यवस्था का शिकार वही होता है । श्रमिक तो कवि का प्रणम्य प्राणी है क्योंकि वह जन जीवन को चलाने वाला आधार है—

वन्दों श्रमजीवी सुजन, जौन जगत को मूल
पालहिं उपजीवी सदा, स्वतः खाय मुख धूल ।। (4)

समाजवाद की सच्ची फलश्रुति तो वह है जहाँ श्रमिक सुखी रहे अन्यथा वह शोषण की ही जन्मदात्री होती है —

श्रमजीवी गाँवन बसै, करि परिश्रम महान
काटै, माड़ि, उसाय अति, खाये पावै धान ।। (5)

बुद्धिजीवी मानव सदा, अलि शासक आधीन
श्रमजीवी भूखों मरै, बगरि विज्ञान नवीन ।। (6)

स्वर्ण शोषक श्रमिक धन, दुखद धर्म विज्ञान
विनिमय वितरण दोषमय, थापित संघ महान ।। (7)

नारायण अंजलि भाग – I :–(1) दो. सं.–725 पृ.क्र.–54, (2)दो.सं.–821पृ.क्र.–61,
(3) दो. सं.–721,722 पृ.क्र.–54, (4)दो.सं.–11पृ.क्र.–1,
(5) दो.सं.–1220पृ.क्र.–94,

नारायण अंजलि भाग – II :–(6) दो.सं.–987पृ.क्र.–76, (7) दो.सं.–996पृ.क्र.–77

कवि को इन शोषित जनों की पीड़ा ऐसी सालती है कि उससे उनकी दशा नही कहते बनती—

जोगिया दसा बखानत रोवै
जन साधारण ठगिया लूटै, धनियाँ पसरो सोवै
भूखन मरैं याहि सौ जग में, आपन खोवा खोवै........
रचि विधान आडम्बर भारी, अपनो स्वार्थ पिरोवै..........
"बौखल" हित अनहित लखि अपना, पथ काको कहुँ जोवै ।। (1)

विषम वितरण का परिणाम यह होता है कि लुटता पिटता पिसता गरीब किसान किस मुंह से मनुष्य कहलाने का अधिकारी होगा —वह तो बैल हो गया है ।

पूंजीवादी मनोवृत्ति, कुलचा दीन बढ़ाय
श्रम धन लूटै रात दिन, श्रमिक मरै अधाय ।। (2)

आँधर पीसै रात दिन, कूकुर खाय पिसान
रीती पेट पिटारि अलि, बैलाभयो किसान ।। (3)

इस श्रमिक के श्रम से परोपजीवी मौज करते हैं, वे स्वामी हैं और स्वामित्व उनका जन्म सिद्ध अधिकार है परन्तु श्रमिक अभिशप्त है कि वह इसे विधान का लेखा मान कर दुःख को ही अपना प्राप्य मानता है —

परोपजीवी जीवड़ा, करि व्यवहार कठोर
निज मन से माखै सदा, दुखित श्रमिक उठि भोर ।।

परोपजीवी बेलरी, काह समाजहिं देत
"बौखल" उत्पीड़क बनी, जिये न जीवन लेत ।। (4)

परोपजीवी से सदा, जिये श्रमिक भयभीत
नीव शाब्दिक मानि मन, हिरदै करै न प्रीत ।। (5)

परोपजीवी आपनो, सुखकर रचि परिधान
भई पहेली पादुका, चाकर भये किसान ।। (6)

परोपजीवी हित निहित, अलि श्रमिक श्रम धान
बुद्धिजीवी सहयोगिक, "बौखल" मध्य निदान ।। (7)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं. 707 पृ.क्र.—204,
नारायण अंजलि भाग — I :—(2) दो. सं.—1162 पृ.क्र.—88, (3)दो.सं.—844पृ.क्र.—63,
(4) दो. सं.—850 पृ.क्र.—64, (5)दो.सं.—782पृ.क्र.—61,
(6) दो.सं.—750पृ.क्र.—56, (7)दो.सं.—778पृ.क्र.—58.

कबीर की बानी भी तो यही कहती रही कि –

पाथर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूंजू पहार
याते तो चाकी भली, पीस खाय संसार ।। और
कांकर पाथर जोरी कै मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ।।

"बौखल" के व्यंग बाँण भी ऐसे विधानों पर कम तीखे नहीं होते –

दूध मलाई छानि के, करि पाथर परनाम
"बौखल" ऐसे मनुज को, कौन करे प्रणाम ।।
भगवन तेरे नाम को, बहु तक बढ़ो उधार
भगत मंडली भूमि जग, नाचैं भुजा पसार ।। (1)

भगवन तेरे नाम से, लेन देन अविराम
लेकिन तेरे कोष में, पहुंची नही छदाम ।।

खाय कचौरी चुरमुरी, दूध पियै भरि पेट
छाती पै माला धरी, पलंग लगावै लेट ।। (2)

ऊँच व नीच का भेदभाव समाज में उस कुपोषित मनोवृत्ति को जन्म देता है जो दोनो के बीच कभी न पटने वाली खाई बना देती है –

मानव भिखियारी बनो, दोनों गोड़ कटाय
ठगिया हो अलि संगठित, रहे समाज सताय ।। (3)

सुनहु सुधारक विनय मम, जाति पांति मधु भेद ।
विविध जतन करि थाकि सब, भयो सुधार न खेद ।। (4)

वर्ण व्यवस्था में उन्हें समाज का सर्वाधिक अनादर करने वाले भाव ही मिलते हैं – उनका सजग मस्तिष्क इसके खोखलेपन को स्पष्टतया उजागर कर देता है । सर्वप्रथम विप्र समाज तथा उनमें भी विभिन्न वर्ग–

विप्र अनेकन वर्ग हो, उपजायो मत भेद
दलदल घंस्यो समाज अरू, "बौखल" के मन खेद ।। (5)

विप्रन रचि पोथी धरी, अपनो हित दरशाय ।
अवहेलित समुदाय हित, किमि समाज अपनाय ।। (6)

नारायण अंजलि भाग – II :–(1)दो. सं.–1056,1057 पृ.क्र.–81,
(2)दो.सं.–1042 पृ.क्र.–80,
नारायण अंजलि भाग – I :– (3)दो.सं.–1796पृ.क्र.–136,(4)दो.सं.–874पृ.क्र.–65,
(5),(6) दो.सं.–512,513 पृ.क्र.–38.

वणिक् वृत्ति की भी जम कर आलोचना कवि ने की है, क्योंकि बनिया तो हर तरह से अपना ही हित साधता है – ठगी उसका धर्म बना है –

वंचक बनिया बनिन करि, बहुत जुटायो दाम ।
लबरन देत खवाय जग, अन्त जाय सुरधाम ।। (1)

बनि हितुआ हित आपने, करि चौगुण व्यौपार ।
करै घात विश्वास दे, सुगम जानि आचार ।। (2)

वर्ण व्यवस्था आसुरी, रूको राष्ट्र निर्माण ।
जटिल समाजिक जीवनी, तने विभिन्न वितान ।। (3)

विप्रवाद के आश्रित, वर्ण आश्रम की व्याधि ।
सत्यासत्य गढ़ घोरि नित, दै उपदेश अगाधि ।। (4)

कवि "बौखल" उस समय व परिस्थितियों की उपज थे जब समाज अपने स्वरूप की रूपरेखा इस प्रकार बना रहा था जिसमें उसकी वैचारिक प्रतिबद्धता, आत्मिक विकास व शारीरिक क्षमताओं का भरपूर उपयोग हो पाता । पारस्परिक सहयोग भावना और निस्वार्थ व्यवहार इस रूपरेखा के सशक्त घटक थे । विज्ञान की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई क्षमताओं और आश्चर्यजनक उपलब्धियों से संसार अभिभूत हो रहा था और इस देश में उसके विकास की संभावनायें दिनो दिन बढ़ रही थीं । उनका चिन्तन था कि विज्ञान की उन्नति से सामाजिक विषमताओं को दूर करने में सहायता मिलेगी तभी उन्होने वैज्ञानिकों की भी वन्दना करते हुये उन्हें युग प्रवर्तक माना और उनके द्वारा बताये गये मार्ग को समाज का हितसाधक कहा–

बन्दों वैज्ञानिक हरषि, युग परिवर्तन कीन ।
विश्व शिरोमणि जगत हित, पंथ चलाय नवीन ।।
वैज्ञानिक बन्दौं सुयश, सुख समान विस्तार ।
विमल व्यवस्था आर्थिक, हो नैतिक आचार ।। (5)

परन्तु जब उसका "बाबा वैज्ञानिक युग आयो" से दुरूपयोग होते देखा तो उन्हें लगा कि यह विज्ञान का युग राजनीति के अधीन हो कर समाज के लिये उतना उपकारी न रह कर विप्लवकारी हो गया है और मानव अविश्वासी हो गया है –

"बौखल" भयो विज्ञान जग, राजनीति आधीन ।
विप्लव मचै समाजिक, हो षड़यंत्र नवीन ।। (6)

नारायण अंजलि भाग – I :–(1) दो. सं.–544 पृ.क्र.–40, (2)दो.सं.–514पृ.क्र.–38,
(3) दो. सं.–593 पृ.क्र.–44, (4)दो.सं.–608पृ.क्र.–45,
(5) दो.सं.–15 पृ.क्र.–2, (5) दो.सं.–595 पृ.क्र.–44

लक्ष्य समाजिक गठन को, दुर्बल सबल विधान ।
श्रमधन विनिमय वितरण, वैज्ञानिक निर्माण ।। (1)

धर्म, सभ्यता, संस्कृति, राजनीति वैज्ञान ।
परोपजीवी बुद्धि बल, श्रमिक व्यथित महान ।। (2)

प्रख्यात समाजवादी विचारक डा. राममनोहर लोहिया द्वारा समाजवाद का अर्थ संयत और सर्वांगीण विकास माना गया है उनके शब्दों में –

"हिन्दुस्तान के समाजवाद को अब आध्यात्मिक और भौतिक दोनों का वैचारिक पुट देकर खड़ा किया जाय कि जिसमें उसे मनुष्य के इन दोनों तत्वों की सहायता मिल सके । आखिर आन्नद लेना सिर्फ गैर समाजवादियों का ही हक तो नही है, समाजवादियों का भी है; इसलिये आनन्द,चाहे वह निर्विकल्प आनन्द हो चाहे और कोई आनन्द, उसे और समाजवाद को कैसे जोड़ा जा सकता है, एक तो यह भी प्रश्न रहता है । उसी तरह से सामाजिक उग्रता को भी समाजवाद समर्थन दें ।............उपनिषद में कहा गया है कि सम्पत्ति का मोह बहुत खतरनाक है, इसे छोड़ों कि जो कुछ है वह ईश का है ।......... हमारे पुरखों ने चार पाँच हजार साल पहिले से की यह कोशिश और यह कोशिश लगातार होती आई है । पाँच हजार साल से हम ढ़ोल पिटते चले आ रहे हैं कि सबसे पहिले हमने सम्पत्ति मोह छोड़ने की बात सोची थी लेकिन नतीजा यह निकला कि आज जितना संपत्ति का मोह और जीव का मोह इस देश में है उतना कहीं नहीं ।..........संपत्ति के बारे में संगठित या वैज्ञानिक समाजवाद के बारे में सबसे बड़ा सोचने वाला था –कार्ल मार्क्स । उन्होंने कहा कि संपत्ति के अनेक रूप हैं । मैं उन रूपों के जंगल में न जाकर यहाँ एक रूप की चर्चा कर दूँ ओर वह यह कि खेती या कारखाने में पैदावार के जो कोई साधन हैं, सम्पत्ति है, उसको राष्ट्र की संपत्ति बनाओ, समाज की संपत्ति बनाओं, तभी संसार के दुख दर्द दूर होंगे । लोगों को रोटी कपड़ा तो मिलेगा ही, लेकिन और जो चीजें हैं, प्रेम, सद्भावना, भाईचारा भी मिलेंगे और घृणा का खात्मा होगा ।" (3)

दृष्टव्य है कि श्री बौखल ने अपने काव्य में जिन विचारों, भावनाओं और व्यवस्थाओं को मूर्तायित किया है – उनके सम्बन्ध सूत्र उपर्युक्त अंश से अविच्छिन्न रूप से गुंथे हुये हैं । यही उनकी सामाजिक जीवन की अवधारणा है ।

नारायण अंजलि भाग – II :–(1) दो. सं.–1190 पृ.क्र.–92, (2)दो.सं.–946पृ.क्र.–71, (3) (समाजवादी विचारक डा. राममनोहर लोहिया द्वारा सन् 1960 से 1964 के बीच दिये गये भाषणों के संकलन से उद्धत अंश)

अध्याय – 4

महाकवि "बौखल" के काव्य में प्रगतिशील विचारधारा

अध्याय - 4
महाकवि "बौखल" के काव्य में प्रगतिशील विचारधारा

अभी तक "बौखल" काव्य में सामाजिक जीवन की अवधारणा के सम्बंध में साक्ष्य देखे गये हैं, अब यह देखना है कि वे अपने विचारों में कितने प्रगतिशील थे । प्रगति का अर्थ होता है– किसी दिशा में विशिष्ट रूप से आगे बढ़ना । साहित्य में प्रगतिशीलता का तात्पर्य होता है एक विस्तृत चिन्तन वाले परिक्षेत्र में किन्ही विशेष विचारधाराओं एवं भावबोध को लेकर की जाने वाली रचनाओं का लीक से हट कर परिवर्तित भावभूमि पर आधारित कथ्य को अपनाना और प्रबुद्ध जागरूकता के साथ उसको अभिव्यक्ति देना ।

भारतीय मनीषा के नव जागरण का प्रभाव सभी क्षेत्रों जैसे शिक्षा, विज्ञान, अर्थतंत्र समाजशास्त्र के साथ साथ साहित्य में भी पड़ा और अब साहित्य का क्षेत्र जन जीवन के यथार्थ और उसकी विसंगतियो तक भी विस्तृत हुआ । किन्तु इस यथार्थ का यथातथ्य चित्रण ही इसका उद्देश्य नहीं रहा वरन् उसका सुधारात्मक स्वरूप भी विसंगतियों के चित्रण के साथ–साथ प्रत्यक्ष होता रहे यह साहित्य में प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक बना ।यथार्थ की सीधा सम्बन्ध उस दृष्टि विलास से है जो करणीयता को उन्हीं सीमाओं में आबद्ध कर देता है जो उसके निर्वहन के लिये प्रयत्क्ष दिखाई देती हैं परन्तु जब वह दृष्टि प्रगतिशीलता की ओर बढ़ती है तो वे सीमायें टूट जाती हैं और उसमें वे आयाम सम्मिलित होने लगते हैं जो दूर दृष्टि, अग्रगामिता, सुधार, विकास व नई चेतना के साथ आते हुये अवांछनीयता के त्याग को अपरिहार्य बना देते हैं और इस प्रकार उस प्रगतिशील अभिव्यक्ति को नई ऊर्जा व नई धार प्राप्त होती हैं ।

श्री "बौखल" इस अर्थ में पूरी तरह प्रगतिशील विचार धारा के पोषक हैं । वे अपने रचना कर्म को गंभीर सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने वाला मानते हैं । उनका कवि इस प्रकार समाज के भीतर समायी हुई अन्तश्चेतना व अन्तर्प्रेरणा की पर्तें खोलता चला जाता है । कवि की इस वैचारिकता की पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से क्रियाशील रहने वाले तत्व इस प्रकार से देखे जा सकते हैं :–

1. पारंपरिकता से हट कर जीवन दर्शन निर्धन कृषक,मजदूर पर केन्द्रित हुआ है ।
2. पूंजीवाद एवं शोषण वर्ग, उनकी प्रतिक्रिया समाज पर ।
3. शोषित एवं सर्वहारा वर्ग, उसकी दयनीयता, पीड़ा मुक्ति के अवरूद्ध मार्ग ।
4. वर्गाधारित समाज का दुरूह चरित्र विखण्डन, त्रासदी
5. सामाजिक वैषम्य और राजनीति का उस पर प्रभाव
6. राजतंत्र व प्रजातंत्र के मौलिक भेद व उनकी टकराहट
7. अर्थतंत्र का विषम विनिमय व वितरण जन्य दुश्चिन्ताएं
8. सामाजिक जीवन में तर्काधारित बौद्धिक चेतना का प्रतिफलन
9. जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, विज्ञान की पक्षधरता
10. अभिव्यक्ति की कठिनाइयाँ – निर्बल वर्ग के पक्ष में ।

पहिले प्रगतिशीलता के प्रति कवि द्वारा निर्दिष्ट उन बिन्दुओं पर मैं अपने विचार रख रही हूँ जिनमें यह ज्ञात हो कि वे कौन से पारम्परिक प्रयोग हैं जिन्हें उन्होंने छोड़ा और नयी दृष्टि का समावेश करते हुये नये प्रयोगों को स्थान दिया। सबसे प्रथम यह कि उन्होंने अपना वर्ण्य विषय दो भागों में बाँटा। एक दार्शनिक व आध्यात्मिक चेतना सम्बन्धी सिद्धांतों का व्यावहारिक धरातल पर प्रत्यक्षीकरण – जिसका वर्णन आगे के अध्याय में किया जायेगा, दूसरा वर्ण्य विषय था – मध्यवर्गीय चिन्तन व निम्न मध्यवर्ग, शोषित समुदाय और शोषक वर्ग का चरित्र। एक प्रकार से यह तत्कालीन सामाजिक संरचना जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है – के प्रति उनके विद्रोह भाव की परिणति है, उनका विद्रोह समाज के उन वर्गों के प्रति उभर कर आया है जिन्होंने निम्न व निर्धन, शोषित जनों के जीवन की पेचीदिगियों को बड़ी ही कटुता से, बड़ी निर्दयता से उलझा कर रखा है।

उपर्युक्त दोनो ही क्षेत्रों में उनके नये प्रयोग दृष्टव्य हैं। भारतीय दर्शन शास्त्रीय परिभाषाओं और सुस्थिर सिद्धांतों पर आधारित हैं। सभी आस्तिक व नास्तिक दर्शनों के साथ उनके प्रवर्तक आचार्यो की महती भूमिकाएं संबद्ध हैं उनके सिद्धान्त सुनिश्चित हैं, उनकी सीमायें हैं। यदि आचार्य शंकर का 'अद्वैत' ब्रह्म व जीव की अद्वैतता पर आधारित है तो द्वैतवाद, द्वैताद्वैत, विशिष्टा द्वैत व शुद्धाद्वैत आदि सम्प्रदायों की भी उससे कुछ भिन्नतायें लिये हुये स्थापनाएं हैं जिन पर आगे आने वाले भाष्यकारों व आचार्यो ने भाष्य व टीकाएँ लिखीं परन्तु सभी ने अपने प्रवर्तक आचार्य के सिद्धांतों पर ही विस्तृत चर्चायें की और उन्हें उन्हीं सीमाओं के भीतर प्रवर्द्धित किया, सरलीकृत किया। महाकवि 'बौखल' ने भी आध्यात्मिक व दार्शनिक चिन्तन किया पर उन्होने किसी एक संप्रदाय की परिपाटी नहीं अपनायी न ही उनके क्रियात्मक पहलुओं को अपने चिन्तन के भीतर स्थान दिया। उन्होने दार्शनिक सिद्धांतों को स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त किया और एक प्रकार से विद्रोही के रूप में माने जाने वाले कबीर पंथ की तर्ज पर अपना चिन्तन अभिव्यक्त किया। ब्रह्म और जीव, आत्मा व परमात्मा के अविच्छेद्य संबंध पर उन्होंने स्वतंत्र रूप से बड़ी ही मर्मान्तक उक्तियाँ कही हैं जिनमें उनके विरह वर्णन को बड़ी ऊँची भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

उनके दूसरे वर्ण्य विषय में भी उनकी मौलिकता और पारंपरिकता से छूट के स्पष्ट चित्र देखे जा सकते हैं। और इसीलिये उनका साहित्य प्रगतिशील साहित्य कहा जा सकता है। कवि बौखल का रचना काल 1938 से आरम्भ होता है। यह समय हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का वह हिस्सा था जिसमें कई प्रकार के वाद एक के बाद एक आते जाते रहे। कविता के क्षेत्र में भी कई धारायें बह रही थी। एक ओर द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के सामने खड़ा हुआ छायावाद काल था जिसमें प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी तथा अन्य छायावादी कवियों द्वारा वायवी संस्पर्श से तरंगायित मूर्त अमूर्त भावों का परिस्फुटन किया जा रहा था, वहीं साथ–साथ प्रगतिवाद की आहटें भी सुनाई देने लगी थी। यहाँ कवि छायावाद की रूमानी प्रकृति से हट कर वास्तविक, यथार्थ जगत

की समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे थे । उसी समय लखनऊ में लगभग इन्ही विचारों का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रगतिशील सम्मेलन हुआ था सन् 1936 में, उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने जिसकी अध्यक्षता की थी । अपने कई आदर्शोन्मुख उपन्यास लिख चुकने के बाद उन्होंने अपना उपन्यास 'गोदान' लिखा था जिसमें भारतीय जीवन की विकट जकड़बन्दी और गरीब किसान की विपन्नता का बड़ा ही रोमांचक चित्र उपस्थित किया था । कविवर सुमित्रा नन्दन पन्त अपनी कोमल कान्त पदावली में रचित 'पल्लव' आदि रचनाओं के पश्चात् 'युगल' और 'ग्राम्या' लिख रहे थे और श्रीमती महादेवी वर्मा अपने रेखाचित्रों में 'घीसा' जैसे चरित्र को अमर कर रही थीं । स्वाभाविक है कि श्री "बौखल"के रचना कर्म में इन बदली हुई प्रवृत्तियों ने भी प्रभाव डाला था ।

उस समय देश में स्वतंत्रता संग्राम की लहर पूरे देश में चल रही थी और सन् 1942 के जन आन्दोलन की पृष्ठभूमि भी निर्मित हो रही थी । साहित्य में उस समय दो प्रकार की रचनायें प्रमुखता से स्थान पा रही थीं – एक तो देश प्रेम से ओत प्रोत राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने वाली रचनायें थी जिनमें श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सोहन लाल द्विवेदी, श्री दिनकर व सियाराम शरण गुप्त व उनके परिसर के कविगण प्रमुख थे, श्री प्रसाद के नाटक जिनमें देश प्रेम की कविताओं का समावेश था और इन्ही में महात्मा गाँधी के अछूतोद्धार जैसे आन्दोलन भी अपना स्थान बना रहे थे । दूसरी प्रकार की रचनायें वे थीं जो रूस की 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति के फलस्वरूप पूरे यूरोप में फैल रही मार्क्सवादी विचार धारा की सम्पोषक थीं और भारत में भी इस नयी लहर का पदार्पण हो चुका था । साम्राज्यवाद की जड़ें उखड़ रही थीं और उसके स्थान पर औपनिवेशिक सभ्यता अपने पैर फैला रही थी । साम्राज्यवाद जो पूंजीवाद के एकाधिकार की अन्तिम परिणित था, के प्रतिरोध में कम्युनिज्म या साम्यवाद का उदय हो चुका था, जिसमें पूंजीपतियों के निर्बन्ध शोषण व अमानुषीय अत्याचार से श्रमिक वर्ग को मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया जाता था, इस प्रकार जो श्रमिक मजदूर फैक्टरियों, कारखानों आदि में काम करते हुये उनकी दमनात्मक नीतियों के शिकार होते थे उन्हें सर्वहारा नाम दिया गया और उनके प्रति मानवीय भावनाओं को आधार बना कर उनकी पक्षधरता की रचनायें होने लगी थीं । इस सर्वहारा वर्ग के समर्थन में कवियों, लेखकों का एक बहुत बड़ा वर्ग खड़ा हो रहा था जो अपने लेखन के द्वारा शोषितों की सहानुभूति में समाज को प्रभावित कर रहा था ।

इस प्रकार श्री "बौखल" ने कवि कर्म में व्यवहृत तत्कालीन काव्य पद्धतियों से अलग हट कर अपनी रचनाधर्मिता का उपयोग इसी प्रकार की प्रगतिशीलता में किया और अपने काव्य में निर्धन, कृषक, मजदूर व निम्न वर्ग के कामगारों के प्रति अपने हृदय की सम्पूर्ण सहानुभूति को स्थापित किया । मध्यवर्ग उनकी सहानुभूति का पात्र नही रहा क्योंकि वहाँ उन्हें स्वार्थपरता व भेदभाव का आधिक्य दिखाई दिया था । यह मध्य वर्ग वह था जो समाज में अच्छी तरह से खाता पीता था व पूंजीपतियों के चंगुल से भी मुक्त था और उसका शारीरिक व भावनात्मक शोषण नहीं होता था ।

तब मध्यवर्ग क्या करता था, वह द्वन्द्वों को जन्म देता था और झगड़े उत्पन्न करता था —

मध्यवर्ग द्वन्द्वी जगत, राखे द्वन्द्व मचाय ।
इन्हें पालि विज्ञान बहु , श्रमिक मरै अघाय ।। (1)

मध्य वर्ग कौतुक करि, भरै आपनो पेट
ज्ञानी विज्ञानी बनो, सबहिन लेत लपेट ।। (2)

इस मध्यवर्ग का चरित्र चंचल था, वह अवसर वादिता का शिकार था, जहाँ लाभ दिखा वही वह कर्तव्य अकर्तव्य सब करने को तत्पर हो जाता था —

मध्य वर्ग स्थिर नहीं, विलसत नाना बाँध ।
अलि भोगी जोगी भये, खाय खुपड़िया राँध ।। (3)

(1) <u>शोषक वर्ग</u>

श्रमिक और निर्धन किसान पर कवि ने सर्वाधिक स्नेह दिखाते हुये उनके शोषण पर बड़ी ही मार्मिक उक्तियाँ लिखी हैं । शोषक वर्ग का चरित्र बहुत ही निर्दय और श्रमिक का रक्त मांस तक चूस डालने वाला होता है वह श्रमिक को मनुष्य ही नही समझता —

शोषक पशु समाज बनायो
श्रमकनि पकड़ि लगावै कोड़ा, फिर पाछे समुझायो
करत उपेक्षा न्याय आर्थिक, जटिल अर्थ उपजायो
धन धरती के श्रमिक स्वामी, निज अधिकार जतायो
शोषण लहरी पिये वारूणी, गिरि नरदा मुख बायो
"बौखल" भौमिक बनो कुटुंबी, सुख समूह अपनायो ।। (4)

वही शोषक वर्ग अपने लिये सभी सुविधायें जुटा कर आराम का जीवन बिता रहा है —

शोषक संघ बनाय कै, करि शोषण बहु रूप
अपना सोवै सेज पै, श्रमिक ढकेले कूप ।। (5)

स्वर्ण शोषक श्रमिक धन, दुखद धर्म विज्ञान
विनिमय वितरण दोष मय, थापित संघ महान ।। (6)

शोषण हित सिद्धांत बहु, अंग लपेटे नाग
किन्तु विषम विष वारूणी, गाय अनेकन राग ।। (7)

नारायण अंजलि भाग – I :— (1),(2) दो. सं.—1609,1610 पृ.क्र.—122,
(3)दो.सं.—1692 पृ.क्र.—128,
नारायण नैवेद्य :— (4)पद सं.—112 पृ.क्र.—33,
नारायण अंजलि भाग – II :—(5) दो.सं.—1049पृ.क्र.—81,(6) दो.सं.—996 पृ.क्र.—77
(7) दो.सं.—27 पृ.क्र.—3

संस्कार सामन्त के, प्रकृति गहे परिधान
भूखो श्रमिक जग में जियै, विधि रचि विकट विधान ।। (1)

कवि ने इस तरह से दूसरे के श्रम पर राजसुख भोगने वालों को परोपजीवी कहा है –ये परोपजीवी, जिसका जीवन पथ सुगम है, अपनी छाती ठोंक ठोंक कर नये नये विधान रचता है ताकि उसका मार्ग इसी तरह निर्द्वन्द्व व निष्कंटक बना रहे –

परोपजीवी जीवड़ा, जग में करत अताव
अचरज की बतियाँ करै, जँह तँह डारि पड़ाव ।। (2)

परोपजीवी जीवड़ा, करि निज वक्ष मलीन
जँह तँह अति दौरो फिरै, खोजै खोजि नवीन ।। (3)

इस परोपजीवी का सबसे बड़ा धर्म वही है जहाँ से उसका हित सधता है इसी से उसकी नीतियाँ सदा पहेली बनी रहती हैं –

परोपजीवी हित सधै, सोई धर्म धुरीण
याते अर्थ पहेलिका, धारत रूप नवीन ।। (4)

परोपजीवी सेज पै, सोवे गोड़ पसारि
सेवक श्रमजीवी खड़ों, पहिरा देत निहारि ।। (5)

परोपजीवी जामि जग, विषधर नाग नचाय
मरै न माहुर खाय अलि, औषधि अमित जनाय ।। (6)

जिसे कवि ने परोपजीवी कहा है, अन्य कवियों की दृष्टि मे वह कैसा है इसकी एक बानगी –

हमने बल से बाहें जकड़ीं / जैसे हम आलिंगन रत हों
मेरे दिल से लोहू टपका / तब तुम लुढ़के
फिर क्या होता ?
एक व्यक्ति ही मुंह की खाता
एक व्यक्ति ही गीता गाता
और पराजित व्यक्ति तुम्हीं हो । (7)

नारायण अंजलि भाग – I :– (1) दो.सं.–1055पृ.क्र.–79,
(2),(3)दो.सं.–816,818पृ.क्र.–61,
(4),(5),(6) दो. सं.–797,799,804 पृ.क्र.–60,
(7) (रूसी कवि निकोला वाप्त्सरोव की कविता)

दूसरी बानगी—शोषक की, भले ही वह किसी भी रूप में हो —

ये कामचोर, आराम तलब मोटे तोंदियल, भारी भरकम
हट्टे कट्टे सब डाँगर ऊंघा करते हैं
हम चौबिस घंटे हँफते हैं ।
है भूख बड़ी लम्बी चौड़ी
दस बीस जनों का खाना सब
ये एक अकेले खाते हैं
दिन भर ही पागुर करते हैं
हम भूखे ही रह जाते हैं ।
हट्टे कट्टे डाँगर डकारते रहते हैं
क्षय रोग हमें भख जाता है ।
पेड़ों की लम्बी छाया में / ठंडी बयार के झोकों में
दुख दुनियाँ से आँखें मीचे
सपनों से रीझे रहते हैं
हम तो काँटों में रूँधते हैं । (1)

शोषक की अहम्मन्यता यह भी होती है कि वह दूसरों का भाग्य विधाता भी बनने की लालसा सँजो लेता है, स्वयं को सब प्रकार से समर्थ मानकर वह खोटी बुद्धि वाला दूसरों के जीवन से खिलवाड़ करने से भी नही चूकता —

बाबा परोपजीवी कारो
मनोविनोद की साधि पहेली, रक्त चूस तन डारो
श्रमिक वर्ग को बनो हितैषी, बैठो कक्ष फुँकारो
देखत अपनी सुख सुविधा को, नीति नवीन विचारो
भाग्य विधाता बनो समाजिक, लिखिनित पटल लिलारो
कारी करतूती अनुभूति, मसि ठप्पा दै कारो
अपनो खेलि अहेरी अँधरै, औरन करत उजारो
मनमानो धर लूटि आपनो, परमेश्वर बनि सारो
"बौखल" या दल जनम को बैरी, श्रमिकै कौन सहारो । (2)

---

(1) (जन कवि केदार नाथ अग्रवाल की कविता)

नारायण नैवेद्य :— (2) पद.सं.–1046 पृ.क्र.– 302

शोषक का <u>सबसे बड़ा अस्त्र है पूंजी,</u> इस पूंजी की कठिन धार से वह पूरे समाज को ठगने की व्यवस्था बनाये रखता है और श्रमिकों के हितों को काटता रहता है, निर्धन के लिये सिवा उस धार से कटने के कोई और मार्ग नहीं है । वही पूंजी समस्त व्यवहारों के मूल में अचल होकर बैठी है –

पूंजीवादी नीत जग, ठगियन को बाजार
सुख सम्पदा समाज की, सबै विनाश आचार ।। (1)

पूंजीवादी मनोवृत्ति, कुचला दीन बढ़ाय
श्रम धन लूटै रात दिन, श्रमिक मरै अघाय ।। (2)

लोकतंत्र की ओट में, पूंजीवाद प्रधान
साम्प्रदायिकी मोर्चा, जहँ–तहँ खोल दुकान ।। (3)

इस पूंजी ने समाज में इस प्रकार की अर्थव्यवस्था व उसका असमान वितरण फैला दिया है कि सब ओर निर्धन को दुख ही दुख है –

जोगिया दुखी देखि दुख भारी
नहि झुपड़िया जन साधारण, छई बदरिया कारी
परिश्रमी नहि भोजन पावै, नारी देह उघारी
भूमि तीन बीघा पुरूखन कै, छीन लीन पटवारी
कइसे पेट जियाउब आपन, रोगी घर महतारी
चरितवान भुँई सबइ समेटै, यही न्याय सरकारी
स्वामी दास पुरा परिपाटी, जीवन दुखी अपारी
चौबीस गुणा अर्थ विषमता, कितनो मनुज उदारी
"बौखल" ऐसी नीति विलक्षण, प्राण जाय बलिहारी ।। (4)

शोषक का <u>दूसरा अस्त्र है अर्थतंत्र पर आधिपत्य</u> । अर्थ तो जीवन व्यापार की आधार शिला है , मानव जीवन अर्थ व्यवस्था से प्रत्येक स्तर पर बँधा हुआ है, कोई कार्य योजना इसके बिना सफल नहीं हो सकती। अर्थ की सम्पन्नता व विपन्नता ही समाज के उन्नत व अवनत होने का सबसे बड़ा प्राण है । लेकिन वही अर्थ व्यवस्था जब कुटिल हाथों में पड़ जाती है तो वह सिवा अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न और दमन के और कुछ नहीं करती, यह समर्थ को और समर्थ व विपन्न को और विपन्न बनाती है – निर्धन श्रमिक एड़ियाँ ही घिसता रहता है –

अर्थ व्यवस्था आँधरी, परसि पखेरू भात
मरि मानव एड़ी घिसत, लिखे भाग्य दिन रात ।। (5)

नारायण अंजलि भाग– I :– (1) दो.सं.–725 पृ.क्र.–54,(2) दो.सं.–844 पृ.क्र.–63,
(5) दो.सं.–1325 पृ.क्र.–100
नारायण अंजलि भाग– II :– (3) दो.सं.–1085 पृ.क्र.–84,
नारायण नैवेद्य :– (4) पद सं. –715 पृ.क्र.–206.

अर्थ व्यवस्था मानवी, बर्बर भोग विलास
पशुवत फिरै बजार में, श्रमिक उदर उदास ।। (1)
अर्थवाद ऐसो बढ़ों, आध्यात्मिक अवसान
गई समाजिक साधना, घर—घर तीर कमान ।। (2)

अर्थ व्यवस्था का साधन है मुद्रा, यही विनिमय और वितरण का माध्यम है । इस मुद्रा के लिये मनुष्य पशु बन जाता है, जो न करना हो वह करता है । छल, कपट, दंभ, द्वेष व पाखण्ड सब का इस मुद्रा से घनिष्ट सम्बन्ध है —

मुद्रा ऐसी मोहनी, राख सबै बिलमाय
फूट वैर रचि रारि नित, तोरै शिष्य दिखाय ।। (3)
मुद्रा तोरे कारनै, सब जग मूंड मुड़ाय
सबै स्वाद नित दायिनी, नव सिद्धांत रचाय ।। (4)
अलि मुद्रा छलिया छलै, श्रम धन छलो न जाय
जीवन धन संग्रह सुखद, नित समाज बल पाय ।। (5)

शोषक तो बहुरूपिया होता है, अपने हित साधन के लिये वह कब क्या रूप धर ले कहना अकल्पनीय है । कभी वह नेता बनकर जनता को लूटता ठगता है तो कभी पंडित मुल्ला बनकर, कभी ज्ञानी विज्ञानी बन जाता है, भ्रष्टाचार की पोटरी ढोने वाला बनकर सामने आता है, कवि का व्यंग है कि —

नेता सो नाता करो, जो चाहो धन धाम
भ्रष्टाचार की पोटरी, शीश धरी सुर धाम ।। (6)
कोऊ साहूकार बनि, कोई बनि असि चोर
कोई भोगे भोग बहु , कोइ सहै दुख घोर ।। (7)

शोषक का तीसरा अस्त्र है बुद्धिवाद । मानव देह में उसके समस्त क्रिया व्यापारों को सन्तुलित आयाम प्रदान करने का सर्वोत्तम साधन है उसकी बुद्धि । यह मानव को चिन्तन की शक्ति और चयन की सामर्थ्य प्रदान करती है— सांसारिक देह भोग का परिचालन इसी के शुभ पक्ष के द्वारा होता है अन्यथा तो वह भोजन, शयन, मैथुन का पिण्ड मात्र बन कर रह जाये । मानव यष्टि एक प्रकार का जटिल और सुकोमल संयत्र है जिसमे पशुबल, मनोबल, बुद्धिबल और आत्मबल चार प्रकार के बल पुंज हैं । बौद्धिक क्षमता ही उसे अन्य जीवधारियों से भिन्न बनाती है । यह तो बुद्धि पक्ष का ही कौशल है जो उसे पशुबल से आत्मबल की ओर लाती है ।

यहं तो बुद्धि का शुभ पक्ष है परन्तु जहाँ पशुबल की उन्मुक्तता का प्राधान्य हो जाता है वहाँ यह बुद्धिवादिता मानव के लिये अभिशाप बन जाती है । श्री "बौखल" ने इसी बुद्धिवादिता के पशुबल

नारायण अंजलि भाग— I :—(1) दो.सं.—1194 पृ.क्र.—90,(2) दो.सं.—1303पृ.क्र.—98,
(3),(4)दो.सं.—1620, 1621 पृ.क्र.—123
(5) दो.सं.—1285 पृ.क्र.—97
नारायण अंजलि भाग— II :— (6) दो.सं.—1224पृ.क्र.—94,(7) दो.सं.—1259 पृ.क्र.—97.

पक्षों को उजागर करते हुये निर्धन, दुर्बल पक्ष पर इसके प्रभाव को दर्शाया है –

बुद्धिजीवी साँकर लिये घेरत फिरत समाज
प्रथम साधि हित आपने, नाना रूप रँग साज ।। (1)
बुद्धिजीवी शोषण करें, सहकारी सन्धान
पूँजीवाद हो सफलजग, श्रमिक मरै उतान ।। (2)
बुद्धिजीवी की साधना, बौद्धिकता महान
गठन सामाजिक फलित फल, श्रमिक परो उतान ।। (3)
शोषक बुद्धिजीवी भयो, श्रमिक भयो उदास
"बौखल" जीवन विषमता, कबहो उदय प्रकाश ।। (4)

उन्होंने एक सरल श्रमिक के ह्रदयोद्‌गारों को प्रकट करते हुये सीधी सी बात पूछी है कि सारा श्रम जब वह करता है तो बुद्धिजीवी महान क्यों है ? –

बुद्धिजीवी सुन बातियाँ, मानव सबै समान
अर्थ भोग सृजन श्रमिक, तुम क्यों बने महान ।। (5)

प्रसिद्ध जन कवि केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है –

"..... प्राचीन समय का संपूर्ण काव्य जिज्ञासा, उद्‌बोधन, वन्दना और अपनी रक्षा की कामना का वृहत्तर काव्य है । धरती का सीना चीर कर जो भारतवासी अन्न उपजाते थे, उसे अपना नहीं ईश्वर का, धरती माता का अन्न समझते थे ।........एक समय वह आया जब मनुष्य ने धरती को अपनी सम्पत्ति समझा । परिणाम यह हुआ कि तब मनुष्य की महत्ता उसके कम या अधिक धरती के मालिक होने से मापी जाने लगी और उस भूमि पर निर्वाह करने वाले उस भूमिपति के दास हो गये, वे उसकी कृपा के अन्न पर पलने को विवश हुये ।"

"पिछला समस्त भारतीय साहित्य मात्र ईश्वर, भूपति, पुरोहित, भूपति और व्यापारियों के संसार की मानसिक प्रक्रिया है –इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता । जब से ईस्ट इंडिया कंपनी के चरण पड़े तब से लेकर आज तक सबसे प्रबलतम शक्ति साम्राज्यवाद की ही हुई है, और इसी दुर्दम साम्राज्यवाद की कुटिल नीति से नत्थी हो कर राजे–महाराजे और पूंजीपति देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में रोड़े अटकाते रहे हैं । वह नहीं चाहते कि साम्राज्यवाद जाये । पूंजीवाद तथा सामंतवाद दोनों ही नहीं चाहते और इसी में अपनी भलाई देखते हैं कि एक तीसरी शक्ति नीचे से उठती हुई जनता को कुचलती रहे ताकि वह जनता असफल रहे , अन्यथा सफलता प्राप्त करके जमीन उसकी हो जायेगी जो जोतेगा, और मिलें उसकी हो जायेंगी जो उसमें श्रम करेंगे । अतः अब देश की विकासोन्मुख अर्थनीति के कारण वर्ग बन गये हैं जो एक दूसरे के विरोधी हैं –
(1)जमीदार और किसान(2)मिल मालिक और मजदूर(3)साम्राज्यवाद और स्वतंत्रताप्रेमी वर्ग ।"(6)

नारायण अंजलि भाग–II:– (1) दो.सं.–1245पृ.क्र.–96,(2) दो.सं.–1176 पृ.क्र.–91
(3)दो.सं.–1187पृ.क्र.–92,(4)दो.सं.–1171पृ.क्र.–90
(5) दो.सं.–1230पृ.क्र.–95.

(6) (जन कवि केदार नाथ अग्रवाल – 'युग की गंगा' की भूमिका से)

फिर कुछ शक्तिशाली अधिपति, धर्माधिकारी, व्यापारी और खर्चीले सांमंतो का समय आता गया और उन्हीं की आवश्यकतानुसार उनकी प्रशस्ति या विवशता में काव्य–रचना होती रही । फिर साम्राज्यवाद का प्रसार सारे देशों में फैला और पूंजीवाद उसका प्रबलतम साधक बना । इस प्रकार जब जो साहित्य रचना होने लगी उसमें उपर्युक्त वर्गो का स्पष्ट विरोध प्रत्यक्ष देखने को मिलता है । अब साहित्यकार की सहानुभूति किसान, मजदूर और स्वतंत्रता प्रेमी वर्ग की ओर हो गई है और प्रगति शील साहित्य की रचनाएं सामने आई । कितने ही जनवादी कवियों ने मजदूरों और कृषकों पर होने वाले अमानुषीय अत्याचारों व पूंजी के प्रतिपक्ष में सशक्त रचनाएं की । श्री बौखल के काव्य में इन सभी प्रवृत्तियों का तथा इनसे इतर भी जो सामान्य जन के शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न के कारक बनते थे –पर साधारण तथा भरपूर व्यंगात्मक वार किये हैं । विप्रवाद भी उनमें से एक है –

विप्रवाद ऐसो बढ़ो, नाना भये विवेक
अलि समाज मे विभिन्न पथ, नहि विचार मत एक ।। (1)
विप्रवाद घर–घर रमै, करै आपनो काम
बिन जाने मानैं सबै, देत गयें सुरधाम ।। (2)
मानव सबै समान जग, फिर क्यों उपजि कुलीन
भेदभाव के कारणे, करौ विचार प्रवीण ।। (3)
त्याग तपस्या कीन बहु, नहि पायो सुरधाम
पंडित तोरे राज में, तन में रहो न चाम ।। (4)
आडम्बर घर–घर धरो, कोई करै नहिं काम
लम्बो तिलक कपाट में, काठ माल मुख राम ।। (5)

इसी तरह कवि की दृष्टि उस ओर भी कठोर भर्त्स्नायें करती हुई उठती हैं जहाँ व्यक्तिवाद ने संपूर्ण समाज की रोटी रोजी छीन कर अपना एकाधिपत्य जमा रखा है जिससे श्रमिक का अपराध बोध बढ़ा है–

भूखो माँगे रोटियाँ, नहि गुलाब गल हार
व्यक्तिवादी नहि यहै, अलि सामाजिक प्यार ।। (6)
व्यक्तिवादी देश में, नैतिकता अपराध
रहे कलेश निरन्तर, बौखल पियत अगाध ।। (7)
शोषण करै समाज को, व्यक्तिवाद सिद्धांत
राग द्वेष ईर्ष्या विपुल, व्याप्त दशा विक्रान्त ।। (8)

नारायण अंजलि भाग–II:– (1) दो.सं.–1164पृ.क्र.–90,(2) दो.सं.–1151 पृ.क्र.–89
(3)दो.सं.–11817पृ.क्र.–91,(4)दो.सं.–1211पृ.क्र.–93
(5) दो.सं.–1153पृ.क्र.–89,
(6), (7),(8) दो.सं.–1139,1140,1142पृ.क्र.–88,

व्यक्तिवाद को घूंघरो, घर–घर बजि करि रारि
सहि समाज दुख विविध नित, एकाधिकार दिवारि ।। (1)

वर्गाधारित समाज के दुरूह चरित्र का वर्णन कवि ने बड़ी मर्मान्तक व्यथा को प्रत्यक्ष करते हुये किया है । जैसा कि जनकवि केदार की पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि बुद्धिजीवी, पूंजीपति, भूस्वामी और पुरोहित वर्ग की अधिकार लिप्सा के भीतर कुटते पिसते किसान मजदूर व्यौपारियों के भी चंगुल में फंसे रहते हैं – वे चोर–चोर मौसेरे भाई बनकर परस्पर के षड़यंत्रों से उन्हीं दीन–हीनों को चूसते रहते हैं –

वंचक सों वंचक मिलै, संचय करै अपार
दुखिया रहे समाज नित, मचो अधम व्यापार ।। (2)
बनिया करि व्यौपार नित, बाँझिन धेनु धुखार
मंच बैठि माला जपै, लै फूहर परिवार ।। (3)
बनो महाजन मन्थरी, आडम्बर अपनाय
विश्वम्भर अम्बर रमै, रहो ताहि जनमाय ।। (4)
बनि हितुआ हित आपने, करियौगुण व्यौपार
करै घात विश्वास दै, सुगम जानि आचार ।। (5)

वर्ण व्यवस्था की उपज है समाज का विखण्डन। विश्रृंखलित समाज न तो कोई एकमत की व्यवस्था को जन्म दे सकता है न ही उस पर अमल किये जाने तथा उससे प्राप्त होने वाले लाभ पक्ष को ही देख सकता है और इस त्रासदी को भोगने वाला निर्बल ही होता है क्योंकि समर्थ को तो कहीं भी कोई भी असुविधा नहीं होती – तुलसी ने लिखा है –

"समरथ को नहिं दोष गुसाई । रवि पावक सुरसरि की नाई ।।

परिणाम होता है कि –

वर्ण व्यवस्था मानवी, अतिशय भेद बढ़ाय
लै अपनी सुख संपदा, "बौखल" कूप समाय ।। (6)

(2) <u>शोषित श्रमिक वर्ग</u>

श्री."बौखल" की प्रगतिशीलता का दूसरा दृष्टान्त है, शोषित श्रमिक वर्ग की अन्तहीन त्रासदी का भोगा हुआ यथार्थ– जिसकी पीड़ा सदियों तक मूक बनी रही, जिसने दासत्व के भोग को अपनी नियति मानकर उसे शिरोधार्य किया, जो अपने मनुष्य होने की प्रतीति को भी भूलता रहा, पशुओं की

नारायण अंजलि भाग–II :– (1) दो.सं.–1120पृ.क्र.–86,
नारायण अंजलि भाग–I :– (2) दो.सं.–457पृ.क्र.–33, (3) दो.सं.–492पृ.क्र.–36,
(4) दो.सं.–561पृ.क्र.–41, (5) दो.सं.–514पृ.क्र.–38,
(6) दो.सं.–528पृ.क्र.–39.

कोटि में गिना जाता रहा और यदि कभी मानव रक्त देह में होने के कारण उसमें उबाल आया तो धर्म और मर्यादाओं के छीटों से उसे वहीं का वहीं ठंडा कर दिया गया । सम्पन्न और समर्थो के द्वारा वह वर्ग अपने ही खून के घूंट पीने को विवश किया गया । "बौखल" ने इस भोगे हुये यथार्थ का जैसा ज्वलन्त चित्र अपने छोटे कलवर के दोहे और बड़े कलेवर के पदों में उतारा है, वह श्लाघनीय और अविस्मरणीय है ।

दुर्बल के पक्ष में आवाज उठाने का प्रारम्भ साधु सन्तों की वाणी से हुआ था । जिनमें से लगभग सभी संत उस कटु यथार्थ से रूबरू हो चुके थे और इस असमानता, वर्ग वैषम्य, जातिवाद, और ऊँच नीच के पाटों के बीच पिसते रहे थे ।

दुर्बल को न सताइयें, जाकी मोटी हाय
मुई खाल की स्वांस सों, सार भसम है जाय ।। (1)

मरे चमड़े की धौंकनी से निकली तेज साँस लोहे तक को गला देती है वैसे ही इस दूर्बल की आह भी सताने वाले का नाश करने में समर्थ हो सकती है । इसी प्रकार माटी और कुम्हार के माध्यम से दुर्बल की शक्ति और सबल के अहं को शून्य कर देने वाली सामर्थ्य को प्रकट किया गया था –

माटी कहे कुम्हार से तू क्या रूंधे मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा –मैं रूंधूंगी तोहि ।। (2)

इस दोहे में रचनाकार की दार्शनिकता के साथ साथ अस्तित्वहीन समझी जाने वाली अणुता की जीवटता के प्रबल पक्ष का समर्थन भी है । परन्तु यह निर्बलता और शक्ति के बीच नियतिवाद को मान्यता देने वाले विचार थे, ईश्वर व समय के चक्रवत् चलने वाले परिणामों पर आस्था के प्रतीक थे, इनमें मानवकृत जिजीविषा और उसकी पूर्तिके लिये किये गये ठोस प्रयत्नों की अनुंगूज तीव्र नहीं थी । इनका प्रारम्भ तो विश्व के अन्य देशों में हुई औद्योगिक क्रांतियों के फलस्वरूप प्रतिक्रया से उपजे विचारों से हुआ था, इसलिये बदली हुई परिस्थितियों के आइने में इनका स्वरूप बदला और शब्दों को भी दीन, हीन, दुर्बल के स्थान पर शोषित, दमित, पीड़ित और सर्वहारा नाम मिले । समाज का एक बहुत बड़ा और मानवीय दृष्टिकोण रखने वाला वर्ग इनकी सहानुभूति व सहायता के लिये आगे आया और इस प्रकार के चिन्तन को आत्मसात करने वाली विचारधारा का नाम साम्यवाद हुआ । इसका उद्‌गम स्थान तो रूस रहा पर इसका प्रसार विश्व के अन्यान्य देशों में हुआ । इसे मार्क्सवादी चिन्तन कहा गया, भारत में इसके समर्थन में राजनीतिक व साहित्यक दोनों ही क्षेत्रों में जनभागीदारी बढ़ी और 'जन' से जुड़ने के कारण ये कवि व लेखक जनवादी कहलाये । कहना न होगा कि श्री "बौखल" के विचारकेन्द्र में इसी जनपक्षधरता का शीर्ष स्थान है । शोषित की शोषक के साथ होने वाली सापेक्ष्यता निरन्तर बनी रहती है अर्थात शोषित सदैव शोषक के द्वारा

---

(1),(2) कबीर दास

पीड़ित किया जाता है, इस उत्पीड़न के विभिन्न रूप हो सकते हैं –

आपै धातु बटोर जग, करि मुद्रा विस्तार
भूखन मरत किसान अजि, भोजन करें लबार ।। (1)

अपने आँगन बैठि कै, बाँटति धान पयार
गयो पीसनो रोंधनो, सोवत पैर पसार ।। (2)

शोषक भ्रष्टाचार जग, संहिता बन आचार
शोषण प्रतिभा प्रबल, हो अनुदार विस्तार ।। (3)

ठगियों वा शोषण का व्यवहार व बातें तो समानता की होती हैं परन्तु उनकी धूर्तता उस समय प्रकट हो जाती है जब लोकतंत्र का नाम लेकर वे सर्वभक्षी कार्य करने लगते हैं –

जीवित लोकतंत्र के नामा
ठाठ बनाइ डरावै श्रम कहिं, पहिर रेशमी जामा
अचकन पहिन पोथ दरियाई, बगुला रंग पैजामा
कमियन सों बँगला सजवावै, देत अधूरो दामा
भूखो मानुस रोटी माँगें, कला करै जस गामा
आधो पेट सईस बिचारो, द्वार बजाय दमामा
तुरही फूंकी तुरंग नचावे, बनो पहरूआ धामा
खुराफात लिखि शाही 'बौखल' कासिद ढाय पैगामा
दुखिया लोक दोष दे काहि, लोकतंत्र संग्राम ।। (4)

दृष्टव्य है कि कवि "बौखल" का समाज ग्रामीण समाज रहा है अतः उनके शोषित के प्रति शोषकों के व्यवहार भी उसी पृष्ठभूमि से उठाये गये हैं और ग्रामीण समाज में चलन में आने वाले रीतिरिवाजों से ही उन्हें दर्शाया गया है जैसे इस पद में एक साईस (एक्का ताँगा चलाने वाले) का वर्णन है जो अपने मालिक के दरवाजे पर ढोल बजाकर घोड़ी नचवाता है अथवा उनके घर की चौकीदारी करता है, यद्यपि वह भूखे पेट है परंतु उसे ये काम करने ही करने हैं अन्यथा उसके खिलाफ शाही (मालिक का) पैगाम (सजा) आ जायेगा ।

एक सभ्य कहे जाने वाले ग्रामीण समाज में ऊपर से सफेदपोशी व भीतर से कुटिलता की कालिमा लिये हुये चरित्रवालों का कैसा भव्य चित्र मिलता है इस पद में जहाँ एक संघर्षशील को

नारायण अंजलि भाग–I :– (1) दो.सं.–1212पृ.क्र.–91,(2) दो.सं.–1197पृ.क्र.–90,
नारायण अंजलि भाग–II :– (3) दो.सं.–35पृ.क्र.–3.
नारायण नैवेद्य :– (4) पद सं.–621 पृ.क्र.–179.

मौत भी अपनी सी नसीब नहीं होती जिन्दगी की तो बिसात ही क्या है —

जुगिया सभ्य समाज रचाया
एकै पथ में दुइ पथ राखै, कैसा भेद छिपाया
चरितवान जन एक साधारण, एकै काया माया
बुद्धिजीवी जग बनो विधायक, भेद नीत निर्माया
श्रमधन समुझि राजधन विनिमय, सबै बाँटि धन खाया
श्रमिक माँगें रोटी कपड़ा, तुरत न्याय समुझाया
सगरो उत्पादन धरि कोठा, दैवन जल बरसाया
स्वान मौत मरि जन साधारण, दुख सहि सीस न छाया
क्षुधा पेट अँखियन भरि आँसू, ऐसा जुलुम समाया ।। (1)

शोषण की निरन्तरता ऐसी दीर्घजीवी होती है कि वह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती हैं । एक निर्धन कामगार के बाप ने भी बेगार में अपनी जिन्दगी बिताई, माँ ने आँधी, पानी, बयार में अपनी काया स्वाहा कर दी और बेटे को भी वही सब आधी मंजूरी में करना पड़ता है । इस पद में ग्राम्य जीवन के परम्परागत पेशे वाले मजदूरों का बड़ा कारूणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है —

परोपजीवी करि उपकारा
मोरे बाप से ताल खुदाइन, घाट बँधाइन न्यारा
मोर माता भरि नीर अमासा, सहि पानी बौछारा
माली बाग लगाय सींच नित, दास बनो परिवारा
माटी खोदत उमर बुढ़ाई, भँड़वा गढ़त कुम्हारा
जुलहा पाट पटोरा राचै, पनही रचै चमारा
स्वामी की रक्षा हित "बौखल" पहिरा रैन पुकारा
गन्ध बगारि सोय उपजीवी, झाड़ै स्वपच दुवारा
बनो समाज परोहन रोवै, बुद्धिजीवी अधिकारा ।। (2)

एक स्वामी की सेवा पूरे गाँव के कामगार पीढ़ियों तक करते रहने को अभिशप्त हैं । पिता ने तालाब खोदा, घाट बाँधे, माँ ने जीवन भर उसके घर पानी भरा । माली बाग बगीचा सीचंता रहा । कुम्हार उस घर के लिये पानी भरने के बर्तन गढ़—गढ़ देता रहा । जुलाहा पाट की डोरियाँ बुन कर देता रहा और चमार घर भर के लिये जूते बनाता रहा । रात भर पहरा दिया किसी गरीब चौकीदार ने व मेहतर ने द्वारों पर झाडू लगाई जबकि इन सब को भूखे पेट रख कर वह स्वामी गंदी वायु छोड़ता हुआ पैर पसारे सोता रहा । जिनके सिर पर न छानी न छप्पर, न तन पर वस्त्र न पेट में अन्न का दाना, ऐसे कामगारों की पूरी फौज एक पूंजी के मालिक की चाकरी में लगी रही और समाज रोता रहा ।

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.—1018 पृ.क्र.—293,(2) पद सं.—480पृ.क्र.—139.

इस पूरी व्यवस्था को धर्म के ठेकेदारों ने भी उचित ठहरा दिया ताकि उनके पास आगे मुँह खोलने के लिये कुछ न रह जाये –

अर्थ हरण के तीन जन –वेदहु दीन बताय
श्रमिक फिरै बाजार में, नहि सतुआ मुख पाय ।। (1)
मुद्रा ऐसी मोहिनी, राख सबै बिलमाय
फूट, बैर रचि रारि नित, तोरै शिष्य दिखाय ।। (2)
धर्म, न्याय अरू राजस्व, बँधे आर्थिक डोर
पूंजीवाद प्रधान हो, दीन समाज मरोर ।। (3)

स्पष्ट है कि अर्थ हरण के तीन साधनों–धर्म, न्याय व राजस्व ने मिलकर हर श्रमिक समुदाय को अर्थात पूरे समाज की रीढ़ को मरोड़ दिया है । नीचे दिए उद्धरण से भी यही ध्वनित होता है –

"इसलिये भारत में हमेशा दो संस्कृतियाँ पलती रहीं, एक अभिजात-सवर्ण और दूसरी दलित-अवर्ण । अभिजात संस्कृति- जो दंभी की हद तक स्वाभिमानिनी थी, बुद्धि विलासिता की हद तक बौद्धिक, रस आनन्द और ऐश्वर्य की हद तक स्वान्तःसुखायवादी, कला-कला की पक्षधर, बर्बरता की हद तक व्यक्तिवादी एवं सामूहिकता से कटी, जीवन के यथार्थ से अलग-थलग, समाज और देश से विमुख, केवल अपने और अपनी जाति की समृद्धि से जुड़ी । देश, राष्ट्रीयता या अन्य कोई मूल्य इनके आगे तुच्छ रहा । लक्ष्य रहा व्यक्ति की समृद्धि का मोदन । राजा, ज़मींदार, सामन्त, विशिष्ट का सत्ता में वर्चस्व, अधिकारों में वृद्धि, जर-जमीन और जोरू पर कब्जा । सत्ता में वर्चस्व पाने के लिये ही धार्मिक अनुष्टानों का पालन ये करते हैं । पूजा अर्चना के बाद अपने परिवार, अपनी समृद्धि, अपने सुख का वर मांगते हैं, देश समाज के विकास और शान्ति समृद्धि के लिये नहीं । इस संस्कृति में हर पाप, हर बर्बरता, हर जुल्म माफ होने के प्रावधान है बड़ी जातियों के लिये, पर दलित या स्त्री का उस वर्ण या योनि में जन्मने का पाप (जो कि उनके वश का नहीं) क्षम्य नही है । वह पाप धुल नही सकता, उन्हें उसे मरते दम तक भोगना है ।......... (4)

उपर्युक्त उद्धरण महाकवि "बौखल" की अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों का शब्दशः अनुवाद मालूम पड़ता है, इस दोहरी सांस्कृतिक व्यवस्था में रहकर–जो अन्याय और असमानता पर आधारित है – कोई भी व्यक्ति अपनी उन्नति कदापि नहीं कर सकता है । वर्ण व्यवस्था मनुष्य मात्र के लिये महाघातक है । इस व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन्हें उखाड़ना असम्भव है –

जीवन पथ बैठी सुचित, पर उपजीवी जीव
श्रमिक फिरें उदास चित, कौन हिलावै नींव ।। (5)
अति शासक उन्मत्त हो, नैतिक नाम नसाय
यूनानी सुकरात को, मारो जहर पियाय ।। (6)

नारायण अंजलि भाग–I :–(1) दो.क्र..–1272 पृ.क्र.–96, (2) दो.क्र.–1620 पृ.क्र.–123, (5) दो.क्र.–1978 पृ.क्र.–150(6) दो.क्र.–1281 पृ.क्र.–97

नारायण अंजलि भाग–II:–(3) दो.क्र..–1071 पृ.क्र.–83,

(4) दलित चेतना और साहित्य डा. रमणिका गुप्ता.

इस वर्ण व्यवस्था के परिणाम से जातिवाद व जातिवाद से छुआछूत ने जन्म लिया जो बहुसंख्य समाज के लिये घोर अभिशाप साबित हुआ –

छुआछूत व्यापि सबै, कोई न सुखी दिखाय
वर्गीकरण समाज में, भिन्न विचार समाय ।। (1)
बहु विवाद विषमय विषम, सत्पथ धूमिल होय
पथ पावै नहि पथिक जन, उमर बितावत रोय ।। (2)

जाति व्यवस्था श्रमिकों का भी विभाजन करती है, श्रमिक अपनी इच्छानुसार अपने लिये रोजगार नहीं चुन सकता उसे जन्मना जातिगत व्यवसायों पर ही अपना जीवन यापन करना पड़ता है जो उसकी बुद्धि और चातुर्य को भी कुंठित कर देता है । इस तरह उसे अपने लिये उन्नति का कोई अवसर नहीं मिलता और उसकी इस असमर्थता और असहायता से शोषण के अन्य मार्ग खुलते जाते हैं ।

कवि "बौखल" इस संदर्भ में गाँधी जी के विचारों से पूर्ण सहमत थे जो ऐसी अर्थ–व्यवस्था के समर्थक थे जिसमें समाज के नैतिक मूल्यों का समावेश हो और उनका सम्मान किया जाता हो । इस नैतिकता में शोषण के लिये कहीं भी स्थान नही है, क्योंकि शोषण अनैतिक है, वे श्रम विभाजन के महत्व को बखूबी समझते थे और समान अर्थ वितरण पर विश्वास करते थे । कबि "बौखल" की समस्त रचना धर्मिता इन्ही सिद्धान्तों पर आधारित है ।

3. साम्यवाद

अत्यन्त धारदार और सुस्पष्ट सामाजिक और आर्थिक अन्तर्वस्तु के साथ साम्यवादी विचार–धारा का प्रवेश भारत में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ । 1917 की रूस की वोल्शेविक क्रान्ति से लोगों में एक सी विचारधारा पनपी । दिसम्बर 1925 में कानपुर में आयोजित साम्यवादी सम्मेलन के अवसर पर भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना की गई ।

ध्यातव्य है कि जिस समय इस विचारधारा का जन्म हुआ, असहयोग आन्दोलन में शामिल होने वाले सारे नौजवान उसके नतीजे से खुश न थे । स्वाधीनता आन्दोलन की बागडोर बुर्जुग बुद्धिजीवियों के हाथ में थी क्रान्तिकारी युवकों में फैली निराशा ने मार्ग दर्शन के लिये अपना रूख साम्यवादी दर्शन की ओर मोड़ा और मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा से प्रभावित हुये ।

सन् 1928 और 1929 में अनेक अधिवेशनों के माध्यम से युवकों के संगठनों ने पीड़ितों तथा शोषित जनता की मुक्ति के लिये आवाज उठाई । श्री पाद अमृत डांगे और रजनी पामदत्त भारतीय साम्यवादियों के मार्गदर्शक बने । कई राज्यों में मजदूरों एवं श्रमिकों के संगठन बने और कई सम्मेलन आयोजित किये गये तथा साम्राज्यवादी, पूंजीवादी व्यवस्था की आलोचना की गई । विपिन चन्द्र पाल आदि ने लिखा –

"चूंकि तीसरे दशक के दौरान सारा विश्व महान आर्थिक मन्दी में डूबा हुआ था इसलिये इस दौरान समाजवादी विचार और अधिक लोकप्रिय हुये । समस्त पूंजीवादी दुनिया में बेरोजगारी

नारायण अंजलि भाग–II:–(1) दो.क्र..–929 पृ.क्र.–70, (2) दो.क्र.–843 पृ.क्र.–63.

आकाश छूने लगी । विश्वव्यापी मन्दी के चलते पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा । इसलिये लोग मार्क्सवादी और समाजवाद की तरफ आकर्षित हुये । कांग्रेसी शिविर में ही 1936 और 1937 में जवाहर लाल नेहरू तथा 1938 में सुभाष चन्द्र बोस को कांग्रेस अध्यक्ष चुनने में वामपक्ष की स्पष्ट झलक दिखाई देती है । कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना से भी यह बात पुष्ट होती.है ।" (1)

इस संघर्ष काल में पल, बढ़ रहे नवयुवकों की जमात में श्री "बौखल" की चेतना ने भी अँगड़ाई ली थी और उन्होने यह अनुभव किया कि इस विचारधारा से समाज में फैले वैषम्य को दूर किया जा सकता है । यह सत्य है कि जनता की मांग जब प्रशासन की पूर्ति से कहीं अधिक आगे बढ़ जाती है तब वहाँ क्रान्ति का जन्म होता है । साम्यवाद इन्ही विचारों का प्रतिफलन था । उन्होने पूंजीवादी सरकारों के विरूद्ध अपनी आवाज अपनी शैली में उठाई –

साम्यवाद सिद्धान्त हमारा
व्यक्तिवादी पूंजी को है हमने नित ललकारा
राष्ट्रीय करण समाज व्यवस्था, सामान्तक संधारा
मिल जुल के उत्पादन कर ले, श्रम धन धर्म पुकारा
आत्म बल विश्वास अटूटो, मानव प्रेम पियारा
विश्व कुटुम्ब बनेगा एक दिन, आत्मोरम्य अधारा
"बौखल" भरो भावना निर्भय, सारा विश्व तुम्हारा
तभी विजय हो विश्व विजयिनी, सफल घोष सर्वहारा।। (2)

पूंजीवादी शासन व्यवस्था की विफलता ही इस विचारधारा की जननी रही । अतः इस व्यवस्था से कवि की भारी असहमति है क्योंकि उसमें केवल शासन ही आर्थिक व्यवस्था का नियंत्रक होता है । अतः उसके लिये तो सारे नियम बन्धन नैतिकता के टूट जाते हैं और वह निरंकुश हो जाता है –

राजवंश सुख से रहै, मरै कमारू जीव
यही न्याय पालित पृथु, थापि आर्थिक नींव ।। (3)
अंग्रेजी शासन अलि, भारत को यमराज
जन समूह विकराल हों, करि विप्लव निज राज ।। (4)

साम्यवादी दल की भारत में स्थापना होने के बाद कार्यकर्ताओं ने शोषण से शोषित वर्ग को मुक्ति दिलाने के लिये कई जुझारू संघर्ष किये जिससे जो नई दिशा सामने दिखाई दी उसने राजनैतिक शोषण के साथ–साथ उन्हें आर्थिक व सामाजिक शोषण से भी मुक्ति दिलाने की प्रेरणा

---

(1) एच. एल. पाण्डेय "गांधी, नेहरू, टैगोर एवं अम्बेडकर" से साभार उद्धृत
नारायण नैवेद्य :– (2) पद सं.–193 पृ.क्र.–56,
नारायण अंजलि भाग–I:–(3) दो.क्र.–2555 पृ.क्र.–195,(4) दो.क्र.–1392पृ.क्र.–105.

दी । इस दल वालो ने आह्वान किया कि "राजनीतिक स्वतंत्रता एक साधन है और आर्थिक स्वतंत्रता एक लक्ष्य" ।

"साम्य वादियों ने सबसे पहिले संपूर्ण स्वाधीनता की मांग की और पार्टी के सदस्यों ने मुक्ति आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली भूमिका निभाई । इसने मार्क्स द्वारा किये गये इतिहास के भौतिकवादी विश्लेषण को लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। इसने जनसाधारण तक इस शाश्वत सत्य को पहुँचाने के लिये शोषित वर्ग के बीच रह कर यह प्रचार किया कि एक समाजवादी व्यवस्था में ही उनके वर्ग को शोषण से मुक्त किया जा सकता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उसने समाजवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण को अपना आधार बनाया और शोषित वर्गो में वर्ग चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया। .... इस विचार के पक्ष धरों ने यह बतलाया कि उत्पादन के साधनों पर मालिक का नहीं वरन् समाज का अधिकार होना चाहिए । इसने वयस्क मतदान के द्वारा संविधान सभा बनाने की मांग की । इसने विदेशी पुंजी के राष्ट्रीयकरण, रजवाड़ों के खात्मे और भूमि उसे जोतने वाले को दिये जाने की भी माँग की। इसने स्वतंत्रता से पूर्व दो काम किये - जब यह गैर कानूनी घोषित कर दी गई तो इसने कांग्रेस के अन्दर शामिल होकर साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया और दूसरे इसने एक स्वतंत्र संगटन के रूप में लोगों में वर्ग चेतना जगाने का काम मजदूर संघों, किसान सभाओं, नौजवानों, महिलाओं और छात्रों के संगठनों के द्वारा किया। .... साम्यवादी पार्टी ने साम्राज्यवाद विरोध के साथ साथ पूंजीवाद और सामन्तवाद का भी विरोध किया ।...... इसे इसी कारण सबसे अधिक दमन व यातनाओं का सामना करना पड़ा । पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इनके साहस को तोड़ने में नाकामयाब रहे ।....... भारत में साम्यवादियों ने जिन्हें कम्युनिस्ट कहा जाता था - समाजवादी अन्र्तराष्ट्रीयतावाद की नीति को अपनाया । उन्होने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कड़ी आलोचना की परन्तु भारत व ब्रिटेन के लोगों के बीच मित्रत्ता पर विश्वास रखा व उस पर बल दिया । उन्होंने दुनिया के तमाम मेहनत कशों की एकता पर बल दिया। इसने शिक्षा व संस्कृति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया, लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने का प्रयास किया-एक ऐसे देश में जहाँ लोगों में धर्म व जातिवाद और परम्परागत मूल्यों में अटल विश्वास हो, जहाँ अन्धविश्वास व भाग्यवाद पागलपन की हद तक पाया जाता हो -वहाँ कम्युनिस्टों का यह काम बहुत कठिन था परन्तु वे इसके खिलाफ लड़ते रहे । उन्होने साम्प्रदायिकता व छुआछूत जैसी बुराइयों को खत्म करने के भी प्रयास किये ।....... आज भी भारत के शोषित जन साधारण, इन कम्युनिस्टों के नेतृत्व में एक ऐसे समाज की स्थापना के लिये संघर्षरत हैं जहाँ इन्सान को इन्सान न लूट सकें ।" (1)

साम्यवाद की इस पृष्ठभूमि पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भारत में एक बहुत बड़े व बौद्धिक वर्ग ने इसे अपनाया क्योंकि इसकी नई दृष्टि ने बहुत सी बन्द खिड़कियों को खोला । उस वर्ग ने विश्व की समस्याओं को अपनी समस्याओं से मिलाकर देखा परखा, उनके निराकरण के समाधान खोजे । कवियों, साहित्यकारों ने इसे जन जागरणका सबसे सशक्त साधन मानकर जनहित में रचनायें की और उन्हें जन सामान्य तक पहुंचाने का प्रयत्न किया — ऐसे कवि जन कवि कहलाये

---

(1) "भारत में राष्ट्रवाद" संपादक—सत्याराय

प्रसिद्ध जन कवि केदार नाथ अग्रवाल की एक कविता है –

आँधी के झूले पर झूलो, आग बबूल बन कर फूलो ।
कुरबानी करने को झूमों, लाल सबेरे का मुंह चूमो ।
ऐ इन्सानो ! ओस न चाटो, अपने हाथों पर्वत काटो ।
पय की नदियों को लहराओ, जीवन की कटु प्यास बुझाओ ।
रोटी तुमको राम न देगा, वेद तुम्हारा काम न देगा ।
जो रोटी के लिये लड़ेगा, वह रोटी को आप वरेगा ।। (1)

दृढ़ संकल्पी मानव जिसे अपनी अस्मिता का एहसास हो गया है उसे संसार का कोई भी कार्य असंभव नही लगता । उसके हृदय की संवेदना जन का अभिनन्दन करने को उत्सुक हो रही है –

पास मेरे है दहकता हृदय मेरा
घेर पाया नहीं तम का उसे घेरा
अस्तु कविता इस हृदय की गुनगुनाता
पुष्प वासंतिक स्वरों के मैं चढ़ाता
मृत्यु के उपरान्त मेरा काव्य होगा
देश में सर्वत्र जन का श्राव्य होगा
बन्दियों के भी हृदय में फूलते हैं
पुष्प क़विता के सुकोमल झूलते हैं ।। (2)

साम्यवाद और श्री बौखल का आध्यात्मिक समाजवाद –

यह सत्य है कि भारत में रूढ़ियों के विरूद्ध नयी चेतना जगाने का काम साम्यवाद ने किया था, उसने उद्योग क्षेत्र में लगे श्रमिक मजदूरों व निर्धन कृषकों को यह साहस देने का काम अपने जन जागरण अभियान से किया कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हों और मनुष्य होने के नाते समानता का दर्जा पाने के लिए संघर्ष करें । काम के अनुपात से मजदूरी पाने की, काम के घंटे कम करने की, छुट्टियों की और अपना संगठन बनाने की प्रेरणा उन्हें साम्यवाद से ही मिली थी ; परन्तु साथ ही यह भी सत्य था कि भारत की परिस्थितियाँ रूस की परिस्थितियों से भिन्न थी ; वहाँ केवल दो वर्ग बराबरी पर आये –एक पूंजीपति दूसरा सर्वहारावर्ग, भारत में स्थिति इससे भिन्न थी, यहाँ का समाज तो विभिन्न वर्गो से बँटा था– पूंजीपति, मिल मालिक, धनाढ्य जमींदार, प्रभुत्व संपन्न पुरोहित वर्ग, रईस सामन्त रियासतों के शासक रूप में और अंग्रेज भक्त नौकर शाह आदि । इसलिये साम्यवादी वर्ग इनके सामने छोटा पड़ गया और यह हर वर्ग में अपनी पैठ बनाने में समर्थ न हो सका इसीलिए इस आंदोलन को वांछित सफलता रूस के समान न मिल सकी ।

---

(1) "गुल मेंहदी" – श्री केदार नाथ अग्रवाल
(2) देश–देश की कविताएं – मूसा जलील

रूस का साम्यवाद अनुशासनात्मक, कठोर, तेज धारदार सिद्धांतों पर आधारित था जिसे वहाँ के सर्वहारा वर्ग ने पूरे मन से अपनाया और इस पर अमल किया था, अपने हक के लिये वहाँ संघर्ष करने तक को दल का अनुमोदन प्राप्त था । हड़तालें, मजदूरों की कामबन्दी, यहाँ तक कि हिंसा तक के प्रयोग वहाँ हो जाते थे, वे हक मांगने नहीं छीनने में विश्वास रखते थे, बल प्रयोग उचित था और सर्वहारा इतना शक्तिशाली था कि उसकी बढ़त देखकर पूंजीपति भी भयभीत हो उठे थे ।

भारत में यह प्रयोग नहीं चल सका, उन्हें (साम्यवादियों को) अपने उग्रवादी विचारों को समझौतावादी जामा पहिनाना पड़ा । उन्होंने एक ओर उत्पादन बढ़ाने के लिये तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता को शक्तिशाली बनाने के लिये एक जबरदस्त अभियान शुरू किया । सन् 1943 की एक रिपोर्ट में रणदिवे ने घोषणा की कि यद्यपि श्रमिकों की स्थिति असहनीय थी फिर भी उनकी कठिनाइयों का हल हड़ताल करने से नहीं बल्कि अपने मालिकों और सरकारी एजेन्सियों के साथ सहयोग करने से होगा । औद्योगिक श्रमिक वर्ग के सभी क्रान्तिकारी अधिकारों के लिये इनकार करते हुये रणदिवे का कहना था कि उत्पादन एक पवित्र निष्ठा है । इसी प्रकार किसानों से यह अपील की गई कि वे भूमि सुधारों की मांग न करें बल्कि जमीदारों के साथ सहयोग कर खेतों में अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने के लिये भरसक प्रयत्न करें ।...... इसके साथ–साथ 1924 के आन्दोलन के बाद साम्यवादी दल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग में (सहयोग के आधार पर) एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया ।........ कांग्रेस वर्किंग कमेटी के नाम एक खुला पत्र लिखा गया–अन्य बातों के अतिरिक्त लिखा गया कि –"हम साम्यवादियों की उम्र केवल 15 वर्ष है और हमारा जन्म राष्ट्रीय आन्दोलन की कोख से हुआ है........ हम सब कांग्रेस की सदस्यता का कार्ड स्वाभिमान से अपने पास रखते हैं ।" परन्तु इसका प्रभाव कांग्रेस पर कतई नहीं पड़ा और उसने साम्यवादियों से कोई समझौता नहीं किया ।........युद्ध (द्वितीय विश्व युद्ध) के समय अंग्रेजों की ओर झुकाव होने से कांग्रेस और लोकमत उनसे रूष्ट हो गया । वे अलग पड़ गये दोनो ओर से ।

ये वे परिस्थितियाँ थी जिनके कारण साम्यवाद स्वतंत्र चेतना और नये विचारों के होते हुये भी भारतीय मानस में पैठ न बना सका । अब इस परिप्रेक्ष्य में देखते है तो ज्ञात होता है कि साम्यवाद की अवधारणा से पूर्ण सहमत होते हुये भी श्री "बौखल" उस की तेज धार को नहीं अपना सके । अन्य कवि भी उतना उग्रवादी तेवर नहीं अपना पाये जो हिंसा की पक्षधरता को उभारता ।

श्री. "बौखल" के निर्धन, दीन, दुर्बल, श्रमिक केवल शासन, सत्ता और व्यवस्था की भर्त्सना करते रहे, अपने शोषण की आर्तगाथा बखानते रहे, विषम वितरण और बेगार की मार से जूझते रहे परन्तु उनमें सत्ता या शोषकों से सीधे सीधे मुठभेड़ करने की शक्ति नहीं आ पाई यद्यपि विरोध के स्वर बराबर उभरते रहे, असन्तोष व्यक्त होता रहा ।

जहाँ मायकोवस्की की दमदार आवाज है –

"कब, अपनी पूरी ऊंचाई पाकर, उठकर तुम,
जिनका जीवन उनके रण पर तर्पण है
कब, उनसे पूछोगे उनके सिर पर चढ़ कर
हम क्यों लड़ते ? किस मतलब से ?"
"शान्ति बढ़ाओं
बस रण से रण ठानों ।.......
जन जहाज हैं ।
सूखी धरती नही रूकावट ।" (1)

"नहीं कभी/कुछ भी/जन्मा है
बिना आर्तरव और रक्त के ।" (2)

"हाँ, निश्चय ही, अविचल रह कर खड़े रहे वे
नहीं झुकेंगे, नहीं बिकेंगे
निज स्वत्वों के लिये निरन्तर युद्ध करेंगे,
स्वप्न सत्य कर स्वर्ग रचेंगे ।" (3)

परन्तु ऐसा भी नही है कि "बौखल" का श्रमिक बिल्कुल निःसत्व है, उसमे भयंकर आग है, शोषण के ठेकेदारों की काली करतूतें देखने के लिये उन की आंखे खुली है । "बौखल" ने अपनी क्षेत्रीय भाषा की तीखी नोकों का प्रयोग करते हुये श्रमिक के पक्ष में राजनीति, धर्मनीति, अर्थ नीति, आडम्बर नीति और वर्गगत नीति पर जम–जम कर प्रहार किये हैं, व्यग्यों की वह तीखी मार मारी है कि सबके आचरणों की पोल खुल गई है । एक ग्रामीण परिवार की प्रतिक्रिया शोषण की मार पड़ने पर –

बाबा मानुख परो उताना –
तिली चबाय तेल मुख हेरै, ऊसर वोय पिसाना
भैंसी मार बताइस चरसा, खींचि सबै खरियाना
बाँझिन गाय दुवारे बाँधे, चकोर सानी साना
मीठा दूध मलाई माखन, भरि परछा उतराना
महुआ, जामुन खादि कटहरी, बंब्बुर बोय सयाना
टपकि रसाल भरे बागन माँ, बहुतक करत बखाना
मेटुका पेटुका बाँधि मेहरिया, मइके परी उताना
मिल जुल सगरे भाई भतीजा, फूँकि बाप शमशाना ।। (4)

---

(1) देश–देश की कविताएं – मायकोवस्की
(2) देश–देश की कविताएं – जॉन कार्नफोर्ड
(3) देश–देश की कविताएं – ऐंड्रियाई मैलीश्का
} अनुवाद – केदार नाथ अग्रवाल
(4) नारायण नैवेद्य पद सं. – 829 पृ.–229

राजनीति की कुटिलता पर उनके व्यंग वाण इस तरह बरसते हैं —

राजनीति अरू धर्म ध्वज श्रमिक ठगत दिन रात
"बौखल" मूठी चून हित, लाखन सहत अघात ।। (1)

राजनीति अरूधर्म के दाता जाति समाज
बनै विरोधी कौन विधि, "बौखल" सुमति सुराज ।। (2)

राजनीति दूषित दुखद, बहु समाज गठजोर
साझो श्रमधन सो नवल, लागि अताई होड़ ।। (3)

पूंजीपति ने अर्थ के विस्तार के घर घर तक पहुंचा दिया जिससे सभी के हित अर्थ में सीमित होकर रह गये, वे ही चरित्र के नियंता बन गये —

अर्थ माय अरू बापुरो, अर्थे राम रहीम
आर्थे पीर मुरीद जग, अर्थे राज हकीम ।। (4)

अर्थ हरण की गैलरी, खोजें सबै सयान
झपटि, कपट, ठग, चातुरी, सपन भयो कल्यान ।। (5)

सबै जग अर्थ गुलाम बनायो
अर्थे बिन्दु मयो परिवारा, अर्थे रहस्य गहायो
अर्थे करि अन्याय अनर्थक, अर्थ विरोध जनायो
अर्थे समर साजि रजधानी, अर्थे वीर कहायो
अर्थे लोलुप लम्पट लोभी, अर्थे खम्भ गड़ायो
"बौखल" अर्थ समाजै साजै, बुद्धि दरशन दरशायो
स्वामी—दास मिटै परिपाटी, राग आर्थिक गायो ।। (6)

इसी अर्थ की बारह बाँट में व्यवस्थायें अनियमित हो गई —

नहि नियमित उत्पादन, नहि नियमित बाँटि बाँट
नहि नियमित पथ बन्दगी, नहि नियमित घट घाट ।। (7)

साम्यवाद के उग्र तेवरों से समझौता न करने के कारण ही उन्होने समाजवाद को अपनाया था । यह समाज वाद का ही उदारवादी स्वरूप था जिसमें शोषण व शोषक के विरूद्ध आक्रोश तो था पर उग्रवादिता व हिंसा को स्थान नही था । पारस्परिक समझ से तथा संगठित शक्ति से समस्याओं से जूझने के लिये जन समुदाय में चेतना जगाने का काम किया जाना उन्हें स्वीकार था ।

नारायण अंजलि भाग–II:—(1),(2)दो.क्र.—961,964 पृ.क्र.—74,(7)दो.क्र.—1059 पृ.—82
नारायण अंजलि भाग–I:— (3)दो.क्र.—2559 पृ.क्र.—195,(4) दो.क्र.—1159 पृ.क्र.—87, (5) दो.क्र.—1274 पृ.क्र.—96,
नारायण नैवेद्यः—(6)पद क्र.—954 पृ.क्र.—275

नैसर्गिक समानता जो प्रकृति से जन्मना मिली है उसे वर्णवाद में बाँध कर विकृत करने का प्रयास अनुचित है , कवि का कहना है कि –

जाति पाँति की मान्यता, कहिये कौन निशान
रक्त मांस एकै वरण, फिर क्यों भिन्न विधान ।। (1)

पंडित ठाकुर बानियाँ, नाना विधि गुण जान
जठर आगि शूद्रा जरै, जनमो वर्ण महान ।। (2)

विप्रवाद सर्वोपरि, राजनीति भइ दास
निर्धन भयो समाज सब, झूठो लै विश्वास ।। (3)

श्री "बौखल" को अपनी माटी से अत्यन्त प्रेम है, इस माटी की सराहना करते वे थकते नहीं, उनके मत से जो माटी से प्रेम करना सीख जायेगा उसमें वैषम्य की भावना आ ही नहीं सकती । मन में भेदवाद की आग तभी जलती है जब माटी का भी बाँट–बँटवारा होने लगता है । माटी के लिये राजा रंक सब समान है –

माटी जनमी पदमिनी, माटी राजा रंक
माटी मर्म जो जानता, रहे सदा निःशंक ।। (4)

माटी कुंजै कामिनी, माटी खेलनहार
माटी सो मुख फेरिये, "बौखल"कहे कुम्हार ।। (5)

कवि की चेतना के मूल में भी माटी की उसी सामर्थ्य की आश्वस्ति है जिसने उसे मानव–मानव को एक ही सिरजनहार की कृति मानने का धर्म सिखाया है ।

कवि के साम्यवाद को कुछ रूपान्तरण के साथ स्वीकार किया जा सकता है – यह रूपान्तरण है – अवांछित प्रवृत्तियों का परिधोशित स्वरूप – उन्होंने अनेक संकेत इस प्रकार के रूपान्तरण के दिये हैं, जैसे– आक्रोश का सहिष्णुता में, उग्रता का धैर्य में, हिंसा का सद्भाव में, वंचकता का विश्वास में, विषमता का सहयोग में, वैयक्तिक दंभ का समष्टिवाद में, आडम्बरों का स्वस्थ दर्शन में, मत वैभिन्न्य का समन्वय में, मिथ्या प्रपंचों का सत्य में और स्वार्थ का सन्तुष्टि में रूपान्तरण होना । इस प्रकार उन्होंने अपने नितान्त निस्वार्थ भाव से और स्वांतः सुखाय लिखे हुए काव्य में भारतीय अध्यात्म के तत्वों का समावेश किया है, उनके सुधारवाद के कुछ उदाहरण इस प्रकार है :–

नैतिक मेधावी चुनो, राजनीति दरबार
पूंजी बढ़ै समाज की, वैभव बढ़ै अपार ।। (6)

नारायण अंजलि भाग–II:– (1)दो.क्र.–1182 पृ.क्र.–91,(3)दो.क्र.–1150 पृ.क्र.–89,
(6)दो.क्र.–1263 पृ.क्र.–98,

नारायण अंजलि भाग–I:– (2)दो.क्र.–765 पृ.क्र.–57,
(4),(5) दो.क्र.–1713,1710पृ.क्र.–130.

राज्य व्यवस्था सामाजिक, जन जन मुदित महान
राष्ट्रपिता की मान्यता, अलि भावी सन्तान ।। (1)

हिरदै से पूजन करो, भ्रातृ भाव निज साधि
नैतिक नियम समाजिक, प्यार सुदेश अगाधि ।। (2)

मुद्रा बहुत बटोरि कै, क्यों बन्दी बनि जीव
कवन जतन करि हौ कहौ, हिलि प्राकृतिक नींव ।। (3)

मौद्रिक जीवन हो सुखी, श्रमिक को जीवन पाय
मानव लागि अताव अलि, शोषिण शोधि विधाय ।। (4)

द्वेत बिसार समाज को, आपन पालि परिवार
"बौखल" निश्चय जानिये, सुखी न हो संसार ।। (5)

सब सुख चाहे आपनो, नाना भेद बगारि
गई सामाजिक साधुता, जटिल नीति संसार ।। (6)
राजनीति अरू धर्म पथ, जनि उप जीव अपार
सहयोगी विज्ञान लै, प्रकृति करै विहार ।। (7)

"इस असामञ्जस्यपूर्ण जगत के विचित्र मेले में सामञ्जस्य की खोज का प्रयत्न महाकवि "बौखल" ने किया है दर्शन को जीवन की धुरी बनाकर । उन्होने समाज संचालन को व्यवस्था देने का कार्य योजनाबद्ध रूप से किया है, ऐसा करने के पूर्व उन्होने यह निष्कर्ष निकाला था कि उनके पूर्व किसी अन्य भाषा के कवि ने यह कार्य नहीं किया । परिणामस्वरुप समाज खल्वाट अवस्थागत हो गया । दार्शनिक और कवि के बीच एक गहरी खाई पड़ गई जिससे दोनो काल्पनिक जगत के प्राणी मान लिये गये । वास्तविक नैतिकता के स्थान पर समाज में व्यापारिक नैतिकता का प्राधान्य हो गया, ऐसे में समाज, समाज न रहकर भेड़ों का समूह बन गया जिसे नेता लाठी लेकर हाँकने लगा ।" (8)

ऐसे समय और समाज में श्री "बौखल" ने नीर क्षीर विवेकी हंस की सी भूमिका में आकर समाज के खरे खोटे की पहिचान करना अपना लक्ष्य बनाया और इस रोग का निदान अपनी अप्रतिम प्रतिभा के सहारे करके समाज के स्वास्थय की कामना की — एक दक्ष चिकित्सक की भाँति उनका आशावाद उनका संबल बना —

मानव जन्मी संस्कृति, नहि जायो भगवान
उत्पादन एक ठाँव हो, वहीं होय उत्थान ।। (9)

नारायण अंजलि भाग–II:– (1)दो.क्र.–1249 पृ.क्र.–97,(2)दो.क्र.–1144 पृ.क्र.–88,
(3)दो.क्र.–1126 पृ.क्र.–87,(4)दो.क्र.–1205 पृ.क्र.–93,
(5)दो.क्र.–1199 पृ.क्र.–92,(6)दो.क्र.–1166 पृ.क्र.–90,
(7)दो.क्र.–959 पृ.क्र.–74, (9)दो.क्र.–1250 पृ.क्र.–97,
(8) भूमिका से उद्धृत.

ऐसो गठन समाज को, सबहिन को हित होय
उत्पादन मिलि कर करें, भूख न मरिहै कोय ।। (1)

कछुवा अपनी चाल सों, चलै रात दिन गैल
एक दिन ऐसो आवहि, पार शिखर करि शैल ।। (2)

परोपजीवी चाहत जग, सबै रहें गुलाम
एक दिन ऐसो आइहै, सब स्वामी अभिराम ।। (3)

साँचौ—साँचौ ही रहै, बहुतक आग तपाय
एक दिन ऐसो आवहि, खरो खोट बिलगाय ।। (4)

उनका आशावाद इतना सुदृढ़ है कि वह एक दिन फलीभूत होकर रहेगा, ऐसा उनका अटूट विश्वास इसलिये है कि वे महल की नींव ठोस भूमि पर रखने के विश्वासी हैं, उन्होंने चेताया है कि —

सामरस्य को पथ गहै, मत भटकावौ जीव
महल बनै नहि बावरे, बाँस गाड़ि भुँइ नींव ।। (5)

नारायण अंजलि भाग—II:— (1)दो.क्र.—1218 पृ.क्र.—94,(2)दो.क्र.—1271 पृ.क्र.—98,
नारायण अंजलि भाग—I:— (3)दो.क्र.—854 पृ.क्र.—64,(4)दो.क्र.—904 पृ.क्र.—68,
(5)दो.क्र.— पृ.क्र.— .

अध्याय – 5

महाकवि 'बौखल' के काव्य में आधुनिक राजनीतिक चिन्तन

अध्याय - ८

महाकवि 'बौखल' के काव्य में आधुनिक राजनीतिक चिन्तन

श्री 'बौखल' का काव्य सृजन प्रधानतया दो प्रकार के चिन्तनों पर आधारित रहा है, प्रथम — उनका आध्यात्मिक चिन्तन जिसमें दार्शनिकता व रहस्य के सोपानों पर पहुंचती हुई कवि की मनोदशा ऊर्ध्वगामी होती हुई दिखाई देती है । इस ऊर्ध्वचेता मनोभूमि में कवि परम प्रकाशक सत्चित आनन्द स्वरूप परब्रह्म के सामीप्य की मधुर कल्पनायें संजोता हुआ अणु रूप जीव के द्वारा उससे मिलने की सतत् चेष्टा में रत रहता है और उससे वियुक्त होने की दशा में उसके अन्तर्तम में विरह की जो ज्वालाएं जलती हैं उनका भावविभोर तथा रहस्यात्मकता का पुट लिये बड़े कारूणिक व सजीव चित्र कवि ने उकेरे हैं — यह अगले अध्याय का विषय है ।

दूसरा चिन्तन है — उनका राजनीतिक क्षेत्र में अपना अनुभव जन्य तथा बहिर्जगत में परिव्याप्त राजनीतिक विचार धाराओं का समाज में प्रतिफलन । उनका राजनीतिक चिन्तन किसी संप्रदाय विशेष के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है न ही यह कवि के रचना कर्म के भीतर से किसी राजनीतिक लाभ–हानि के गणित का द्योतक है । कवि ने अपने युवा समय में राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदारी निभाई थी और उसके सभी रूपों को अपनी खुली आँख से देखा, समझा और अपनी बौद्धिकता और तार्किकता से उसके भीतरी रहस्यों के ताने बाने को भी खूब बुना और उधेड़ा था ।

बुद्धिजीवी केवल दार्शनिक नहीं होते । वे केवल अपने मौलिक चिंतन के ज्ञान के साथ सृजन कर्म ही नहीं करते बल्कि जिस सत्य को वे अनुभव करते हैं उसे साहस, निर्भीकता और स्वतंत्रता के साथ व्यक्त भी करते हैं । अपनी बात सबके सामने रखने में उन्हें कोई अवरोध कोई हिचक नहीं है, न ही वे किसी वर्ग, जाति, समुदाय या साम्प्रदायिकता का विचार करते हैं और न ही किसी के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते हैं । श्री 'बौखल' का राजनीतिक चिन्तन इस बात का पक्का प्रमाण है ।

एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के भीतर रहने वाले जन समुदाय को वैधानिक व संवैधानिक रीति से अनुशासित करने वाली विधा का नाम राजनीति है । यह शासन तंत्र का अनिवार्य अंग है, शासक व शासित के बीच में अन्तर्भेद रखते हुये भी उनमें पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखने की एक कड़ी है । इसमें शासन की प्रदीप्ति और नीति की पावनता निहित रहती है । राजनीति प्रशासन की धुरी और चक्र दोनो ही होती है । इसी पर प्रशासन स्थिर रहता और इसी की सहायता से आगे बढ़ता है; अतः राजनीति सुशासन का पथ प्रशस्त करती और नये मार्ग खोजती हैं तथा जनता जनार्दन की उन्नति व विकास के साधन जुटाने में प्रयत्नशील होती है । बौद्धिकता की शाण पर चढ़ कर यह विस्तार के नये आयाम खोजती है, नये पार्श्वो को आलोकित करती है व बौद्धिक श्रम का परिहार भी सफलता प्राप्त होने पर करती है । यह शासक और शासित के बीच पारस्परिक सद्भाव, सद् प्रेरणा व सद्आचार को भी जन्मती है । इस प्रकार इस राजनीति का प्रसार व विस्तार हर क्षेत्र

में बड़ा प्रभावी होकर क्षैतिज व्यापकता को प्राप्त होता है । परन्तु यह भी सत्य है कि जैसे व्यवहार में आने पर कोई भी वस्तु सुवस्तु या कुवस्तु हो जाती है (होहिं सुवस्तु कुवस्तु जग, पाइ सुजोग कुजोग— तुलसी दास) राजनीति भी इसका अपवाद नहीं है । यही राजनीति कभी स्वस्थ, सुन्दर परिणाम देने वाली होती है जैसी कि उससे अपेक्षा की जाती है, परन्तु अब प्रायः यही राजनीति दोनों ही पक्षों के अदूरदर्शी सोच, स्वार्थ वाद, सत्तामोह, प्रतिद्वन्द्विता और भ्रष्ट आचरण के चलते कभी—कभी भयानक रूप से विकृत हो उठती है । श्री बौखल के चिन्तन में इन्हीं द्विधा परिणामी तथ्यों को अनुभवों की गहराई और व्यावहारिक प्रत्यक्षदर्शिता से जोड़ कर खूबियों खामियों के साथ अभिव्यक्त किया गया है ।

सबसे पहिले तो मैं उनके काव्य में से उन—उन स्थलों की रूपरेखा को देखूं जिनमें राजनीति को धर्म के धन्धे से जोड़ कर उन्होंने देखा है और यही धर्म संयुक्त राजनीति विकृत रूप से जन सामान्य के अधिकारों का हनन करती है ।

राजनीति अरूधर्म के दाता जानि समाज
बनै विरोधी कौन विधि, 'बौखल' सुमति सुराज ।। (1)
व्यक्तीवाद छलाँग सो, मूक भयो भगवान
राजनीति धर्मात्मा, लोकतन्त्र हैरान ।। (2)

एक दोहे में राजनीति के हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष की उपमा देते हुये कवि ने कहा है कि वह तो भूगोल को मानचित्र ही बदले डाल रही है अर्थात पृथ्वी को जिस प्रकार हिरण्याक्ष पाताल ले गया था उसी प्रकार यह राजनीति भी धरती को विकृतियों के अतल में डुबो देने की तैयारी कर रही है; अब यहाँ एक वाराह की अर्थात् सुधारक या उद्धारक की आवश्यकता है जो इसे इस अतलगर्त से निकाल कर इसका उद्धार को । यहाँ राजनीति की चतुर्मुखी विभीषिकाओं का वर्णन किया गया है —

राजनीति कश्यप चतुर, हिरण्याक्ष भूगोल
मानचित्र संशोधयति, वराह नाक भुईं डोल ।। (3)

जब राजनीति राजतंत्र की चेरी बन जाती है तब राजतंत्र की निरंकुशता उसका अस्त्र बन जाती है और वह अपने शुद्ध स्वरूप को भूल कर अनर्थ कार्यो में लग जाती है । कवि स्वयं इस राजनीति के मायाजाल में फँस कर इसका अहेरी पन देख चुका है अतः वह कहता है कि —

अर्थ खसोटी जीवड़ा, विधिवत साजि पंडाल
रतन सिंहासन जड़ित अलि, 'बौखल' बैठ विडाल ।। (4)

विडाल जैसे अपने ही बच्चों के तोड़ कर खा जाता है, (बिल्ली के बच्चों को बिलार तोड़ कर उनका खून पी लेता है) उसी प्रकार राजनीति का चतुर खिलाड़ी भाँति—भाँति की चालबाजियाँ कर के स्वजनों को ही चूसता रहता है और स्वयं सत्ता के सिंहासन पर बैठने का पूरा प्रबन्ध किये रहता है ।

नारायण अंजलि भाग—II:— (1)दो.क्र.—964 पृ.क्र.—74,(2)दो.क्र.—1274 पृ.क्र.—99, (3)दो.क्र.—801 पृ.क्र.—60,(4)दो.क्र.—1121 पृ.क्र.—86.

धर्म व राजनीति का साझा कार्यक्रम अबूझ पहेली बनकर पूरे समाज को भरमाता रहता है ।

राजनीति बन्दी भयी, विप्रवाद की मूठि
परवश भयो समाज सब, अलि पहेलि अनूठि ।। (1)

मानव मति भरमाइयाँ, राजनीति रचि खेल
सुख सुविधा अवकाश की, भोगें भोग मथेल ।। (2)

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री 'बौखल' की ये धारणायें स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों की प्रतिरोधात्मक शक्ति व राजनीति की सौम्यता के प्रति उनके बद्धमूल संस्कारों के प्रति व्याघात से उत्पन्न प्रतिक्रियार्ये हैं । स्वातंत्र्योत्तर भारत में देश की आजादी के प्रति प्राणपण से समर्पित बलिदानियों के स्वप्नों की भग्न आशाओं के प्रतीकात्मक बिंब हैं ये उद्‌गार जिनमें त्रासित शोषित समाज की जर्जर अवस्था प्रदर्शित की गई है ।

रहा राजनीति का वह वास्तविक – राज की वत्सलता और नीति की पावनता से संवलित स्वरूप – जिसका भविष्य रेखांकित करते हुये कवियों ने प्रेरणा व उद्‌बोधन के गीत गाये थे, उन्होने फूलों के रूप में बनमालियों से मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जाने वालों के पगों की धूलि छूने में अपना सौभाग्य माना था – ऐसी व्यवस्था को जन्म देगा जिसमें सब समान रूप से स्वतंत्रता का उपभोग कर सकेंगे और प्रशासन की ओर से सुख सुविधाओं का भरपूर लाभ उठा पायेंगे – यह भी उस समय के देशप्रेमी श्रद्धालुओं की कल्पना में रहा था । कुछेक उदाहरण इस मनोभाव को प्रदर्शित करने वाले पदों के भी 'बौखल' के यहाँ मिलते हैं –

मानव जनमी संस्कृति, नहि जायो भगवान ।
उत्पादन जेहि ठाव जग वहीं होय उत्थान ।। (3)
राजनीति अरू धार्मिक, बनि आली पतवारि ।
श्रमजीवी की नाव को, उभय लगावहि पारि ।। (4)
प्रथम इकाई साधिये, अर्थ अचारी नीव
गढ़ै सामाजिक साधना, सुखी रहे सब जीव ।। (5)

राजनीति का यह सुन्दर स्वरूप ही प्रशासन की परिपक्वता प्रदर्शित करता है – ऐसे सुशासन में प्रजा सुख पूर्वक अपना प्राप्य पाती हे और समाज समृद्धि के मार्ग पर बढ़ता है –

कैसो होय समाज हमारा
रीति प्रीति परतीति पुरानी, बरसै अमिय अपारा
प्रकृति के सब बनो समीपी, नैसर्गिक विस्तारा

नारायण अंजलि भाग–II:– (1)दो.क्र.–1255 पृ.क्र.–98,(2)दो.क्र.–1235 पृ.क्र.–95, (3)दो.क्र.–1250 पृ.क्र.–97,

नारायण अंजलिभाग–I:– (4)दो.क्र.–2566 पृ.क्र.–195,(5)दो.क्र.–758 पृ.क्र.–57.

जीवन सम्बन्धी सब वस्तु, स्वाद अनेक पसारा
राजनीति दै अवसर भारी, सुख सम्पत्ति निवारा
तन भर वसन पेट भर भोजन, दे सबहिन ललकारा
परजा पालि परम उपयोगी, दुखिया जीव उबारा
'बौखल' राजनीति हितकारी, करहु विचार अधारा ।। (1)

यह तो श्री 'बौखल' का राजनीतिक चिन्तन है जो अपने दोनों रूपों में – जैसा उन्होंने स्वयं अनुभव किया और जैसा परिवेश में व्याप्त पाया। इस के अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक व आधुनिक विचारधारायें भी उनके काव्य में सर्वत्र दर्शनीय हैं । उन्होंने राजतन्त्र, लोकतन्त्र, स्वराज्य व सुराज की अवधारणा, दलित शोषित विमर्श और सुधारवाद जैसे विषयों पर तथा निर्बल वर्ग की अभिव्यक्ति की कठिनाइयों एवं उन से मुक्ति के उपाय प्रशासन के उत्तरदायित्व जैसे नवीन विषयों पर भी अपना चिन्तन स्पष्ट किया है । उनका यह चिन्तन उनके ठेठ और देशी अनुभवों की समृद्धि के साथ उभर कर आया है जिनमें व्यंजित होने वाला ठोस अनुभव लोकरीति, समय की मांग और समाज की विभीषिकाओं, विडम्बनाओं के साथ पूरी सरगर्मी के साथ उपस्थित हुआ है ।

श्री "बौखल' का विश्वास है कि देश की संपूर्ण खुशहाली व प्रजाजन की सुखसमृद्धि के लिये प्रशासन उत्तरदायी है, लोककल्याण की पाती भी प्रशासन के हाथों मे सुरक्षित रहती है अतः प्रशासन को सदा जागरूक व सतत प्रयत्न शील रहना चाहिए । डा. डोनहम के शब्दों में – "यदि हमारी सभ्यता असफल होती हे तो ऐसा मुख्यतया प्रशासन के पतन के कारण होता है ।" चार्ल्स ए. बीअर्ड का मत है कि "प्रशासन से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं होता । सभ्य शासन तथा मेरे विचार से स्वयं सभ्यता का भविष्य भी हमारी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम एक सभ्य समाज के कार्यो की पूर्ति के लिये एक कुशल प्रशासक, दर्शन, विज्ञान और व्यवहार का विकास कर सकें ।" प्रशासन सभ्य समाज की प्रथम आवश्यकता है । देश में अमन चैन व स्थिरता बनाये रखने के लिये योग्य एवं क्षमता शील प्रशासन का होना जरूरी है । फाइनर के शब्दों में – "कुशल प्रशासन सरकार का वह एक मात्र अवलंब है जिसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत-विक्षत हो जायेगा ।"

प्रशासन का अर्थ प्रकृष्ट रीति से शासित अथवा अनुशासित करना है । इसका यह भी अभिप्राय होता है कि इस क्रिया मे अनेक व्यक्तियों को विशिष्ट अनुशासन में रखते हुये उनसे एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य कराया जाता है । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये सहयोगी ढंग से किया जाने वाला कार्य है । प्रशासन के लिये अनेक व्यक्तियों का सहयोग, संगठन और सामाजिक हित का उद्देश्य अवश्य होना चाहिये । साइमन के अनुसार – "अपने व्यापक रूप में प्रशासन की व्याख्या उन समस्त सामूहिक क्रियाओं से की जा सकती है जो सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सहयोगात्मक रुप में प्रस्तुत की जाती है ।" पिफनर के मत से –"मनुष्य किसी विशिष्ट उद्देश्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बहुत से व्यक्तियों के सम्बन्ध में निर्देश, नियंत्रण तथा समन्वयीकरण की कला है ।"

---

(2) समस्त उद्धरण – यूनीफाइड राजनीति विज्ञान – लेखक – डॉ. बी. एल. फड़िया से उद्धृत .

(1) नारायण नैवेद्य :- पद संख्या - १२१, पृष्ठ संख्या - 35

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानों के ये विचार भारत की अति प्राचीन संस्कृति के व्याख्याता जिन्हें आचार्य दीपंकर ने – "भारत के प्रथम राष्ट्रपिता" के नाम से अभिहित किया है – आचार्य विष्णुगुप्त "कौटिल्य" के अर्थशास्त्र में वर्णित राजनीति और प्रशासन संबन्धी विचारों से पूर्णतया मेल खाते है । कौटिल्य ने भारतीय जीवन के समस्त पहलुओं पर विचार करते समय लोक जीवन की धुरी "प्रशासन" के अनिवार्य अंग – राज्य, राजा, राजतन्त्र और राजनीति – सब पर अत्यन्त सूक्ष्मता से विचार करते हुये इनमें से प्रत्येक के सर्वागं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है । कौटिल्य के द्वारा वर्णित राजतन्त्र का आदर्श उन्हीं के शब्दों में –

"प्रजा सुखे सुखं राज्ञः, प्रजानाञ्च हितेहितम्
नात्मप्रियं हितं तस्य, प्रज्ञानान्तु प्रियं हितम् ।। (1)

अर्थात राजा का अपना सुख कुछ नहीं है । प्रजा का सुख ही राजा का सुख है । प्रजा के हित में ही उसका हित है । उसका अपना हित और प्रिय कुछ भी नहीं है, प्रजा का प्रिय और हित ही उसका प्रिय और हित है ।"

अब मैं भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के इन विचारों के आलोक में प्रशासन की विभिन्न कोटियों अर्थात प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओं पर – जो कि श्री 'बौखल' के काथ्य में प्रमुख काव्य बनकर उसमें समाहित हैं – अपने शोध को 'बौखल' के ही उद्धरणों पर केन्द्रित कर रहीं हूँ ।

<u>सर्वप्रथम राजतन्त्र</u> - आचार्य दीपंकर ने लिखा है – "इस पुस्तक में मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारतीय राजतन्त्र कितना अनुशासित और नियन्त्रित था । निरंकुश राजतन्त्रों के मुकुट किस तरह धूल में मिला दिये जाते थे, और सुनियोजित आर्थिक विकास के लिये विष्णुगुप्त कौटिल्य ने पशुपालन, प्रारम्भिक औद्योगिक विकास, खेती, यातायात मार्गो, उत्तरापथ और दक्षिणापथ के व्यापारिक प्रतिष्ठानों तथा सामुद्रिक व्यापार तक की जो व्यवस्था एवं सुरक्षा प्रदान की थी वह भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व है ।"

प्राचीन दास प्रथा और कौटुम्बिक समाज व्यवस्था के खंडहर पर कौटिल्य ने जिस आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था का विजय अभियान चलाया था ऐतिहासिक दृष्टि से वह एक प्रगतिशील कार्य था । इस प्रगतिशीलता की सामाजिक मान्यता युगों युगों तक भारत में प्रचलित रही है । फिर प्रगतिशील आन्दोलनों में दत्तचित्त रहने वाले हमारे जैसे लोग उन भूतकालीन मान्यताओं को उपेक्षा की दृष्टि से कैसे देख सकते हैं, जिन्होने विभिन्न पड़ावों पर अपने कार्यकलापों द्वारा समाज को वांछनीय मोड़ एवं गति प्रदान की है ।

कौटिल्य के नेतृत्व में एक ओर तो भारत में महान् आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्गठन का अभियान चल रहा था और दूसरी ओर शूद्र जातियों, महिलाओं और दासों के करूण क्रन्दन तथा कौटुम्बिक अर्थव्यवस्था के अवशेष सामाजिक प्रगति में गतिरोध पैदा कर रहे थे । ये दोनों धारायें साथ–साथ नहीं चल सकती थीं । इन दोनो प्रवृत्तियों का टकराव अनिवार्य था । हम देखते हैं कि महामात्य कौटिल्य ने जर्जर सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में प्रगतिशील शक्तियों का साथ देकर पुरानी रीतिनीति एवं मान्यताओं पर प्रबल प्रहार किया है और सामाजिक विकास की धारा को गतिशील करके भारत में शक्तिशाली राष्ट्रीय एकता की सरकार का कार्यक्रम पूरा किया है ।

---

(1) कौटिल्य कालीन भारत – आचार्य दीपंकर

यह राष्ट्रीय एकता कितनी प्रभावशाली थी और उसके परिणाम कितने दूरगामी थे, यह इसी से समझा जा सकता है कि करीब एक हजार वर्ष तक विदेशियों को भारत पर आक्रमण करने का साहस नही हो सका । यह वही स्पृहणीय काल था जिसमें महान् भारतीय संस्कृति, दर्शनशास्त्र, कला, विज्ञान आदि का विकास हुआ ।

आज जब भारत अपनी संस्कृति के विकास के अन्तिम पड़ाव की ओर डग भरना चाहता है और भारतीय संविधान के अनुसार विश्व के समाजवादी परिवार का अंग बनना चाहता है तब अपने अतीत के संघर्षो, पवित्र संकल्पों की ओर देखने से उसे प्रेरणा ही प्राप्त होगी । यही सोचकर अपने भूतकालीन इतिहास के ढाई हजार वर्ष पुराने ये पन्ने नयी पीढ़ी के सामने खोल कर रखे जा रहे हैं ताकि ये नयी पीढ़ियाँ सोच सकें कि पूंजीवाद के दुर्ग पर हमला करके और नयी प्रगतिशील समाजवादी अर्थव्यवस्था की अन्तिम विजय का अभियान चलाकर सुसंगत रूप में वे वही कार्य कर रहे हैं जिन्हे हमारे पूर्वजों ने किया था । नयी पीढ़ी को वे आशीर्वाद देते हैं कि –

"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि सेव्यानिनेतराणि ।।" (1)

(जो हमारे अच्छे आचरण एवं व्यवहार हैं उनका अनुकरण करो, हमारी बुराइयों का अनुकरण मत करो ।)

राजतन्त्र का यही आदर्श स्वरूप भारत के लिये काम्य था जिसमें बड़े छोटे व जातिवाद के व्यूह में जकड़े निर्धन शोषित वर्ग के लिये भी समान सुविधाओं समान अवसरों का लाभ उठाने की बात स्वीकारी गई है । महात्मा गांधी ने सबसे निकृष्ट मानी जाने वाली अछूत जातियों को समाज में बराबरी का स्थान दिये जाने की प्राणपण से चेष्टा की । उन्होने उन्हें हरिजन नाम देकर उनका समाजीकरण करने का प्रयास किया और वे अपने प्रयत्न में बहुत सीमा तक सफल भी हुये । उन्होने ग्राम जीवन को ऐसा आदर्श माना था जहाँ प्रत्येक कामगार को अपने पुश्तैनी पेशों में महारत हासिल करने व अपनी जीविका चलाने का अवसर सुलभ होता । भारत की स्वतंत्रता के पूर्व तक यही आदर्श यहाँ के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों व सामान्य जनता ने अपनी आंखों में संजोये थे; परन्तु हन्त ! सत्ता लोलुप शासकों व भ्रष्टाचारी, स्वार्थपरता में डूबे नेताओं की शतरंजी चालों के आगे सारे आदर्श धराशायी हो गये । इन्हीं भ्रष्ट शासकों व उनके प्रशासन एवं निम्न जातियों के मूक क्रन्दन को श्री 'बौखल' ने अपनी आवाज दी –

जोगिया या बुद्धिजीवी अलगर्जी
अपनो राज्य थापिबे के हित, स्वर्ग राज भुँइ आवा ।
दुखिंया जन सब को संगठन, विविध सुनाइन अर्जी
सतुआ महुआ चाबि चबेना, गाँव गाँव सब दौरे
तेली तमोली अहिर गड़रिया, बहु समझाइन दर्जी
अइसन रचब समाज सुहानो, आनन्द बजै बधावा
लोकतंत्र परलोकतंत्र कै, राज तुम्हारी मर्जी
औसरवाद सिंह बनि गरजै, छाई बदरिया कारी
'बौखल' बनिया राज भयानक, भई प्रजा नित कर्जी ।।

---

(1) कौटिल्य कालीन भारत–आचार्य दीपंकर,(2)नारायण नैवेद्य पद सं.–784 पृ.–226.

पूर्व पद में 'बनिया राज भयानक' उसी निरंकुश, सत्तासीन, कुटिल मनोवृत्ति के शासकों द्वारा चलाये जा रहे राजतंत्र की अमानवीय त्रासदी का द्योतन है जिसने प्रजा को निर्धनता व कर्जदारी के गर्त में डुबो दिया है । अवसरवादिता उनका अचूक अस्त्र है जिससे वे परम स्वतंत्र न सिर पर कोई की कहावत चरितार्थ करते हैं । चूंकि प्रशासन अनेक व्यक्तियों के सहयोग और संगठन का साक्षी है जो संगठन अपनी दृढ़ता से अवांछनीय तत्वों और कृत्यों के कुचल देने मे समर्थ हो सकता है अतः श्री 'बौखल' ने उन्हीं प्रशासन के कर्ताधर्ताओं के स्वाधिकार प्रमत्त हो जाने का वर्णन बड़ी खांटी देसी भाषा में किया है –

विपता अतिसय टरे न टारी
कोटिन भये विधायक जग में, बहुविध नीति विचारी
सुखी समाज भयो नहि कबहूँ, महापुरूष औतारी
बहुधन्धा धन्धा धन धरती, भ्रष्टाचार बगारी
दया, धर्म नैतिक भजिवाणी, पर हरि सम्पत सारी
अन उत्पादक भये सुधारक, रचि अपनी सरदारी
छली दलाल मसाल लिये कर, आँधर बनो पुजारी
'बौखल' जन साधारण बिलखै, हो निराश दृग वारी
कबै निहारै मरै गुसैइयाँ, दुर्गति होति हमारी ।। (1)

जब आर्तता चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब उसके दो परिणाम सामने आते हैं – या तो आर्त स्वयं को समाप्त कर डालने का दुस्साहस कर डालता है या अपने त्रासक पर क्रोधाग्नि के बगूले बन कर टूट पड़ना चाहता है, तब विवेक इतना ही साथ देता है कि वह अपने आधार भूत साधनों का सहारा ढूंढ़े जो उसे यह बतासकें कि वह कितना कुछ कर सकने में समर्थ है और कहाँ उसकी अक्षमता उसे असमर्थ बना देगी । इस पद में आया "कबे निहारै मरै गुसइयाँ" उसी आक्रोश से जन्मी अक्षमता है परन्तु फिर भी अत्याचारी के कुकर्मो का भण्डाफोड़ने की क्षमता रखता है ।

ठग ठाकुर दोनों सुखी, भूखन मरि सहिकारि ।
राजनीति अरू धर्म ध्वज, दोनों उड़त बपारि ।। (2)

सपनो सदा दिखाय कै, लूटि समाज कुलीन
शासन परिवर्तन भयो, श्रमिक दीन मलीन ।। (3)

यद्यपि उस समय भारत में कोई अभिषिक्त सिंहासनारूढ़ राजा नही था परन्तु, जो सत्ता सँभाले हुये थे, उन्ही के लिये कवि ने राजतन्त्र शब्द प्रयुक्त किया है, यही राज्य विकार है जिसने

नारायण नैवेद्य :– (1)पद सं.–790 पृ.क्र.–227,
नारायण अंजलि भाग–II:– (2)दो.क्र.–946पृ.क्र.–73,(3)दो.क्र.–1136 पृ.क्र.–88.

आर्थिक विषमता का अवलंबन लेकर समाज को विश्रंखलित कर दिया —

छिन्न भिन्न भयो संगठन, भ्रष्टाचार बगार
मुद्रा करत अतान बहु, छलिया राज्य विकार ।। (1)

श्री 'बौखल' की चेतना में विज्ञानवाद का भी दोनो रूपों में — एक उसके क्रान्तिकारी निर्माता के रूप में दूसरे उसके विध्वसंक रूप में समावेश है । वह युग विज्ञान की भौतिकवादी प्रगति का युग था, भौतिकवाद जीवन के हर अंग में प्रवेश कर गया था उपभोक्ता वाद सीमा तोड़कर मानव मन मस्तिष्क को झकझोर रहा था । ऐसे में वैज्ञानिक उपलब्धियाँ इन लालसाओं को और बढ़ावा दे रही थी । कवि ने इन दोनों रूपों में विज्ञान की प्रशस्ति और साथ ही भर्त्सना की हैं —

वन्दों वैज्ञानिक सुयश, सुख समान विस्तार
विमल व्यवस्था आर्थिक, हो नैतिक आचार ।। (2)
पइय्याँ लागौ दार्शनिक, एकै पथ अपनाव
एक सरित घर घाटिया, लगै किनारे नाव ।। (3)
बन्दौ वैज्ञानिक हरषि, युग परिवर्तन कीन
विश्व शिरोमणि जगत हित, मार्ग प्रदर्शित कीन ।। (4)
युग परिवर्तन की कथा, अति विज्ञान नियोज
पुनि नैतिकता के बरे, ज्ञानी जन करि खोज ।। (5)

उपर्युक्त दोहों में कवि ने विज्ञान की सराहना करते हुये उसके द्वारा नवीन खोजों का किया जाना जिनसे जीवन की अनिवार्य आवश्यकतायें पूरी होती हैं, जल, थल, आकाश का विलोड़न संभव हुआ हैं — की प्रशंसा की है परन्तु जहाँ वह मानवीयता का अतिक्रमण करके विध्वंस के कार्यो में संलग्न होता है वहाँ उसकी अवहेलना करते हुये उसे अनुपयोगी भी कहा है —

भौतिक सुख विज्ञान है, अन्तः सुख सद्ज्ञान
'बौखल' विविध विवेकिया, दुखदायी अनुमान ।। (6)
मन के पंथ अनेक हैं, मनन पंथ अलि एक
वैज्ञानिक भाषा दई, बगरि विभिन्न विवेक ।। (7)
युग परिवर्तन पाँच जन, जिज्ञासा हिये घोर
वैज्ञानिक, शिक्षक, दार्शनिक प्रचारक अरू चोर ।। (8)

भौतिकता को बढ़ावा देने वाला, नीरस, जीवन की सुखद संभावनाओं से विरल करने वाला चाहे वह विज्ञान हो चाहे अध्यात्म — दोनो ही कवि की वर्जना के विषय रहे हैं —

भौतिकता नीरस निपट, आध्यात्म प्रयास
भावुक विलसि विलासिता, दुरूपयोगिता विकास ।। (9)

नारायण अंजलि भाग–II:–(1) दो.क्र.–926पृ.क्र.–70, (5)दो.क्र.–739 पृ.क्र.–55,
(6),(7)दो.क्र.–870, 871 पृ.क्र.–65,
(8)दो.क्र.–738 पृ.क्र.–55, (9)दो.क्र.–45पृ.क्र.–04,
नारायण अंजलि भाग–I:–(2),(3) दो.क्र.–15, 21 पृ.क्र.–2, (4)दो.क्र.–8पृ.क्र.–1.

कवि ने वह विनाशकारी समय भी देखा था जब हिरोशिमा पर बम वर्षाकर पूरी मानवता को तहस नहस कर दिया गया था, साम्राज्यवादी सत्ता लोलुपता ने विज्ञान का सहारा लेकर इन अमानुषीय कार्यो को इस परिणति पर पहुंचाया था । जब पूरे नगर राख के ढेर में बदल गये, अपरिसीम आर्थिक क्षति हुई, विकसित सभ्यता क्षार क्षार हो गई उस समय की हानि के सजीव साक्षी कवि का विज्ञान के इस पक्ष पर क्षुब्ध होना नितान्त स्वाभाविक था । ऐसी उन्नति, ऐसी प्रगति, इस प्रकार की असीम क्षमता वाली शक्ति, ऐसे सबल व समर्थ संसाधन — जो मानवता का कल्याण करके विकास के मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं — मानव सभ्यता को अनुकरणीय व आदर्श बना सकते थे — के इतने संहारक चरित्र विज्ञानवादियों के लिय भले ही प्रेरक रहे हो — कवि हृदय के लिये कदापि नहीं ।

लोकतन्त्र - लोकतन्त्र एक अति प्राचीन राजनीतिक विचारधारा है जो प्राचीनता के ही केन्द्रक में सिमट कर नहीं रही वरन् यह निरन्तर गतिशील विचारधारा के रूप में सदैव प्रतिष्ठित रही है । लोकतंत्र का तात्पर्य है ऐसा राजनीतिक चिन्तन जिसने देश की माटी और उस माटी पर निर्भर बहुसंख्यक सामान्य जन समाज के हित को आर्थिक और राजनयिक दृष्टि से विशेष सम्मान दिया हो । लोक का अर्थ इसलिये भी सामान्य जनसमूह से लिया जाता है क्योंकि यह अभिजात्य से भिन्न होता है । इस मानक के अनुसार अभिजात्य और लोक ये दो वर्ग समाज में सदा से रहे हैं और सदा बने रहेंगे । जब इसको राजनीतिक विचारधारा के रूप में देखा जाता है तो इसके अर्थ विभिन्न लोगों की दृष्टि में भिन्न भिन्न हो जाते हैं । लोक का अर्थ सामान्य रूप से जनता व तन्त्र का अर्थ है शासन, अतः लोकतंत्र का अभिप्राय 'जनता का शासन' से होता है यह यूनानी शब्द डेमोक्रासी (Demoos = जनता + Kratos = शासन) के समान माना गया है । इसके विपरीत है एक व्यक्ति के निरंकुश शासन वाली बादशाही या तानाशाही और चन्द लोगों के शासन वाला 'कुलीन तन्त्र' ।

"लोकतंत्र के बुनियादी (मूल) लक्षण हैं कि प्रभुसत्ता लोगों में निहित हो, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, रंग या स्त्री पुरुष के भेदभाव के बिना तथा आर्थिक, शैक्षणिक या व्यावसायिक पृष्ठभूमि के स्तर के भेदभाव के बिना, कानून की नजरों में सभी बराबर हो और प्रत्येक व्यक्ति को इतना सक्षम समझा जाय कि वह उस तरीके से, जिसे वह उचित समझे, स्वयं पर शासन कर सके तथा अपने निजी कार्य व्यापार का प्रबन्धन कर सके । लोकतंत्र में लोग स्वयं अपने स्वामी माने जाते हैं । उन्हें इस बात का अहस्तान्तरणीय अधिकार होता है कि वे स्वयं पर शासन करें याअपने मनचाहे तरीके से तथा उन लोगों द्वारा शासित हो जिन्हें वे चुनें ।" ....

"लोकतंत्र इस तथ्य को भी स्वीकार करता है कि अनादि काल से मनुष्य सत्ता या सर्वोच्चता के लिये संघर्ष करता रहा है । लोकतंत्र संघर्ष का अपेक्षाकृतअधिक सभ्य तरीका प्रस्तुत करने का प्रयास करता है । यह सशस्त्र संघर्ष के तरीकों के स्थान पर विचार विमर्श तथा समझाने बुझाने के तरीकों को प्रस्तुत करता है । कारतूसों की पेटी का स्थान मत पेटी ले लेती है । हम एक साथ बैठते हैं, बातचीत करते हैं और विचार विमर्श करते हैं । हम अपने दृढ़ निश्चय, विचारों और तर्को के बल पर एक दूसरे को राजी करने और जीतने की कोशिश करते हैं ।" (1)

---

(1) हमारा संविधान — भारत का संविधान और संवैधानिक विधि — सुभाष काश्यप

इस प्रकार की शासन प्रणाली दो प्रकार की होती है — एक प्रत्यक्ष, दूसरी परोक्ष । प्राचीन भारत तथा यूनानी नगर राज्यों में लोग एक स्थान पर एकत्र होकर बैठते तथा विचार विमर्श से शासन के तत्वों को अथवा राज्य व्यवस्था को सुनिश्चित करते थे । इस प्रत्यक्ष विधि में वैधानिक (कानूनी) तथा राजनीतिक संप्रभुता दोनो ही व्यक्तियों में ही सन्निहित होती हें । यह लोकतंत्र की सर्वोत्तम विधि हैं, परन्तु कालान्तर मे यह प्रक्रिया अधिक जटिल व अव्यावहारिक प्रतीत होने लगी तब परोक्ष प्रणाली का प्रचलन बढ़ा । राज्यों के आकार बढ़ने व प्रशासन की प्रक्रिया जटिलतर होते जाना भी इसका एक कारण बना । वर्तमान समय में अधिकतर देशों में इसी परोक्ष प्रणाली अर्थात् प्रतिनिधियों के द्वारा शासन में भागीदारी का प्रचलन बढ़ गया है । लोग नियतकालिक अन्तराल के बाद जनमत संग्रह के रूप में चुनाव द्वारा अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करके उन्हें प्रशासन तक भेजते हैं । यह कार्य वयस्क मताधिकार के प्रावधानों के द्वारा होता है जिसमे बिना किसी भेदभाव के जनता को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिला है । (अनुच्छेद 326)

इस लोकतंत्रीय शासन प्रणाली को यद्यपि अधुनातन समय में शासन की सर्वोत्तम विधि माना गया तथापि यह राजतंत्र से भी प्राचीन पद्धति है जिसमें समाज में न कोई राजा होता था न राजशासन तब केवल समाज के मान्य नियमों के अनुसार आचरण करके समाज व्यवस्था चलाई जाती थी । महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गयाा है कि "एक समय ऐसा था जब न राजा था न राज्य । न दंड था न दंड देने वाला । सभी प्रजाओं का व्यवहार धर्म (समाज में प्रचलित नियमों) के अनुसार होता था । और सभी मिलकर एक दूसरे की रक्षा करते थे —

"न वै राज्य न च राजासीत, न दण्डौ न दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ।। (1)

इस प्रकार की राज्य हीन और साम्यवादी व्यवस्था आदर्श मानी जाती थी — यह समत्व सबको खान पान व व्यवहार में प्राप्त था —

"सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि" (अथर्व वेद)

(तुम्हारे पेय और भोजन का भाग एक समान होना चाहिए । मैं तुम सबको एक प्रवृत्ति और एक ही बन्धन में बाँधता हूँ ।)

ऋग्वेद भी इसी समानता और सहभागिता का समर्थन कर चुका था —

"सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।" (ऋग्वेद)

(हम सब मिलकर अपनी रक्षा करें, हम सब मिलकर समान भाग खायें, हम सब मिलकर साहस के कार्य करें । हमसे जो सर्वाधिक तेजस्वी है उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करें और उससे ईर्ष्या व विद्वेष न करें ।)

यहाँ पर लोकतंत्र के परोक्ष पक्ष कासमर्थन मिलता है जिसमें जो तेजस्वी हो (चुनने का

(1) महाभारत — शान्ति पर्व

अधिकार और चुने जाने का अधिकार) उससे शासन की व्यवस्था कराये जाने को जनता द्वारा स्वीकृत किये जाने का विवरण मिलता है । इसी राज्य विहीन समाज तथा अर्थ व्यवस्थता से विनिर्मित लोकतंत्र की कल्पना श्री 'बौखल' ने की है –

"गठन आर्थिक गाँठिये, राज्य विहीन समाज
मनोवैज्ञानिक दोष मिलि, 'बौखल' तबै सुराज ।। (1)

यहाँ पर एक प्राकृतिक नियम लागू होता है कि प्रकृति ने सब मनुष्यों को एक समान बनाया है अतः यह प्रकृतिकृत साम्य है । वैदिक ऋषि ने भी इस समानता को स्वीकृति दी है, वहाँ का तो संसार ही पारस्परिक प्रेम सहयोग के आधार पर बसा है अतः यह समानता ऋषिकृत समानता हुई और अब यह संविधानकृत भी हो गई क्योंकि संविधान ने भी अपने सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के समानता का अधिकार दिया है अतः यह सिद्ध हो जाता है कि लोकतंत्र की राज्य व्यवस्था चिर पुरातन, चिर नवीन एवं आत्मीकृत है अर्थात् जो जनता के लिये है जनता के द्वारा है और जनता की ही है । श्री 'बौखल' ने इस समान जीवन पद्धति वाली लोकतंत्रीय प्रणाली को सर्वोच्चता प्रदान की है उनके शब्दों में –

एहि विधि लोकतंत्र लहराई
सबजन करि श्रम खाय कमाई, मुद्रा देहि घटाई
मन वाणिक कायिक करि प्रीति, सबहिन हित सरसाई ।
जन संख्या आपै घटिजावै, परिश्रमी सुख पाई
भोजन की सब सुधरी समस्या, नैतिक नियम सवाई
मूढ़ आलसी परोपजीवी जन, भेद भाव उपजाई
गृह आन्दोलन होय हमेशा, घटै राष्ट्र प्रभुताई
ग्राम विकास बढ़े उत्पादन, विनिमय हो अधिकाई
सम्मानित करि बुद्धिजीवीजन, आविष्कार बढ़ि जाई ।। (2)

यहाँ एक बात विचारणीय है कि श्री 'बौखल' ने निर्धन और श्रमिक के पक्ष में दो बातें मुख्य रूप से कहीं है जो लोकतंत्र के उस स्वरूप की अनुमोदन करने वाली पद्धति की द्योतक हैं जिसमें कृषक या श्रमिक को आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनने का अवसर देने की बात कही गई है, उन्हें केवल सेवा कार्य में ही निरत रहने के लिये नहीं कहा गया क्योंकि पूर्व में यह मान्यता थी कि शूद्र केवल द्विज वर्ग की सेवा के लिये नियुक्त किया जाता है । इनके काव्य में चाकर या बेगार के रूप में कही भी निर्धन श्रमिक या कृषक का नाम नहीं आया, उनका शोषण केवल उनके उपजाये धान्य पर मालिक का कब्जा होने पर होता था जिस उपज के लिये वह अपने हाड़ गलाता है ।

तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कौटिल्य के लोकतंत्र संबंधी विवरण में भी इसी तथ्य को उजागर किया गया है, वह भी श्रमिक को आर्थिक स्वतंत्रता देने के पक्ष

नारायण अंजलि भाग–II:–(1) दो.क्र.–908पृ.क्र.–68,
नारायण नैवेद्य :– (2)पद सं.–241 पृ.क्र.–70.

में थे, वे श्रमिक जो अपने हाथों से कृषि, उत्पादन या अन्य हस्तकार्य करते थे । इसीलिये इनमें तीव्र गति से विकास होने लगता है जब अर्थतन्त्र सुगम होता है । जब इन कार्यो की बढ़ोतरी होती है तब किसी मुख्य आर्थिक शाखा का भी विकास होता है अथवा किसी आर्थिक शाखा के विकास होने पर समाज में अनेक प्रकार के कर्मकारों की भी वृद्धि होती है ।

'कौटिल्य कालीन भारत में कृषि अर्थ तंत्र के विकास के साथ ही बढ़ई, लुहार, धोबी, नाई, रथकार, सपेरे, शिकारी, धरती खोदने वाले और ऐसे ही सैकड़ो के नये धन्धे समाज में चहल पहल करने लगे ।..

कौटिल्य के अर्थतंत्र में जिस प्रकार से सामाजिक अर्थव्यवस्था के लिये सर्वांगीण विकास पर अतिशय बल दिया गया है वह केवल इसी बात का सूचक रहा है, बल्कि समाज मे एक व्यापक आर्थिक दृष्टिकोण का विकास भी हुआ था जो कि पुरानी मान्यताओं, रुढ़ियों, भाग्यवाद एवं अंधविश्वासों से दूर समाज को ले जाता था ।" (1)

श्री 'बौखल' ने जो बाते श्रमिक के पक्ष में कही हैं उनमें से प्रथम तो ये है कि निर्धन कृषक व श्रमिक को समाज में अपने उत्पादन के लिये अवसर मिले, वह दूसरे की कृपा पर आश्रित न हो जैसे यदि उसे कृषि का कार्य करना है तो वह स्वयं अपनी भूमि का मालिक हो, उसमें किसी दूसरे का हस्तक्षेप न हो । भूमि, श्रम, विनिमय और वितरण सभी में उसका अपना स्वामित्व हो, वहाँ किसी जमीदार व सांमत का उस पर आधिपत्य जमाने का कुचक्र न चले । दूसरी बात यह कि उसे अपनी जीविका—जो अपने पारम्परिक परिवेश मे मिलती रही, उसके लिये सुगम बनी रहे औरवह श्रम का उचित मूल्य पाता रहे । लौकिक पक्ष में भावना, श्रम और मुद्रा तीनों का उचित तालमेल उसे सिद्धि एवं ऐश्वर्य का मार्ग दिखला सकते हैं — अतः अपने श्रम के बराबर वेतन या अन्य सुविधायें पाने का उसे भी हक है ।

अस विचार मानव उपजावो ।
उत्पादन वितरण स्वाभाविक, मनोगत नियम निभावो
सहकारी आधार स्वाभाविक, नैतिक नीति नचावौ
श्रमिक वादी अन्तरंग भाषा, सामूहिक गुण गावो
स्वयं भोगि जानै दुख दारूण, अन्तद्वेष नसायो
गठन सामाजिक द्वेष आर्थिक करि संघर्ष मिटायो
समुन्नत हो अर्थ नियोजन, चिर स्वतंत्र सुख पायो ।
प्रीति रीति सदभाव प्रकाशित, मिलि व्यवहार बनायो ।
'बौखल' बनि समाज शुभचिन्तक, जीवन जगत बनायो ।। (2)

यह एक बानगी है जो कवि ने लोकतंत्र के पक्ष में अपना ह्रदय खोल कर दिखाई है । शासन की इस पद्धति को आज विश्व के अधिकांश देशों व राष्ट्रों ने अपनाया है, कारण यही है कि इस पद्धति में न केवल जन सामान्य को राजनीतिक जागरूकता प्राप्त होती है वरन् उसे आत्माभिव्यक्ति

(1) कौटिल्य कालीन भारत — आचार्य दीपंकर

(2) नारायण नैवेद्य :— पद सं.— 39 पृ.क्र.—12

की पूर्ण स्वतंत्रता होती है जिससे वह विचार क्षेत्र में अधिक क्रान्तिकारी परिवर्तन लासकता है इस परिवर्तनगामी प्रकृति से मनुष्य के आगे नयी नयी दिशायें खुलती हैं, कार्यक्षेत्र का विस्तार बढ़ता है, दृष्टिकोण संकीर्णता से उठकर बहुआयामी बनता है और इस प्रकार इसमें शुभ के ग्रहण के साथ साथ अवांछनीयता के त्याग के लिये पूरी स्वतंत्रता होती है । श्री 'बौखल' को इस पद्धति में सारी अच्छाइयों के साथ एक बात जो सुधारे जाने योग्य लगी वह यह है कि स्वतंत्र देश में यदि प्रशासन उपयुक्त रीति से चले तो सोने में सुहागा हो जाये — उन्होंने कहा —

स्वतंत्रता आई सही, प्रशासन दे नहिं साथ ।
बुद्धिजीवी की बानियाँ, रंगे रात दिन हाथ ।। (1)

स्वतंत्रता देश में आई परन्तु प्रशासन ने साथ नहीं दिया — यह श्री 'बौखल' की सबसे बड़ी टीस थी । इसे प्रशासन की उदासीनता या अक्षमता कहें अथवा तत्कालीन उभरती हुई अन्य राजनीतिक हस्तियों का हस्तक्षेप कि गांधी के भारत में गांधी की नीतियों का अनुपालन नहीं हुआ । देश के अंग्रेजी पढ़े लिखे व अंग्रेजी वातावरण में पले, बढ़े, पढ़े नेतृत्व ने गाँधी के सोचे हुये लोकतंत्र को क्षत्र—विक्षत कर दिया और गाँधी का परिपालन विशुद्ध रूप से नहीं हो सका जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का देश की आजादी प्राप्त करने के बाद दूसरा और प्रधान लक्ष्य था । गाँधी की नीति में ग्राम विकास और तदनुकूल कार्य करने वाली योजनायें बनाना और उनका पूर्णरूप से पालन करना — शासन के प्रधान कर्तव्य माने गये थे, क्योंकि गाँधी ग्रामों को भारत की आत्मा मानते थे । तब 70% आबादी गांवों में रहकर खेती किसानी व निजी पुश्तैनी व्यापार से अपनी जीविका चलाती थी अतः ग्रामों के सर्वतोमुखी विकास का लक्ष्य उनकी सबसे पहली प्राथमिकता थी । कृषि को नये ढंग से उन्नत करना, ग्रामीणों के जीवन यापन की दशाओं को सुधारना, स्वास्थ्य व जीवनोपयोगी संसाधनों की सुलभता, उनकी जमा पूंजी का रखरखाव (बैंकों द्वारा) बच्चों व प्रौढ़ों के लिये जाने वाले शोषण से बचाव कराना, तथा सब में राष्ट्रीय भावजागृत करना — ये गाँधी वाद के मूल सिद्धांत ग्रामों के बारे में थे । यदि स्वतंत्रता के बाद तत्काल ही इन सिद्धांतों पर अमल किया जाता तो भारत की राष्ट्रीय चेतना को आधात न पहुंचता और भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत से इस कदर न कटता । उन्होने अपने अन्तर्तम की विशुद्ध भावना से समाज में समानता का शंखनाद करना चाहा था — भावनिष्ठ दृष्टि से देखें तो गांधी ने भारत में राष्ट्रवाद की आत्मा को रूपायित किया, विदेशी गुलामी के प्रति घनघोर घृणा की भावना और उस गुलामी को समाप्त करने की वीरोचित इच्छा व दृढ़ निश्चय को जन्म दिया । वे आदर्श राष्ट्रवादी थे और उनकी चेतना में कहीं लेशमात्र भी प्रान्तीयता या साम्प्रदायिकता का अंश नहीं था । साथ ही वे समानता के भरपूर हाभी थे । उनकी दृष्टि में था कि बड़ा छोटा तो समाज में रहेगा ही पर उनके हित परस्पर टकराहट का रूप न ले कर समानता और सद्भावना की सीमा में ही पूरे होंगे — एक उदाहरण —

'मेरी कल्पना के रामराज्य में राजा और रंक के अधिकार एक समान सुरक्षित हैं । आप विश्वास मानें मैं वर्ग युद्ध रोकने में अपनी सारी ताकत लगा दूंगा ।..... अगर जबर्दस्ती आपकी सम्पत्ति को नाजायज रूप

नारायण अंजलि भाग—II:—(1) दो.क्र.—265 पृ.क्र.—98.

से छीनने का उपक्रम हुआ तो आप देखेंगे कि मैं आपकी ओर से लड़ रहा हूँ - हमारा समाजवाद या साम्यवाद अहिंसा एवं श्रम और पूंजी तथा जमींदार और किसान के सद्भाव पूर्ण सहयोग पर आधारित होना चाहिए ।' (जुलाई 1934 में उत्तर प्रदेश के जमीदारों को दिया गया गांधी का वक्तव्य) (1)

इस पृष्ठभूमि पर देखते हैं तो ज्ञात होता है कि इस परमपवित्र व सर्वजनहिताय सुचिन्तित लोक कल्याण की महती आकांक्षा की प्रतिपूर्ति तो दूर उसकी कल्पना को भी नष्टप्राय और संभावना को विचूर्णित कर दिया गया । लोकतंत्र का इससे बड़ा क्रूर उपहास और क्या हो सकता है ।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के भी इस सम्बन्ध में विचार दृष्टव्य हैं – उन्होने भी माना है कि –

"लोकतंत्र का यह तो कभी कहना नहीं था कि सब मनुष्य असलियत में बराबर हैं । वह ऐसा कह भी नहीं सकता था, क्योंकि यह तो जग जाहिर ही है कि मनुष्य मनुष्य में असमानतायें होती है; तन की असमानतायें जिनसे कुछ लोग दूसरों से ज्यादा काबिल व बुद्धिमान दिखाई देते हैं; और नैतिक असमानतायें जो कुछ को स्वार्थी बनाती हैं और कुछ को नहीं । यह बिलकुल मुमकिन है कि इनमें से बहुत सी असमानतायें अलग अलग तरह के लालन पालन या शिक्षा के सबब से होती हों या शिक्षा के अभाव से होती हों ।........ लेकिन जहाँ तक लोकतंत्र का सम्बन्ध है वह मानता है कि मनुष्य दरअसल असमान होते हैं और फिर भी वह कहता है कि हरेक मनुष्य के साथ ऐसा बर्ताव किया जाना चाहिए मानो उसका राजनीतिक व समाजी महत्व सबके बराबर है ।" (2)

सिद्धांतों के पैर नैतिकता और आदर्श की उच्चतम भूमि पर दृढ़ता से जमे रहते हैं जबकि व्यावहारिकता की भूमि बड़ी रपटीली होती है । स्वार्थ के गंदे जल और भ्रष्टाचार के पंक से यह ऐसी फिसलन वाली राह बन जाती है जहाँ बड़े से बड़े सिद्धांत साधक के पैर यहाँ आकर जाने अनजाने रपट ही जाते हैं । शासन के विस्तृत दलदल में जहाँ स्वामी की अधिकार लिप्सा खुलकर खेलने का आकार पाती है वहीं उसके कार्यकारी नौकरशाह भी अपनी पर्दे में छिपी नमक–हलाली का प्रमाण देने से नहीं चूकते । गांवों में जमीदारों के कारिन्दे कारकुन यह काम बखूबी करते हुये कृषक श्रमिक का खूनचूसने में अपना आनन्द खोज लेते हैं । लुटे, पिटे, ठगे भूखे लोगों का लोकतंत्र कैसाा हैं – देखें श्री 'बौखल' के शब्दों में –

हमने लोकतंत्र अब जाना
खोदैं कूप नीर नहि पावैं, निशिदिन ढोय पखाना
घोर कमाई करै पेरि तन, पेट न पावै दाना
बसन बनावै फिरो उधारे, विविध विपति सह नाना
सोवै आसमान के नीचे, बहुतक तानि बिताना
कारकुन खावै मालपुवा औ, छकै मलाई मुटाना

---

(1) भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि – ए.आर.देसाई

(2) विश्व इतिहास की झलक – पं. जवाहर लाल नेहरू

जमीदार कै नमक हलाली – दरशै बजा निसाना
सृष्टि नियन्ता करि प्रलय तुम, दुइ सृष्टी उपजाना
एक में रहैं गुसइयाँ हमरे, एक में जन परधाना ।। (1)

कितनी मर्मवेधक और टीस भरी पुकार है परमात्मा से कि सृष्टि अब हमारे जीने योग्य नही रही अब तुम दो संसार बनाना जिनमें से एक में हमारे मालिक व उनके प्रधान रह सकें तथा एक में सामान्य जन । श्री 'बौखल' ने लोकतंत्र के दोनों रूपों को अपनी खुली आंखों से देखा व उनकी बेबाक, बेलौस समीक्षा अपनी रचनाओं में की है ।

शासन पद्धति – संस्कृति की 'शास्' धातु से शासन शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है राज्य करना अथवा अधिकार पूर्वक व्यवस्था को समुचित निरन्तर्ता प्रदान करना । किसी भी भूभाग पर जो व्यक्ति राज्य करता है उसे शास्ता या शासक कहा जाता है जो उस भूमि पर रहने वाले समुदाय के कार्य कलापों का नियंत्रक व उसका मार्गदर्शक होता है । मार्ग दर्शन के लिये कुछ निश्चित सिद्धांतों की वृहत् संदर्शिका होती है जो उनके नियमानुसार पालन किए जाने के विधि विधानों का प्रावधान करती है । इन्हीं विधि विधानों का सहारा लेकर शास्ता उस वृहत् समुदाय पर प्रभुत्व स्थापित करता व उसके कल्याणार्थ अनेक प्रकार की पद्धतियाँ चलाता है । यही सामान्यतया शासन का अभिप्राय होता है ।

विश्व भर में शासन की अनेकानेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं । विभिन्न देश व राष्ट्र अपनी संस्कृति व परम्पराओं का समायोजन करके अपने क्षेत्र में रहने वाले जन समुदाय के अनुकूल आचार शास्त्र का निर्माण करते हैं । यह आचार शास्त्र बहुमुखी होता है, इसमे शास्ता, शासित, शासन के विभिन्न विषय, विषयों को आचारणीय बनाने के संदर्भ, उन संदर्भो को मान्यता प्रदान कराने व स्वीकृत किये जाने के लेखे जोखे तथा उन सब का एकीकृत रूप आदि तत्व सम्मिलित होते हैं ।

भारत सर्वसंप्रभुता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है । इसके चारों शब्दों का अर्थ है कि यहाँ सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होती है । 'संप्रभुता' का आशय है कि अपने विषय में व अपने देश की समस्याओं के समाधान हेतु 'स्वयं निर्णय लेने का अधिकार' सुरक्षित होना । इसमे किसी दूसरे के द्वारा निर्णय लिये जाने को स्वीकृति नहीं मिली ।

'लोकतंत्रात्मक' का तात्पर्य है कि इसमें पूरी जनता के उपर शासन की निर्भरता है । यह 'जनता के द्वारा, जनता का व जनता के लिये' होता है, कोई शास्ता 'जनता के ऊपर नही हो सकता । और 'गणराज्य' का अर्थ है कि इस पद्धति में एक राष्ट्राध्यक्ष होता है जो जनता के द्वारा निर्वाचित होता है अर्थात जनता स्वेच्छा से किसी भी बौद्धिक क्षमता सम्पन्न, बहुज्ञ, कुशल और गुणी व्यक्ति को अपने राष्ट्रका अध्यक्ष नियुक्त कर सकती है । वर्तमान युग में इस लोकतन्त्रात्मक पद्धति को लगभग सभी देशों ने स्वीकार किया है क्योंकि इसमें स्वतन्त्रता व समानता जैसे मानवोचित गुणों की प्रधानता को स्वीकार किया गया है और कोई भी परतन्त्रता के अभिशाप को अब अपने ऊपर झेलने को तैयार नही हैं । गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति इसी लोकतन्त्र की एक विधा है ।

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–398 पृ.क्र.–115.

गणराज्य की संकल्पना नितान्त आधुनिक नहीं है यह अति प्राचीन पद्धति है । भारत व विश्व के अन्य देशों ने इसे कभी का स्वीकार कर लिया था । प्राचीन भारत में और विशेषकर अमात्य कौटिल्य के समय में, जब कि साम्राज्य की एकरूपता, विशालता व अखंडता के लिये विशेष प्रयास उनके द्वारा किया गया था, उन्होने राजतंत्र को शासन की धुरी माना था और राजा की गुणवत्ता के आधार पर ही राजतंत्र की उपादेयता प्रतिष्ठित होती है – यह उनकी स्वीकृति थी; परन्तु फिर भी वह उसे राज्य का सर्वस्व नहीं मानते । उन्होने राजा की निरंकुशता एवं अत्याचारों के विरूद्ध प्रजाओं को अनवरत सावधान किया है । मंत्री परिषद् पुरोहित, आर्थिक अधिकारी और सेनाध्यक्ष आदि के रूप में अधिकारियों को मिले विशेषाधिकारों के आधार पर ही वह राजतन्त्र का संचालन आवश्यक मानते थे । इसीकारण राजतंत्र को अंकुश में रखने तथा उसकी असंगतियों की रोकथाम के लिये उन्होने अध्यक्षीय प्रणाली पर जोर दिया है जिससे कि शासन राजा की स्वेच्छाचारिता और मात्र उसकी स्वच्छन्दता पर ही निर्भर न रहे । इस प्रकार राजा उन नियमों तथा शासकीय व्यवस्था का प्रतीक मात्र बना रहता है जिसका सृजन दीर्घकालीन अनुभवों के उपरान्त होता है । और उसकी राजसत्ता का उपयोग प्रजा की सेवा, रक्षा और राष्ट्र के आर्थिक विकास तथा सुरक्षा के लिये ही होता है तभी उस युग के सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके पुत्र विन्दुसार प्रजावत्सल सम्राटों के रूप मे अनुशासित जीवन बिताने मे सफल हो सके थे ।

उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध हो जाता है कि गणराज्यीय शासन पद्धति सदैव से एक सर्वस्वीकृत और रक्षात्मक दृष्टिकोण की पोषक रही है ।

'कूले' के अनुसार – "गणराज्यीय शासन प्रणाली जन निर्वाचित प्रतिनिधियों की शासन प्रणाली है ।" 'न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला' के शब्दों में – "गणराज्य एक ऐसा राज्य होता है जिसमें अन्तिम विश्लेषण में सर्वोच्च शक्ति जनता में न कि राज जैसे किसी एक व्यक्ति में निहित होती है ।" 'मेडिसन' ने फेडरलिस्ट में कहा है – "गणराज्य एक ऐसी शासन प्रणाली है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे अपनी शक्तियाँ आम जनता से प्राप्त करती है और वह उन व्यक्तियों द्वारा शासित होती है जो अपने पद सीमित अवधि के लिये लोगों के प्रसाद पर्यन्त या अच्छे व्यवहार पर्यन्त धारण करते हैं ।"

इस गणराज्यीय व्यवस्था या शासन पद्धति की प्राचीनता का एक और पुष्ट प्रमाण मिलता है वह यह कि यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने भी जनतंत्र का समर्थन किया था । उसने तीन प्रकार के शासन तंत्र बताये थे –

1. राजतंत्र 2. कुलीन तंत्र 3. संवैधानिक शासन ।

अरस्तू ने इनमें से संवैधानिक शासन को अधिक उपयुक्त बताते हुये तर्क दिया कि जब बहुत से व्यक्तियों के सामने निर्णय के लिये कोई वस्तु आती हे तो उनमे से कोई किसी एक भाग को अधिक समझता है कोई किसी दूसरे भाग को और सब लोग मिलकर एक व्यक्ति से अच्छा निर्णय देते हैं ।....... अरस्तू का यह सुझाव है कि नागरिक अधिकार उन तमाम व्यक्तियों को दे दिये जायें जो राज्य व्यवस्था में विचार सम्बन्धी योग दे सकते हों अथवा न्याय कार्य कर सकते हों; किन्तु पद प्राप्ति के लिये शिक्षा और चरित्र की शर्त लगा दी जाय और साधारण जनता के हाथ में केवल

निर्वाचन का अधिकार रह जाता है जिसका निर्वाह वे भलीभाँति कर सकते है ।" (1)

उद्धरण बताता है कि यह व्यवस्था अध्यक्षीय शासन प्रणाली ही है । अब देखे कि कवि 'बौखल' की दृष्टि में यह अध्यक्षीय शासन पद्धति या गणराज्यीय प्रणाली क्यों सर्वोत्तम विधि है । उनके लिये जो भी प्रजा की सुरक्षा, उसका हित, अन्न वस्त्र की समस्या का समाधान करे व श्रमिक के भरण पोषण हेतु वेतन का उचित निर्धारण करे – वह एक अध्यक्ष (दाता) ही लोकतंत्र को सफल बना सकता है –

फूलै लोकतंत्र फुलवारी
जनम लियो जन धन्धा लागै, विकसित बुद्धि विचारी
जीवन सम्बन्धी सुख साधन, भयो सनेह अपारी
कृषक मजूर श्रम शक्ति संचित, लोक नीति विस्तारी
अर्थ देव सबही प्रतिपालै, असुर भाव जन जारी
नैतिक अनुशासन हितकारी, सबके अंक पसारी
न्याय करै अध्यक्ष सयानो, थापि संघ सहकारी
सबकी सहमति राज चलावै, बरसि अमिय रसधारी
सार्वजनिक सुख भोगैं 'बौखल', देश भक्त नर नारी ।। (2)

इस पद में दो वाक्य ऐसे हैं जो सीधे गणतन्त्रीय शासन प्रणाली का समर्थन करते हैं – एक तो 'न्याय करै अध्यक्ष सयानो' और दूसरा 'सबकी सहमति राज चलावै' – ये दोनो वाक्य बड़े सारगर्भित हैं और पूरी तरह से जनता द्वारा निर्वाचित सरकार और उसके अध्यक्ष के पक्ष में खड़े हैं । ऐसे ही लोकतंत्र में भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनो ही संतुलित व सुरक्षित रह सकती हैं –

भौतिक अरू आध्यात्मिक, रहे संतुलित तात ।
सुखी समाज बढ़ि राज्य बल, निशिदिन नवल प्रभात ।।

इस नवल प्रभात को लाने के लिये सरकार या शासन को समाज के हर वर्ग के लिये उपयुक्त अवसर देने होंगे जिनसे उसका भौतिक व आध्यात्मिक विकास होता रहे और चिन्ता रहित होकर वह समष्टि का हितकारी बन सके । इसे ही श्री 'बौखल' ने 'लेखापति सरकार' कहा है –

लेखापति सरकार हमारी
रैन दिवस परिश्रम करैं हम, लखै न सांझ सकारी
हरी भरी नित रहे देश की, लोकतन्त्र फुलवारी
रहे न कोई भ्रष्टाचारी, पथ दलाल व्यौपारी
समाज सरकार सुखी नित, भौतिक नियम अचारी
श्रम सों श्रम को विनमय होवै, जीवन नियम अधारी
वर्ग विनाश समाजिक हो नित, उज्जवल हो अंधियारी
मानव चित चिन्ता निर्मूलै, भरि नित पेट पिटारी
'बौखल' ऐसो रचो रोचना, सुख उपलब्ध अपारी ।। (3)

---

(1) "पालिटिका" 1281 बी, 30–35 – अरस्तू

नारायण नैवेद्यः–(2) पद सं.–38 पृ.क्र.–12, (3) पद सं. – 105 पृ.क्र.–31

पूर्व पद में 'ऐसो रचो रोचना' का विधान लोकतंत्र की फली फुलवारी में ही बन सकता है, इस रोचना से नैतिकता और सामाजिकता के साधनों द्वारा उस साध्य पर दृष्टि केन्द्रित हो सकती है जहाँ दुःख, दैन्य, कालुष्य, कल्मष, वैरभाव, शोषण वृत्ति आदि सब का शमन हो जायेगा ।

शासक वर्ग का चरित्र - भारतीय संस्कृति और अतीत गौरव के सबसे बड़े पुरोधा, सुप्रसिद्ध नाटककार श्री जयशंकर 'प्रसाद' ने अपने 'स्कन्दगुप्त' नाटक में लिखा है —"अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन होता है ।"

अधिकार सुख की मादकता उस निर्बन्ध स्वेच्छाचारिता की लालसा पूर्ति का प्रतिफलन होती है जो अपने मार्ग में आने वाली किसी भी बाधा, किसी प्रकार के व्यवधान को स्वीकार करने को रंचमात्र भी तैयार नही होती ।

सामान्य रूप से यह अवधारणा प्रायः शासक वर्ग के चरित्र से जुड़ी होती है—अपवादों को छोड़ दिया जाये तो, कोई भी शासक एक निश्चित भूभाग व उसमें निवास करने वालों का स्वामी माना जाता है जिसकी इच्छानुसार उस क्षेत्र के समस्त आचार विचार, व्यवहार, व्यापार, अर्थव्यवस्था, न्याय—व्यवस्था, राजनीति, कूटनीति व शासन पद्धतियों की रूपरेखा का निर्धारण होता है और वह संपूर्ण क्षेत्र का नियन्ता होता है तथा वह स्थान व समूह पूरी निष्ठा व स्वीकार भाव से उस शासक का वशवर्ती होता है ।

एक आदर्श व उदात्त चरित्र शासक वह होता है जो अपने वशवर्ती समूह अथवा जनता के लिये कल्याण कारी शासन की व्यवस्था कर सके । जो स्वयं गुणी व अन्यों का गुणग्राहक हो, जिसका आचरण व व्यवहार नीति व लोकनीति सम्मत हो । जो राजनीति व कूटनीति का सफल प्रयोक्ता हो । देश—विदेश के संबंधों की जिसे गहरी समझ हो अर्थात जिसे राजनीति के चार प्रधान तत्वों—साम, दाम, दंड व भेद के सूक्ष्म प्रयोगों का भली भाँति ज्ञान हो । शासक का सर्वोत्तम गुण है अपने अधीनस्थ राज्य के आर्थिक तंत्र की सुदृढ़ता व उसका लाभ जन सामान्य तक पहुंचाने की सूक्ष्मदर्शिता । शासन के मुख्य अंग, राजस्व, व्यापार, कृषि, सेवा योजना तथा गुप्तचर नीति—इनके सफल संचालन के लिये उपयुक्त कार्य प्रणालियाँ विकसित करना तथा उन कार्य पद्धतियों पर दृष्टि रखते हुये उनके द्वारा प्राप्त यथेच्छ परिणामों का आकलन करते हुये चलना — यह शासक की सतत जागरूकता होनी चाहिए । स्व राज्य को पूर्णरूप से अनुशासित रखना व समाज के विकास, प्रगति तथा शान्ति—समृद्धि के लिये कल्याण कारी योजनाओं व विधि विधानों को सम्यक् रूप से निरन्तर चलाते रहना, यह सब शासक की बुद्धिमत्ता व कार्यकुशलता के प्रमापक होते हैं । शासक के चरित्र की विशेषता यह भी है कि केवल अपने तक राज्य सीमित न रहे वरन् विदेशों के साथ उसके मैत्रीपूर्ण, व्यापारिक तथा राजनयिक सम्बन्ध उन्नत अवस्था में बने रहें क्योंकि कोई भी देश, राज्य या राष्ट्र अपनी समस्त आवश्यकताओं को अकेले अपने संसाधनों से पूरा नहीं कर सकता, प्रत्येक देश को अन्य देशों पर आवश्यकता पूर्ति के लिये, निर्भर होना पड़ता है तथा वैचारिक प्रबुद्धता एवं राष्ट्रीय सुरक्षा संरक्षा हेतु अन्यान्य देशों से सम्बन्ध बनाने होते हैं ।

"भारत एक प्राचीन तथा ऐतिहासिक गौरव व परंपराओं से समृद्ध राष्ट्र है । भारत की स्वतंत्रता पूर्व भी विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण स्थिति रही है । मौर्य और गुप्त युग में भारत के अन्य देशों से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध थे । भारत में फाह्यान, हेनसांग और मेगस्थनीज जैसे विदेशी यात्री आये थे, जिन्होने भारत की महानता और समृद्धि की तस्वीर दुनिया के दूसरे राष्ट्रों के समक्ष रखकर भारत को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया । सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेनापति सेल्यूकस की पुत्री से विवाह कर के अन्तर्राष्ट्रीय वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर के विदेशों से भारत के सामाजिक सम्बन्धों की नींव डाली । सम्राट अशोक ने अपने पुत्र व पुत्री को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये श्री लंका भेजकर धार्मिक सम्बन्धों की नींव डाली । गुप्त काल में भारत का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी उन्नत था । जावा सुमात्रा, मलाया से हमारे प्राचीन सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध थे । चोल राजाओं ने जल सेना के महत्व को समझाा और समुद्र विजय की नीति का अनुसरण किया । उन्होने न केवल सुमात्रा और जावा जैसे सुदूर वर्ती टापुओं पर विजय प्राप्त की बल्कि श्री लंका पर भी अपना सुदृढ़ शासन स्थापित किया और उसे अपने साम्राज्य का अंग बनाया ।" (1)

यह है एक श्लाघनीय टिप्पणी भारतीय राजाओं की वैदेशिक नीति की समृद्धि पर, जो आज से सहस्रों वर्ष पूर्व उन्होने अपने बुद्धि कौशल और रणकौशल से अर्जित की थी । शासक वर्ग अपने राष्ट्र की चतुर्मुखी उन्नति के लिये उत्तरदायी होता है, वह देश की अन्तर्राष्ट्रीय गरिमा को भी उतना ही महत्व देता है जितनी आन्तरिक समृद्धि और सुरक्षा को । मेगस्थनीज का समय चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल रहा है और उसी चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य में कौटिल्य जैसे नीति निपुण कर्मठ राजनेता का कार्यकाल था जो अमात्य के रूप में रह कर संपूर्ण शासन कार्य का संचालन करते थे और परम अकिंचन के रूप में रहकर जिन्होने निस्पृहता का एक अनुपम दृष्टान्त शासक वर्ग के सामने प्रस्तुत किया था । उनके विचार भी इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं – (यद्यपि उनका आलेख राजतंत्र और राजा के विषय में है, परन्तु फिर भी उसमे शासक के चरित्र का पूरा पूरा प्रतिबिम्ब उतर आया है) उन्होंने लिखा – "राजा राज्यमिति प्रकृतिः संक्षेपः" । राजा और राज्य यह समस्त राज्य तंत्र का संक्षिप्त रूप है जिसका आश्य है कि इन दोनों से मिलकर पूरी शासन की व्यवस्था संचालित होती है अतः शासक का गुणवान होना अनिवार्य होता है । उनके अनुसार शासक केवल भला कहलाने के लिये सद्गुणों का आश्रय न ले वरन् यह उसके स्वयं के व राज्य के अस्तित्व के लिये भी अनिवार्य है ।

"विद्याविनय हेतुरिन्द्रियजयः काम क्रोध लोभ मान मदहर्ष त्यागात्कार्यः ।
तद् विरुद्धवृत्ति हि स्वश्येन्द्रिय श्चा तुरन्तो अपि राजा सद्यो विनश्यति ।" (2)

वर्तमान समय में यद्यपि राजतंत्रों का युग समाप्त हो गया है और विश्व के लगभग सभी देशों में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था स्थापित हो गई है तथापि लोक प्रशासक भी उसी श्रेणी में आते हैं जब वे राज्य संचालन का उत्तरदायित्व वहन करते हैं । वे भी उन्हीं समस्याओं का सामना करते हैं ।

(1) यूनीफाइड राजनीति विज्ञान – डॉ. फड़िया
(2) कौटिल्य कालीन भारत – आचार्य दीपंकर.

शासकों के पास असीम अधिकार होते हैं, वह इन अधिकारों का उपयोग किस प्रकार करे कि समाज व जनता के प्रति उसके उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों को निर्वहन भली प्रकार से होता रहे । उनके अधिकारों का निरंकुश उपभोग तो नही हो रहा इन बातों के लिये राज्य में ऐसे परामर्शदाता व समीक्षक होने चाहिए जो शासक की स्वेच्छाचारिता व निरंकुश लिप्सापूर्ति में दृष्टि रखें व उन्हें सीमा से आगे बढ़ने न दें । क्योंकि उस समय उन पर अंकुश लगना शासन व शासक के हित में अनिवार्य हो जाता है । शासक में आदर्श चरित्र की संकल्पना की जाती है यदि वह आदर्श हीन अथवा चारित्रिक रूप से कहीं से भी त्रुटिपूर्ण है तो वह शासन के लिये अभिशाप है । अपने अधिकारों का निरंकुश होकर उपभोग उसे जनता की दृष्टि में निन्दनीय बना देता है जो स्वयं उसके भी पतन का कारण बनता है ।

शासक का कर्तव्य है कि वह अपने समय की स्थिति, जनता की अपक्षायें, उन अपेक्षाओं को पूरा करने के संसाधन और उन संसाधनो का सम्यक् दोहन करने वाले अधिकारी, कर्मचारी गणों पर पैनी दृष्टि रखे । वे अधिकारी भी स्वेच्छाचारी न हों, जो भी नियम या विधि विधान जनता के हित के लिये बनें वे उनका कार्यान्वयन निःस्वार्थ भाव से करें । शासक देश के उद्योगों तथा राजकीय संपदाओं में वृद्धि के लिये निरंतर प्रयासरत रहें । राजकीय संपदा संरक्षण हेतु तथा राजकीय नियमों की जानकारी हेतु जनता को जागरूक बनाया जाय तथा इसके लिये शिक्षा की संपूर्ण व्यवस्था की जाये, जनता को प्रशिक्षित करके राजकीय तंत्र की जानकारी देने के लिए प्रशिक्षकों की नियुक्ति की जाये ।

शासन तंत्र में सबसे प्रधान है अर्थ व्यवस्था, सारे संसाधन यहाँ तक कि भारतीय समाज में स्वीकृत आदर्श–धर्म, काम व मोक्ष भी अर्थ व्यवस्था की उन्नत अवस्था में ही ऊर्ध्वगामी स्थिति तक पहुंचते हैं, अन्य सभी संसाधन भी अर्थ की समृद्धि से ही फलते व अभीष्ट परिणामदायी होते हैं अतः शासक आर्थिक समृद्धि के लिये सभी नीतिसम्मत व समयोचित कार्य व्यवहारों का अनुगमन करे ।

"अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः । अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति । मर्यादां स्थापये प्राचार्यान मात्मान्वा" (अर्थात् अमात्य और आचार्य प्रमाद के अवसरों पर उसे सावधान करते थे ।) उनके अर्थशास्त्र में कहा गया है कि शासक को राजकोष और सेना का नियंत्रण अपने हाथ में रखना चाहिए इससे उसे अर्थ व्यवस्था के संबंध में तथा उसके अनुकूल या प्रतिकूल कार्यो में व्यय होने का ज्ञान बना रहता है । इसके साथ सेना का नियंत्रण स्वयं या अपने अति विश्वसनीयों के पास रहने से उसे बाह्य सन्धि विग्रहों की जानकारी रहती है । न्यायोचित मदों में धन का व्यय करके शासक जनता को अपना अनुगामी बना सकता है । न्यायप्रियता व जनोपयोगी कार्यो में अर्थ व्यय उसे जनता के समीप ले आता है तथा कर्मठता और सतत जागरूकता उसे लोकप्रियता प्रदान करती हैं । शासक के इसी रूप को पूर्व काल में राजा रूप मे मान्यता प्राप्त रही है – प्रजाहित उसके लिये सर्वोपरि था इसके अनेक प्रमाण भारतीय धार्मिक व सामाजिक संदर्भो में मिलते हैं – महात्मा तुलसी के शब्दों में – "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी" । शासक को अपने सहयोगी व सहकर्मी भी पूरी तरह से जाँच पड़ताल के बाद नियुक्त करने चाहिए जिससे वे

शासक की बनायी हुई व्यवस्थाओं को निःस्वार्थ भाव से चलने दें और अपने किसी भी आचरण से उनको जनता के प्रतिकूल न होने दें । खुशामदी व चापलूस किस्म के व्यक्तियों को पहिचान करके उन्हें अपने से दूर ही रखे और सब के परामर्श लेने के बाद स्वयं अपनी बुद्धिमत्ता व विवेक से किसी कार्य का निर्णय ले । शासक को लोक व्यवहार का ज्ञाता होना अति आवश्यक है तभी वह लोक रूचि के अनुसार जनता की वैयक्तिक, सामूहिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व पारम्परिक अभिवृत्तियों को उनकी गहराई तक जा कर समझ सकेगा और उसकी प्रतिपूर्ति करके जनता पर सुशासन कर सकेंगा, इस प्रकार जन मानस में पैठ और उसका विश्वास पाना शासक का भी अनिवार्य उत्तरदायित्व है ।

महात्मा गाँधी यद्यपि संवैधानिक रूप से भारत देश के शासक कभी नहीं रहे; परन्तु उन्हें इतने बड़े देश मे जो सम्मान, श्रद्धा और विश्वास मिले उसका कारण यही था कि भारत में उनका सामाजिक आधार बहुत बड़ा था और वे इस देश के विशाल जन मानस को भली भाँति जानते थे यही कारण था कि उनके एक वाक्य 'करो या मरो' पर समूचा भारत इस वाक्य को क्रियाविन्त करने में प्राणपण से जुट गया था — कविवर पंत के शब्दों में —

"चल पड़े जिधर दो पग डगमग
चल पड़े कोटि पग उसी ओर
उठ गई जिधर भी एक दृष्टि,
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर" ।।

संक्षेप में शासक अथवा शासक वर्ग की कुछ चारित्रिक विशेषतायें देखने के बाद अब उनका प्रतिफलन श्री 'बौखल' के काव्य में किस प्रकार हुआ है — के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं ।

अलि शासकीय संघ को, करि समाज निर्माण
'बौखल' सदा समाज हित, करि शासक कल्याण ।। (1)

शासन बढ़ि आसन गहै, लै को दण्ड महान
नैतिकता आवे तबै, होय स्वरूप विज्ञान ।। (2)

शासक का बढ़कर आसन ले लेना अर्थात शासन व्यवस्था का भार सम्भाल लेना तथा 'लै को दण्ड महान' — निर्भीकता पूर्वक अनुशासन करना — ये दो कार्य ऐसे हैं जिनसे समाज का स्वरूप सुस्थिर होता है और स्थिर समाज में नैतिकता का निवास होता है ।

सीमा सीमित जीवनी, हो अनुशासित राज
सर्वसुलभ सुख आर्थिक, जीवै सकल समाज ।। (3)

कितने संयत और थोड़े शब्दों में शासक का चरित्र कवि ने उभारा है कि उसका जीवन सीमित साधनों से संचालित हो और वह जनता पर अनुशासन रखे तभी आर्थिक सम्पन्नता आवेगी और समाज सुखी रहेगा ।

नारायण अंजलि भाग—II:—(1) दो.क्र.—997 पृ.क्र.—77,(2) दो.क्र.—1051 पृ.क्र.—81, (3) दो.क्र.—972 पृ.क्र.—75.

उन्होंने सामन्ती व्यवस्था के भी अच्छे लक्षण खोजे और केन्द्र व विकेन्द्रीकृत शासन संचालन की भी रूपरेखा प्रस्तुत की —

धर्म युद्ध की चाह सो, केन्द्र रहे आधीन
फूलै फलै विकेन्द्र अलि, सामन्तिक बजि बीन ।। (1)

केन्द्र स्वेच्छाचारी न होने पावे, उसे धर्म—विस्तृत अर्थो में नैतिकता का अनुपालक बना रहना चाहिए, इस प्रकार वह सामाजिक नैतिकता के अधीन बना रहेगा और उस अनुशासित केन्द्र — जिस का आशय शासक से है — की छाया में विकेन्द्रित राज्यों या क्षेत्रों का भली भांति विकास होगा, वे फले फूलेंगे तथा इस प्रकार सामन्ति की बीन भी बजती रहेगी अर्थात् शासक भी प्रजा सुख से आनन्दित रहेगा । कवि शासक के परामर्श देते हैं कि उसकी टेक (प्रतिज्ञा) ऐसी हो जो सब के लिए सुखदायी टेक (आधार) बने और ऐसी टेक (स्थिरता) को कभी भी नष्ट न होने दे अर्थात प्रजा पालन की अपनी प्रतिज्ञा को प्रजा के सुख का आधार बना दे और फिर उसे स्थिर ही बनाये रखने का निरंतर प्रयत्न करता रहे तभी उसके उत्तम विवेक की पहिचान होगी —

टेक धरौ ऐसी धरौ, सबै सुहावनि टेक
ऐसी टेक न टारिये, उत्तम उपजि विवेक ।। (2)

इस दोहे में अनुप्रास अलंकार की छटा देखते ही बनती है और साथ ही यमक का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

और आगे भी कवि शासक के दृढ़ निश्चय पूर्वक प्रजा पालन की सराहना करते हुए कहते हैं कि जो शासक मनोबल को ऊँचा रखकर और इन्द्रिय संयम के साथ अपने कर्तव्य पथ पर निरन्तर बढ़ता रहता है वह निश्चित ही अपने दुर्गम लक्ष्य को भी प्राप्त कर लेता है, बस आवश्यकता इस बात की है कि वह अपने सद् उद्देश्य को सामने रखकर फिर पीछे को पैर न हटाये अथवा लक्ष्य से कभी भी विचलित न हो —

करि निश्चय आगे बढ़ै, पीछे धरै न पाँव
मनोबल संयम से रहे, पहुँचत अपने ठाँव ।। (3)

इस प्रकार के आचरण वाले शासक को जनता सिर आंखों पर बिठाती है देश में विविध प्रकार के सुख सुविधा के साधन जुटने लगते हैं व ज्ञान विज्ञान की उन्नति के मार्ग खुलते हैं । श्रम का सम्मान होता है, निर्धनता व भुखमरी को जड़ मूल से नष्ट करने के प्रयत्न किये जाते हैं ।

कवि का स्वप्न है कि इस प्रकार के लोकतन्त्र से देश की सर्वांगीण उन्नति होगी —

हमने लोकतंत्र गुण गायो
कोई रहे न नंगा भूखा, शासक अस बनि आयो
सहकारी साधन सम्पत्ति, श्रम धन मूल बढ़ायो
जन जन के तन मन में बहुतै, देश प्रेम उपजायो
राज समाज बनै हितकारी, प्रीतिरीति गुण गायो

नारायण अंजलि भाग—II:—(1) दो.क्र.—955 पृ.क्र.—74, (2) दो.क्र.—936पृ.क्र.—72, (3) दो.क्र.—1002 पृ.क्र.—77.

द्वन्द्वात्मक अधिकारी को, शोषण सहित नसायो
वैज्ञानिक नित करि अन्वेषण, सुखमय राष्ट्र बनायो
जय जय जय जय लोकतन्त्र की, दलित देश अपनायो
सामूहिक शिक्षा दीक्षा दै, मुदित मोद सरसायो ।। (1)

जिस शासक के शासन में शिल्प व कला एवं सांस्कृतिक धरोहरों की संरक्षा की जाये, कृषक चिन्ता रहित होकर कृषि कार्य करें, पृथ्वी अपने अनमोल खजाने सबके लिये खोल दे, ऐसे गणतंत्र व उसके शासकों के लिये कवि के अन्तस्तल से शुभ कामनाओं के स्त्रोत फूट पड़ते हैं –

जय जय गण राज महानी
पृथ्वी माता सकल सम्पदा, सुख अनन्त अनुदानी
दु:ख दरिद्र सब मेटै श्रम धन, जनमिपूत वैज्ञानी
अतुलकला निधि शिल्पकार बनि, निज श्रम देश उत्थानी
चिन्ता रहित पाय सब साधन, करत किसान किसानी
शासक राज समाज व्यवस्थित, जन प्रिय राज प्रमाणी
बुद्धिजीवी जन हित नित साधै, छापे सुयश जहानी
ऋणी समाज महान ह्रदय से, स्वतंत्र समर सेनानी
जब लौं पानी रहै सिन्धु में, रहै अमर बलिदानी ।। (2)

ऊपर के सभी उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि शासक का स्थान उस शिक्षक की तरह होता है जिसके स्वयं किये हुये परिश्रम का आकलन विद्यार्थियों की सफलता असफलता से अबबोधित होता है, वह चाहे जितना मनोयोग से शिक्षण कार्य में रत रहे, परन्तु उसकी कीमत तभी आंकी जायेगी जब उसके विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक अर्जित करें अन्यथा उसके परिश्रम का कोई मूल्य नहीं होगा. । यही हाल शासक का है यदि उसके अधीन राज्य में प्रजा सुखी सम्पन्न है, धन धान्य से भरी पूरी है, श्रमिक अपने पारिश्रमिक से सन्तुष्ट है, चिन्ता रहित है; सामाजिक व्यवस्था संतोष जनक है, कलाकार शिल्पकार अपने व्यवसाय से जीविकार्जन में समर्थ है, शिक्षित और सभ्य समाज तथा बुद्धिजीवी शासन के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखते हैं, क्षेत्रीयता व संकीर्णता को चिन्तन में स्थान नहीं मिलता तथा राजनीति के अन्तर्वाह्य सम्बन्धों का निर्वाह भली भाँति होता है, द्रोही व शत्रुभाव रखने वालों के लिये दण्डात्मक विधान है और देशभक्त बलिदानियों का सम्मान होता है तो वही शासक जनता के बीच में मूर्द्धाभिषिक्त होता है ।

ऐसे ही शासक (मुखिया) के लिये महात्मा तुलसी ने कहा है –

'मुखिया मुख सों चाहिये । खान पान में एक ।
पालै पौसे सकल अंग । तुलसी सहित विवेक ।।

मुंह में गया अन्न जैसे पूरे शरीर को रस रक्त देता है, पोषण देता है वैसे ही शासक के पास की परिसम्पत्तियाँ जब निष्पक्ष भाव से उसके राज्य में हित कारी योजनायें बन कर वितरित होती

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–1166 पृ.क्र.–337, (2) पद सं.–1162पृ.क्र.–336,

हैं तभी उस शासक का शासन यशः काया को प्राप्त होता है, वही सच्चा शूर गिना जाता है —

"पक्ष पात राखै नही, जग में सूरा सोय । एक दिन जरै मसान में न्याय बीज मुंइ बोय ।।"

यह तो हुई श्री 'बौखल' की सचेतन सकारात्मक तथा शासक वर्ग के आदर्श चरित्र की संकल्पना जिसमें भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की शौर्य गाथा से लेकर एक समस्त सामाजिक व्यवस्था तथा उन्नत अर्थतन्त्र एवं उस पर आधारित सर्वजन हितकारी (सर्वभूतहिते रताः) शासन की नींव रखी गई थी । स्वाधीनता संग्राम का संघर्ष झेलने वाले बलिदानियों ने इसी संकल्पना को साकार होते देखने का स्वप्न भी देख था, अथवा यों कहें कि उन्होंने अपने जीवन की सार्थकता की कसौटी ही इस आदर्श शासन को प्रतिफलित होते देखने में मानी थी । अपने सहयोगियों के रक्त से सिंची भूमि पर स्वराज्य व सुशासन की लहराती खेती देखने के लिये ही वे जीवित थे; परन्तु यह क्या हुआ, किसकी कुदृष्टि पड़ गई जो शब्दों की परिभाषायें ही बदल गई, स्वराज्य, सुराज व सुशासन शब्दों में लगने वाले उपसर्ग नकारात्मक हो गये, अर्थ अनर्थ में खो गये, लालसाओं ने आँख मूँद लेने में ही अपनी प्रतिपूर्ति मानी । विदेशी विधर्मी शासकों की गोलियाँ छाती खोल कर झेलने व माँ का वन्दन करने वालों को खुद की निगाह में शर्मसार हो जाना पड़ा । बलिदानों की ऐसी व्यर्थता तो किसी ने न सोची थी ।

जिंन स्वाभिमानी सेनानियों ने अच्छा समय आया हुआ देखने का अंजन आंखों में आँजा था उन्हें ही उन आंखों से खून के आँसू गिराना पड़ेगा यह उनके लिये अकल्पनीय था परन्तु जब अकल्पना भी कठोर यथार्थ बन कर सामने आ जाये तो मनुष्य उसे किस नाम से परिभाषित करें ।

परन्तु यह सब हुआ और शासक, प्रशासक, अधिकारी, कर्मचारी सब उस नियति के हाथ की कठपुतली बन गये जिसने भारत के सर्व संप्रभुता सम्पन्न गणराज्य में रहने वालों के भाग्य की लिपि ही बदल डाली । शासक निर्बन्ध, निरंकुश, स्वेच्छाचारी बन गये, अधिकारी उनके दाहिने हाथ बन कर स्वयं भी उनके अनुकरण में बढ़ने लगे । सत्ता सुख का उपभोग उनका जन्म सिद्ध अधिकार बन गया और जिस जन सामान्य ने अपनी युवा अवस्था, शिक्षा दीक्षा, जीविका, परिवार सब छोड़ कर जन संघर्ष में भागीदारी की थी, वही निरीह, निराधार परिश्रमी दाने दाने को मोहताज हो गया । कृषक व मजदूर हीन दीन अवस्था में रहने को अभिशप्त हुये । कारण एक मात्र — वही, "अधिकार सुख की मादकता" जिसके भी हाथ में अधिकार आये, चाहे वह भूमि पर हो, संपत्ति पर हो, शासन में हो अथवा समाज के नियमन में हो — उनका निर्भयता पूर्वक निरंकुश होकर उपभोग और अन्य निर्धन, निर्बल वर्ग की उपेक्षा, अवहेलना और प्रताड़ना करना ।

सत्तामद में मत्त शासकों ने सुधार प्रक्रिया को एक ओर रख कर उन समस्याओं की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा जिनसे जन मानस त्रस्त था, जो साधन हीन था, अशिक्षा के गर्त में डूबा था, असहाय था व शोषण किये जाने के लिये अभिशप्त था । शासक की कर्मठता व कुशलता से जो लोग उत्तम जीवन जीने के अधिकारी थे उन्हें उत्तम तो क्या जीवन जीने योग्य भी न रह जाने दिया गया ।

श्री 'बौखल' ने दोनों स्थितियों को देखा और जिया था, वे दोनों ही स्थितियों में रहे व दोनों प्रकार की अपेक्षायें की उन्होंने; परन्तु उन्हें जिस जिस प्रकार के कटु अनुभव हुये उन्हें उन्होंने बड़े ही निष्करूण ढंग से अपने पदों व दोहो में व्यक्त किया । सबसे पहिले तो उन्होंने सीधे सीधे शासक को ही सम्बोधित किया कि वह नैतिकता से परिपूर्ण समाज की नींव डाले– वह अपनी सुख सुविधाओं को सीमित करे –

सुख सुविधा सीमित करौ, बुद्धिजीवी नृपराज ।
श्रमिकन को सुख दीजिये, नैतिक नींव समाज ।। (1)

कवि को तो लोकतंत्र का रक्षक शासक ही दिखाई देता है जिससे वह ह्रदय की व्यथा कह सकता है, उलाहना दे सकता है, चेतावनी दे सकता है –

लोकतंत्र की मै बलिहारी
जनता भई भिखारी राजा । जनता भई भिखारी
दूषित अर्थशास्त्र मुख बाये, गावत गीत अपारी
पर उपजीवी विनिमय भोजन, धर्म ध्वजा रतनारी
कामिनि संग केलि रँगरेली, ऊँची कनक अटारी
जन गण मणिका मोल बिकावै, कौतुक कला सुचारी
'बौखल' पीड़ित जनता तुम्हारी, आरति रही उतारी
हमरे घर आवौ तो देखो, हमरी देह उघारी ।। (2)

लोकतंत्र और उसका शासक–ये दोनो कैसे हो इन बातों पर अन्य कवियों, विचारकों, चिन्तकों ने भी अपना मत प्रकट किया है जो श्री 'बौखल' की अनुभूतियों का अनुसरण करते हैं –

प्रजातन्त्र है सबसे उत्तम, उसकी भी हैं सीमायें
राजा पहुँचे जन जन तक या, जन प्रतिनिधि जन तक आयें ।।
राजा हो या पूंजी पति हो, वह तो केवल न्यासी है ।
भोग न होने पावे अनुचित, जनता का सन्यासी है ।।
बिन पदत्रान चले थे वन में, राजा नहीं तपस्वी थे ।
छुआ न राजकोष रघुवर ने, प्रतिभावान यशस्वी थे ।।
राजकोष जनता की थाती, नृप उसका रक्षक होता ।
व्यय होगा जनता के हित में, वह तो सरंक्षक होता ।। (3)

नारायण अंजलि भाग – II:– (1) दो.क्र.–979 पृ.क्र.–76,
नारायण नैवेद्य :– (2) पद सं.–67 पृ.क्र.–20,
(3) पत्रिका से – विष्णु दयाल शर्मा

पूरा शासन तन्त्र शासक का प्रतिबिम्ब होता है – जैसा कि लोक कहावत में कहा गया है 'यथाराजा तथा प्रजा'। श्री 'बौखल' ने इस बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को कितनी सजीवता से वाणी दी है –

जोगी । कहौं कस विपत कहानी
जटिल जाल नदिया मा डारे, बुद्धिजीवी विज्ञानी
परम सहायक बनो विधायक, अनुमानी सन्धानी
राज भक्त राज धनु धारी, मची गन्ध रजधानी
जनजीवी वैधान गन्धैला, बहु विधि राजारानी
अर्थ समेटि धरै तहखाना, पीढ़ी सात सुजानी
एक दिन मिलि माटी सब जैहैं, अमिया तरू गदरानी
'बौखल' निर्भय नीति बखानै, प्रकृति परम परमानी ।। (1)

श्री 'बौखल' के काव्य में निर्धन, दलित, श्रमिक व सर्वहारा के प्रति जो सहानुभूति का भाव है और उन पर शासन करने वाले शासक के चरित्र में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि के रूप में जो जो अवगुण गिनाये गये हैं, उन सबका यथा तथ्य चित्रण पश्चिमी विचारधारा में लेनिन वाद में किया गया है । एक उदाहरण –

"संसार दो दलों में बँटा हुआ है । एक दल में मुट्ठी भर सभ्यजातियों के लोग हैं जो महाजनी पूंजी के स्वामी हैं और पृथ्वी पर बसने वाली जनता के बहुत बड़े भाग का शोषण करते हैं । दूसरे दल में उपनिवेशों और पराधीन देशों की शोषित पीड़ित जातियाँ हैं । इस दल में संसार की अधिकांश जनसंख्या है ।........ समाजवाद की विजय का भौतिक आधार है एक विश्व व्यापी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना । किन्तु उपरोक्त आधार पर अमल किये बिना इस तरह की आर्थिक व्यवस्था के भीतर विभिन्न जातियों को संघबद्ध करना और उनमें परस्पर सहयोग स्थापित करना असंभव होगा ।" (2)

इन्हीं भावों की मानो प्रतिकृति श्री 'बौखल' ने अपने एक पद में उतारी है, कि किस प्रकार संसार दो भागों में बँटा हुआ है और वे दोनों भाग या दोनों दल किस प्रकार शासक और शासित तथा शोषक और शोषित का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं –

जोगिया जग दुइ वर्ग विचारा
स्वामी दास विभाग विभेदी, न्याय नीति अनुसारा
पशु परोहन जन साधारण, अर्थ तिमिर उजियारा
परोपजीवी साध्य विलक्षण, साधन साधि अपारा
खाय खिड़ाय कमरिया बाँधै, श्रमधन लूटि धुखारा
अपनो पालै कुटुम कबीला, अर्थ बाँटि बँटवारा
दाँव पेंच वैधानिक बरतै, बुधि जीवी अधिकारा
जग जन व्याकुल पेट अँतड़ियाँ, रोवै मार गोहारा
'बौखल' स्वर्ग पति तुम दौरो, जीवन लुटे हमारा ।। (3)

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–773 पृ.क्र.–222, (3) पद सं.–728 पृ.क्र.–210,
(2) लेनिनवाद के मूल सिद्धांत – स्तालिन

इस दुर्दमनीय उत्पीड़न व संत्रास से बिलखते हुये शासित वर्ग का बड़ा ही कारुणिक चित्रण स्थान स्थान पर मिलता है और इससे शासक वर्ग के उत्पीड़क चरित्र का भी ज्ञान होता है, जिनकी संख्या उदार चरित्र वाले शासकों से कहीं अधिक है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की दो भाँती व्यवस्थायें केवल बीते समय की कथायें नहीं है, ये संसार के किसी भी कोने में कभी भी चोला बदल बदल कर आते हुये देखी जा सकती हैं । अभी मैंने बड़वानी बाबा आमटे की एक कविता पढ़ी जिसमें यह दो मुंही व्यवस्था पूरी बेशर्मी के साथ खुल कर सामने आई है – संदर्भ नर्मदा पर बँधने वाले बाँध का है जिसमें मेधा पाटकर और बाबा आमटे ने वहाँ से विस्थापित होने वाले आदिवासियों का पक्ष लेकर वर्षो तक लम्बी लड़ाई लड़ी; परन्तु अन्त में शक्तिशाली व्यवस्था के आगे उन्हें मजबूर हो जाना पड़ा । यहाँ पर शासक के चोले मे सर्वोच्च न्यायालय आ गया । जिसके आगे हतभाग्यों के पक्ष में खड़े होने वालों व स्वयं उनके लिये नतमस्तक होने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं बचा – बाबा आमटे का "लहू लुहाने गले का गीत" से –

"अब मैं एक निसंग तट हूँ, नर्मदा का
खड़ा हूँ अपनी खरी आत्मा के साथ
जीवन का हर पल प्रकाशित करता हुआ
करता हूँ, मैं एक अनन्त पद यात्रा
तुम नही जानते कि निहित स्वार्थ
किस तरह पी रहे हैं रक्त,
दीन आदिवासियों के माथों से ।
यह एक बावली आपदा है सर्वोच्च न्यायालय के
फैसले से पैदा
भ्रष्ट और पूंजीवादी तंत्र है, जो न्यास का
मात्र पुरोहिताई का पुनीत वेश पहिने
नहीं देता गारंटी
कि आदमी के हकों की हिफाजत हो
कि बचे रहें दीन हीन आदिवासी ।
इसलिये हे भगवान
सुनो मेरे रक्तस्रावी कंठ का यह गान ।। (1)

बाबा के इस गान और श्री 'बौखल' के उस पद में कितना मेल है जहाँ दोनों के प्राणों की आकुल पुकार ईश्वर तक पहुँचाई जा रही है, अपने लिये नही वरन् उन दलितों निर्बलों, शोषकों, पीड़ितों के लिये, जिनके लिये कहीं न्याय नही है, जो शासकीय व्यवस्था का आदेश मानने के लिये अभिशप्त हैं; जबकि दोनों रचनाओं के रचना काल में चालीस पचास साल का अन्तर है । इससे सिद्ध होता है कि सद्‌वृत्तियाँ व दुर्वृत्तियाँ समाज में सदा से रही हैं परन्तु दुर्वृत्तियों का साम्राज्य

(1) पत्रिका "पहल – 70" से – बाबा आमटे

अमरबेल की भाँति देश काल का अतिक्रमण करके सर्वत्र फैला रहता है । यही कारण है कि संवेदनशील कवियों की वाणी में समष्टि की व्यथायें आपदायें, शासकों के उत्पीड़न का पर्दाफाश करती वैषम्य की ज्वालायें तथा मुक्तिकामी चेतनायें स्थान पाती व स्वयं कवि के अन्तस्तल के आक्रोश से द्विगुणित मर्मवेधिनी होकर अभिव्यक्त होती हैं । खून पसीना बहाने वालों की प्रभुत्व के स्वामियों के प्रति गहरी तड़प लिये हुये अभिव्यक्त हुई कुछ पंक्तियाँ........

"खून पसीना बहे हमारा, फिर भी वो मालिक कहलाते
मजदूरों का शोषण करते, बातों से हमकों बहलाते.....
शोषण शासन का गठबन्धन, राहत का मीठा सा चूरन
सेवक, शासक हमें खिलाते, दे लम्बे लम्बे आश्वासन
ऊपर नीचे, नीचे ऊपर, देखों कितना भारी अन्तर
मेहनत कश भूखा मरता है, अन्धे बहरे बैठे अफसर
अब अफसर की यह मनमानी, नहीं सहेंगे, नही सहेंगे
मेहनत पर दौलत का कब्जा, अब ज्यादा हम नही सहेंगे ।। (1)

---

(1) क्रान्ति गीत -- डा. लल्लन सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.

अध्याय – 6

रस शास्त्र की दृष्टि से बौखल के साहित्य का विश्लेषण

अध्याय - 6
रस शास्त्र की दृष्टि से बौखल के साहित्य का विश्लेषण

मानव जीवन को बनाने सवाँरने और दिशा देने में प्रकृति का कितना बड़ा योगदान होता है यह स्वयं सिद्ध है । विशेषतया कवि, साहित्यकार तो प्रकृति के अंचल तले ही स्वयंरूह वृक्ष के समान बढ़ते और पनपते हैं उनकी रागात्मिका वृत्ति प्रकृति के विस्तृत आँगन में पुलकित, पुष्पित और पल्लवित होती है । गिरिराज हिमालय की क्रोड़ में जिसका वचपन बीता हो, हरिद्वार की गंगा के सान्निध्य में जिसका तन–मन पवित्र हो गया हो, संतों अवधूतों की संगति ने जिसके हृदय स्थल में आस्तिक बुद्धि जगाई हो तथा सुरम्य विन्ध्य पर्वत के हृदय देश में बसे चित्रकूट की आध्यात्मिक स्थली ने जिसे त्याग तपस्या की बूटी पिलाई हो तथा महाकवि तुलसी की रामचरित मानस जैसे भारतीय संस्कृति के सचेतक ग्रन्थ ने काव्य सृजन की प्रेरणा दी हो – ऐसे नारायण दास "बौखल" की औघड़ जीवन वृत्ति ने अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिये तीस वर्ष की आयु तक प्रतीक्षा की । कारण यह था कि अक्षर ज्ञान के अभाव मे वह उस कवि कर्म में निरत नहीं हो सका जो उसके भीतर घुमड़ते भावों को वाणी दे सकता – स्वयं कवि ने आगे चलकर कहा है कि –

"आयु हती जब तीस की मीत ।
तबै लगि आखर एक न आये ।।" (1)

उस समय तक उसके भीतर का कवि छटपटाता रहता था, जिस मनोदशा को कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है –

" शिक्षा प्राप्ति के पूर्व हृदय सरोवर में भाव तरंगें उमड़ घुमड़ कर रह जाती थीं लिखित रुप न ग्रहण कर पाती थी । मन विकल हो उठा था । अर्जित आत्मानुभूति को ही शैलीबद्ध करने के लिये अक्षर ज्ञान की आवश्यकता थी ।"

जब शिक्षा गृहण करने का कार्य आरंभ हुआ और इतनी योग्यता आ गई कि मन की बात को वाणी में पिरोया जा सके, उस समय के आनंद की कवि कल्पना ही कर सकता था उसने कहा –

"पिय वियोग बिलखत मही, "बौखल" जिमि घन माल ।
सारंग वच उर धीर भो, सुनि आयो सुखपाल ।। (2)

इसके बाद तो कवि की कल्पना को पंख लग गये और वाणी निर्बन्ध मन्दाकिनी की भाँति बह निकली जिसने हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि के लिये अनेक रत्न जटित अलंकृत काव्य ग्रंथ कविता कामिनी को भेंट कियें । उनके काव्य गुरूओं श्री शारद 'रसेन्द्र' तथा दिल दरियाव सिंह की कृपा से कवि ने रीतिकालीन प्रवृत्तियों का अध्ययन किया व उसी शैली में अपने मनोभावों की विद्युत्छटा बिखेरने में समर्थ हुये ।

(1) अप्रकाशित साहित्य से
(2) नारायण नैवेद्य;- परिचय-सुमन, पृ.क्र.-5

श्री "बौखल" के काव्य का अनुशीलन उन्हें सहज ही रीतिकालीन कवियों की कोटि में ले जाता है । उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता के लिये 'दोहा' छन्द चुना क्योंकि यह छन्द वाक्य संरचना का लघुतम रूप है जिसमें, भावों के उद्वेलन को बड़े संयम के साथ व्यक्त किया जाता है जिससे अनुभूतियों के कसाव से रचना बड़ी मार्मिक और प्रभावशाली बन जाती है ।

कवि कर्म द्वारा रचित अपने ग्रन्थों में उन्होंने विशेष रूप से दोहा और पद लिखें है । साढ़े सात हजार दोहे लिखें है । इसके अतिरिक्त उन्होने लगभग 1400 पद भी लिखे हैं । उनका प्रकाशित साहित्य है — 1. नारायण नैवेध

2. नारायण अंजलि भाग — 1
3. नारायण अंजलि भाग — 2

इन दोहों और पदों में कवि के संपूर्ण जीवन की साधना का मधुकोष संचित हो गया है ।

कविता मानव जीवन के अन्तर्तम की अति गुप्त अनुभूतियों का प्रकाशन है जिसे कवि विभिन्न भाव भंगिमाओं मे प्रकट करता रहता है । 'रसात्मकं वाक्यं काव्यं' (1) से लेकर कितनी ही परिभाषा में कविता के लिये दी गई हैं । कभी उसे आत्मा का उच्छवास कहा गया, कभी रसदशा से प्राप्त अनुभवों का प्राकट्य । कभी जीवन की जटिल पहेली को सुलझाने के प्रयत्न में हाथ आये मार्मिक क्षणों की अभिव्यन्जना तो कभी मानव व निसर्ग की आत्मीयता से उत्पन्न सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्फुरण की व्यक्त प्रतीति । जीवन में छाया प्रकाश की भाँति सुख दुःख, संयोग वियोग, सृजन विसर्जन, व राग विराग के द्वन्द्व सदैव चलते रहते हैं । इन्हीं सब उपादानों की अछोर परिव्याप्ति व उनकी मर्मस्पर्शिनी अनुभूतियाँ वाणी का वैभव प्राप्त कर कविता के कलेवर में स्वयं को व्यंजित करती हैं ।

भारतीय मनीषा ने कविता का उद्भव रसानुभूति से माना है परन्तु यह रसानुभूति भी आदि कवि की करूण कातरता से निःसृत होने वाली आदि भावना का अतिक्रमण नहीं करती वरन् 'एको रसः करूण एव' के अनुसार करूणा का अतिरेक स्वयं रसदशा को प्राप्त हो जाता है । अतः यह रस सिद्धांत के अनुरूप ही होता है ।

स्मृति और अनुभूतिजन्य भावोन्मेष की तरलता, गहनता और प्रगाढ़ता से जब काव्य धारा का उद्भव होता है तब वह जीवन के विविध पक्षों का उद्घाटन अपनी रहस्यात्मकता में करती चलती है । कभी वह जगत की गूढ़ निष्पत्तियों का प्रकाशन विविध बिम्बों के माध्यम से करती है तो कभी आत्मा परमात्मा के अविच्छेद्य संबंधों को मधुर वैकुण्ठ रस से सिक्त करके उनसे संयोग व वियोग जन्य सुख दुःख की प्रत्याक्षानुभूति की साक्षी बनती है । प्रथम कोटि की काव्य धारा मंडित होकर 'दर्शन' का विषय बन कर अपनी स्वाभाविक मंजुलता और सुषमा से मंडित होकर 'दर्शन' के सिद्धांतों को शिवत्व और सौदंर्य से आवेष्टित कर देती है ।

द्वितीय कोटि की काव्य धारा को रहस्यवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया है जिसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि वीणा पाणि सरस्वती की वीणा की झंकार से सप्त सिंधु आनन्द की अनंत वीथियाँ नर्तन करने लगती हैं और त्रैलोक्य का कण—कण, अणु—अणु उस स्वर माधुरी से निनादित हो उठता है ।

---

(1) साहित्य दर्पण — विश्वनाथ $\frac{1}{4}$

कबीर की — "नयनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय
पलकन की चिक डारि कै, पियको लिया रिझाय ।।" (1)

तथा मीरा की — "सूली ऊपर सेज पिया की, किस विधि मिलणा होय ।"

दोनो ही संयोग और वियोग की आत्यन्तिक रसदशा की चरम अवस्था का द्योतन करती हैं ।

इसी प्रकार कवि जब लौकिक जीवन के बाह्य पक्षों में समाहित शिवत्व और अशिवत्व के दर्शन करता है, जीवन की ऋजु गति में व्यवधान उत्पन्न होते देखता है, सद् और असद् के द्वन्द्वों मे फँसे जीवन व्यापार का सम्मुखत्व प्राप्त करता है और उससे उद्वेलित होते हुये मनोवेगों को प्रज्ञा परिचालित मेधा से, स्थित प्रज्ञता की महिमा से आवेष्टित करके उनको वाणी का वैभव प्रदान करता है तब उसे आध्यात्मिक समाजवाद की शुचिता प्राप्त होती है । यह आध्यात्मिक समाजवाद व्यावहारिक सहकारिता की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित होता है और इसी प्रतिष्ठा के कारण लोकमंगल का विधायक बनता है । व्यावहारिक सहकारिता हृदय परिवर्तन की सुदृढ़ भित्ति होती है, वही त्रितापों से संतप्त मानवता के लिये शीतल जलांजलि होती है, जो नर से नारायण बनने के श्रम का परिहार कर स्वर्ग लोक का संदेश न लाकर भूतल को ही स्वर्ग बनाने में सक्षम होती है ।

भारतीय समाजवाद की स्थापना अहिंसा, प्रेम, भ्रातृत्व व सहभागिता की आधार शिला पर हुई है जो मानव को दानवीय प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने का सुदृढ़ संबल एवं क्षमता प्रदान करती है, उसे शिवत्व की उपलब्धि कराती और शिवेतर की क्षति करने में समर्थ बनाती है । स्वर और व्यंजनों के सहारे वह कविता के कलेवर को शक्तिमान, शीलवान व सुषमामय बनाती है जिससे अध्यात्म, दर्शन और समाज के त्रिक् आधारित संपूर्ण पार्श्व आन्तरिक और आत्यन्तिक आलोक से जगमगा उठते हैं । वह पूर्ण से पूर्णता लेकर पूर्ण में ही रमण करती हुई पूर्णता में ही पर्यवसित होती है । यही कवि की आप्तकामता है, यही उसकी पूर्णकामता है ।

महाकवि नारायण दास "बौखल" ने अपनी काव्य साधना के लिये इसी प्रकार की विराट भाव भूमि को दर्शन, विचार और व्यावहारिक अनुभव से संपुष्ट करके रागात्मक अनुभूतियों,साथ ही विरागात्मक वृत्तियों को आधारभूमि बनाया है । उनके इस प्रयास में भारतीय संस्कृति के सभी विस्तृत व्यापक आयाम व जीवनादर्शों के अनिवार्य तत्व स्वयं प्रकाशित हो उठे हैं ।

कवि "बौखल" के काव्य में शृंगार-

शृंगार शब्द शृंग + आर से बना है । शृंग का अर्थ है कामोद्रेक और आर का अर्थ है वृद्धि, गति या प्राप्ति अर्थात शृंगार का अर्थ हुआ कामोद्रेक की प्राप्ति ....

जो कुछ सम्मुख है वह सुन्दर, सुन्दरतर और सुन्दरतम बन कर व्यक्त हो इसी मनोरथ, कामना, प्रयास और संतुष्टि का संपुट ही शृंगार की परिभाषा बन जाता है । जो है वह और अधिक मोहक, आकर्षक, लुभावना, सुहावना और बरबस परवश करने वाला और मनोरंजक बने यही शृंगार की पटुता है । शृंगार विषय और विषयी को एकीकृत कर दे यही उसकी सार्थकता है ।

प्रेमियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रस दशा को पहुँच कर जब आस्वाद्य योग्यता को प्राप्त करता है, तब उसे शृंगार रस कहते हैं । स्थायी भाव रति, नायक-नायिका आलम्बन, आश्रय, उपवन, सरोवर, प्रकृति उद्दीपन विभाव, आलिंगन, चुम्बन, शारीरिक चेष्टाएँ अनुभाव उग्रता, जुगुप्सा, मरण इत्यादि को छोड़ कर लज्जा, हर्ष, चिन्ता ब्रीड़ा आदि संचारी भाव है । (1)

कैसे हूँ अब निकसत नाहीं, तिरछे है जुअड़े—उर में माखन चोर गड़े" यही बाँकपन शृंगार की कला है, यही गड़ जाना शृंगार की चितवन है और चिरन्तन होते जाना शृंगार का वरदान है ।

शृंगार प्रकृति की नूतनता है, शृंगार रमणी की मानस किलोल है । शृंगार कवि की वाणी की कसौटी है और भक्त के नयनों की शुचिता है । शृंगार देहयष्टि की सुषमा है तो मानस का मौक्तिक है । शृंगार स्वरों की माधुरी है, वह रूप का वैभव है । शृंगार सुन्दरता में लावण्य है जैसे — "छविगृह में दीपशिखा का बरना"और कालिदास की इन्दुमती की शोभा —

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा,
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्ण भावः स स भूमिपालः ।।

साहित्य में नव रसों में सर्वोच्च रस शृंगार ही रसराज माना गया है । यह द्विपक्षीय होता है । जब उसमें आधेय को मिलन के सुख से प्रफुल्लित, उल्लासित और प्रसन्नता से भर देने की वृत्ति होती है तब वह संयोग शृंगार होता है । प्रिय और प्रियतम जब दोनो ही संयोग की रसमाधुरी में डूबते उतराते हैं, एक दूसरे की मनोभावनाओं के भीतर पैठ कर, अन्तर्तम की गुह्यता में प्रवेश कर आनन्दोलित होते हैं तब संयोग शृंगार की पूर्णता की अभिव्यक्ति होती है । यही इस रसदशा की चरम अभीप्सा होती है, जहाँ द्वैत भाव का तिरोहित हो जाना, अद्वैत भाव में चेतना का पर्यवसान हो जाना है यहीं शृंगार की अस्तित्वमूलक व्याख्या है । यहीं आकर तो शृंगार 'संज्ञा' की घनीभूत सत्ता को धारण करता है । इसकी परिधि में जड़ चेतन, स्थावर जंगम सब आ जाते हैं । यह कालातीत और सीमातीत है ।

यही संज्ञाभाव धारण की घनता विपरीतता में वियोग शृंगार बन जाती है । प्रिय का प्रियतम से विछोह या वियोग अपनी उद्दामता से तन मन की सीमा में न बँध कर अस्थिगत मज्जा तक को जड़ीभूत कर देता है । वियोग शृंगार का विस्तार संयोग शृंगार से कहीं अधिक होता है । विरहावस्था में जहाँ प्रिय का शरीर ज्वाला के समान जल उठता है वहीं उसका मन एक शीतल आकुलता में विश्राम पाता है । विरही की दशा ऐसी होती है कि यदि वियोग में उसके प्राण भी निकलना चाहें तो वे नहीं निकल पाते क्योंकि उन्हें प्रिय से मिलन की एक क्षीण आशा डोर बाँधे ही रहती है जिससे वह जीवित व मृत दोनों ही अवस्थाओं को एक ही साथ भोगता है । वियोगिनी तो यहाँ तक कहती रहती है कि —

कागा चुन—चुन खाइयो, या बिरहिन को मांस ।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस ।। (2)

---

(1) काव्य दर्पण — राम दहिन मिश्र पृ.क्र. — 178.

(2) पद्मावत — नागमती का वियोग वर्णन — मलिक मुहम्मद जायसी

शरीर भले ही मृत हो जाये, उसे चील कौवे खाने लगें पर तब भी उस विरहिणी की पक्षियों से अनुनय है कि वे उसके दोनो नेत्रों को छोड़ दें पूरे शरीर के भक्षण के उपरान्त भी, क्योंकि इन्हें तब भी प्रिय मिलन की आशा लगी रहेगी, इनमें प्रिय की छवि समायी है अतः नेत्रों को खा लेने पर वह छवि भी नष्ट हो जायेगी, ऐसा अप्रिय कार्य तुम न करना ।

ऐसे मार्मिक हृदय वेधी वर्णनों से साहित्य का भण्डार भरा हुआ है चाहे वह किसी भी भाषा का साहित्य हो । हिन्दी साहित्य तो वियोग वर्णनों की एक से एक अनूठी उक्तियों से भरा पड़ा है । एक ओर मीरा विरहिणी कहती है –

"जो मैं ऐसो जानती कि प्रीति किये दुःख होय
नगर ढिंढोरा पीटती, कि प्रीति न करियो कोय ।।"

तो दूसरी ओर सूर की उक्ति है –

पिया बिनु साँपिन कारी राति
"कबंहु जामिनी होत जुन्हैया–डसि उलटी है जाति........पिया बिनु ....

नागिन काट कर यदि उलटी हो जाती है तो फिर उसका काटा बचता नहीं है, यही विरहावस्था की चरम व्यथा की, वियोग वृद्धि की तीव्रता का अनुमान कराती हैं ।

कबीर के प्रिय तो अलौकिक हैं, उनका संसार से कुछ लेना देना नहीं हैं । वे तो राम की बहुरिया बन कर और स्वयं उनसे विलग होकर फिर भी जीवित रहने की विवशता में भाँति–भाँति की कल्पनायें करते हैं । वे कल्पना में ही मिलन सुख का अनुभव करके सखियों से मंगलचार गाने को कहते हैं । कल्पना में ही प्रिय को सन्मुख देखकर उन्हें नेत्रों की कोठरी में बसा लेना चाहते हैं जिससे न उन्हें कोई और देख सके न ही वे स्वयं किसी को देखना चाहते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने 'पलकन की चिक डारि कै' प्रिय को रिझा लिया है । अद्वैत भाव की अकल्पनीय कल्पना है यह, "ना मैं देखूं और को न तोहि देखन देऊँ ।"

रीति काल के साहित्य में रसराज श्रृंगार की मादकता अपनी पूरी उद्दामता के साथ, अनोखी छटा के साथ विद्यमान है । पूरा का पूरा नायिका भेद वर्णन ही श्रृंगार की रस भींजी चटुल चातुरी से भरा भरा अपने वैदग्ध्य और सौंदर्य की चरम सीमा पर जा पहुँचा है और उसी के समानान्तर विरह के वर्णन भी एक से एक अनूठे स्वाद से भरे हुये मिलते हैं । विरह विदग्धा नायिकाओं की तनपीनता उनके होने न होने का आभास कराती है वहीं विरह जन्य उच्छ्वासों की बहुलता नायिका को मात्र वायु के झोकों से आगे पीछे करती रहती हैं ।

यह रीति काल का परम्परा पोषित और रूढ़ रूप है जिसका अनुपालन तत्कालीन कवियों द्वारा किया जाता रहा और अतिशयोक्ति से युक्त वर्णनों से यह काल सौंदर्य और श्रृंगार का पर्याय बन गया है ।

इस पृष्ठभूमि पर देखे तो कवि "बौखल" के रचना संसार में इस मिलन विरह के शतशः पद व दोहे संयोग व वियोग की छूपछांही छटा बिखेरते हुये सर्वत्र संजोये हुये हैं ।

सर्वप्रथम यह दृष्टव्य है कि श्रृंगार रस में स्त्री पुरूष के पावन परिणय संबंध से जो पवित्र भावना उद्भूत होती है, अध्यात्म में इसी भावना की मधुरताको वैकुण्ठ रस कहा गया है । अध्यात्म तंत्र के भीतर पुराणों, यहाँ तक कि वेदों तक में, उपनिषदों के आख्यानों तक में माधुर्य भाव की गुह्य साधना का उल्लेख मिलता है । श्रीमद्भागवत महापुराण में इस अध्यात्म संपुष्ट श्रृंगार भावना का विस्तार मिलता है । अन्यान्य पौराणिक आख्यानों में राधा कृष्ण की केलि लीलाओं में, महारास में, गोपी ग्वालों संग हास विलास में इसी मधुर रस की भाव प्रवणता के दर्शन होते हैं । कृष्णोपासना तो विशेषतः श्रृंगार पर ही आधारित है । युगल छवि की सुन्दरता, उनके हाव–भाव, विहार लीलाओं व गोपी अभिसार आदि का वर्णन विशेषतः इस धारा के भक्त कवियों का उद्देश्य रहा है । राम की उपासना में भी राम सीता के बड़े ही मर्यादित एवं संयमित वर्णन संयोग और वियोग श्रृंगार के मिलते हैं ।

संतों की तो साधना ही मुख्य रूप से मधुर भाव पर आधारित रही है । कबीर, जायसी व अन्य निर्गुण उपासकों ने भी जीव को स्त्री व परमात्मा को पुरुष मान कर भक्ति रस प्रवाहित किया है जिसमें मिलन की उत्कण्ठा व विरह की ज्वलनशीलता को विभिन्न माध्यमों, प्रतीकों व बिम्बों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रृंगार की रसराजता का कारण यही है कि यह द्विपक्षीय रस प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन समय तक तथा साधु सन्तों से लेकर जन सामान्य तक में व कवियों, कलाकारों अभिनेताओं आदि तक के भीतर इस रस माधुरी के आस्वादन व उसकी अभिव्यक्ति की चेष्टायें सन्निहित रही हैं व सदैव बनी रहेंगी ।

कवि "बौखल" के काव्य जगत में यह श्रृंगार रस इसीं रूप में अभिव्यक्त हुआ है । वे भावुक सन्त थे तथा उनमें इन्हीं भावुक सन्तों की वैकुंठ रस की माधुरी से प्लावित श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है । उनकी श्रृंगारिक अनुभूतियाँ– जिनमें संयोग व वियोग का वर्णन है, उस धरातल पर जा पहुँची हैं जहाँ सांसारिकता की गंध विलीन हो जाती है और शेष जो रह जाता है वह परम पावन, शुभ्र और शुचि है, जो जीव का काव्य है । जीव का ब्रह्म से अद्वयत्व की स्थितियों का वर्णन है । जो मन वाणी से परे है, वह दो रूपों में व्यक्त हुआ है । एक तो उलझे हुये अटपटे रूप जिनमें योग दशा की प्रधानता है जो इसी प्रकार की शब्दावली या उलटवाँसी की भाषा में व्यक्त हुये हैं और दूसरा रूप वह है जहाँ मधुर रस के परिपाक के लिये नायक–नायिका के मिलन विरह से उत्पन्न संयोग वियोग की मार्मिक अनुभूतियाँ शब्दाकारित हुई हैं । प्रथम रूप का वर्णन जिसमें जीव ब्रह्य के अद्वैत को स्थापित करने का यत्न किया गया है, उसके लगभग 100 पद नारायण नैवेद्य में तथा शताधिक दोहों में प्राप्त होते हैं । संयोग श्रृंगार का परिवेष्ठित रूप दाम्पत्य–परक रति के वर्णनों में प्राप्त होता है जिसे कवि ने बहुत ही कम स्थलों पर व्यक्त किया है, क्योंकि जहाँ स्त्री–पुरूष के दैहिक संबंधों व उनकी वृत्ति परक अनुभूतियों का वर्णन होता है वहाँ वह कुछेक अंशों में अश्लीलता की सीमा छूने का उपक्रम करने लगता है अतः इन स्थानों पर कवि ने एक साधक की सी भूमिका में रहकर परोक्ष रूप से उन स्थलों का वर्णन दृष्टा के रूप में किया है भोक्ता के रूप में नहीं ।

वह 'तीन हाथ कौपीन बिनु भाजी बिनु लौन' से दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर चादर ओढ़ कर आँखें बन्द करके प्रियतम की मनोरम झाँकियों, मान मनुहार , मिलन आदि की इन दशाओं का अनुभव इसी रूप में करता व उसी की अभिव्यक्ति करता है । उसके हृदय में बसी प्रियतमा प्रिय कारी कमली ओढ़ कर प्रिय की सेज पर सांसारिक बन्धनों को त्याग कर सोती है ।

"दुलहिन पिया सों लगाय नजरिया
"बौखल" बनि बाउर दुनिया माँ, पिया कै ओढ़ि कारी कमरिया ।
जाति बिजातिन जानन पावै, धनिया सोवै सजन सेजरिया ।।" (1)

कवि की नायिका प्रीति की रस गागरी से छकी हुई है, वह अति चतुरा, रति रंग में प्रवीणा और नयी देह के उभार के गुमान में भरी हुई है –परन्तु नायक उसकी रूप सुधा का छक कर पान कर चुका है और अब मलिन मुख होकर रसहीन हो रहा है जो नायिका को अपेक्षित नहीं है –

"नवल नारि नव रस भरी, रति रंग प्रबल प्रवीन ।
छको छैल छल छोह अलि, मुख मलीन रसहीन ।।" (2)

संयोग श्रृंगार में नायक नायिका की शारीरिक चेष्टायें काम को प्रवर्धित करती हैं । शारीरिक हाव भाव, नेत्र चालन, मुख की मरोर, वेणी का गुंथाव, आदि चेष्टायें नायक के मन में रति भाव उत्पन्न करने में अग्नि में घृत का काम करती हैं जो प्रथम हृदयस्थ रतिभाव को उद्दीप्त करके मिलन की व्याकुलता को व्यंजित करती है –

"बाँधत वेणी जुलुम करि, लोचन तरी चलाय
कालिन्दी उपकूल अलि, रसिक राज परि पाय ।। (3)

और नायिका के वेणी बंधन के 'जुलुम' का प्रभाव होता है कि नायक नेत्रों के तीर से विंध कर कालिन्दी के तीर पर उसकी मान मनुहारों में उसके पैरों गिरने लगता है । इस प्रकार के चटुल चित्र घनानन्द, मतिराम जैसे रीतिकालीन कवियों के वर्णनों में प्रचुरता से पाये जाते हैं ।

संयोग की अवस्था में प्रिय व प्रियतमा दोनों ही एक सी आकुल उत्कण्ठा में अपना समय बिताते हैं, दोनों ओर पीर की व्याकुलता कम नहीं है – कैसी विदग्ध अवस्था है –किं न देखने को मिलें तो वह व्याकुलता एक दूसरे को समान रूप से पीड़ित करती है और जब वे मिलते हैं व परस्पर दृष्टि मिलाप होता है तो किसी ओर परितृप्ति का अनुभव नहीं होता –

"बिन देखे व्याकुल रहे, देखि न हिया अधाय"
बलिहारी इन नैन की, अलि हो कौन सहाय ।" (4)

इन नेत्रों की प्यास अमिट भी है और सदा अतृप्त भी । देख लेने पर जो सन्तुष्टि मिल जानी चाहिए, वह भी नहीं मिलती और न देख पाने पर सदा देखने को आतुर रहती है यही विलक्षणता इन

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–780 पृ.क्र.–224,
नारायण अंजलि भाग – II:–(2)दो.क्र.–2566 पृ.क्र.–198,
(3),(4) दो.क्र.–1400, 1401 पृ.क्र.–108.

नेत्रों की है । नायिका हैरान है। वह सखी से पूछती है कि अब कौन इनका सहारा बनेगा ? अर्थात कौन इन्हें समझायेगा कि जब तक तुमने प्रिय को नहीं देख था । तब —तब व्याकुलता की प्रतीति ही इतनी घनी हो गई थी पर अब उस घनत्व से हृदय को अलग करो और फिर देखो तब तुम्हारा हृदय इस दर्शन के लिये तत्पर होगा और उसे सन्तुष्टि मिलेगी, वह संतुष्टि ही वास्तविक दर्शन की साक्षी बनेगी ।

आगे ही इन्हीं नेत्रों की अनोखी गतिविधि का दर्शन कराने वाला दोहा आता है जिसमें प्रिय मिलन के समय की अबूझा सी प्रतिक्रियायें नायिका को संभ्रम में डाले चली जा रही हैं —

'बिसरि गयो कहिबो सबै, सहमि सोय पिय अंक ।
नैन खुले धैना बिगत, निरखैं व्योम सशंक ।।' (1)

कितनी ही प्रतीक्षा के बाद नायिका का अपने प्रिय से मिलन हो रहा है उसी बड़ी ही विचित्र दशा हो रही है, वह स्वयं ही नहीं समझ पा रही है कि यह क्यों हो रहा है ? अभी तक वह इस मिलन की आशा में कितने संदेशों कितने उलाहने पीर की कितनी मरोड़े लिये हुये बावली सी घूमती रही है, परन्तु उनके सामने आते ही वह सहम कर उनके अंक से समा जाती है । न तो उन्हें देख ही पाती है जब कि नेत्र खुले हैं न कुछ कह पाती है उसके धैना (शारीरिक चेष्टायें) सब विलुप्त सी हो रही हैं । वह खुली आँखों केवल व्योम को ताक रही है । हृदय के भीतर की हलचल ने उसे इतना अस्त व्यस्त बना दिया है कि वह स्वयं अपने लिये ही अबूझ हो गई है । इसे केवल भुक्तभोगी ही जानता है परन्तु कवि की संवेदना और उसकी तीक्ष्ण, भेदी दृष्टि मर्म तक पहुँच जाती है और यह संयोग श्रृंगार का अति सुन्दर उदाहरण उसकी लेखनी से निसृत हो जाता है । किस अथक साधना से कवि ने यह परकाया प्रवेश जैसी मर्मवेधी दृष्टि का विकास किया होगा । दोहे में नायिका के सांवेगिक लक्षणों की कितनी मूक सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । खुले नेत्रों भी कुछ दिखाई न देना केवल शून्य में ताकना और सारी शारीरिक चेष्टाओं का रूक जाना उस क्षण के अमन्द आनन्द में चेतना के पर्यवसित हो जाने की अभिव्यक्ति है । एक उदाहरण जो द्विअर्थी रूप लेकर उपस्थित होता है । लौकिक अर्थ में देखे तो यह मन की शान्त, स्थिर, अनुद्वेगकर स्थिति का द्योतक जान पड़ता है जो मन मिलन की चरमावस्था पर पहुँच कर उसे उसी स्थिति में बनाये रखना चाहता है ताकि प्रिय से उसका वियोग कभी संभव ही न हो —

नैन झरोखे पीव अब, वास करहु उर भौन ।
चतुर पलक पल मूंदि ले, प्रीति अनल घन पौन ।। (2)

प्रियतमा नायिका ने नायक को मिलन के क्षणों में अपने अति निकट यहाँ तक कि स्वयं से अभिन्न पा लिया है, इस दुर्लभ सुख से वह रोमांचित हो रही है, अब उस प्रिय के विलग हो कर अन्यत्र जाने की संभावना ही समाप्त हो जाये ऐसा सोच कर नायिका ने उसे हृदय भवन के ऊपर लगे नैन झरोखों में उतार लिया है और उसे हृदय भवन पहुँचाने के लिए वह आतुर हो रही है । उसकी प्रिय

नारायण अंजलि भाग — II:—(1) दो.क्र.—1300 पृ.क्र.—101,
(2) दो.क्र.—2451 पृ.क्र.—189.

से अनुनय है, बाँकी मनुहार है कि वह अब उसके हृदय में सदा के लिये निवास करे जिससे यह मिलन सुख शाश्वत, अविच्छिन्न अविचलित एवं स्थिर रह सके । उसने इसका प्रबन्ध भी कर लिया है, उसकी चतुर पलकों ने उस पल को, उस अनिर्वचनीय सुख के क्षण को स्वयं बन्द हो कर उसके बहिर्गमन के मार्ग को सदा के लिये बन्द कर दिया है; क्योंकि जब वह नयन झरोखे से हृदय रूपी भवन में पहुँच जायेगा तो हृदय के खुलते मुंदते कपाट उसे स्वयं ही भीतर सुरक्षित कर लेंगे और तब दो हृदयों की गूंगे के गुड़ जैसा स्वाद पाने की सक्षमता का उदय हो जायेगा । अब आगे भी इस सुख को चिरस्थायी बनाने के लिये कवि कहता है कि वहाँ (हृदय भवन में) प्रीति की अग्नि जल रही है अर्थात् प्रेम की ऊष्मा में सरावोर दो हृदयों का यह मिलन सुख चिरस्थायी बने यही कवि का सार संदर्भित कथ्य है ।

यहाँ कबीर की उस उक्ति का सहसा स्मरण हो आता है जब वह इसी मिलन सुख को नयनों की कोठरी में, पुतलियों का पलंग बिछा कर व पलकों की चिक डाल कर प्रिय को रिझाने से प्राप्त करने की बात करते हैं । उसका प्रिय अब नयनों भीतर ही रह कर नायिका को दर्शन सुख जन्य मिलन सुख उपलब्ध करायेगा :-

नयनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय ।
पलकन की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ।।

परन्तु बौखल की नायिका इतने से ही संतुष्ट नही है वह नयनों के मार्ग से प्रिय को हृदय भवन तक ले जाती है और वहाँ प्रीति की अमन्द ऊष्मा का अनुभव करती हुई चिर मिलन की साज सजा लेती है । पवन की घनता उसकी सहायक बनती है । जहाँ मिलन सुख प्राप्त हो जाता है वहाँ तो प्रीति की ज्योति का उठान स्वाभाविक ही है; परन्तु जहाँ अभी मिलन हुआ ही नहीं वहाँ भी उस प्रीति और उस प्रीति में अधिकार भाव का उदय हो जाता है जो उभयपक्षी है —

बिन रमण रमणी रसज, भरे भाव अधिकार ।
अंग अनंग तरंग रंग, उठति उमंग निहार ।। (1)

अभी नायिका से नायक का रमण (मिलन सुख) भी नहीं हुआ है परन्तु नायिका के शरीर में, उसके सुपुष्ट अवयवों में काम की तरंगे हिलोरे ले रही हैं जिससे उसका सम्पूर्ण शरीर काम रंग में रंगा रंगा सा लग रहा है। भला ऐसे मौन आमन्त्रण को कौन रसज (रसज्ञ) ठुकरा सकता है । वह उसके अंगों को निहार निहार कर ही उस अधिकार भाव से भर जाता है जो उसे नायिका से मिलन सुख की दशा में प्राप्त होता । यहाँ अधिकार भाव का तात्पर्य किसी भौतिक दबाव या स्त्री पर पुरूष के बल पूर्वक शरीर पर अधिकार प्राप्त करने से नही है वरन् आशय यह है कि वह उस काम रंग में रगें अंगों का भोक्ता बन कर उभय पक्षी सुख देने में समर्थ हो रहा है और इसे नायिका भी अच्छी तरह से जानती है क्योंकि भोगदशा की साक्षी तो उसे भी बनाना है । यहाँ बिना किसी शारीरिक कामुक चेष्टा या रतिसुख की वाचिक अभिव्यक्ति के ही नायिका व नायक की परस्पर प्रीति का जो मर्यादित अंकन हुआ है वह सराहनीय है ।

नारायण अंजलि भाग — II:—(1) दो.क्र.—1563 पृ.क्र.—121.

आगे कुछ पद या दोहों के उदाहरण उभयअर्थी हैं जहाँ उनका एक अर्थ तो नायक नायिका की परस्पर प्रीति या मिलन सुख पर घटता है साथ ही दूसरा अर्थ भी इन उदाहरणों में समाया हुआ है जो आत्मा व परमात्मा के शाश्वत विरह मिलन के संदर्भो में घटित होता है । उदाहरणार्थ –

मेरे नैन बसो नित साई
सोवत जागत सपने निशदिन, प्रतिमा देत दिखाई
शैल, शिखर, उद्यान, विपिन, बन लोचन ललित जनाई
गंग जमुन तिरवेणी संगम, मान सरोवर धाई
उर्मिल नदी नाव अरू सागर, नैन रूचिर परछाई
व्योम मेघ विद्युत जल वृष्टि, नीर कमल सुघराई
ऋतु परिवर्तन प्रतिमा तेरी, नहि परिवर्तन पाई
मन मन्दिर मौनी बनि बैठो, सबको हिय अपनाई
कैसे कहौं विलग तुम 'बौखल', तुम बिन कौन जियाई ।। (1)

यह पद संयोग शृंगार का बड़ा ही मोहक और सारग्राही उदाहरण है – प्रिय और प्रियतम – ऐसा लगता है मानो सृष्टि के अभ्युदय काल से कभी भी विलग न होने वाली संयोग दशा में अनिर्वचनीय मिलन सुख का अनुभव करते हुये विश्व के अणु कण के भीतर समाकर शाश्वती भूमिका में रह रहे हैं – कवि की प्रवृत्ति सहज ही रहस्यवाद से प्रेरणा प्राप्त करती है, वह कहता है कि आत्मा की पुकार परमात्मा के प्रति है कि वह सदा उसी के सान्निध्य में बनी रहे । यह आध्यात्मिक मानवीकरण है ।

हे प्रिय ! हे स्वामी, तुम सदा मेरे नयनों में बसे रहो क्योंकि उन्ही नेत्रों से मुझे विश्व को निहारना है जब तुम उसमें समाये रहोगे तो मुझे तुम्हें खोजने कहीं नही जाना है । सोते, जागते, स्वप्न में, रात और दिन में तुम्हारी प्रतिमा मुझे दीखती रहती है । वन, उपवन, बाग, तड़ाग, सर सरिता, गंगा, यमुना, त्रिवेणी और मान सरोवर सब में तुम्हारी छाया दीख रही है । नदी नाव व सागर में भी वही परछाई प्रकट हो रही है । क्या आकाश, क्या मेघ, क्या विद्युल्लता, जल वर्षण तथा सरोवर में खिले कमल सब तुम्हारा प्रतिबिम्ब हैं । ऋतु परिवर्तन होता रहता है लेकिन तुम्हारी उस शाश्वत प्रतिमा में कोई परिवर्तन नही होता है सबके मन मन्दिर में तुम्हारी मौन उपस्थिति सदा समायी रहती है अतः मैं, जो तुमसे शाश्वत रूप से अविच्छिन्न हूँ कैसे अपने को तुमसे विलग मानूं । यदि मेरा तुम से विलग होना कभी संभव भी हो तो तब मेरे अस्तित्व का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता है – तब मुझे जीवन कौन देगा – मैं तो तुम्हारी ही ज्योति हूँ ।

कवि इस संयोग की भाव दशा को तब प्राप्त हो सका है जब उसने कठिन साधना के पथ को पार कर लिया है। अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों के सन्तुलित संचालन से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के माध्यम से ब्रह्म का साक्षात्कार संभव होता है । रहस्यवादी कवि की शृंगार साधना इस पथ को निरन्तर प्रशस्त करने में लगी रहती है । वियोगाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला को सूक्ष्मतम परमाणु में केन्द्रित कर देने से निर्वात दीप प्रज्जवलित होता है, जिसके प्रकाश में प्रियतम का मिलन स्थायी एवं

शाश्वत होता है । "मै पातर पिय मोसो पातर" का रहस्य उद्घाटित होकर प्रत्यक्ष हो जाता है । रहस्यवादी कवि दर्शन की आधारभूमि से अपने काव्य सृजन की प्रेरणा ग्रहण करता है । 'अन्तः सौंदर्य की परिणति रसो वै सः है । सत्यं, शिवं, सुन्दरं ही सत्यं, प्रियं अद्वैतं है । "यतो वाचो निवर्तन्ते" की स्थिति अनुभवगम्य होती है । 'गिरा अनयन नयन बिनुवाणी' के होने पर भी वाचन, वादन, श्रवण, दर्शन चलते रहते हैं तभी जीव ब्रह्म से सम्मुखत्व प्राप्त करता है । नारायणी तत्वों के माध्यम से, नारद की वीणा से हरिलीला का विस्तार सूक्ष्मतम ध्वनि विस्तारक यंत्रों से भी होता रहता है और प्रत्यक्ष प्रकृति में भी प्रदर्शित होता रहता है । यही वृन्दावन का शाश्वत रास है । निधि कुंज में निरन्तर राधामाधव विहार का दर्शन ही कवि का अभीष्ट है । यही राधामाधव की युगल छवि कवि विश्व के कण कण में देख रहा है तभी उसकी पुकार है — "मैरे नैन बसो नित साई ।" लौकिक अर्थ में यही प्रियतमा की अछोर—व्याप्त प्रीति का संवर्धन है जिससे वह प्रिय की प्रीति को पुरातन मानते हुये सदा सर्वदा और सर्वत्र उसकी छटा को निहारती रहती है यह ऐकान्तिक प्रेम की परा काष्ठा है जब प्रिय को छोड़ कर अन्य कोई अस्तित्ववान वस्तु ही उसे दिखाई सुनाई नहीं देती । उसने अपनी समग्र चेतना का लय प्रियतम में ही कर दिया है ।

एक दूसरा पद और है जिसमें इसी प्रिय प्रियतम के संयोग की प्रगाढ़ अनुभूति के दर्शन होते हैं, साथ ही वह रहस्यवाद के छोरों को भी छूता जान पड़ता है —

'दुलहिन पिय' सो लगाय नजरिया ·
माइक मोह जाल परि रोवै, पंचक स्वादु सुराग नगरिया ।
बैरी नात नतौरा जुगन के, भय भ्रम भव भरि बाँधि रसरिया
तजि भौतिक सिंगार सयानी, तजि संकल्प विकल्प बजरिया ।
बुधिया डाइन बहुत विवादिन, निश्चय संशय डारि डगरिया ।
पाँच तत्व जग जोनि अनेकों, माटी एक अनेक गगरिया ।
'बौखल' बनि बाउर दुनियॉ माँ, पिया के ओढ़ि कारि कमरिया ।
जाति बिजाति न जानन पावै, धनियाँ सोवै सजन सेजरिया ।।' (1)

प्रियतमा की नजर प्रिय से जा मिली है । प्रीति की अतिशयता उसे दोनों ओर से रूला रही है । इधर मायके का मोह है जिसके जाल में पड़कर रो रही है उसे मायके के पाँच स्वाद के भोजन याद आते हैं उधर प्रिय से जो प्रीति लगी है, वह तो छोड़ी जा नहीं सकती । सारे नाते रिश्ते उसे बैरी के समान लगते हैं जो भय और भ्रमकी रस्सी से बाँधे डाल रहे हैं । उसने प्रिय मिलन के लिये सारे भौतिक श्रृंगार छोड़ दिये हैं — संकल्प विकल्प के द्वन्द्वों से भी निवृत्त हो चुकी है । सबसे बड़ी बाधा बुद्धि है जो न निश्चय करने देती है और न ही संशय से छुटकारा लेने देती है । उसे लगता है कि यह विश्व ही अनेकानेक रूपों में प्रकट होकर उसे छल रहा है । इस ऊहापोह में वह सब कुछ भूल जाना चाहती है और प्रेम दीवानी बन कर अपने प्रियतम का ही बाना धारण करना चाहती है । उसे उस प्रिय की किसी भी रूप में हो पूजा ही करनी है और इस तरह वह प्रेम रंग में भींज कर प्रियतम की

नारायण नैवेद्य :—(1) पद सं.—780 पृ.क्र.—240.

सेज पर सोने का अर्थात विश्व के सारे प्रपञ्चों, बन्धनों से मुक्त होकर प्रिय में ही लय हो जाने का उपक्रम कर लेती है । दूसरी ओर आत्मा जो माया के जाल में पड़ी हुई है, पाँचों इन्द्रियों के स्वाद उसे जकड़े हुये हैं वह तर्क और बुद्धि के संकल्प व विकल्पों से मुक्त होकर एकमेव प्रिय में अपनी समस्त चेतना को लय कर देने की इच्छा से उसी से एकाकार होने की साधना करने लगती है ।

महाकवि 'बौखल' के काव्य में वियोग श्रृंगार -

'बौखल' के काव्य में संयोग से अधिक विस्तृत, प्रभावी, अन्तर्मन की गूढ़ अभिव्यक्तियों से भरित तथा वियोग की वह्नि से दग्ध विरह वर्णनों का प्राधान्य है; जैसा कि कवि के व्यक्तित्व निर्माण के घटकों में राग से अधिक विराग, योग से अधिक वियोग, सांसारिक भावना से अधिक आध्यात्मिक भावना और दृष्ट सुख से अधिक अदृष्ट सुख प्रधान रहे हैं अतः यह स्वाभाविक भी है । उसकी विरही आत्मा बन कर परम पिता का सान्निध्य प्राप्त करने की जो उत्कट इच्छा है वही उसके दोहों व पदों में अधिक प्रखर धार लेकर अभिव्यक्त हुई है ।

'बौखल' के श्रृंगार वर्णनों में वे स्थल अधिक मनोरम बन पड़े हैं जहाँ नायिका अपने प्रिय से मिलन हेतु व्याकुल रहती है । उसकी व्याकुलता उसके प्रेम की गहन गंभीरता को दर्शाती है, प्रेम की पीर में वावली वह नायिका सारे संसारिक बंधनों को तोड़ कर प्रिय की हो जाना चाहती है जहाँ उसे पग पग पर बाधायें दिखाई देती हैं । इन बाधाओं को पार करने में उसे आत्माहुति देनी पड़ती है । कवि ने विरह की अनेक स्थितियों का वर्णन किया है । वियोग की एक स्थिति पूर्व राग भी है । इस दशा का वर्णन अनेक उक्तियों व बिम्बों के माध्यम से कवि ने किया है । विशेष रूप से दर्शन व श्रवण को विशेष महत्व दिया है जैसे स्वप्न दर्शन, प्रिय मिलन की उत्कण्ठा स्वप्न में भी उसे उतनी ही तीव्रता से होती है जितनी जाग्रत अवस्था में, किन्तु स्वप्न भंग की दशा में उसे तड़पन होती है वह उसकी विवशता के आंसू बता देते हैं —

'दुई दृग देखत नयन हमारे
करि आलिंगन पीव निर्दयी, दुइनो बाँह पसारे
झूठो सपन नींद हरि मोरी, कोयल कूक सकारे
'बौखल' नैन खुले भरि अँसुवा, प्रीतम पंथ निहारे ।। (1)

इस एकान्त तन्मयता की स्थिति में प्रेम में विरह की महत्ता का ध्यान है । वह बार—बार अपने मन को समझाती है कि यह जो प्रिय दर्शन हुआ है, वह स्वप्न है, स्वप्न में ही प्रिय ने आलिंगन के लिये बाहें फैलायी हैं । नायिका इसे सच मान कर आँखें खोल कर प्रिय दर्शन करना चाहती थी किन्तु जब वह आँखें खोलती है तो नींद ही टूट जाती है स्वप्न भी चकनाचूर हो जाता है अतः विवशता में आँसू बहाने के अतिरिक्त उसके पास मन को समझाने के लिये और कुछ नहीं है ।

प्रेम की राह कितनी कँटीली और कष्टप्रद है इसे जानते हुये भी मन प्रेम की पीर सहने को आकुल है, क्योंकि इस पीर का अनुभव करते रहने से प्रिय का ध्यान तो सदा बना रहता है, यही उस पीर का सुख भी है ।

नारायण नैवेद्य :—(1) पद सं.—780 पृ.क्र.—240.

कवि के शब्दो में –

प्रीति सम आन पीर नहि भाई
काठ कै आग बुझै जल बरसे, हिय की बुझै न भाई
विरहानल नाही हिय धधकै, नाहि वरसि अँगारी ।
किन सौं कहौ काह जगमाही, जिन हिय पीर न होई ।
दीपक ज्योति पतंग समानों, रही न शेष निसानी ।
लागी अन लागी दुई "बौखल" सोई सेज पिय सोई ।। (1)

इस दुधारी आग से कैसे निजात मिले जिसमें विरह से हृदय धधकता हो नहीं है वरन् अँगार ही बरसने लगते हैं । दीपक की लो में पतंगा तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है पर प्रीति की आन निबाहता है । एक साथ ही दग्ध करने और शीतलता देने वाली दूसरी कोई और पीर है ही नहीं ।

सूर की एक पंक्ति है – प्रीति कर काहू सुख न लह्यो ।

विरागी बौखल भी एक पद लिखते हैं –

प्रीति कर कोई नहीं सुख पायो
अलिसुत प्राण गँवावत बेरा, ऋतु उपवन नहिं पायो ।
याते काह अधिक निठुराई, दरश न अंत दिखायो ।
सलिल सरोज सरोवर बाढ़त, हिमजल नेह निभायो ।
रवि रश्मि हिय हिये विदारे, पंकज प्राण गँवायो
स्वाति सनेह सर्प संग कीन्हो, विष तब अधिक बढ़ायो ।
चैन न पावत तलफत निशि दिन, मलय अंग लपटायो ।
जिन–जिन प्रीति करी जग 'बौखल', रो–रो जनम गंवायो ।
विरह वेदना हिय भरि भारी, निज निज अनुभव गायो ।। (2)

दृष्टान्तों की माला गूंथ कर कवि नायिका को प्रीति करने से बरजता है , परन्तु जब प्रिय से लगन लग गई तो उसका विरह तो उसी को भोगना पड़ेगा । वह इसी में अपना तन मन छार करती रहती है उसे नित्य प्रिय की बाट जोहना भला लगता है –

सजल नयन चितवन मग तोरी ।
बिरहिन व्याकुल भई बावरी, मन ही मन पिय टेरी ।
मेरे उर आँगन में प्रिय तुम अब कब करिहौ फेरी ।
रिमझिम बरसै घुमड़ि गगन में, कारि बदरिया घेरी ।
नींद परै कस इन दुई नयननि, करकै पीर घनेरी ।
आवौ प्राण पिया लै जावो, विविध विनय अब मेरी ।

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–1121पृ.क्र.–324, (2) पद सं.–216पृ.क्र.–63.

मयूर मगन है पिया पुकारे, दादुर दून दरेरी ।
बिरहा जरि बरि कायोल कारी, कूकै विपिन कचेरी ।
विरहानल चूवै अँड़ताला, 'बौखल' प्रीतम चेरी
लै जीवन अब कहा करौं जग, नहिं साजन इत हेरी ।। (1)

नायिका जब पंथ जोहते जोहते थक जाती है तब उसे अपना जीवन ही भार लगने लगता है परन्तु इस इस जीवन की समाप्ति भी प्रिय द्वारा प्राण ले जाने में ही होगी तभी उसका इस अग्नि में जलना सार्थक होगा अन्यथा नहीं ।

संयोग शृंगार के समान ही वियोग शृंगार भी लौकिक व आध्यात्मिक पक्षों में घटित होता है ।

महाकवि बौखल के काव्य में शान्त रस -

महाकवि बौखल के काव्य में उभयपक्षी श्रृगांर की विवेचना के उपरान्त यह दृष्टव्य है कि उन्होंने अन्य रसों का भी प्रयोग अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये किया है । उनका जीवन, जीवन दर्शन व काव्य – तीनों ही इस बात के प्रमाण हैं कि वे निसर्गतः सन्त पुरूषों की सी भूमिका में रमण करते रहे हैं जिसका प्रतिफलन उनकी कृतियों में स्पष्टतया दिखाई देता है । उनके हृदय की वैराग्य भावना उनके पदों व दोहों में स्पष्ट रूप से पदे पदे दृग्गोचर होती है । वैराग्य भाव के मूल घटक हैं– संसार की क्षणभंगुरता, जीवन व जगत की निस्सारता, सुखोपभोगों की नश्वरता, तथा तृष्णा–जन्य क्षणिक आनन्द की व्यर्थता । इन सब सत्यों ने उनके सामने जीवन के इस रहस्य को खोल कर रख दिया है कि मनुष्य को इस मानव जीवन को प्राप्त कर के उसे सफल बनाने के लिये इस संसार के कृत्रिम आनन्द व्यूह से निकलना होगा । उसे 'स्व' के संकीर्ण घेरे से निकल कर 'पर' और 'परम' के सन्निकट पहुँचने की चेष्टा को अपना लक्ष्य बनाना होगा । इस संसार के मायाजनिक प्रपंच से छूट कर अपनी अनुभूतियों को अध्यात्म तत्वों के चटक रंगों में रँगना होगा तथा नितान्त तटस्थ व निसंग भाव से परमार्थ कर्म में संलग्न रह कर उस आत्मानन्द की प्राप्ति का प्रयत्न करना होगा जिसे आप्त जनों ने अपने जीवन का सुगन्धित दृव्य देकर विराट् विश्वयज्ञ की फलाप्ति के रूप में प्राप्त किया है ।

श्री 'बौखल' ने स्वयं ही कहा है – "संसार की असारता ससारता मानव चिन्तन की शाश्वतता का प्रबल प्रमाण है । जो जैसा है उसे वैसा न रहने देकर उसे अपने आदर्शों के अनुरूप रहने योग्य बनाने के लिये दर्शन और काव्य को सुधी विचारक अपना माध्यम बनाते हैं ।" (2)

विश्व विवेचन शाश्वत, विश्लेषण आधार
अन्वेषण कल्याण हित, 'बौखल ' करत विहार ।। (3)

श्री 'बौखल' ने अपने इन्हीं उदात्त विचारों को मूर्त रूप देने के लिये काव्य को माध्यम बनाया है और उसकी परिणति यह हुई है कि उनकी पंक्तियों में उनकी वैराग्य भावना – 'सूत्रे प्रोक्तं मणिगणा इव' सर्वत्र अनुस्यूत होती चली गई है ।

---

(2), (3) नारायण दास 'बौखल' – 'दो शब्द' नारायण अंजलि भाग –I

(1) नारायण नैवेद्य :- पद संख्या -13, पृ.क्र. -4

वैराग्य भावना का परिपक्व व ईश्वरोन्मुखी स्वरूप ही शान्त रस से पर्यवसित होता है; अतः उनकी रचनाओं में शान्त रस का भी पूर्ण परिपाक मिलता है । उनका वैराग्य सन्यासी का वैराग्य नहीं है, वह एक सामाजिक प्राणी की नीर क्षीर विवेकी दृष्टि से विश्लेषित उस तटस्थ भावना का परिकल्प है जो जगत के मिथ्या आडम्बरों से प्राणी को विरत रखने का उदात्त सन्देश देती है । इसीलिये श्री 'बौखल' ने आत्मा के लिये एक ही उद्योग बताया है कि वह सांसारिकता से पृथक् होकर परम निश्चिंत भाव से परमात्मा के सामीप्य का धन—आनन्द उठावे ।

निष्कपटी अलि आत्मा, सोये पिय की गोद ।
'बौखल' चिन्ता रहित हो, मुदित मनाय विनोद ।। (1)

तथा प्रज्ञा सोवति मलिन मुख, करि उजरी मुख साधि ।
बिना कपट की आत्मा, आनन्द भोगि समाधि ।। (2)

इन दोहों में शान्त रस का पूर्ण परिपाक होता हुआ दिखाई दे रहा है क्योंकि आत्मा का परमात्मा से सामीप्य होने का अवसर तभी मिलता है जब वह सांसारिकता से दूर हो कर उसी (परमात्मा) के मुक्त प्रकाश में विचरण करती रहे । इस समाधि अवस्था में जो परमानन्द है वह अनिर्वचनीय है ।

जोगिया लेहु हृदय विचारी
जरि वरि विषयन देह जरा जग, जनमै वारम्बारी
किनको कौन समीपी साजन, कौन ससुर सुत नारी
माया मोह बाँध या तन सो, निकरै प्राण बयारी
स्वारथ लागि सबै जन रोवैं, अधि जीवन फुलवारी
रतन सुमोल कहाँ से पावै, माटी को व्यापारी
ब्रह्म ज्ञान सन्तोष सुमहिमा, बहुतै कठिन भिखारी
'बौखल' काँच कुल्हाड़ी पैनी, धरियो पाँव संभारी
बारम्बार विचारौ हृदये, काँचों कलस तुम्हारी ।। (3)

निर्वेद की व्यंजना को व्यक्त करता हुआ कितना सुन्दर रूपक है यह पद । मन यदि सांसारिक विषयों की ओर बरजोरी भागने का उपक्रम करे तो काँच का कलश व पैनी धार वाली कुल्हाड़ी सामने है अतः उसे सब ओर से विरत होकर उस सुमोल रतन को प्राप्त करना है जिसकी दीप्ति से चतुर्दिक शान्ति की आभा विकीर्ण होती रहती है ।

अगला एक पद है जिसमें कवि ने जीव को परमात्मा के प्रति समर्पित किया और उसके पश्चात् "राम रतन धन" पाने जैसी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की है । उसमें कहा है कि — हम तो जोगी बन आये —

नारायण अंजलि भाग —I:—(1),(2) दो.क्र.—2796, 2759 पृ.क्र.—213,
नारायण नैवेद्य :— (3) पद सं. — 712 पृ.क्र. —205.

मइया मैं जोगी बनि आयो
काम काज तजि महल अटारी, तरू तर घास बिछायो
नित्य नियम करि भजन भाव रत, परमेश्वर गुण गायो
मातु पिता सुत बन्धु दारा, सम्बन्धी बिसरायो
सेठ महाजन भेजि सामग्री, रूचि रूचि भोग लगायो
चिन्ता नहि शासन समाज की, मंगल मोद मनायो
प्रतिमा पूजि मनोसम भक्ति, जीवन सुफल बनायो
'बौखल' ईश्वर मिले डगर में, काहे हमें बुलायो
धन धरती सब कुछ तोहि दीन्हा, कहो काह नहि पायो ।। (1)

यह काया गोविन्द की वस्तु है, जो कुछ संसार में पाया है वह भी गोविन्द का दिया हुआ है । प्राणी संसार में कर्म फल भोग करने के लिये आता है, यह भोग निर्लिप्त भाव से भोगा जाये यही उसकी शिक्षाएं हैं यही उसकी मान्यतायें हैं । जब कर्मफल भोग क्षीण हो जाता है तब वह पुनः अपने गन्तव्य की ओर चल देता है । जाते समय वह सब कुछ उसी दाता को सौंप कर चलने का उपक्रम करता है, कहा भी गया है—'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं, तुभ्यमेव समर्पितम्' । जब संसार की सारी ऐषणायें समाप्त हो जाती हैं तब लगता है कि ईश्वर राह में खड़े मिल गये हैं । अब काया का भोक्ता परम निर्मुक्त भाव से पूर्ण निस्पृश्यता के साथ सारे बन्धनों को तिलांजलि देकर 'परमानन्द मगन मन फूला' की स्थिति में पहुँच जाता है । कबीर ने गाया—'जिनको कछून चाहिये तेई शाहंशाह' । सब कुछ त्याग देने के बाद कितनी बड़ी जागीर मिल जाती है इस भाव का कितना चारू निदर्शन इस पद में हुआ है । संसार की नश्वरता भी प्राणी के मन में निर्वेद जगाती है —

अबहिं समय अनमोल परख ले
नाती पूत बन्धु तिय भगिनी, एकौकाम न आवै
अंत संग तन तेरा न जावै, रहिये भूमि परो रे
रंग बिरंगी फूली फुलवारी, महके अगम अपारी
मूरख समुझि सैर वन करना, मोह जाल बगरो रे
सुंदर यौवन पर मत भूले, आय बुढ़ापा फेरे
अंत समय कछु काम न आवे, कंचन खम्भ करो रे
विद्या वैज्ञानिक नित करिये, आप्तजनन सत्संगा
'बौखल' पर उपकार न भूलो, तब भव सिंधु तरो रे ।। (2)

इस नश्वर संसार में जहाँ कोई नाता रिश्ता अन्त समय तक साथ नहीं निभा सकता — वहाँ केवल सद्वृत्तियाँ व सदाचार ही ऐसे साधन हैं जो भवसिंधु के पार जाने में सहायक हो सकते हैं । आकर्षणों के माया जाल से मुक्त होकर सत्संगी व परोपकार करते हुये भगवत भजन में चित्त लगाने के लिये कवि संसारी जीवों को जीवन के अनमोल क्षणों के सदुपयोग की चेतावनी दे रहा है ।

नारायण नैवेद्य :—(1) पद सं. — 1104 पृ.क्र. —319, (2) पद सं.—1025 पृ.क्र. —295.

मेरी बीति उमरिया जाये
झंझरी नाव पाल पतवारी, निर्जल नदी दिखाये
माझी, सोवै गोड़ पसारे, प्राण जायें बिलखाये
एको बूंद न पानी बरसे, बदरा जोर जनाये
बिजुली कड़कै ज्योति न दीखै, रहि रहि जिय घबराये
बुधिया जाल पसारति आवै, आशा भवन बनाये
तृष्णा महामाया बनि बैठी, विपदा रही जुहाये
कर मणि रेख विवेक अनेकों, पंथ गढ़ि पछताये
'बौखल' आँचर छिपी मंजीठी, क्यों नहिं रंग रंगाये ? (1)

सांसारिक विषयों के व्यूह की कितनी कठिन अनुभूति है कि बिना जल की नदी में, सोये नाविक के साथ झीझंरी नाव से पार उतरना है । घन अधंकार — जो तृष्णा, अविवेक, प्रलोभन, आसक्ति आदि के कारण फैल कर मार्ग को भुला रहा है — ऐसी विपत्ति में, कवि का उद्‌बोधन है कि प्राणी के भीतर जो परमात्म तत्व से प्रेम करके भवसागर पारकर लेने की युक्ति छिपी हुई है — उसे क्यों नहीं उपयोग में लाते । प्रेम का रंग लाल होता है उसे कवि ने लाल मंजीठ का नाम दिया है उस मजीठी रंग में अपने तन मन को रंग डालो अर्थात् परमात्मा से प्रेम करके इस भवजाल से छुटकारा पा लो ।

रंग रँगाये नहि रँगै, आपै रंग चढ़ि जाय
मन में दुपजी बेलरी, फूलै फलै सवाय ।।
गहो बाँह जो चाह चित, अनचाहे की चाह
पार लगावै नाव को, ताहि भजहु नरनाह ।। (2)

इस प्रकार संसार की नश्वरता व क्षण भंगुरता तथा परमात्मा से प्रेम करने और उसकी कृपा पर अपने को उसी प्रकार निर्भर कर देने की भावना से ओतप्रोत सैकड़ों दोहे व बीसियों पद शान्त रस के उदाहरण के रूप में श्री 'बौखल' की रचनाओं में समाहित हैं । इन पदों दोहों के मनन से निष्कर्ष निकलता है कि श्री 'बौखल' का कवि व्यक्तित्व बहुआयामी है, उन्होंने विविध विषयों पर अधिकार पूर्वक अपनी लेखनी चलाई है परन्तु उनके कवि कर्म के केन्द्रीय भाव के रूप में शान्त रस की ही प्रधानता पाई जाती है, प्रतीत होता है कि शान्त रस के सागर में से अपनी गागर भरते रहना उन्हें परम प्रिय है ।

नारायण नैवेद्य :—(1) पद सं. — 46 पृ.क्र. —14.
नारायण अंजलि भाग II:— (2) दोहा क्र.—626 पृ.क्र. —46.

श्री 'बौखल' के काव्य में करुण रस -

करुणा शोक का परिष्कृत रूप होती है, यह शोक का विकसित या अपेक्षाकृत जटिल रूप है । शोक स्थायी भाव है, सहृदय के हृदय में देशकालाद्यनालिंगित या साधारणीकृत होकर अपना विशेष व्यक्ति — सम्बद्ध रूप छोड़ कर करुणा हो जाता है । इसी शोक से करुण रस की उत्पत्ति होती है । शोक में 'स्व' सम्बन्ध होता है परन्तु करुणा परदुःखजन्य पीड़ा से उत्पन्न होती है । मनुष्य अपने शोक से सन्तृप्त होता है; परन्तु करुणा से द्रवित वह दूसरों के दुःख से ही होता है । इसमें दुःख निवारण की प्रवृत्ति होती है । परदुःख से कातर होकर जब सहृदय उसके दुःख निवारण की प्रक्रिया में संलग्न होता है तब करुण रस की उत्पत्ति होती है ।

संसार की गति बड़ी विचित्र है, इसे ही द्वन्द्वात्मक जगत कहा गया है । सुख व दुःख का द्वन्द्व है, ये साथ—साथ चलते हैं आज कोई सुख के आधिक्य में डूब रहा है तो संभवतः उसे आगे दुःख भोग का सामना करना पड़े । दुःख मानव को मानव के समीप लाता है — भले ही सुख में एक दूसरे का साथ कम मिले परन्तु दुःख पड़ने पर हर सहृदय व्यक्ति दुखी व्यक्ति के प्रति सहानुभूति दिखाता व उसकी सहायता को प्रस्तुत रहता है । इसीलिये कहा गया है कि दुःख की व्याप्ति सुख से कहीं अधिक होती है । एक कवि ने तो यहाँ तक कहा है कि —

सुख के माथे सिल परै, नाम हिये से जाय
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम रहाय ।।

यह दुःख ही है जो मनुष्य को ईश्वर की शरण में जाने को विवश करता व मनुष्य से जोड़ता है । दुःख का आवेग शोक के रूप में व्यक्त होता है और यही घनीभूत होकर करुणा बन जाता है ।

श्री बौखल का रचना संसार परदुःखकातरता से भरा पड़ा है । उनके लिये संसार का सर्वोपरि प्राणी श्रमिक है जो सदा से ही शोषित रहा है । उन्होंने लिखा है —

श्रमिक सर्वोपरि जग प्राणी
प्रकृति के बाह्य रूप हित, बनि मानव वैज्ञानी
उपयोगी साधन सहकारी, करि श्रम अनुसन्धानी.........
'बौखल' खाद्य खनिज सुखदायक, भूमि मात महरानी ।। (1)

श्रमिक प्रकृति के वाह्य रूप को वैज्ञानिक की भाँति सँवारता है । वह सहकारी भावना से भरित होकर दूसरों के लिये श्रम करता है । इस प्रकार वह माता भूमि का सच्चा पुत्र बनकर सबके लिये भोजन और अन्य सुखोपभोग के साधनों का आविष्कर्ता बनता है । जब इस श्रमिक का शोषण शोषकों द्वारा किया जाता है तब कवि का मन आन्दोलित हो उठता है, और वे उसके पक्ष में खड़े होकर शोषकों को ललकार भरी चुनौती देने लगते हैं । प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि उनके काव्य में किस प्रकार श्रमिक व शोषित के लिये करुणा का सागर लहराता रहता है —

श्रमिक तेरी चाम सों, ऋद्धि नौबत नित घोष
शोषक शासक सूरमा, कहि जग जीवन दोष ।। (2)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—3 पृ.क्र.—1
नारायण अंजलि भाग I:— (2) दोहा क्र.—2624 पृ.क्र.—200,

पढ़ि पढ़ि लरिका गांव के, महानगर बस बीच
श्रमिक वृक्ष कटीर के, रहे असुँवन जल सींच ।। (1)
पढ़ि पढ़ि सुख साधन चहैं, खैंचि श्रमिक तन खाल
'बौखल' श्रमिक जीव हित, हो विकास जंजाल ।। (2)

विकास का श्रम अनिवार्य है इससे मानव मात्र के जीवन स्तर का उन्नयन होता है परन्तु यहाँ तो विकास ही श्रमिकों के लिये जी का जंजाल हो गया है; क्योंकि पढ़ा लिखा शिक्षित वर्ग महानगरों में जा बसता है और श्रमिक उसी तरह से शोषण की चक्की में पिसता है ।

कैसे जियाउबपेट कुकुरिया
आधो पेट बुढ़ाया आयो, पीसत कनक प्रधान बखरिया
राह निकट श्मशान सखी री, ढाक्यो तन नहिं चटक चुंदरिया
परि औंचट पग संभरि सकी ना, माटी फूटि कहु डगर गगरिया
अफसर काट लिहिन दस रोटी, मलकिन कहत बगैर खबरिया
एक मेहरिया अन्न धन टूटी, एकै बनि पटरानि मेहरिया
एक पाव न टूट खटोलिया, एकै सोवत कनक अटरिया
या दारूण दुःख कहाँ लौं भोगै, मारि मरै अब पेट कटरिया
'बौखल' कोउ न्याय न सूझै, कैसी मानव धर्म डगरिया ।। (3)

गरीब श्रमिक के पेट की रोटी भी अफसर छीन लेता है क्योंकि घर की स्वामिनी बिना खबर दिये गैर हाजिर रहने की शिकायत करती है, तब श्रमिक के पास पेट में कटारी घोंप कर मारने के अलावा कुछ और रास्ता नहीं बचता । ऐसे में कवि की अन्तरात्मा करूणा से विह्वल होकर चीत्कार कर उठती है — कि अब मानव धर्म कहाँ चला गया — कहाँ न्याय की गुहार की जाये ।

मनुवा बहुतै चतुर सयाना ।
वैधानिक लम्पट लबरो बनि, संचित किया खजाना
जोर जुलुम को न्याय बतायो, रचो भवन मनमाना
भुइयाँ पै बैकुण्ठ बनायो, सुरा सुराही पाना
नाचति कल्पलता कल कामिनि, मन चाहा फल खाना
जन धन की दुर्गति करि निर्भय, मानुख बना दिखाना
क्रूर कसाई सो जग जीवन, अस हिरदय पथराना
'बौखल' देखि दसा अकुलाई, पइहै कौन ठिकाना
करि करतूत दिवस दस जग माँ, कलुआ हाथ बिकाना ।। (4)

चतुर सुजान स्वामी निर्धन श्रमिक की कैसी कैसी दुर्गति करता है जिससे क्रूर कसाई भी हार मान जायें । परन्तु श्री 'बौखल' का मन पुकार पुकार कर कह रहा है कि ये आततायी दस दिन ही

नारायण अंजलि भाग II :—(1), (2) दोहा क्र.—1015, 1017 पृ.क्र.—78,
(4) पद सं.—165 पृ.क्र. —48.
नारायण नैवेद्य :— (3) पद सं.—138 पृ.क्र.—41,

जुल्म कर लेंगें फिर तो इन्हें इनकी करनी का फल कलुआ (यमराज) के हाथों में पड़कर मिलना ही है अभी भले ही ये पृथ्वी पर बैकुंठ के सुख लूट लें ।

शिक्षा जटिल जामि जनवादी
मकरी जाल फँसे सबरोवैं, सिर पंजा फौलादी
बन्दी भये बनैले प्राणी, बिलमैं नर अरू नारी
रज रेतस रितु पाय न एकौ, अस सृष्टि बुनियादी
मानुख अश्व वनो दुःख भोगैं, भोरहिं भूसा नादी
जनम गुजारै चरन पखारै, नारि भयी रण वादी
अनुशासन आसन भव भंगी, मरि समाज सिर लादी
वातावरण दुसह दुर्गन्धी, मंच चढ़ो नित पादी
जोग भोग की मिटि मरियादा, विषय वासना आदी
'बौखल' राष्ट्र विधाता दोषी, तेहु बने मरियादी ।। (1)

जिनके सिर पर फौलादी पंजा शासकों व शोषकों का कसा हुआ है उनकी दुर्गति बखानते कवि का ह्रदय जार जार रो उठता है कि वह दीन दलित दूसरों की चरण सेवा और पाद प्रहार में ही अपना जीवन बिता देता है । वह उसी प्रकार से चारों ओर से आततताइयों के फन्दे में फंसा है जैसे मकड़ी अपने शिकार को चारों ओर से घेर कर बुन देती है । और तब कवि का आक्रोश राष्ट्र के विधाताओं पर फूटता है कि उन्होंने ये कौन सी मर्यादा बाँध रखी है कि दीन ही सदैव वैसा ही बना रहेगा और मंचासीन वही बाहुबली होगा जिसने पूरे वातावरणः को दुर्गन्ध युक्त कर रखा है ।

घूमै ई चकवा मनमानी
ना कहुं भूत प्रेत न भैरों, ना कहुँ देवी भवानी
बकरा सुअर कबूतर, मुर्गा, पेट भरै कुरबानी
ढोल झाँझ मृदंग पखावज, बाजै शंख महानी
पाहन पूत न खास मिठाई, दुनियां पंथ भुलानी
मदिरा छानि देव अभुवावै, चरस चिलम धरि तानी
चौरी चढ़ि वरूना बिरझाने, वाचा देत प्रमाणी
ठगिया स्वांग करै दिन राती, धन लूटै मनमानी
भय बढ़ि हिये मरोरै भाई, 'बौखल' भेद न जानी ।। (2)

एक ओर तो कवि का मन शोषकों की अत्याचारी नीति से तड़पता रहता है दूसरी ओर समाज में फैले अन्धविश्वास व ढोगियों के स्वांगों से — जो भोले दीन श्रमिकों को लूटते हैं — उनके ह्रदय मे मरोड़ें उठती हैं कि किस प्रकार वे इन मदिरा भोगी, भूत प्रेत, भैरों, देवी माई, परम देव आदि के

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—314 पृ.क्र.—91, (2) पद सं.—834 पृ.क्र. —240.

मिथ्या पुजारियों से इन दीन दुखियों की रक्षा कर पाने का मार्ग खोजें । हृदय में मरोड़ें उठना उस चरम सीमा को दर्शाता है जहाँ सिवा करूणा से विगलित होने के अन्य उपाय नहीं रह जाता है ।

कवि के लिये परोपजीवी ऐसा व्यक्ति है जो रात दिन अपने अधीनस्थ रहने वालों का रक्त निचोड़ता रहता है और स्वयं उच्च पदासीन बना रहता है :—

परोपजीवी सुदृढ़ गढ़ सुनि श्रमिक दै कान
'बौखल' ले तन कँचुली, जालिक जाल बखान ।। (1)

अतः कह सकते है कि श्री 'बौखल' के काव्य संसार में करुणा का वितान इतना फैला हुआ है कि दूसरों के दुःख से संतप्त कवि की वाणी करूण रस का प्रत्याख्यान करने में पूर्ण रूपेण समर्थ हुई है।

श्री 'बौखल' के काव्य में हास्य रस -

प्राचीन भारतीय परम्पराओं व संस्कृति के गौरवगायक महाकवि 'बौखल' के काव्य सरोवर में लगभग सभी रसों का परिपाक मिलता है । श्रृंगार, शांत, करूण रसों के अद्वितीय प्रयोग के साथ—साथ इनके साहित्य में हास्य का पुट भी मिलता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश की धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक विश्रृंखलता से उद्वेलित कवि हृदय प्रायः व्यंग्य को अपने क्षोभ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता रहा है । व्यंग्य व हास्य आपस में मिले जुले भाव से 'बौखल' साहित्य में यत्र—तत्र बिखरे पड़े हैं, किन्तु यदा—कदा शुद्ध हास्य भी उनके साहित्य की शोभा बनता रहा है ।

अंग्रेजों की राज-दासता से मुक्त होने के पश्चात् भी मानसिक दासता में जकड़े भारतीय, अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करके अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति का उपहास उड़ाने में अपनी श्रेष्ठता समझने लगे थे । अपने देश का मान रखने की अपेक्षा उसे अंग्रेजियत की नकल करने की अन्धी होड़ में तुच्छ साबित करने वाले एक युवक का वर्णन इस प्रकार किया गया है;

' पढ़ि लल्लू अफसर बनि आयो
नारी संग लै सैर करावै, नदिया नार घुमायो
बिस्कुट मसकि गरम पानी पी, मुख में चुरूट दबायो
हाव—भाव भरि नारी बोली, नहिं साड़ी मंगवायो
पांच हजार पाय तुम वेतन, काहे हमें लजायो
डासन बूट अरू पैन्ट पहिरि पल, पाउडर गाल लगायो
कोटि कमीज बाँधि गर टाई, शीश हैट औंधायो
कहो बाप सो लादि बिस्तरा बहुत बार समुझायो
तुमको कुली बनायो ईश्वर, अफसर हमें बनायो ।। (2)

ग्रामीण परिवेश से निकल कर शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गुरूजनों का मान व आदर करना भूल अपने पिता को कुली का सम्बोधन देने वाले युवक की हँसी उड़ाता हुआ यह पद वास्तविकता का बोध कराता है । अपने आस पास दृष्टिपात करने पर ऐसा दृश्य अक्सर दिखाई दे जाता है ।

नारायण अंजलि भाग I :— (1) दो. क्र.—848 पृ.क्र.—63,
नारायण नैवेद्य :— (2) पद सं. — 23 पृ.क्र.—7.

ईश्वर को सर्वशक्तिमान, इस सृष्टि का रचयिता व नियंता मान कर पूर्ण श्रद्धा भाव से हृदय में धारण करने वाले लोग वर्तमान समय में कम ही दृष्टिगत् होते हैं । हमारी प्राचीन संस्कृति व परम्परा के अनुसार इस जगत में हम सभी उस सर्वोपरि सत्ता के भ्रू संचालन के अनुसार कार्य करते हैं । अतः हमें निरपेक्ष भाव से सदैव ईश्वर का स्मरण करके परोपकारी व सदाचारी जीवन व्यतीत करना चाहिए । किन्तु भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में तथा स्वार्थ के वशीभूत हो मानव सुख में तो ईश्वर को भूला रहता है । जब उस पर विपत्ति पड़ती है तथा वह संकटों में घिर जाता है तब वह ऐसा प्रदर्शित करता है जैसे ईश्वर का परम भक्त है तथा दिखावा करना प्रारम्भ कर देता है ।

'विपति परे साधू भयो, विपति टरे नहिं टेक ।
छुछुआवत गावत भजन, झूठो भेष विवेक ।।' (1)

अर्थात् जैसे ही व्यक्ति विपत्तियों में घिर जाता है उसे ईश्वर का स्मरण हो आता है तथा वह उस समय विशेष में सारी बुराइयों से दूर रहने का प्रण करता है, किन्तु जैसे ही उसकी विपत्ति दूर होती है वह पुनः अपने कार्यों में लग जाता है । वह ईश्वर से जो कि इस पूरी सृष्टि के संचालक हैं, उनसे भी झूठ बोलने में संकोच नहीं करता तथा झूठे भजन गा गा कर प्रभु के सम्मुख भी पाप करता जाता है ।

समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा मनुष्य के असंयमी जीवन का प्रस्तुत दोहे में बड़ा सटीक चित्रण है —

'बुढ़वा वैरागी भयो, अँखियन सूझत नाय ।
परम हंस हो स्वर्ग पथ, कखरी नार दबाय ।।' (2)

बुढ़ापे में चौथे पन में मनुष्य ने वैराग्य धारण कर लिया है । समाज के सामने वह ऐसा दर्शा रहा है जैसे वह परम साधु व सात्विक वृत्ति का मनुष्य है तथा सांसारिक मायाजाल से उसका कोई संबंध नहीं है । उसे नेत्रों से दिखाई भी नहीं देता है तथा शरीर भी अति वृद्ध हो गया है, किन्तु कवि 'बौखल' की कवि दृष्टि उसकी वास्तविकता वर्णित करती है कि स्वर्ग पथ की ओर बढ़ते हुए भी वह अपनी असंयमित जीवन शैली को छोड़ नहीं पाया है तथा विवाह रचाए बैठा है । स्त्री के साथ रंगरेलियाँ मना रहा है ।

कवि बड़ी चुटीली उक्तियों में समाज के कर्ताधर्ता राजनेताओं तथा धर्म के ठेकेदार पंडितों की हकीकत बयान करते हैं —

'बनो महाजन मन्थरी आडम्बर अपनाय ।
विश्वम्भर अम्बर रमै, रहो ताहि जनमाय ।। (3)
ब्रह्मा तेरी ऐसी गति, कर दीनी इनसान् ।
करि बहुतै बदनाम जग, आप खाय पकवान ।। (4)

कवि हास्य जनित शैली में कहता है कि ईश्वर को भी मनुष्य ने अपनी स्वार्थपरता में लपेट लिया है । वह अपने हितों को साधने के लिए भगवान को भी नहीं छोड़ता है वरन् उनके आश्रय में,

---

नारायण अंजलि भाग I :—(1) दो. क्र.—403 पृ.क्र.—29,(2) दो. क्र.—477 पृ.क्र.—35,
(3) दो. क्र.—561 पृ.क्र.—41,(4) दो. क्र.—611 पृ.क्र.—45.

उनके नाम को आधार बनाकर अपना काम साधता है । जो ईश्वर इस संसार को बनाने वाले हैं उन्हें भी वह जन्म देने का आडम्बर रचता है तथा दुनिया की आँखों में धूल झोंकता है । इसी प्रकार भगवान के नाम पर आज हजारों मठ आश्रम आदि चल रहे हैं जो जनता की श्रद्धा व भक्ति का लाभ उठाकर प्रभु के नाम पर कुछ लोगों की असीमित भूख मिटाने के कार्य कर रहे हैं ।

स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा व आवरण प्रियता को छोड़कर दिखावे की लाज करने वाली स्त्रियों का सारा समाज मजाक बनाता है तथा इसी बात का वर्णन कवि इस प्रकार करता है –

परदा डारै काँच को, आँखियन लाए लाज ।
ई धैना बैना निरखि, चितवै हँसै समाज ।। (1)

मुल्ला हों या पंडित, धर्म की आड़ में दोनों ही अपना–अपना हित साधते हैं । एक खुदा के नाम पर जनता को भ्रमित करता है तो दूसरा ईश्वर के नाम पर लोगों को भरमाता है । पर परदे के पीछे दोनों ही दोनों हाथों घी चाटते हैं तथा सीधी–सादी जनता दिग्भ्रमित हो उनके चारों ओर चक्कर लगाती रहती है –

मालपुया माखन मयी, चढ़ै चौरिया चाव ।
खाय पुजारी सोय सुख, भगत विचारे भाव ।। (2)

इसी प्रकार –

मुल्ला सों मुल्ला मिली, करै बहुत बकवाद ।
भयो विलग पुनि–पुनि मिली, 'बौखल' भयो फिसाद ।। (3)

कबीर की उक्तियों को स्मरण कराते हुए कवि 'बौखल' के ये दोहे सामाजिक व्यवस्थाओं व धार्मिक आडम्बरों की पोल खोलते हैं । किसी भी धर्म के ठेकेदार एक दूसरे से भिन्न नहीं होते हैं । जिस देश के परतंत्रता की बेड़ियों में बँधे होने पर भी परम ओजस्वी स्वामी विवेकानन्द नें विदेश में सिंह गर्जना करते हुए कहा था कि "सभी धर्म समान हैं तथा ये ईश्वर तक पहुँचने के भिन्न–भिन्न मार्ग हैं अन्य कुछ नहीं ।" वहीं पुजारी, पादरी व मौलवी समाज में कटुता घोलने वाले वक्तव्यों को देकर देश को खोखला करने में लगे हैं । सभी अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताकर अन्य धर्मानुयायियों को नीचा साबित करने में लगे हैं । 'बौखल' हँसी उड़ाते हुए कहते हैं –

मुल्ला सिखवै राह रब, पादरी मसई मौन ।
चारधाम हिन्दू सिखै, मारग लागे कौन ।। (4)

समाज की वर्तमान व्यवस्था पर भी कवि हास्य शैली में चोट करते हैं, जहाँ देश के कर्णधारों को यह भी नहीं मालूम है कि वे क्या कर रहे हैं और किस प्रकार देश का भला कर सकते हैं । वे तो अपनी–अपनी जेबें भरने की फिराक में मिल बाँट कर सभी कुछ हड़प कर लेने की योजनाएं बनाते रहते हैं ।

नारायण अंजलि भाग I :–(1) दो. क्र.–649 पृ.क्र.–48,(2) दो. क्र.–1720 पृ.क्र.–130, (3) दो. क्र.–1724 पृ.क्र.–131,(4) दो. क्र.–1809 पृ.क्र.–137.

अध्याय — 7

महाकवि बौखल के काव्य में दार्शनिक चिन्तन

अध्याय - 7

महाकवि बौखल के काव्य में दार्शनिक चिन्तन

भारतीय दार्शनिक चिन्तन -

पृथ्वी पर अवतीर्ण नवजात का प्रथम दृष्टि उन्मेष 'दर्शन' का पूर्वराग कहा जा सकता है । नवजात क्रमशः वयस्क होता है प्रतिपल जिज्ञासाएं उसके साथ रहती हैं, सुख, दुःख के सूक्ष्म अनुभवों की परिधि बढ़ती जाती है, जिज्ञासाओं का समाधान वह अनेकानेक साधनों से करता है, लोकधर्म उसके साथ जुड़े रहते हैं । वयस्कता, जिज्ञासाओं, विश्वासों, विचारों, आस्थाओं व श्रद्धाओं के साथ लोकधर्म व विराट् प्रकृति तथा अखिल ब्रह्माण्ड की समग्रता को, उसके तात्विक स्वरूप में देखने की चेष्टाओं के पूंजीभूत स्वरूप को 'दर्शन' की संज्ञा दी गई है ।

मनुष्य जीवधारी या प्राणी कहलाता है, यों प्राणी की संज्ञा के भीतर समस्त जीव जन्तु पशु पक्षी आ जाते हैं परन्तु मानव उन सब में अपनी बौद्धिक सम्पदा के कारण श्रेष्ठ माना जाता है । उसमें जगत के व्यवहार को सन्तुलित रूप से जानने, समझने व उसके सम्यक् रूप निर्धारण करने की योग्यता होती है । इसी अर्थ में वह प्राणि जगत में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । उसकी यह बौद्धिक संपदा उसकी विचार शक्ति को, जिसके भीतर 'धर्म' का तात्विक स्वरूप विद्यमान है और जिसे वह धारण करता है — ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बनाती है । यह विचार शक्ति अनेकानेक तर्कों युक्तियों का सहारा लेकर ज्ञान पथ की ओर बढती है । इस प्रकार तर्कपूर्ण, युक्ति युक्त प्राप्त ज्ञान को समग्र रूप में देखना 'दर्शन' कहलाता है । सृष्टि के नवांकुर प्रस्फुटन से लेकर अनन्त काल की अपरिसीमता में अपने रूपों को यह विस्तारित करता रहता है । इसीलियें दर्शन सनातन है ।

यह संपूर्ण सृष्टि ही द्वन्द्वात्मक व जिज्ञासा मूलक है । इस सृष्टि को किसने बनाया ? यह चेतन है या अचेतन ? वह बनाने वाला स्वयं कर्ता है अथवा उसका कोई अन्य उपादान ? यह मनुष्य क्या है ? उसके जीवन का लक्ष्य क्या हैं ? इसके संसार में आविर्भाव का प्रयोजन क्या है ? यह प्रयोजन कैसे सार्थक हो, सार्थक होने के साथ साथ वह शिव व सुन्दर कैसे बने ? द्वन्द्वात्मकता से किस प्रकार निस्तार मिले । ईश्वर, जीव व जगत की स्थूल और सूक्ष्म अवधारणायें क्या हैं ? आदि प्रश्न सदा से मानव के विचार मन्थन के मूल में आधार तत्व बने हुए हैं और साथ ही इनके समाधान के प्रयत्न भी सदैव होते रहे हैं । इन सब का उत्तर देने के लिये दर्शन की उत्पत्ति हुई है ।

संस्कृत की 'दृश्' धातु से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम' अर्थात जिसके द्वारा देखा जाये । उपर्युक्त समस्याओं और द्वन्द्वों दुःखों से आत्यन्तिक निवृति किस प्रकार पाई जाये, इन सब को जिस विशिष्ट विधा से देखा जाये वही 'दर्शन' की व्यापक परिभाषा व अर्थ है । इसी को सम्यक् दर्शन भी कहते हैं, यह सम्यक् दर्शन ही मनुष्य को कर्म बन्धन से छुटकारा दिलाता है —

सम्यक् दर्शन सम्पन्नः कर्मभिर्ननिबद्धयते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसार प्रतिपाद्यते ।। मनुसंहिता 6/74

प्राचीन तथा अर्वाचीन, हिन्दू तथा अहिन्दू, आस्तिक व नास्तिक जितने भी प्रकार के भारतीय हैं उन सब के दार्शनिक विचारों को भारतीय दर्शन कहते हैं । वैदिक धर्मावलम्बियों के दर्शन आस्तिक तथा वेद न मानने वालों के दर्शन नास्तिक कहलाते हैं ।

भारतीय मनीषा सदैव से आस्तिकतावादी रही है अर्थात वेद विहित ज्ञान उसका सदैव काम्य रहा है । एक परम सत्ता जो सृष्टि की कर्ता, धर्ता व संहर्ता है उसके प्रति पूर्ण आस्था आश्वस्ति व प्रणति का भाव यहाँ सदा बना रहा हैं । दुःखत्रय की निवृत्ति एवं सांसारिक बन्धनों से छूटकर मोक्ष सुख प्राप्त करने की कामना दर्शन के मूल आधार रहे हैं । यहाँ विश्व ब्रह्माण्ड के नियंता के रूप में ईश्वर ब्रह्म या परमात्मा को बहुत बड़ा आधार माना गया है, उसे परात्पर ब्रह्म या सार्वभौम सत्ता स्वीकार करते हुये उसके सानिध्य की कामना मोक्ष सुख का आधार बनती रही है । 'ईश्वर, जीव और जगत' इन दर्शनों के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं । जीव जो ईश्वर का ही अंश है, जगत में प्रारब्ध भोग के लिये जन्मता है और कर्मफल क्षीण होने पर पुनः उसी परमसत्ता में जा मिलने की कामना करता रहा है क्योंकि इन दर्शनों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त की मान्यता है ।

जो इस ब्रह्माण्ड में है वही इस शरीर रूपी पिंड में है यह आत्मा रूप से शरीर में विद्यमान है अतः परमात्मा के साक्षात्कार के लिये आत्मा का साक्षात्कार करना मानव का परम पुरुषार्थ माना गया है । अतः सांसारिक कामनाओं का त्याग करके आत्मा के ज्ञान के लिये प्रयत्नशील होना इस जीवन का लक्ष्य मानकर जिस प्रकार के उपदेश, शिक्षायें, विधान व आचरण स्वीकृत किये गये हैं, उन का लक्ष्य भी यही है । सांसारिकता को भी इसीलिये हेय नहीं माना गया क्योंकि आत्म साक्षात्कार यहीं पर संभव होता है ।

अपने इस स्वरूप के कारण भारतीय दर्शन अत्यन्त उदार और व्यापक दृष्टि सम्पन्न है । यह दर्शन न तो कभी एकांगी रहा न ही अपने मात्र में सीमित । यहाँ हर प्रकार की विचार सारणियों का स्वागत किया गया, हर मत को सम्मान दिया गया, सबसे विचार विमर्श करते व समीक्षा को स्वीकार करते हुये एक व्यापक फलक पर और नवोन्मेषिकी दृष्टि को लेकर इस भारतीय दर्शन का उदय व विकास हुआ है ।

पाश्चात्य दर्शन -

भारतीय चिन्तन के ही समान पाश्चात्य जगत में दार्शनिक विचारों का उदय हुआ और उन विचारों के विभिन्न विभागों पर प्राचीन काल से ही चिन्तन मनन होता रहा है ।

"पाश्चात्य दर्शन की संज्ञा सामान्यतया फिलासफी किया जा सकता है । दर्शन व फिलासफी सामान्य अर्थो में एक होते हुये भी कई अंशों में भिन्न हैं, उन में तात्विक अन्तर हैं । फिलासफी दो शब्दों 'फिलास' तथा 'सोफिया' से मिलकर बना है जिस का अर्थ है 'विद्या से अनुराग' । (1)

कल्पना कुशल कोविदों के लिये विद्या अर्जन तथा उस पर प्रेम के कारणउसमें मनोविनोद के साधन खोजे गये हैं, विद्या द्वारा ही जगत के रहस्य जानने के लिये कल्पनाओं का सहारा लिया जाता

(1) भारतीय दर्शन – आचार्य बल्देव उपाध्याय पृ.सं.–6 एवं मानविकी पारिभाषिक कोष – दर्शन खंड संपादक डॉ. नगेन्द्र पृं सं. – 156.

रहा, जिसमें कोई निश्चित गन्तव्य निर्धारित नहीं किया गया । इसके विपरीत भारतीय दर्शनों का उद्देश्य दुःखनिवृत्ति व मोक्ष के उपाय खोजने व विश्व प्रपंच को आशावादी दृष्टि से देखने से हुआ है। उपरोक्त दोनों प्रकार के दर्शनों के मूलभूत सिद्धान्तों का विहंगावलोकन अनिवार्य है तभी उनके तात्विक अन्तर का ज्ञान हो सकता है ।

प्राचीन व अर्वाचीन पाश्चात्य दर्शनों के विभाग इस प्रकार हैं -

1. मैटाफिजिक्स (तत्व मीमांसा) –

इस दर्शन का विवेच्य विषय या विवेच्य पदार्थ 'सत्' है । प्रकृति प्रदत्त सभी 'सत्य' व 'प्रातीतिक' पदार्थों की उपस्थिति सभी प्राणियों के सामने रहती है अतः प्रतीति से सत्य पदार्थ पृथक करने मे इस दर्शन की उपयोगिता है ।

निश्चयात्मक पदार्थ दो प्रकार के माने गये हैं – 1. भौतिक पदार्थ 2. मानसिक दशा ।

जिन दार्शनिकों के विचार में भौतिक पदार्थो – वृक्ष, पर्वत आदि की स्वतंत्र सत्ता है और मानसिक दशायें – सुख, दुःख, उत्साह, अवसाद आदि केवल सत्यता के आभास मात्र हैं वे 'मैटीरयिलिस्टिक' कहे जाते हैं परन्तु जो मानसिक दशाओं को स्वतंत्र व भौतिक पदार्थो को सत्य का आभास मानते हैं वे 'आइडियलिस्टिक' कहलाते हैं । जो लोग दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करते हैं उन्हें 'ड्युअलिस्टक' कहते हैं ।

2. एपिस्टोमोलॉजी (प्रभाव मीमांसा)–

इस दर्शन का विवेच्य विषय ज्ञान है । ज्ञान का स्वरूप, उसकी सीमा, प्रमाणिकता तथा सत्य असत्य का निर्णय इसकी समीक्षा के अन्तर्गत आते हैं ।

3. लॉजिक (तर्क शास्त्र) –

इस दर्शन की सीमा बहुत व्यापक है, इसका उपयोग 'ज्ञान की व्यावहारिकता' के विवेचन में किया जाता है । तर्क को सत्य व प्रामाणिक बनाने के लिये कुछ विशिष्ट नियमों का पालन करना अनिवार्य है, इन्हीं का यथार्थ व विशद वर्णन इस दर्शन के अन्तर्गत किया जाता है । वे नियम हैं 1. डिडक्टिव (निगमन) व 2. इन्डक्टिव (आगमन) । प्रथम में सामान्य से विशिष्ट की ओर चलते हैं दूसरे में विशिष्ट से सामान्य की ओर जाया जाता है ।

प्रथम के द्वारा वैधिक सत्यता व द्वितीय में भौतिक सत्यता का निर्धारण किया जाता है । जो लोग इन दोनों को मिलाकर देखते हैं उनके द्वारा इनकी मान्यता 'थियोसोफिकल फिलोसफी' अर्थात् कल्पनात्मक दर्शन के रूप में हैं ।

4. एथिक्स –(आचार मीमांसा या कर्तव्य शास्त्र)

जीवन को उपयोगी बनाने के लिये जो शुभ और अनिवार्य कर्तव्य हैं उनका ज्ञान कराने वाला दर्शन एथिक्स है । जगत में दुःख व निराशा है ऐसा मानना 'पेसिमिज्म' कहलाता है परन्तु जो मानते हैं कि दुःख तो है अवश्य पर वह कभी–कभी आता है शेष जीवन सुखमय है ऐसा दृष्टिकोण 'आप्टीमिज्म' कहा जाता है । जीवन का ध्येय क्या हैं ? कर्तव्य क्या हैं ? वे कितने प्रकार के हैं ? तथा कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण कैसे हो – यही इस दर्शन का विवेच्य विषय हैं ।

5. एस्थेटिक्स (सौंदर्य मीमांसा) –

यह अपेक्षाकृत नवीन दर्शन हैं ग्रीस के प्राचीन दार्शनिकों ने इसका स्वतंत्र विवेचन नहीं किया अठारहवीं शती में जर्मन दार्शनिक 'वोडमगर्तेव' ने इसे प्रथमतः इस अर्थ में प्रयुक्त किया व एस्थेटिक्स नाम दिया । इसके दो भाग हैं – पहला है सौंदर्य निर्णय, किसी वस्तु को सुन्दर मानने का क्या कारण हैं ? किसी वस्तु को देखने से सुख या दुःख की उत्पत्ति कैसे होती है ? सौंदर्य की तात्विक व्याख्या होती है इस दर्शन में । दूसरा दृष्टिकोण है कि सौंदर्य व्यावहारिक अर्थात कला रूप में कैसे परिवर्तित होता है ? कला क्या हैं ? कला, कलाकार और कल्पना का क्या सम्बन्ध है ? आदि इसके विषय हैं ।

6. साइकोलॉजी (मनोविज्ञान)–

यह मन की विविध वृत्तियों के शास्त्रीय विवेचन की व्याख्या करता है । यह भी आधुनिक दर्शन हैं । आजकल इसकी इतनी उन्नति हो गई है कि जीवन के विविध पक्षों व मानसिक प्रवृत्तियों का ज्ञान अनेक क्षेत्रों के लिये उपयोगी माना जाता है । यहाँ तक कि इसकी प्रयोगशालायें बनी है और प्रयोगों द्वारा मानसिक दशाओं, क्रियाओं आदि का ज्ञान किया जाता है । डा. फ्रायड ने अपनी मौलिक खोजों के द्वारा इसको बहुत विस्तार दिया हैं । इसके एक नये अंग 'साइको अनैलेसिस' को उन्होंने प्रवर्तित किया है जिससे इसे लोग 'विज्ञान' मानने लगे हैं और विज्ञान जगत में एक विशिष्ट क्रान्ति उत्पन्न हो गई है ।

भारतीय दर्शन -

प्राचीन भारतीय वर्गीकरण के अनुसार दर्शनों की दो प्रधान शाखाएं मानी गई हैं –

1. आस्तिक 2. नास्तिक ।

आस्तिक दर्शन छः हैं - **न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त** । **नास्तिक** दर्शन मुख्य तीन हैं - **चार्वाक, बौद्ध, जैन** । यों आस्तिक का अर्थ ईश्वर को मानने वाला होता है परन्तु दर्शनों में आस्तिक उन्हीं को माना जाता है जो वेद को मानते हैं क्यों कि आस्तिक दर्शनों में सांख्य और मीमांसा ईश्वर को नहीं मानते परन्तु वे वेद को मानते हैं अतः वे भी आस्तिक दर्शन माने गये हैं । (1)

आस्तिक दर्शन –

I. न्याय दर्शन –

यह सर्वप्रथम व्याख्यायित दर्शन हैं जिसका विषय न्याय का प्रतिपादन करना हैं । न्याय का व्यापक अर्थ होता है विभिन्न प्रमाणों की सहायता से वस्तु तत्व की परीक्षा करना । वात्स्यायन न्याय भाष्य में कहा गया है– प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्याय (1/1/1) प्रमाणों का स्वरूप वर्णन करना तथा इस परीक्षा प्रणाली को व्यावहारिक रूप देना इस दर्शन का मुख्य कार्य हैं । जिस प्रकार समस्त दर्शनों का विषय दुःखों की निवृति तथा मोक्ष प्राप्ति की साधना है उसी आधार पर न्याय केवल प्रमाण, परीक्षण का ही कार्य नही करता वरन् वह भी उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रमाणों के आधार

(1) 'भारतीय दर्शन' – डॉ. पारस नाथ द्विवेदी –पृ. –3.

पर तात्विक ज्ञान प्राप्त करने तथा यथार्थ ज्ञान के लिये तर्कों व नियमों का निर्धारण करने का विधान करता है । इस प्रकार यह भी जीवन की समस्याओं का ही समाधान खोजता है ।

इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम थे इन्हें 'अक्षपाद' भी कहा जाता है । इस दर्शन में शुद्ध विचार के नियमों तथा तत्व ज्ञान प्राप्त करने के उपाय तर्क तथा युक्ति युक्त रूप से जानने का वर्णन है अतः इसे तर्क शास्त्र 'न्याय विधा' तथा 'आन्वीक्षिकी' भी कहते हैं जिसका आश्य 'युक्ति पूर्वक आलोचना' होता है ।

इस दर्शन का मूल ग्रन्थ महर्षि गौतम का 'न्याय सूत्र' हैं । इसके बाद इस पर अनेक ग्रंथ लिखे गये वे ग्रंथ हैं — वात्स्यायन का 'न्याय भाष्य', उद्योतकर का 'नया वार्तिक', वाचस्पति की 'न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका', उदयनकी 'न्याय वार्तिक तात्पर्य परिशुद्धि' तथा 'कुसुमांजलि', तथा जयंत की 'न्याय मंजरी' आदि । इनमें से प्राचीन न्याय को 'प्राचीन न्याय' तथा अर्वाचीन को 'नव्य न्याय' कहते हैं ।

न्यांय को मुख्य चार भागों में बाँटा गया है ।

(1) प्रमाण सम्बन्धी

(2) भौतिक जगत सम्बन्धी

(3) आत्मा व मोक्ष सुख सम्बन्धी तथा

(4) ईश्वर सम्बन्धी विचार ।

(1) <u>प्रमाण सम्बन्धी</u> :--

यथार्थ ज्ञान का लक्षण जो वस्तुओं की अभिव्यक्ति करता हैं वह ज्ञान बुद्धि कहलाता है, जैसे दीपक अपने सामने विषय को प्रकाशित करता है उसी तरह से ज्ञान भी विषय या वस्तु को प्रकाशित करता है । इस ज्ञान को चार प्रकार से जाना जा सकता है — प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, व शब्द के द्वारा ।

<u>प्रत्यक्ष</u> — यथार्थ और असंदिग्ध ज्ञान 'प्रमा' कहलाता है जो प्रत्यक्ष देखा जा सके । प्रमा वह है जिसके द्वारा हम किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कोई कार्य करें और परिणाम सफल हो । इसमें प्रत्यक्ष ज्ञान होना अनिवार्य है, जिसे 'प्रत्यभिज्ञा' कहते हैं, यह पहिचान होती है ।

<u>अनुमान</u> — प्रत्यक्ष के बाद अनुमान आता है जिससे वह ज्ञान ज्ञात होता है जिसे किसी पूर्वज्ञान के पश्चात् प्राप्त किया जाता हैं, जैसे धुवाँ देख कर अग्नि का अनुमान लगाना या यह कहना कि अमुक व्यक्ति मरणशील हैं । क्योंकि अग्नि लगने पर ही धुवाँ उठता हैं और मनुष्य मरणशील हैं । अतः अमुक व्यक्ति भी मरणशील है । यहाँ अग्नि और धुआँ और मनुष्य व मरण में नियत संबंध या व्याप्ति है; अतः यह 'अनुमान' होता है ।

<u>उपमान</u> — इसके द्वारा संज्ञा संज्ञि या विषय और विषयी का ज्ञान होता है और नाम तथा नामी के संबंध का ज्ञान होता है । जब किसी परिचित वस्तु के द्वारा ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान हो जैसे गाय को देख जंगली 'नील गाय' का ज्ञान प्राप्त होना । नील गाय को देखने पर उस परिचित गाय के सादृश्य पर इसका बोध होता है अतः यह उपमान हैं ।

शब्द – शब्दों व वाक्यों से प्राप्त होने वाले ज्ञान को 'शब्द' कहते हैं । परन्तु सभी शब्द प्रमाण नहीं होते । किसी विश्वास योग्य व्यक्ति के निश्चितार्थ वाक्य होते हैं अतः ऐसे वचन के अर्थ का ज्ञान शब्द प्रमाण हैं । न्याय सूत्र (1/1/6) में कहा गया है – 'आप्तोपदेश : शब्दः' ।

(2) भौतिक जगत सम्बन्धी –

'प्रमाण के पश्चात् 'प्रमेयो' अर्थात ज्ञान के विषयों का वर्णान किया गया है । नैयायिकों के अनुसार आत्मा, शरीर, इन्द्रिय एवं इन्द्रिय बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग प्रमेय कहलाते हैं, इनके साथ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव भी प्रमेय के ही अन्तर्गत आते हैं । सभी प्रमेय जड़ जगत में ही नहीं रहते हैं । इसमें केवल भूतों से निर्मित द्रव्य और उनके सम्बन्धी विषय ही आते हैं । आत्मा, ज्ञान, मन, काल और दिक् भौतिक नहीं हैं किन्तु सब भौतिक द्रव्य दिक् और काल में ही रहते हैं । यह जगत भी तत्वों से बना है, क्षिति, जल, पावक और समीर – ये चारों भूत अपने अपने परमाणुओं से बने हुये हैं । ये परमाणु नित्य एवं परिवर्तनशील होते हैं । आकाश, काल और दिक् नित्य विभु द्रव्य हैं ये परमाणु के बने नहीं होते । इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह जड़ जगत चार प्रकार के परमाणुओं से बना हुआ है । परमाणुओं के संयोग से बनी हुई सभी वस्तुएं, उनके गुण तथा पारस्परिक सम्बन्ध, जीव के शरीर, इन्द्रियाँ और उनके द्वारा जानने योग्य वस्तुओं के गुण – ये सभी जड़ जगत के अन्तर्गत ही आते हैं । यहाँ पर न्याय और वैशेषिक के सिद्धांतों में पूरा सादृश्य है, नैयायिक भी वैशेषिक के विचारों को मानते हैं वे उसे 'समान तन्त्र' मानते हैं । वैशेषिक में जगत सम्बन्धी विचारों का विस्तृत वर्णन है ।

(3) आत्मा सम्बन्धी विचार –

प्रत्येक शरीर में 'आत्मा' का निवास होता है । यह स्वयं नित्य है जिसमें बुद्धि सुख, इच्छा, द्वेष,प्रयत्न, धर्म, अधर्म तथा संस्कार आदि गुण निवास करते हैं । वह शरीर तथा इन्द्रियों से पृथक होकर एक स्वतंत्र सत्ता को धारण करने वाला द्रव्य है । इसी आत्मा की सिद्धि, असिद्धि, उसके मन और शरीर न होने के तर्क आदि का विस्तृत वर्णन इस भाग के अन्तर्गत वर्णित किया गया है । आत्मा के इस स्वरूप के विषय में वैशेषिक भी सहमत हैं अतः उसके सूत्रकार महर्षि कणाद ने निम्नलिखित सूत्र में आत्मा सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं ।

"प्राणापान निमेषोन्मेष जीवन मनोगति इन्द्रियान्तर
विकास सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनों लिंगानि ।" (1)

(4) ईश्वर सम्बन्धी विचार –

न्याय दर्शन में ईश्वर का सिद्धान्त बहुत ही महत्व पूर्ण है । यह न्याय दर्शन का मौलिक तत्व है जिसके आधार पर उसके आचार तथा धर्म का विशाल दुर्ग खड़ा है । ईश्वर के अनुग्रह से ही प्रमेयों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है, यही दुःखों से निवृत्ति तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन है । यह सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने वाला है । ईश्वर के साथ रहने वाली नित्य सत्ताओं का जगत, में

(1) वैशेषिक सूत्र 3/2/41

रूपान्तरण होना ही सृष्टि हैं । ईश्वर संसार के मनुष्यों एवं मनुष्येतर जीवों का धर्म व्यवस्थापक है । वह उनका कर्मफल दाता है । वह सर्वेश, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है । उसमें ईश्वरत्व के छः गुण जिन्हें षडैश्वर्य कहते हैं – विद्यमान रहते हैं । ये ऐश्वर्य, आधिपत्य, वीर्य, यश, ज्ञान व वैराग्य हैं ।

इस न्याय दर्शन में ईश्वर की सिद्धि कार्यतः, अदृष्टतः, वेद की प्रामाणिकता से, श्रुति मत से तथा स्वानुभूति से होने का विस्तृत व मनोहरी व्याख्या की गई है ।

II. वैशेषिक दर्शन –

इस दर्शन के सूत्रकार महर्षि 'कणाद' हैं । 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना करने के कारण इसका नाम वैशेषिक पड़ा है यह भारतीय विद्वानों का मत है । इसके अन्य नाम काणाद तथा औलूक्य भी हैं , क्योंकि कणाद का एक नाम उलूक भी था । इनका प्रामाणिक ग्रंथ 'वैशेषिक सूत्र' है।

इस पर प्रशस्तपाद का 'पदार्थ धर्म संग्रह' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ है जो न केवल कोरा भाष्य है वरन् एक स्वतंत्र ग्रंथ के समान है । उदयनाचार्य की 'किरणावली' व श्रीधराचार्य की 'न्याय कंदली' इसके प्रसिद्ध टीका ग्रंथ हैं । बाद में न्याय व वैशेषिक के सिद्धान्तों का समन्वय रखते हुये 'सप्तपदार्थी'; 'तर्क कौमुदी'; 'न्याय–लीलावती' और 'भाषा परिच्छेद' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे गये हैं ।

वैशेषिक लोग जगत की वस्तुओं के लिये 'पदार्थ' शब्द का व्यवहार करते हैं, जिसका अर्थ है पदा + अर्थ := पदार्थः । अर्थ से तात्पर्य उस वस्तु से हैं जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं – "ऋच्छन्तीन्द्रियाणि यं सोऽर्थः" । अतः पदार्थ का अर्थ है अभिधेय वस्तु या नाम धारण करने वाली वस्तु

पदार्थ दो प्रकार के होते है - (1) भाव पदार्थ (2) अभाव पदार्थ

भाव के छः भेद हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय ।

अभाव चार प्रकार का माना जाता है - प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव ।

कार्य के समवायी कारण तथा कर्म के आश्रयभूत पदार्थ को द्रव्य कहते हैं । **ये द्रव्य नौ हैं - पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, तेज, काल, दिक्, आत्मा और मन** । इस मत में परमाणुओं के संयोग से सृष्टि क्रम संचालन का वर्णन है । यह मत मन और आत्मा का पृथक अस्तित्व मानता है तथा परमाणुवाद का ईश्वरवाद के साथ समन्वय करता है । ईश्वर सृष्टिकर्ता और कर्मफलदाता के रुप में स्वीकार किये गये हैं परन्तु परमाणुओं व जीवाणुओं के कर्ता के रुप में नहीं । वैशेषिक के ईश्वर सर्वनियामक हैं सर्वसृष्टा नहीं ।(1)

---

(1) भारतीय दर्शन –डॉ. उमेश मिश्र – पृ.क्र. –184.

III. सांख्य दर्शन –

भारतीय दर्शनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राचीन दर्शन है महर्षि 'कपिल' द्वारा प्रवर्तित सांख्य दर्शन जिसे उपनिषत्कालीन सांख्यवेदान्त (मिश्रित) से पृथक करके स्वतंत्र दर्शन का महत्वपूर्ण पद दिलाया महर्षि कपिल ने और स्वयं 'आदि विद्वान' की उपाधि धारण की ।

इन की दो प्रसिद्ध रचनायें हैं 1. तत्वसमास 2. सांख्यसूत्र ।

तत्वसमास में 22 छोटे सूत्र हैं व सांख्य सूत्र में छः अध्याय और 537 सूत्र हैं । महर्षि कपिल की परम्परा में 'आंसूरी' और 'पंचशिखाचार्य' के नाम आते हैं पर उनकी रचनायें काल के गर्भ में समा गईं उनके बाद सांख्य दर्शन पर सबसे प्रामाणिक ग्रंथ है ईश्वर कृष्ण की "सांख्य कारिका" इसके अतिरिक्त गौड़पाद का 'सांख्य कारिका भाष्य', वाचस्पति की तर्क कौमुदी, विज्ञान भिक्षु का 'सांख्य प्रवचन भाष्य' और 'सांख्यसार' भी महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं ।

सांख्य दर्शन में तत्वों की मीमांसा बहुत सुन्दर ढंग से की गई है । इसके अनुसार तत्व 25 होते हैं । इनका वर्गीकरण इस प्रकार से है –

क्र.	तत्व स्वरूप	संख्या	विशेषता
1.	प्रकृति	1	यह तत्व सबका कारण तो है पर स्वयं किसी का कार्य नहीं
2.	विकृति	16	ये कार्य होते हैं, किसी से उत्पन्न होते हैं पर किसी को उत्पन्न नहीं करते ।
3.	प्रकृति विकृति	7	ये कार्य तथा कारण दोनो होते हैं, स्वयं किसी से उत्पन्न भी होते हैं और अन्य तत्वों के उत्पादक भी होते हैं ।
4.	न प्रकृति न विकृति	1	पुरूष

कार्य कारण के विषय में सांख्यों का एक विशिष्ट मत है 'सत्कार्यवाद' प्रश्न यह है कि कार्य की सत्ता, उत्पत्ति से पूर्व उसके कारण में रहती हैं या नहीं ? न्याय, वैशेषिक और बौद्ध तीनों का उत्तर है – नहीं । मिट्टी में घड़े की सत्ता विद्यमान होती है तो कुम्हार को घड़ा क्यों बनाना पड़ता अतः सिद्धान्त बनता हैं कि कार्य उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में विद्यमान नहीं रहता – यह 'असत्कार्यवाद' कहलाता है ।

परन्तु सांख्य के मत से कार्य अपने अव्यक्त रूप में कारण तथा कारण अपने अव्यक्त रूप में कार्य है, यह कार्य कारण का भेद व्यावहारिक है । यही सत्कार्यवाद है । यह द्वैतमत का प्रतिपादक है, उसकी दृष्टि में दो ही मूल तत्व हैं –

IV. योग दर्शन –

आत्मसाक्षात्कार की जिज्ञासा भारतीय आस्तिकतावादी मनीषा का प्रधान अनुशीलन रहा है । सभी दर्शनों में दु:ख की निवृत्ति व मोक्ष की प्राप्ति के साधन बताये गये हैं उनमें सर्वोपरि दर्शन योग है जिसका प्रधान लक्ष्य आत्मदर्शन हैं ।

संस्कृत की 'युज्' धातु (युज् समाधौ) से निष्पन्न होने वाले योग शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ है – 'समाधि' ! इसके लिये जिस कठिन साधना की आवश्यकता होती है उसे चित्त वृत्तियों का निरोध कहा जाता है इस दर्शन के प्रणेता महर्षि पातंजलि है उन्होंने योग का लक्षण कहा है –

"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" (1)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध या संयमन ही योग है । यह अति प्राचीन अध्यात्म प्रक्रिया है । यहाँ तक कि वैदिक साहित्य में भी यह संकेत रूप से वर्णित है ।

इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'योगदर्शन' है जो आत्म साक्षात्कार के जिज्ञासुओं के लिये एक अमूल्य निधि है । इसे पातंजल दर्शन या योगसूत्र भी कहते हैं । व्यास कृत प्रसिद्ध भाष्य 'योगभाष्यं' या 'व्यास भाष्य', वाचस्पति मिश्र की 'तत्व वैशारदी', भोजराज की 'योगमणिप्रभा' तथा विज्ञानभिक्षु का 'योगवार्तिक' व 'योग सार' इस दर्शन के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं ।

योग साधना के तीन प्रमुख मार्ग हैं – ज्ञान योग, भक्तियोग व कर्म योग । तीनों ही मनुष्य को संसार में रह कर विषयों से विरत होने व चित्त की एकाग्रता से आत्मदर्शन और अंत में समाधि अर्थात् मोक्ष तक ले जाने की शिक्षा देते हैं । गीता आदि विश्वपूज्य ग्रंथों में इन सब की बड़ी तात्विक विवेचना प्राप्त होती है ।

योग के प्रधान अंग आठ होते हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि । साधक इन अंगों का क्रमशः अभ्यास करता हुआ अंतिम सोपान तक पहुंच कर आत्मदर्शन हेतु स्वयं को प्रस्तुत कर लेता है । (2)

योग से लौकिक सिद्धियॉं भी प्राप्त होती हैं – अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा प्राप्ति, प्राकम्य, ईश्वत्व, यथाकामावसादिता । ये आठ सिद्धियाँ हैं , परन्तु योग की शिक्षा है कि साधक सिद्धियों की ओर आकृष्ट न होकर चित्त अर्थात मन, बुद्धि और अहंकार का पूर्ण निरोध कर के आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य के प्रति ही सतत् जागरूक रहे ।

इस दर्शन को 'सेश्वर सांख्य' भी कहते हैं क्योंकि योग के सिद्धान्तों में सांख्य के सिद्धांत कि बड़ी समानता व मान्यता है । सांख्य 24 तत्व मानता है, योग उसमें पचीसवॉं तत्व 'ईश्वर' को जोड़ता है अतः यह सेश्वर सांख्य भी है ।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने भी जैसे – प्लेटो, अरस्तू, स्पिनोजा, कांट व हेगल आदि ने भी इस दर्शन के भीतर व्याप्त अध्यात्म तत्व को माना है । आधुनिक समय में शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिये भी योग की साधना की जा रही है ।

---

(1) योग दर्शन 1/2

(1) योग दर्शन 2/29

V. मीमांसा –

इसका अर्थ है किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का निर्णय, समस्या या विचारणीय वस्तु या विषय की युक्तियों द्वारा समीक्षा करने के नियमों का निर्णय ।

इस दर्शन के दो भाग है – (1) कर्म कांड (2) ज्ञान कांड ।

प्रथम में वेदविहित यज्ञ यागादि तथा विधि विधानों व अनुष्ठानों का विस्तृत वर्णन होता है, तथा द्वितीय ज्ञान कांड में वैदिक विधि निषेधों का अर्थ समझने व उनकी आपस की संगति बिठाने के लिये व्याख्या प्रणाली को निर्धारित किया गया है ।

इस दर्शन के सूत्रकार महर्षि जैमिनि हैं, इनका मूल ग्रंथ 'जैमिनि सूत्र' है । यह प्राचीन दर्शन है और इनके पूर्व अनेक मीमांसक आचार्य हुये थे; परन्तु अपने मौलिक योगदान के कारण यह दर्शन जैमिनि के ही नाम से जाना गया । इनके सूत्रों पर शबर स्वामी का 'शाबर भाष्य' है । इनके बाद भी अनेक ग्रंथकार व भाष्यकार हुये हैं, 'कुमारिल भट्ट' व 'प्रभाकर' इनमें अधिक प्रसिद्ध हुये हैं ।

मीमांसा का मुख्य उद्देश्य 'धर्म' की व्याख्या करना है । जैमिनि ने धर्म का लक्षण दिया है – चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः । चोदना अर्थात् क्रिया का प्रवर्तक वचन (वेद का विधि वाक्य) के द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमान सूक्ष्म, व्यवहित अर्थो को बताने में जो अधिक सामर्थ्य है वह किसी अन्य साधन में नहीं । अतः वेदविहित कर्म ही मानव का वह साधन होना चाहिए जिससे मोक्ष प्राप्ति संभव है । कर्म तीन प्रकार के हैं – काम्य, प्रतिषिद्ध व नैत्यनैमित्तिक । इन कर्मो को निष्काम भाव से करना ही मीमांसा का उपदेश है । यही कार्य मनुष्य को दुःखों की निवृत्ति करा कर मोक्ष प्राप्ति में सहायक होते हैं । प्राचीन ऋषियों ने अपने प्रातिम चक्षुओं से दृष्ट मंत्रों में प्रतिपादित 'धर्म' को प्राणिमात्र के लिये कल्याणकर बताया हैं । यह मीमांसकों का मत हें । 'मोक्ष' की परिभाषा 'प्रपञ्चसम्बंधों मोक्षः' करके बताया है कि आत्मा के साथ जगत के प्रपञ्च का असम्बंध ही मोक्ष है । मीमांसक ईश्वर को तो मानते हैं परन्तु उन्होंने वेद को इतनी अधिक मान्यता दी है कि कभी कभी मीमांसक को अनीश्वर वादी भी कहा गया है; परन्तु यह सत्य नहीं है । वे आत्मा को कर्ता व भोक्ता दोनो मानते हैं । (1)

VI. वेदान्त –

वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है वेदों का अन्त, अर्थात वेदों में जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनका परिपक्व रूप /वेदों का सार उपनिषदों को कहा जाता है, इन्हें ही वेदान्त कहा गया है । यह दर्शन भारतीय अध्यात्म का शीर्ष चूड़ामणि माना जाता है ।

औपनिषदिक सिद्धान्त अति प्राचीन हैं परन्तु कालान्तर में उनमें व्यक्त विचारों में कहीं कहीं कुछ अवरोध उत्पन्न हो जाने के कारण उस ज्ञान या उन सिद्धान्तों को एक रूप बनाये जाने की आवश्यकता को देखते हुये बादरायण व्यास ने उन पर ब्रह्मसूत्र नामक ग्रंथ लिखा जिसमें उपनिषदों के रहस्य मय सिद्धांतों का पूर्ण परिपाक मिलता है । यह साढ़े पाँच सौ सूत्रों का एक लघुकाय ग्रंथ है परन्तु इसमें संपूर्ण वैदिक वाङ्मय का सारतत्व समाया हुआ है ।

(1) विस्तृत अध्ययन हेतु – भारतीय दर्शन – डॉ. सतीश चट्टोपाध्याय.

'बादरायण व्यास' के ब्रह्मसूत्र पर सबसे पहिले आचार्य शंकर — जो अलौकिक मेधा सम्पन्न योगी थे ने अपना प्रसिद्ध 'शारीरक भाष्य' लिखा उनके पश्चात् जैमिनि आदि लगभग दश व्याख्याकारों ने इस पर अपने भाष्य लिखे जिनके आधार पर आगे आने वाले अनेक आचार्यों को अपने मत के अनुसार विशिष्ट सम्प्रदायों के प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त हुआ ।

इस दर्शन का उदय ही ब्रह्म सम्बन्धी जिज्ञासा से हुआ– जिसका प्रथम मंत्र ही है "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" । ब्रह्म को परमार्थ सत्ता रूप में तथा जगत को माया रूप में प्रतिष्ठित करना इस का मुख्य लक्ष्य रहा । 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' ही इस व्याख्या का प्रतिपाद्यविषय हैं । ब्रह्म आत्मा, जीव व जगत पर केन्द्रित यह दर्शन ब्रह्म को सृष्टि का कर्ता, पोषक व संहर्ता मानता है । इसके दो रूप माने गये हैं — सगुण ब्रह्म व निर्गुण ब्रह्म । जीव उस ब्रह्म या ईश्वर को अगाध दया करूणा का आगार मानकर उपासना करता है तब वह सगुण ब्रह्म कहलाता है । परन्तु जब वह समस्त गुण, रूप व क्रियाओं से रहित होकर एक निष्क्रिय सत्ता में विद्यमान होता है तब वह निर्गुण ब्रह्म कहलाता है । उपनिषदों में इसे ही 'नेति नेति' कहकर बताया गया है ।

उस पर ब्रह्म परमेश्वर की बीज शक्ति माया है जो सृष्टि के सम्पादन में ब्रह्म की सहायिका होती है । इस प्रकार इन पारमार्थिक तत्वों पर विचार करते हुये 'आत्मदर्शन' के द्वारा मनुष्य के दुःखों की निवृत्ति व मोक्ष प्राप्ति को संभव कराने वाला यह वेदान्त दर्शन पूर्व तथा पश्चिम के विद्वानों के लिये परम आदरास्पद दर्शन हो गया है ।

अद्वैत वेदान्त व शंकर का मायावाद –

अद्वैत वेदान्त का अर्थ है एक पारमार्थिक सत्ता ब्रह्म ही है' अन्य कुछ भी नहीं । इस वेदान्त में ब्रह्म केन्द्र व परिधि दोनों में है । आचार्य शंकर इस मत के सबसे बड़े पुरोधा माने गये हैं, उनके अनुसार एक ब्रह्म ही सत्य है शेष सब मिथ्या है इसका मूल मंत्र ही है — "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" । वे बौद्धों की तरह जगत को परिवर्तन शील मानते हें साथ ही यह भी कहते है कि यह परिवर्तनशीलता ही एक ऐसे अतीन्द्रिय व सत्य की माँग करती है जो परिवर्तनशील जगत के परे है । यही वह अतीन्द्रिय तत्व है जो काल्पनिक जगत की कल्पना का आधार है । यही निर्गुण निराकार ब्रह्म तत्व है । शंकर के सामने सबसे बड़ी समस्या थी कि यह बताने के लिये कि निर्गुण निराकार ब्रह्म जगत के प्रपञ्च में कैसे प्रवृत्त हुआ — जगत को 'आभास' सिद्ध किया जाये । इस समस्या का समाधान उन्होंने 'माया' के माध्यम से किंया । माया का स्वरूप और कार्य व्यापार समझाने के लिए उन्होंने रज्जु सर्प का दृष्टान्त उपस्थित किया । कोई व्यक्ति रज्जु के स्थान पर सर्प देखता है तो यह ऐसा माया के कारण है । इस माया की आवरण व विक्षेप दो शक्तियाँ हैं । आवरण के द्वारा वस्तु का रूप ढंक जाता है । जब कि विक्षेप में किसी अन्य वस्तु का आरोपण उस स्थान पर कर दिया जाता है । परन्तु इस काल्पनिक वस्तु का स्वरूप क्या है ? माया 'सत्' नहीं है क्योंकि जब भ्रम टूटता है तब सर्प का अभाव हो जाता है । और यह 'असत्' भी नहीं है क्योंकि इसे देखा गया है अतः यह 'अनिर्वचनीय' है ।

यह माया ब्रह्म की बीज शक्ति है, इसी के कारणत्व से जगत की उत्पत्ति है, इसके अभाव में परमात्मा में सृष्टि रचना की प्रवृत्ति नहीं होती ।

"अव्यक्तनाम्नी परमेश शक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिकापरा ।
कार्यानुमेयाा सुधियैव माया, यया जगत्सर्वमिदम् प्रसूयते ।।"

यह अविद्यात्मिकता बीज शक्ति 'अव्यक्त' कही जाती है जो परमेश्वर में आश्रित है, जिसमें अपने स्वरूप को न जानने वाले प्राणी शयन करते हैं ।

"अविद्यात्मिका बीज शक्तिरव्यक्त शब्द निर्देश्या परमेश्वराश्रया।
मायामयी महासुप्तिः यस्यां स्व रूप प्रतिबोध रहिताः शेरते संसारिणो जीवाः ।।" (1)

माया एक ऐसी सीमा है जिसे ब्रह्म स्वयं अपने ऊपर थोपता है; परन्तु स्वयं निर्लिप्त रहता है।

माया जगत की सभी वस्तुओं को जन्म देती है जो हर समय अपने को परिवर्तित करने के लिये उत्सुक रहती है; परन्तु ब्रह्म में कोई विकार नहीं आता, वह सत्य है ।

अद्वैत वेदान्त के विरोध में खड़े अन्य वैष्णव सम्प्रदाय -

चिन्तन, विचार मंथन और जिज्ञासा मेधा की ये तीन अलौकिक शक्तियाँ हैं जो सदैव गतिशील रहती हैं और गतिशीलता परिवर्तनाधारित होती है । अतः चिन्तन की सरणि नित्य नव्यता का अन्वेषण करती हुई लौकिक और पारलौकिक विषयों को केन्द्र में रखकर अनेक दुर्लभ समस्यायें और उनके समाधान उपस्थित करती रहती हैं । इसका आशय न तो पुरातनता को नकारना होता है, न ही नवीनता को अनालोच्य सिद्ध करना होता है । यही कारण है कि दर्शन के क्षेत्र में भी सदा नव्यता और मत वैभिन्न्य के अवसर उपस्थित होते रहे हैं ।

आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त विश्व भर में इतना अधिक मान्य हुआ है इसका कारण यह था कि सृष्टि की पहेली को सुलझाने में यह दर्शन जितनी सुगमता, सहजता व बोधगम्यता के साथ सफल हुआ उतना अन्य कोई दर्शन नहीं । अनेक विद्वान आचार्यो ने उस पर अपने भाष्य लिखे और अद्वैत की परम्परा को आगे बढ़ाया ।

परन्तु फिर भी आगे आने वाले आचार्यो को अद्वैत वेदान्त कोरा, शुष्क ज्ञानमार्ग, रागात्मकता की कमी के कारण स्वीकार्य नहीं हुआ और उन्होंने उसके प्रतिरोध में भक्ति भावना पर आधारित कुछ संप्रदायों को जन्म दिया ।

1. सर्वप्रथम रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत सामने आया । इस मत में ब्रह्म को शुद्ध चैतन्य व परम सत्ता तो स्वीकार किया गया पर उसे निर्गुण नहीं माना गया, साथ ही सृष्टि जो वास्तविक है वह भी उतनी ही सत्य है जितना सत्य ब्रह्म है । ये आचार्य उपनिषद् के 'नानात्व व एकत्व' वाक्यों को इस प्रकार स्वीकार करते हैं जैसे स्वर्ण व उससे बने समस्त आभूषण । उसी प्रकार ब्रह्म भी समस्त विश्व में निहित है । वे सृष्टि को भ्रम मात्र, माया निर्मित नहीं मानते । उनके अनुसार सब ज्ञान सत्य होता है । 'यथार्थ सर्वविज्ञानम्' । उन्होंने माया वाद पर बहुत आक्षेप किये हैं । यदि यह

(1) शारीरक भाष्य – 1/4/37

सृष्टि माया, अविद्या या अज्ञान से उत्पन्न होती है तो उसका आधार क्या है ? यदि वह ब्रह्म है तो फिर वह ब्रह्म शुद्ध चैतन्य ज्ञान रूप कैसे है ? उनके अनुसार चित् व अचित् अंशों से विशिष्ट होते हुये भी ब्रह्म एक ही है इसीलिये उनका मत 'विशिष्टा द्वैत' है । "रामानुज के गुरू श्री यामुनाचार्य थे जिन पर इन की प्रगाढ़ भक्ति व प्रेम था । इनके अनुसार श्रुति ही आत्मप्रपत्ति का प्रमाण है, ईश्वर पुरूषोत्तम है जीव से श्रेष्ठ है जीव अणु है ।" ब्रह्म सगुण है, वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और कृपालु है । ईश्वर के सम्बन्ध में उनका मत है कि वह जगत में व्याप्त भी है और उससे परे भी कोई विशिष्ट व्यक्तित्व है जो अपनी इच्छा शक्ति से सृष्टि उत्पन्न करता है । वह ईश्वर उपासना का विषय है धार्मिक साधना का लक्ष्य है तथा इसमें भक्ति से ही उसकी प्राप्ति संभव है । प्रार्थना के द्वारा, विधि विधान पूर्वक पूजन अर्चन से ईश्वर को संतुष्ट किया जा सकता हैं तथा उनकी कृपा जिसे 'प्रपत्ति' कहा गया — के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है' उन्हें कोरे वेदान्त में मोक्ष खोजना उपयुक्त नहीं लगा । ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसर्पण व उनका अविरल चिन्तन ही मोक्ष प्रदाता है "भक्ति प्रपत्तिम्यां ईश्वर एव मोक्ष प्रदाता" ।

2. माध्व संप्रदाय -

आचार्य मध्व द्वारा प्रतिपादित द्वैतवाद या 'स्वतंत्रास्वतंत्रवाद' माध्व संप्रदाय कहलाया ।

इस संप्रदाय के अनुसार इसके सर्वप्रथम प्रवर्तक 'ब्रह्मा' हैं । माध्व मत में 'जीव' और 'ब्रह्म' नित्य पृथक हैं अर्थात दोनों दो पदार्थ हैं । ब्रह्म सगुण और सविशेष है, जीव अणु परमाणु है, जीव भगवान का दास है । वेद नित्य और अपौरूषेय हैं । श्री मध्व पूर्ण रूप से द्वैतवादी हैं, वे कहते हैं कि जीव जो दास है यदि प्रभु के साथ साम्य का बोध करे तो प्रभु उसे दण्ड देते हैं, इसी प्रकार जीव के भगवान के साथ ऐक्य का अनुभव करने पर अर्थात् 'अहंब्रह्मास्मि' का विचार करने पर भगवान जीव को नीचे गिरा देते हें । इससे जीव अधोगति को प्राप्त होता है । परम सेव्य भगवान की सेवा के अतिरिक्त जीव को और कुछ नहीं करना चाहिए । स्वतंत्र भगवान को प्रसन्न करना ही एकमात्र पुरुषार्थ है, यह पुरूषार्थ भगवान के गुणों का ज्ञान हुये बिना नहीं प्राप्त हो सकता । 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों से वह ज्ञात नहीं हो सकता । 'दशविध भजन' — सत्य, हित, प्रिय बोलना व स्वाध्याय ये चार प्रकार के वाचिक भजन हैं । सत्पात्र को दान, विपन्न का उद्धार, शरणागत की रक्षा—ये तीन कायिक भजन हैं । दया, स्पृहा व श्रद्धा — ये तीन मानसिक भजन हैं । इन दशों प्रकार के कार्य करके नारायण को समर्पित करना भजन है । इसी से मोक्ष प्राप्ति होती है । (1)

3. श्री निम्बाकाचार्य का द्वैताद्वैत मत -

आचार्य निम्बार्क के मतानुसार ब्रह्म, जीव और जड़ अर्थात चेतन और अचेतन से अत्यंत पृथक और अप्रथक है । इस पृथकत्व और अपृथकत्व के ऊपर ही उनका दर्शन निर्भर करता है । जीव और जगत दोनो ब्रह्म के परिणाम हैं । दोनों ब्रह्म से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी । इस मत के अनुसाार धर्म—तत्व का जिज्ञासु कर्म की मीमांसा करता है, कर्मफल नश्वर जान

(1) कल्याण का वेदान्त अंक

कर वह कर्म का निरादर करता हैं, उस समय वह मुमुक्षु श्री भगवान का गुणगान करके उनके प्रति आकृष्ट होता है फिर वह भक्तिपूर्वक अनन्त, अचिन्त्यशक्ति, ब्रह्मशब्द वाच्य पुरूषोत्तम के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है । उनके मत से मोक्ष का साधन भक्ति ही हैं । 'तत्वमसि' वाक्य जीव ब्रह्म की अभिन्नता बताता है साम्य नहीं सूचित करता ।

इस सम्प्रदाय की दो श्रेणियाँ हैं – एक विरक्त दूसरी गृहस्थ । आचार्य के दो शिष्य केशव भट्ट और हरिव्यास थे । हरिव्यास के अनुयायी गृहस्थ और केशव भट्ट के अनुयायी विरक्त होते हैं । इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की पूजा होती है और लोग गोपीचन्द का तिलक करते हैं । श्री मद्भागवत इस सम्प्रदाय का मुख्य ग्रंथ है, और ब्रह्म ही जिज्ञासा का विषय है –

'सर्वभिन्नाभिन्नौ भगवान वासुदेवो विश्वात्मैव जिज्ञासा विषयः ।।" (1)

4. श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत मत -

चार प्रधान वैष्णव सम्प्रदायों में एक रूद्र सम्प्रदाय भी है जिसे शुद्धाद्वैत भी कहते हैं, इसके प्रवर्तक विष्णुस्वामी कहे जाते हैं तथा इन्ही की परंपरा में आचार्य श्री वल्लभ हुये जिन्होने अपना शुद्धा द्वैत (शुद्ध द्वैत मूलक) पुष्टि मार्ग चलाया । यह परम भक्ति पर आश्रित मार्ग है । इनके अनुसार जीव अणु है, सेवक है, प्रपञ्च (जगत) सत्य है माया से उत्पन्न नहीं । ब्रह्म निर्गुण व निर्विशेष है परन्तु वे अपनी लीला से जगत् की उत्पत्ति करते हैं माया से नहीं । लीला का अर्थ इस मत में बहुत मान्य है। गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण ही वह ब्रह्म हैं, वही जीव के सेव्य हैं । जीवात्मा व परमात्मा दोनों शुद्ध हैं उनके कर्ता होने में माया का व्यापार तनिक भी नहीं होता । वे लीलाधाम हैं । 'लीला' भगवान की 'विलास की इच्छा' का नाम है, वे (ब्रह्म) अपनी अचिन्त्य माया से सृष्टि का उत्पादन कर उससे विलास या क्रीड़ा करते हैं और अंत में स्वयं ही उसे अपने में तिरोहित कर लेते हैं । ब्रह्म से जीव का उदय अग्नि स्फुलिंगवत होता है अतः वह सत् व चैतन्य होता है और सृष्टि के साथ उन्हीं में समा जाता है ।

इस मत में मुक्ति का अर्थ गोलाकाधिपति श्री कृष्ण की सायुज्यमुक्ति है । यह मुक्ति भगवान के अनुग्रह के बिना नहीं मिलती । भगवत्प्रसाद से शुद्ध पुष्टि मार्गीय भक्ति का उदय होता है, इस के उदय से भगवान श्रीकृष्ण की विमल दया की धारा साधक के ऊपर झरने लगती है – इसी को अनुग्रह या पुष्टि कहते है – पुष्टि का रहस्य यही है" । "पोषरंग तदनुग्रहः" (2)

दर्शन के तत्व -

ब्रह्म, जीव, जगत्, आत्मा, माया व साधन मार्ग– ये दर्शन के विश्वरूप और अरूप की पहेली को सुलझाने के व्यापक क्षेत्र हैं । इसका कारण है रूप के प्रत्यक्ष होते हुये भी पूर्ण बोध का न होना, जब ऐसी बात रूप के साथ है तो फिर अरूप, अगोचर या परोक्ष की विद्यमानता का परिचय तो और भी अधिक जटिल हो जाता है; पर जिस समय से सृष्टि का प्रथम उन्मेष हुआ और यह विराट् रहस्यागार आँखों को प्रत्यक्ष हुआ तभी से इसके व इसके कर्ता, नियंत्ता व परिचालक की अनंत चैतन्यता की खोज के प्रयास प्रारम्भ हो गये हैं ।

(1) वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धांत – आचार्य बलदेव उपाध्याय.

(2) श्रीमद् भागवत – 2/101.

वैदिक ऋषियों के द्वारा दृष्ट ज्ञान से अग्निस्फुलिलंगवत् चतुर्दिक विकीर्ण होने वाली आलोकराशि को अलौकिक मेधा सम्पन्न दार्शनिकों द्वारा सर्वसुलभ कराने के प्रयत्न प्रारंभ हो गये । आर्य पुरूषों के गूढ़ आत्मज्ञान से प्रतिफलित चिन्तन व विचार मंथन इसके समर्थ साधन बने तथा उन तत्वों की निगूढ़ता को भिन्न–भिन्न प्रकार से बोधगम्य बनाने के लिये विभिन्न दार्शनिक मतों का उद्‌भव हुआ । इन सभी मतों या सम्प्रदायों में प्रधान विवेच्य विषय जो रूप और अरूप दोनों की व्याख्या कर सकें दोनो की पूर्णताा की सीमा प्रत्यक्ष कर सकें, दोनों का विभागशः वर्णन कर सकें वे हैं – ब्रह्म, जीव, जगत्, आत्मा, माया व साधन मार्ग ।

सर्वप्रथम सर्वसमर्थ ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार –

1. <u>ब्रह्म</u> वह स्वयं प्रकाश अवाङ्मनस् अगोचर परम चैतन्य तत्व है जो सृष्टि का कर्ता, पोषण हेतु व संहर्ता है । अद्वैत मत से यह अखण्ड, व्यापक, शुद्ध चैतन्य, कूटस्थ व अनुपास्य है । वह एक है परन्तु वह 'एकोऽहम बहुस्याम्' की आकांक्षा करता है तब प्रकृति उसकी सहापिका बनती हैं सत् रज् तम युक्त त्रिगुणात्मिका प्रकृति सृष्टि रचना में ब्रह्म की शक्ति 'माया' का आश्रय लेकर स्वयं प्रवृत्त होती है परन्तु वह निर्गुण, निर्विशेष अविकारी रहता है – एक सुन्दर रूपक के द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है ।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यं पिप्पलं स्वाद्वत्ति, अनश्नन्न्योऽभिचाकशीति ।।" (1)

(दो पक्षी एक समान वृक्ष पर बैठे हैं, उनमें से एक पिप्पल फल का स्वाद ले रहा है और दूसरा बिना खाये हुये उस को देखता हुआ बैठा है ।) यही हैं प्रकृति और ब्रह्म, प्रकृति सृष्टि रचना में प्रवृत्त हो रही है और ब्रह्म उसे प्रवृत्त होने की प्रेरणा देकर स्वयं निर्विकार, अव्यय, तटस्थ, कूटस्थ भाव से निर्लिप्त है । ब्रह्म को 'ऊर्णनाभ' (2) कहा गया है अर्थात जैसे मकड़े के शरीर के भीतर ऊन रहता है वह स्वेच्छा से जाला बुनता रहता है उसी में घूमता है और अन्त में स्वयं ही उसे खा जाता है । ब्रह्म विषयक धारणा भी यही है कि वह सृष्टि प्रपंच की रचना करता है, उसमें क्रीड़ा करता है और अन्त में स्वयं ही उसका लय कर लेता है । विभिन्न संप्रदायों में इसे ही कभी माया के द्वारा कभी स्वतः ही सृष्टि करते हुये माना गया है ।

<u>अद्वैत वेदान्त मत में ब्रह्म</u> – अखण्ड, व्यापक शुद्ध चैतन्य और अनुपास्य, निर्गुण माना गया है।

<u>विशिष्टाद्वैत मत में ब्रह्म</u> – अद्वैत तो माना गया परन्तु साथ ही उसे सगुण, सविशेष, सर्वनियंता, कल्याणगुणगणसागर, कृपाल व पुरूषोत्तम भी माना गया जो निर्विशेष होकर भी भक्तों के लिये सविशेष होता है तथा उसका परम अनुग्रह मोक्ष प्रदाता होता है ।

<u>द्वैतवाद मत में ब्रह्म</u> – अनन्त सद्‌गुणों से परिपूर्ण सगुण सविशेष है, अशेष सद्‌गुणयुक्त भगवान विष्णु स्वतंत्र तत्व हैं । ब्रह्म और शास्त्र में प्रतिपाद्य, प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है, ब्रह्म शास्त्रगम्य है ।

<u>द्वैताद्वैत मत में ब्रह्म</u> – जगत का निमित्त और उपादान कारण है, वहीं जगत रूप में परिणत हुआ है, प्रलय में जगत ब्रह्म में लीन हो जाता है, ब्रह्म अविकारी है अतः जगत रूप में आने व पुनः उसे लीन कर लेने पर भी उसमें विकार नहीं आता ।

शुद्धाद्वैत मत में ब्रह्म – निर्गुण निर्विशेष, निमित्त व उपादान कारण, शास्त्रगम्य और शब्द के विषय हैं । निर्गुण होकर भी भक्त हेतु सगुण साकार सर्वज्ञ, सर्वकृत व सच्चिदानंद स्वरूप है । अचिन्त्य होने के कारण उनमें विरोधी गुणों का समावेश हो सकता है । वह माया से अलिप्त है ।

2. जीव सभी दर्शनों में जीव ब्रह्म से भिन्न, दो प्रकार का बद्ध और मुक्त, अणु, भगवान का दास, चेतन पर सीमित ज्ञान वाला, भगवान पर पूर्णरूपेण निर्भर, सात्विक, राजस व तामस, तीन प्रकार का स्वयं प्रकाश, ज्ञानाश्रय, खण्डित, कर्तृत्व व भोक्तृत्व धर्मी अल्पज्ञ और कार्य है । मुक्त जीव व बद्ध जीव दोनों ईश्वर के दास है ।

3. जगत अद्वैत में जगत् मिथ्या है – "ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या" । मायिक, निर्मूल सत्ता वाला । द्वैत में वह सत्, जड़ व अस्वतंत्र है काल की दृष्टि से असीम जगत् सत्य है मायोपहित नहीं, उसमें परिवर्तन होना अनिवार्य है । जगत् ब्रह्म का परिणाम है । द्वैताद्वैत में जड़तत्व के अर्थात अचेतन पदार्थ के अन्तर्गत प्राकृत जगत् वह है, जो महत्तत्व से लेकर महाभूत तक प्रकृति से उत्पन्न है । यहीं पर अप्राकृत जगत् जो प्रकृति से राज्य से बहिर्भूत है जैसे भगवान के परम व्योम परमपद आदि स्थान । कालबद्ध जो जगत् काल से नियमित है फिर भी ईश्वराधीन है । शुद्धाद्वैत में जगत ब्रह्म की ही प्रकृति है उसमें माया को तनिक भी श्रेय नहीं है, वह नित्य है, वह ब्रह्म का लीला क्षेत्र है । ब्रह्म जीव को अनुग्रह देने के लिये जगत में अवतरित होते हैं अतः यह सत्य है ।

4. आत्मा आत्मा परब्रह्म परमात्मा का अंश है जो स्वयंप्रकाश, अजन्मा, अनादि है । 'यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे', के अनुसार जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में वह परब्रह्म व्याप्त है उसी प्रकार ये पिंड रूप शरीर भी उसी के अंश आत्मा से परिव्याप्त है । अद्वैत वेदान्त में आत्मा को नित्य और स्वयं सिद्ध माना है, इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही अद्वैत का परम लक्ष्य है । यह संसार जो भी क्रियाकलाप करता है उसका आधार होता है अनुभव । सुख दुःखादि जो भी जीवन के भोक्तृत्व हैं उनको अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है । यह जानने वाला कौन है ? इसे ही चेतन स्वरूप आत्मा कहा गया है । शरीरगत समस्त व्यवहार अनुभव इसे ही होते हैं परन्तु शरीर से वियुक्त होने पर भी इसकी सत्ता समाप्त नहीं होती । यह प्रमाण आदि व्यवहारों का भी आश्रय है । वह ज्ञाता भी है और ज्ञान भी दोनों भिन्न नहीं हैं । याज्ञवल्क्य ने अपनी ब्रह्मजिज्ञासु पत्नी मैत्रेयो को इसी आत्मा संबधी अमर उपदेश दिया था "आत्मा अरे वा दृष्टव्यः बोधितव्यः (ज्ञातव्यः) निदिध्यासितव्यः" । यही आत्मा जानने योग्य है । गीता में भी आत्मा सम्बन्धी उत्कृष्ट उपदेश हैं –

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।" (1)

5. माया माया का सबसे अधिक विस्तृत वर्णन अद्वैत वेदान्त में पाया जाता है । आचार्य शंकर ने ब्रह्म को अद्वैत सिद्ध करते हुये जगत को माया की सृष्टि कहा है । यह माया परब्रह्म की शक्ति हैं । यही माया ब्रह्म की प्रेरणा से सृष्टि रचना में प्रवृत्त होती है । इसकी विद्या तथा अविद्या जिसे अज्ञान भी कहते हैं – दो शक्तियाँ हैं । विद्या माया सत् रूपिणी है और अविद्या माया ही संसार की

रचना करती है । सृष्टि रचना के समय इस माया का अनेक रूपों में विस्तार होता है । इसकी तीन श्रेणियाँ हैं — प्रातिभासिक, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक । इन्हीं से सृष्टि रचना में उसकी प्रवृत्ति होती है । माया की और भी दो शक्तियाँ होती हैं — आवरण और विक्षेप । आवरण का अर्थ है ढ़कना । यह शक्ति ब्रह्म के शुद्ध रूप को ढ़क लेती हैं । आचार्य ने इसे सत् भी नही कहा असत् भी नहीं, वह उभय रूप भी नहीं है; परन्तु फिर भी इतने बड़े सृष्टि रचना कार्य में संलग्न रहती है अतः उसे अनिर्वचनीय कहा गया है । यह ब्रह्म की अव्यक्त शक्ति है ।

बाद में जितने भी वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय हुये हैं सबने माया के इस रूप का तिरस्कार किया है । उनके अनुसार ब्रह्म स्वयं भक्ति के वश में होकर भक्तो के लिये सृजित संसार में स्वयं नाना रूपों में अवतरित होते हैं ।

फिर भी अद्वैत वेदान्त का इतना प्रबल प्रभाव था कि उसे किसी न किसी रूप में संतों कवियों आदि को स्वीकार करना ही पड़ा, जिसमें माया की स्थिति अनिवार्य मानी गई ।

महात्मा कबीर ने — "माया महा ठगिनि हम जानी" कह कर इसे विश्व के कण—कण में व्याप्त माना है ।

महात्मा तुलसी दास ने — एक चैतन्य परब्रह्म और उनकी माया का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है

"मैं अरु मोर तोर यह माया । जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ।।"
"जासु सत्यता ते जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।।"

"व्यापि रहा संसार मँह, माया कटकु प्रचंड ।
सेनापति कामादि भट, दंभु कपट पाखंड ।।

महात्मा सूरदास — भक्तिरस प्रवण सगुणोपासक कवि थे परन्तु उन्हें भी यह माया अपने इष्ट कृष्ण के पूर्ण आनन्द घन स्वरूप की चेरी ही लगी जो उनके सामने नाचती रहती हैं ।

"मधुकर वह जानी तुम साँची ।
पूरन ब्रह्म तुम्हारे ठाकुर, आगे माया नाची ।।"

6. <u>साधन मार्ग</u> सभी वेदान्ती सम्प्रदायों में आत्मज्ञान की प्राप्ति व मोक्ष को अंतिम पुरूषार्थ, चरम उपलब्धि के रूप में मान्यता प्राप्त है । इसके लिये निर्गुण सम्प्रदाय हो या सगुण सभी ने अपने अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिये <u>साधनमार्गो</u> की अवतारणा की है ।

<u>अद्वैत</u> में ज्ञान निष्ठा को कर्मनिष्ठा से ऊपर बताते हुये ज्ञान द्वारा ही आत्मा व मोक्ष की प्राप्ति बताया गया है । साधक गुरू मुख से उच्चारित विद्या का श्रवण करे, तत्पश्चात् मनन करे निदिध्यासन करे तब ही 'तत्वमसि' वाक्य का बोध प्राप्त होता है और ब्रह्म की अद्वैतता का भान होता है ।

द्वैत मतानुसाार दशविध भजन जो वाचिक, कायिक और मानसिक होते हैं — वे ही साधना के

मार्ग कहे गये हैं । लक्ष्मी को परमात्मा की शक्ति मान कर उन्हें, ही सर्व कर्म समर्पण भाव से अर्पित किये जाते हैं । इसके साथ 'तारतम्य ज्ञान' भी होना आवश्यक है । 'तारतम्य ज्ञान' का अर्थ है — संसार के समस्त उत्तमोत्तम पदार्थो का अवसान भगवान में ही होता है । इनकी उपासना शास्त्राभ्यास रूपा और ध्यानरूपा दो प्रकार की होती है, इन्हीं के सतत् अभ्यास से भगवान का नैसर्गिक अनुग्रह प्राप्त होता है ।

द्वैताद्वैत मत में ध्यान उपासना व ज्ञान मुक्ति के साधन नहीं है वरन् भक्ति ही साधन है । आत्म समर्पण, प्रपत्ति और शरणागति ही एकमेव मार्ग है । न्यास विद्या ही प्रपत्ति है जिसमें भगवान को सर्वस्व निवेदन कर दिया जाता है । भगवान के प्रति प्रेम जिसे हो जाता है वही प्रेमाभक्ति का अधिकारी होता है । इस निम्बार्क मत में भी 'विदेह मुक्ति' की मान्यता है 'जीवन्मुक्ति' की नहीं । शुद्धाद्वैत मत में भक्ति की गहनता एवं प्रगाढ़ता को ही भगवानकी प्राप्ति का मार्ग बताया गया है । इसी को 'पुष्टि' अर्थात अनुग्रह कहा गया है । 'त्वं' पदार्थ के ज्ञान से कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है और 'तत्' के चिन्तन से भगवान का प्रसाद प्राप्त होता है । संवित् तथा ह्वादिनी शक्तियों का एकीकरण भक्ति का सार है, जिससे भगवान के ऐश्वर्य और माधुर्य का रसपान भक्त करता है । जो आर्त भक्त होते हैं उन पर भगवान की अहेतुकी कृपा हो जाती है ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यद्यपि ये चारों दर्शन वैष्णवी दृष्टि से भक्ति के प्राचुर्य को प्रतिपादित करते है तथापि अद्वैत वेदान्त को इनके उद्भव के कारण स्वरूप में देखा जा सकता है । ज्ञान मीमांसा और भक्ति की अनन्यता ही सभी दर्शनों का मूल है । भारत में आरंभ से ही दर्शन के सभी सम्प्रदायों ने ज्ञान की समस्याओं को समग्र दर्शन का एक अंग माना है । संभवतः इसलिये कि भारतीय दार्शनिक के लिये प्रमुख समस्या दुःख से निवृत्ति पाने की है और उस दुःख का कारण भी अज्ञान को ही माना गया है । समस्त दर्शनों का तात्विक चिन्तन यही है कि इस अज्ञान से कैसे छुटकारा मिले, यह तभी सम्भव है जब दुःख के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो । उस अज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है ? उसका विस्तार कहाँ तक रहता है ? कौन से तर्क, कौन सा बोध, कौन सी क्रिया प्रणाली इन सब का उत्तर दे सकेगी । यही वस्तुतः दर्शन की दीर्घकालीन परम्परा के आधार बने । यही कारण है कि भारतीय दर्शनों में ज्ञान मीमांसा, तत्वमीमांसा, कर्म मीमांसा, भक्ति की गहनता से ईश्वर की प्राप्ति, आचरणीय नीति शास्त्र, नैतिकता और कायिक, मानसिक, वाचिक शुद्धता तथा अच्छे जीवन के लिये अनिवार्य साधनाओं का समावेश है । ये परस्पर विरोधी न कहे जा कर ज्ञान के विस्तारक रूप में देखे जाये तो श्रेष्ठ होगा, क्योंकि जब एक दर्शन अपने पूर्व के दर्शन की कुछ आलोचना करता दिखता है तब यही प्रतीत होता है कि वह उसके आगे भी कुछ नवीन दे रहा है, किन्ही नये तथ्यों का उद्घाटन कर रहा है, प्राचीनता में नवीनता का समावेश विकास का ही द्योतक है, और इसी विकासशील दार्शनिक परम्परा से भारतीय वाङ्मय इतना समृद्ध है कि उसकी गहनता गंभीरता, अगाधता और विस्तार के आगे अन्य पाश्चात्य दर्शन ठहर नहीं पाते हैं ।

महाकवि 'बौखल' के काव्य के दार्शनिक पक्ष -

जीव, जगत, ब्रह्म, माया आदि प्रारंभ से ही मानव की जिज्ञासा के आयाम रहे हैं । अनेक दार्शनिकों, आचार्यो, मनीषियों ने इन सतत् रहस्यात्मक तथ्यों पर प्रकाश डाला व इनके अस्तित्व, शाश्वत सत्ता और अभिव्यक्तियों के बारे में अपने अपने मत से इनकी व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं । जिन बड़े व प्रसिद्ध सम्प्रदायों द्वारा गुत्थियों को सुलझाने के प्रयास किये, उनका संक्षिप्त विवरण पीछे के पृष्ठों में दिया जा चुका है । अब बौखल ने इन शाश्वत और चिरन्तर मूल्यों पर किस दृष्टि से विचार किया है यह देखने के लिये अनके रचित ग्रंथों में से इसकी पड़ताल की जा सकती है ।

जीव – सर्व प्रथम जीव के बारे में उनके चिन्तन को देखने से यह प्रक्रिया प्रारंभ की जा रही है । 'बौखल' संपूर्ण विश्व को अणु परमाणु रचित देखते हैं । उनके अनुसार जड़ और चैतन्य दोनों सृष्टि की रचना में समान रूप से संलग्न रहते हैं । इसी चैतन्य अंश से जीव का निर्माण होता है । जीव की व्याख्या इस काव्य में अणु रूप में की गई है और उसे आतम या आत्मा नाम दिया गया है ।

जड़ चेतन के मंथन से आतम भयो विकास ।
क्रिया निहित कारण कमठ, क्रिया विलाप विनास ।। (1)

जब जड़ चेतन का मंथन होता है तब आत्मा का विकास होता है । सृष्टि का मूल कारण ब्रह्म की क्रियाशीलता है । प्रकृति जड़ है परन्तु वह चैतन्य की शक्ति होने के कारण ही सृष्टि रचती है, जब ब्रह्म की निष्क्रियता का समय आता है तभी विनाश लीला प्रारम्भ हो जाती है । यह सृष्टि भी अणुओं का संयोग है और शरीर भी पंचतत्वों से निर्मित होता है । जीव इसी शरीर रूपी पिण्ड में भोक्ता रूप से निवास करता है । वह जन्म मरण के बन्धन में पड़ा हुआ सांसारिक दुखों को अनुभव करने के लिये अभिशप्त है ।

पाँच तत्व की झोपड़ी, आतम करै निवास ।
'बौखल' बाँटै बाँटना, स्वांसा मिलै अकास ।। (2)

उन्होंने अनेक स्थानों पर जीव का सम्बोधन आतम से किया है । संसार में रह कर वह जीव बाँटना बाँटता रहता है, सुख दुख का आदान प्रदान करता रहता है । इस भोग योनि में आकर वह अपने प्रारब्ध का भोग करता है, संचित कर्मों के दाय भाग को स्वीकार कर शुभ कर्मों से परलोक सुधारने का प्रयत्न करता है –

पाँच तत्व तन पींजरा, रूचि देही अनुरूप ।
जनम मरण अलि दैवी, विलखि प्राण भवकूप ।। (3)

यही उसकी नियति है कि इस दैवी विधान के आगे बिलखता हुआ भवकूप में पड़ा हुआ उससे मुक्तिकी कामना करता रहता है । बौखल के इस तत्व निरूपण में 'अद्वैत' की छाया स्थान स्थान पर लक्षित होती है । अद्वैत में ब्रह्म निर्विकार और अव्यय माना गया है, बौखल का मानना है –

अणु स्वभाव अलि शाश्वत, नहि परिवर्तन लेश ।
एक भेष ब्रह्माण्ड रचि, तनिक न हर्ष कलेश ।। (4)

नारायण अंजलि भाग I :–(1) दो. क्र.–3822 पृ.क्र.–292, (2) दो. क्र.–104 पृ.क्र.–8, (3) दो. क्र.–110 पृ.क्र.–8, (4) दो. क्र.–243 पृ.क्र.–17.

सृष्टि रचना उसकी 'एकोऽहं बहुस्याम' की अभिव्यक्ति होती है परन्तु स्वयं उसमें परिवर्तन का लेश भी नही आता वह अविकारी की भाँती हर्ष क्लेश से नितान्त रहित एक ही रूप में स्थित ब्रह्माण्ड रच कर स्वयं सबसे विलग रहता है ।

इस तत्व निरूपण में सांख्य की छाया भी दीख पड़ती है जहाँ पुरूष ही प्रधान माना गया है प्रकृति मात्र सहायिका होती है –

"पुरूष प्रकृति जीव जग, अलि सहयोग महान ।
एक अल्पज्ञ सो एक जड़, एक सर्वज्ञ प्रधान ।।" (1)

वह प्रधान पुरूष ही है जो सर्वज्ञ है, सर्वोत्तम है, शक्ति आधान है, शेष सब अल्पज्ञ व जड़ प्रकृति का विस्तार है । सांख्य के अनुसार पुरूष ही प्रधान व सर्वज्ञ होता है; परन्तु अद्वैत का तो चिन्तन ही दूसरा है –

परमाणु सो आतमा, सूक्ष्म जानि सुजान ।
इन सो सूक्ष्म साजना, बौखल रहित कलान ।। (2)

परब्रह्म की सूक्ष्मता इस पद में कितनी सुन्दरता से प्रदर्शित की है कवि ने कि सूक्ष्म रूप में व्यापक विभु की चैतन्य शक्ति अपरिवर्तित और अपरिच्छिन्न रूप से पदार्थ मात्र में प्रस्फुटित और विघटित होकर रूप एवं आकार का कारण बनती है । प्रकृति उस रूप को संवार कर कृतकृत्य होती है । जीव व आत्मा अति सूक्ष्म हैं परन्तु साजना – जो उनका स्वामी है, सर्जक है, नियंता है वह उस सबसे भी सूक्ष्म है । एक स्थान पर कवि ने जीव व ब्रह्म की सूक्ष्मता को अतयन्त भावभीने और उससे भी झीने आवरण के रूपक में प्रकट किया है – उनके द्वारा जीव की और से कहा गया हैं –

मैं पातर पिय मोसों पातर ।

'बौखल' ने प्राचीन दार्शनिकों की भाँति किसी प्रकार के मन, चित, आत्मा आदि में न तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर खोजा है और न ही विशिष्ट प्रकार की वर्गीकरण या चित्तादि के भेद किये हैं बल्कि जीव को कभी दुलनियां कभी जीव कभी मनुवा अथवा आत्मा कह कर अपनी बात कही हैं । जैसे उन्होंने कहा –

काया की करि चाकरी, कैसो जीव गँवार ।
आपन दिया बुझाय कै, ढूंढ़त फिरि उजियार ।। (3)

यहाँ जीव काया की माया में फँसा है इसीलिये शरीरधर्मो में सुख पाता रहता है । ह्रदय में तो मोह का अंधियारा भरा है और बाहर बाहर उस प्रकाश को अर्थात आत्म ज्ञान को खोजता फिरता है, कभी पूजा पाठ में, कभी जोग विराग में तो कभी धर्मस्थलों या तीर्थों आदि में ढूंढ़ता है ।

उनका जीव सम्बन्धी चिन्तन श्री शंकर के मायावाद से प्रभावित है । माया ने जो अपना प्रपञ्च फैला रखा है, उसमें जीव किस प्रकार से भ्रमित हुआ घूमता रहता है इसका वर्णन करते हुए कवि इस पद में माया बद्ध जीव की आकुल व्याकुल परन्तु अज्ञान दशा का बडा सजीव व स्पष्ट चित्र

नारायण अंजलि भाग I :–(1) दो. क्र.–121 पृ.क्र.–9,(2) दो. क्र.–161 पृ.क्र.–11,
(3) दो. क्र.–2265 पृ.क्र.–172.

अंकित करते हुए कहता है कि –

दुलनियाँ घरहि माँ बौरानी
पाँच देवरानी पचिस जेठानी, अधम भरावै पानी
नौं गगरी धरि माथे मग में, कहति कुलाछन वानी
सतरा सखियाँ तीन ननदियाँ, तृष्णा जाल महानी
चारों ससुर जनम के बैरी, तिन सेवा गरूवानी
नब्बे धेनु दूध दुहि धारि, कांजी मथत मथानी
कोदिन जनम अवस्था धूरि, छाछ सुसार नसानी
तू तो दुलहिन सुघर सयानी, काहे भई बिरानी
अपनो भरम आप ही मेटो, सुनि 'बौखल' कुललानी ।। (1)

इस पद में माया बद्ध जीव की आकुल व्याकुल परन्तु अनजान दशा का बड़ा सजीव वर्णन है । इस जीव का बहुत बड़ा परिवार है । सांख्य में 24 तत्व माने गये हैं एक ईश्वर को मिलाकर 25 तत्व हो जाते हैं । इन्हीं से जग का विस्तार होता है । जग के अन्तर्गत ही जीव रहता है अतः उसे भी उसी प्रकार के भार वहन करने होते हैं । 5 कर्मेन्द्रियाँ है जो जीव के पास देवरानियों की भाँति हैं व 25 जेठानियाँ (25 तत्व) उसे दबाए रखती हैं । 5 ज्ञानेन्द्रियाँ व मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये नौ मिलकर, नौ भारों के समान अपनी मनमानी करते रहते हैं या उसके ऊपर चढ़े रहते हैं । काम, क्रोध मद, लोभ रूपी चार दिक्पाल हैं जो उसके पिण्ड को भी (यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे) चारों ओर से घेर करं खड़े रहते हैं उनकी अवहेलना नहीं की जा सकती है । वह इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना तीन नाड़ियों (ननदों) की जटिल पकड़ के भीतर है । पंच महाभूत त्रिगुण होकर पन्द्रह और विद्या माया व अविद्या माया मिलकर सत्रह सहेलियों की भाँति उसे घेरे रहती हैं । नब्बे प्रकार की नस नाड़ियों से रक्त प्रवाहित होकर उसे जन्म मरण के बन्धन से नहीं मुक्त होने देते । इस पूरे जाल में पड़े पड़े माया वद्ध जीव को कोटि कोटि जन्म धारण करने पड़ते हैं और वह अपने कर्मो को मथानी की तरह मथता रहता है परन्तु हाथ में केवल छाछ (निस्सार वस्तु) ही आती है । कवि चेतावनी देता है कि अरे जीव । तू तो जन्म जन्मान्तर का भुक्तभोगी है, क्यों नही माया के इस जाल को स्वयं ही काट देता । तू इतने बड़े जाल से तभी छूट सकता है जब कुलालिन (कुम्हारिन) के समान चाक चला सारे घेरे को एकसार कर दे अर्थात इस माया मोह से छूटकर अपने परम आराध्य की ओर जाने का प्रयत्न कर । इसी भाव को इस दोहे में और प्रबलता से स्पष्ट किया गया है –

क्यों भटकावे जीवड़ा, बैठो आसन मारि ।
परखि पीव अपनाय अति, तजहु बरात अपारि ।। (2)

हे जीव ! आसन मारकर बैठने और जग में भरमाने से क्या लाभ है ? माया की इस अपार बरात को छोड़कर अपने प्रियतम की परख कर और उसे ही अपना ।

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–1083 पृ.क्र.–313,
नारायण अंजलि भाग I :–(2) दो. क्र.–2266 पृ.क्र.–172.

इन सभी उदाहरणों में जीव विषयक वर्णन में सांख्य और वेदान्त से मिलते जुलते भावों का प्रकाशन किया गया है, जिनमें तत्वों व माया के विविध रूपों का आख्यान मिलता है ।

अब इस उदाहरण में शंकर के शुद्ध अद्वैत सिद्धान्त का वर्णन आया है –

वे न मिले जिनकी मैं प्यारी
पूरब पच्छिम, उत्तर दक्षिन, चहुँ दिशि नैन पसारी
आर पार कछु सूझत नाही, छाई घोर अंधियारी
बलम हमार जनम के जोगी, सोवै गगन अटारी
अगणित नाच गुजरिया जग में, एकैं बिन्दु पसारी
मठ मन्दिर महजित माँ ढूढ़ौं, ढूंढ़ फिरी फुलवारी
गंगा जमुन त्रिवेणी ढूंढ़ौ, ढूंढ़ौ नगर मझारी
'बौखल' हारि मानि गिरि बैठी, बनि जोगन भिखियारी
भाव न बदलै बदलाये से, गहि हैं बाँह हमारी ।। (1)

अद्वैत में ब्रह्म जीव की एकता प्रतिपादित की गई है परन्तु दोनों में जो पार्थक्य है उसका कारण हैं कि 'ब्रह्म ही एक मात्र चिन्मय सत्ता है' इस ज्ञान के अभाव में ही जीव की सत्ता है । जीव ईश्वर की कल्पना उपासना के लिये करता हैं क्योंकि वह उसे दयासागर व अपार करूणा का आगार मानता है । ब्रह्म के दो रूप विश्व और विश्वातीत होते हैं । जब वह गुणों से संपन्न होता है तो विश्व होता हैं । इसी को सगुण ब्रह्म कहा गया है विश्वातीत होने पर वह निर्गुण होता है ।

इस पद में जीव विह्वल होकर उसी ब्रह्म के 'विश्व' रूप की खोज मे आतुर हो रहा है । जीव की वृत्तियाँ उभयमुखी होती है, यदि वे बहिर्मुखी होती हैं तो विषयों को प्रकाशित करती हैं और यदि अन्तर्मुखी होती हैं तो कर्ता को अभिव्यक्त करती हैं । जीव अपनी बहिर्मुखी वृत्ति से ब्रह्म के 'विश्व' रूप को देख रहा है । ब्रह्म से विलग होने का दुःख और उसे अपने आराध्य व प्राण्य रूप से पाने का प्रयत्न इस पद में लौकिक उपमानों व प्रतीकों द्वारा दर्शाया गया है । "वे न मिले जिनकी मै प्यारी" में शब्द 'वे' ब्रह्म के लिये है व 'मैं प्यारी' शब्द जीव का द्योतक है । जैसे सूर्य का प्रतिबिम्बित होना, यदि सूर्य का कोटि कोटि घटों के जल में प्रतिबिम्ब पड़ता है तो उस प्रतिबिम्ब और सूर्य में जो पार्थक्य हो जाता है वही पार्थक्य इस पद में जीव व ब्रह्म में प्रत्यक्ष हुआ है ।

जगत् – परब्रह्म की माया से विरचित यह जगत् प्रपञ्च कहलाता है । इस प्रपञ्च का अर्थ अति विस्तृत है इसमें माया मोह के कृत्रिम परन्तु लुभावने दृश्य जीव को बन्धन में निरन्तर बाँधते रहते हैं । आशा तृष्णा, भोगेच्छायें, ऐषणायें जगत का स्वरूप रचती हैं और जीव इनका लोभ संवरण नही कर पाता है फलतः वह भवकूप की व्यथाओं से निरंतर पीड़ित रहता है । कवि ने जगत् की रचना में प्रवृत्त तीन तत्वों को प्रमुख माना है, उन तीन विशिष्ट तत्वों को संयोग ही जगत् है –

सृष्टि रचना में लगे, अमर अगोचर तीन ।
पुरूष प्रकृति जीव जग, भिन्न संयोग प्रवीन ।। (2)

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–698 पृ.क्र.–200,
नारायण अंजलि भाग I :–(2) दो. क्र.–327 पृ.क्र.–23.

विशिष्ट और प्रवीण ये तीनों तत्व अपनी भिन्न उपस्थिति रखते हुये जब एक नैसर्गिक काम्यता की प्रतिपूर्ति में प्रवृत्त होते हैं, तब उनका संयोग संसार के प्रपञ्च की रचना करने में समर्थ होता है । स्वयं के विस्तार की कामना उस स्वयंभू कर्ता की सहज स्वाभाविक क्रीड़ा है जिसमें वह जीव को परिवेष्टित कर के अणुओं का संघटन करता है तब गुणों का विस्तार होता है, त्रिगुणात्मिका प्रकृति की लीला प्रारम्भ होती है— ज्ञानोदय होता है —

सृष्टि सरजि गुण ज्ञानमय, स्वयंभू करतार ।
जीव परमाणु वेष्टित, निज स्वभाव विस्तार ।। (1)

इस तीन प्रवीण तत्वों के अतिरिक्त भी अनेक तत्व हैं जिनसे इस जगत की रचना का विस्तार होता है । ये पंचमहाभूत हैं जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश — ये जगत के वेष्ठन भी है और अवयव भी । इसके अतिरिक्त सूर्य, सूर्य की शक्तियाँ — गायत्री, सावित्री, सविता आदि सभी जगत् की रचना में सहायक हैं ।

सवित सावित्री गायत्री, रवि रश्मि रचि लोक ।
अनिल अनल जल अवनितल, व्योम विभु अवलोक ।। (2)

कवि 'बौखल' कर्मणा कुछ भी रहे हों राजनीति में आकर उनके विचार किसी भी दिशा में प्रवर्तित हुये हों; परन्तु हिन्दू माइथालॉजी से संवर्द्धित संस्कार उनके चिन्तन की आधार शिलायें बनीं। भारतीय दर्शन और वैदिक वाङ्मय से उन्होंने इन तत्वों का चयन किया है जो आदर्श रूप में ग्रहण किये गये थे और जो सृष्टि संरचना के रहस्यों पर प्रकाश डालते हैं; परन्तु कवि ने अपने सामने के विषम समय को देखते हुये यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है जिसमें उन्होंने पाया कि ये पंच तत्व व वह भौतिक अवदान — जो मानव को प्रकृति ने दिया है, उस पर भी उसका स्वत्व नही हैं, वह उनका भी स्वतंत्रता से उपयोग नहीं कर सकता । पाँच तत्वों से मिल कर जो पिण्ड बनता है, उसमें जो चेतना आती है वह दशों द्वारों अर्थात कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा गृहीत होती हैं । परन्तु जीव की दशा वही रहती है अर्थात् वह उस चैतन्य से विकसित भाव बोध और जीवन को सुलभ बनाने की प्रक्रिया में सम्यक् रूप से भागीदार नहीं हो सकता, इसे ही कवि ने भौतिक जीवन में भी घटित होते देखा है —

पाँच तत्व रंग ऊपजै, दशों द्वारि समाय ।
एक रंग जग जीव का, जो नित मारा जाय ।। (3)

एक और दृष्टि कोण—जिसे कवि ने लिया तो भारतीय दर्शन से ही है परन्तु जिस में राम तत्व की प्रधानता अधिक है — उन्होंने इस सृष्टि के नियता व उसकी शक्ति को लौकिक अर्थो से परे जाकर गृहण किया है —

गोविन्द राधृ रसमय रसिक, रहस्यमयी रचि रास ।
बनी सहायक गोपिका, हो अलि विश्व विकास ।। (4)

नारायण अंजलि भाग I :—(1) दो. क्र.—325 पृ.क्र.—23,(2) दो. क्र.—326 पृ.क्र.—23, (3) दो. क्र.—139 पृ.क्र.—10,(4) दो. क्र.—309 पृ.क्र.—22.

'गोविन्द' अर्थात इन्द्रियों का स्वामी और उसकी परम शक्ति को 'राधृ' (संभवतः यह शब्द राधा रहा होगा, जो कवि की अपनी शैली में 'राधृ' बन गया होगा) का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है जिसका आशय है कि कवि स्वयं संसार से उसकी वृत्तियों से असंपृक्त है परन्तु एक राग मय जगत की उत्पत्ति के बारे में भी उसकी स्वीकृति है, जिसमें गोपिका वृन्द सहायक बनती हैं और राधा गोविन्द का महारास होता है । यह महारास ही परम तत्व परमात्मा से जीवात्माओं के मिलन की अनन्यतम चेष्टा का रूपायन होता है –

पुरूष परमाणु मध्य नित, आतम करे निवास ।
गोविन्द राधृ संयोग सो, गोलक होय निकास ।। (1)

कितना स्पष्ट संकेत है कि गोविन्द राधा के संयोग से ही इस 'गोलक' का विस्तार होता है जिसमें आत्मायें निवास करती हैं जो पुरूष और परमाणुओं के मध्य रहती हैं, 'परमाणु' अर्थात 'जीव' के संघटक ।

इन अणुओं परमाणु के संयोग से जो विराट् सृष्टि बनती है, उसे कवि 'गोवर्धन' नाम देते हैं जो दोनों अर्थो को प्रकट करता है –जहाँ इन्द्रियों के संपूर्ण विकास के लिये वृहत अवकाश होता है और दूसरे यह इतने बड़े विज्ञान के पहलुओं को अपने में समेटे है कि उसका कथन ही दुष्कर है –

गोवर्धन परमाणु जग, राधृ, गोपि, गोपाल ।
रहस्यमयी विज्ञान की, कौन कथै जयमाल ।। (2)

जयमाल शब्द का अर्थ यहाँ बड़ा सारगर्भित है, इसका अर्थ होता है – दो समानधर्मी स्पन्दनों का एकीकरण – विज्ञान में भी बड़े अद्भुत रहस्य होते हैं – समानधर्मी रहस्यों के भीतर होने वाले स्पन्दन व स्फुरण – इन्हें पहिचान कर उनकी साम्य व असाम्यावस्थाओं से सृष्टि रचना के अवयव ढूंढ़ निकालना यह विशद वर्णन कवि के भीतर आन्दोलित होने वाली प्रक्रिया से समझा जा सकता है ।

महाकवि 'बौखल' के काव्य में जगत् को अणु परमाणु सृचित तथा माया के मोहक जाल का रूपान्तरण माना गया है । ब्रह्म की ऊर्णनाभता यहाँ पर कारण रूप से सक्रिय होती है अर्थात मकड़े की क्रियाशीलता के समान ही ब्रह्म की क्रियाशीलता होती है । ब्रह्म का विवर्त भाव कारण रूप से जगत की सृष्टि करता है ।असंख्य अणु परमाणु संगठित होकर इसे परिणाम की दशा तक पहुंचाते हैं । दार्शनिक आधारों पर देखे तो यह जगत ब्रह्म की 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की इच्छा का परिणाम है । यह जीव के कर्मफल भोक्ता होने का आधार है जीव जगत में रहकर ही अपने कर्मफलों को भोगने का अवसर पाता है, तथा मुक्त होने की कामना भी इसी जगत में साकार होती है । जीव की जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति प्राप्त करने की अनन्य साधनायें भी यहीं पूरी होती हैं । यों जगत जीव के आवागमन का नियंत्रक है । उसकी रचना कवि के अनुसार –

सृष्टि रचना में लगे, अगम अगोचर तीन
प्रकृति, पुरूष, जीव, जग, भिन्न संजोग प्रवीण ।। (3)

नारायण अंजलि भाग I :–(1) दो. क्र.–163 पृ.क्र.–12,(2) दो. क्र.–311 पृ.क्र.–22, (3) दो. क्र.–327 पृ.क्र.–23.

प्रकृति और पुरूष इस जगत् के अगम और अगोचर अति सूक्ष्म तत्व हैं । जीव उनसे कुछ स्थूल होकर जगत को प्राणियों से भरता है । इस प्रकार इन तीन के भिन्न भिन्न रूपों से संयोग को जगत् का नाम दिया गया है ।

अणु स्वतंत्र निज परिधि रमि, यौगिक जगत बलीन ।
सत रज तम रचि पिण्ड नित, नाचहिं जीव प्रवीन ।। (1)

अणु परमाणुओं के संयोग और संगठन पर कवि का विशेष आग्रह रहा है । वे अपनी परिधि में निरन्तर घूमते रहते हैं और जब उनका संयोग इतना प्रबल हो जाता है कि वे एक सृष्टि की रचना कर सकें तब सत रज और तम इन तीन से युक्त प्रकृति उसकी सहायिका बन जाती है जिसमें प्रवीण (जन्म जन्मान्तर के सुख दुःखों की अनुभूति से बली) जीव क्रीड़ा करते हैं ।

इसके पश्चात् पंचमहाभूतों की क्रिया साधकता भी जगत की रचना में सहायक होती है —

परमाणु रचि रोचना, संयोगिक अणु विकाश
वायु तेज जल क्षिति सधी, कर्ता क्रिया आकाश ।। (2)

इन पंच महाभूतों में प्रत्येक में अन्य भूत का न्यूनाधिक अंश रहता है, जैसे आधा भाग प्रति भूत का अपना होता है शेष आधे भाग में चारों भूतों का आँठवा भाग सम्मिलित रहता है इस प्रकार चार आठवें भाग मिलकर आधे भाग के बराबर हो जाते हैं और प्रत्येक भूत के अपने आधे भाग में मिलकर उसे एक संपूर्ण भाग में निर्मित करते हैं । यही पंचमहाभूतों का रोचक संयोजन है और जगत् का कर्ता है ।

ब्रह्मतत्व व्यापक विमल, सकल विश्व संधान
भौतिक आध्यात्मिक दुई, सम परितोष विधान ।। (3)
जीव वपु योनी धरि, करी सृष्टी विस्तार
अलि स्वतंत्र विचरै जगत, 'बौखल' सिरजनहार ।। (4)

ब्रह्म के लिये व्यापक और विमल शब्दों का प्रयोग करके कवि यह बताना चाहता है कि नितान्त निर्लेख, अव्यक्त और निर्गुण ब्रह्म सृष्टि का विस्तार करके और जीव को शरीर रूपी योनि में रखकर स्वयं स्वंतत्र विचरण करता है । अर्थात उसकी स्थिति उसी पक्षी की भाँति हो जाती है जो अपने साथी पक्षी की भाँति जगत् के व्यवहार को तटस्थ दृष्टि से देखता रहता है जबकि साथी पक्षी उसी वृक्ष पर बैठा वृक्ष के फल का स्वाद लेता जाता है । ब्रह्म स्वयं सृष्टि के सौंदर्य का अनुभव नहीं करता । मनीषियों ने इस प्रक्रिया को ही भौतिक और आध्यात्मिक जगत का प्रकटीकरण बताया है ।

यह तो है सृष्टि के, जगत के उत्पन्न होने की प्रक्रिया और उसमें सम्मिलित तत्वों की व्याख्या, अब अगले पद में जगत् की नश्वरता व क्षण भंगुरता का वर्णन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।

जोगिया वा दिन की सुधि आवै
काल कराल मरोरै नटई, नीर गरे घहरावै
सत्तर कोटि कोठरिया भरमै, जीव ठौर नहिं पावै

नारायण अंजलि भाग I :—(1) दो. क्र.—218 पृ.क्र.—15,(2) दो. क्र.—329 पृ.क्र.—24,
(3) दो. क्र.—352 पृ.क्र.—25,(4) दो. क्र.—344 पृ.क्र.—25.

नाती पूत पतोहू बन्धु, अंसुवा नैन बहावै
मुख सों तनिक न भाखा फूटै, देखि सबै पछितावै
बिसरो सबइ गरूर गाँठी को, हितुवा हित दरशावै
सेजिया कलपि कलपि कहराई, दाँतन ओंढि चबावै
'बौखल' हँसि हँसि काल नेमि छिन, पकरि बाँह ले जावै
लखि चौरासी योनि पातकी, सगरी योनि दिखावै ।। (1)

यह एक परम्परागत भाव है जिसे सभी संतों, भक्तों, मुमूर्षो तथा मनीषियों ने अनुभूत सत्य के रूप में अभिव्यक्त किया है । शरीर कष्ट की अन्तिम परिणति नाश में ही होती है, कुटुम्ब कबीला जिन्हें माया के लेप से जोड़ा था, सब पछता कर रह जाते है । यही जगत की नश्वरता है ।

परन्तु इस अगले पद में कवि ने इस नश्वरता को भी अंतिम सत्य नहीं माना वरन् उसने जीव के इस जगत में आने व यहां से अकेला जाने के क्रम को भी परम सत्य के जानने का माध्यम बताया है, यह जगत यद्यपि क्षण भंगुर है तथापि जीव को ज्ञान प्राप्त करने के लिये संयोग भी वही देता है। कवि इस प्रकार जगत की नश्वरता से निराश व अवसाद ग्रस्त नहीं होता —

बाबा झूठी सबै कहानी, एक दिन करिहैं प्रान पयान
जाति पाँति की तोड़ उपाधी, करि मानव कल्याण
ऐसी लाय व्यवस्था जग में, जीवन जीव समाय
सबके बनो सनेही हिय सों, पातक पथ मत मान
पर उपकार करि जीवन भर, द्वन्द्व देत नित ज्ञान
ऋण देवै की त्यागि भावना, दुखियन दान महान
न्याय करहु जग त्यागि कष्ट मन, तब हो आत्मोत्थान
कंटकमय रपटीली घाटी, चलियो पथ पहिचान
अन्त स्वास निकसत नहि पोरा, पद पावत निरवान ।। (2)

इसी जगत को जीव के लिये परोपकार करने आत्मोत्थान करने और कटीली पथरीली राह में सजग होकर चलने की शिक्षा देने वाला भी माना गया है इसे मृत्यु न कह कर निरवान (निर्वाण का रूप) नाम देना अधिक सार्थक है ।

माया — माया के सम्बंध में 'बौखल' कवि का चिन्तन कुछ इस प्रकार जान पड़ता है कि माया दार्शनिकों व सन्त समुदाय द्वारा वर्णित उस माया से भिन्न है जो पर ब्रह्म की सहायिका या शक्ति बन कर सृष्टि की रचना में संलग्न होती है, इस रूप का वर्णन कवि के रचना संसार में कम मिलता है । कवि द्वारा प्रस्तुत माया लोभ, मोह, अज्ञान, प्रपञ्च, ठगी और आसुरी जैसी कुवृत्तियों की प्रतीक बन कर आई है जो संसार के प्राणियों को भरमाने वाली चतुरा 'अहेरिन' के सी छल — बल करती रहती है और जीव को सता — सता कर मारती है ।

विष गाँठी माया मधुर, मरि मरि जियत शरीर ।
ज्ञानी गोलक राग रत, योग वियोग गंभीर ।। (3)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—768 पृ.क्र.—221,(2) पद सं.— पृ.क्र.—
नारायण अंजलि भाग I :— (3) दो. क्र.—352 पृ.क्र.—25.

अर्थात् यह माया विष की गाँठ है जिसके भीतर मारक वस्तुयें भरी हैं । जीव इसके रूप में लुब्ध होकर बार–बार जीता और मरता रहता है अर्थात उसे आवागमन से भी छुटकारा नही मिलता । इस गोलक विश्व में इसके रहस्य को समझने वाले विरले ही ज्ञानवान है जो इस माया कृत रूपों – राग द्वेष के भँवर में नही पड़ते हैं और योग व वैराग्य के गंभीर चिन्तन में डूबकर इस विष की औषधि खोजते व इसका प्रतिकार करते रहते हैं । योग व वियोग जन्य सुख–दुःख पर गंभीर मंथन चिन्तन के परिणाम स्वरूप इस विष की गाँठ को खोलने व प्रभावहीन करने के प्रयास सतत् रूप से करते रहते हैं ।

कबीर ने माया को ठगिनी कहा हैं जो विश्व भर में राजा रंक सबके यहाँ अपना ठीहा जमा कर बैठ गई हैं । पंडित, मुल्ला, ज्ञानी कोई भी इसके जाल से बच नहीं सका । 'बौखल' भी कहते हैं –

माया मरै न पापिनी, पुण्य कहाँ से होय ।
खाय कचौरी सेतुवा, परखै परसै रोय ।। (1)

इस माया की प्रवृत्ति बड़ी पापिनी है, पाप कर्म के जितने भी आकर्षण रूप हैं सब से बाँध कर प्राणी को नचाती है, उसकी चेतना का ऐसा हरण होता है कि पुण्य के बारे में सोचने का अवसर ही निकल जाता है । उन्होंने कचौड़ी और सेतुवा (सत्तू) को संसार के स्वादिष्ट, मीठे व सीठे (बिना स्वाद के) व्यंजनों को प्रतीक बताते हुये कहा कि प्राणी इन्ही व्यंजनों के प्रलोभनों में फँसा, इन्हीं के स्वादों में रमा हुआ, प्रकारान्तर से ऐंद्रिक भोगों का रस लेता हुआ जीवन गँवा देता है परन्तु जब उनके भौतिक स्पर्श व उपभोग से आगे बढ़ उनकी परख करने का अवसर कभी भाग्य से मिलता हैं तब उनकी निस्सारता का अनुभव करके असहाय, विवश प्राणी के पास पछताने के अलावा कोई चारा नहीं रहता क्योंकि स्पर्श अर्थात् समीप से जानने का अवसर व परख–विशलेषण दोनो से माया की प्राणी से संलिप्तता प्रकट हो जाती है । कबीर ने भी कहा है –

"आसा तृषना ना मरी, मरि मरि गया सरीर ।।"

माया दूसरे प्रकार से भी प्राणी को मारती है, यहाँ उसके अस्त्र दूसरे हैं –

"माया ममता ग्रसित नित, अणु आयुध रति काम ।
साधन सृष्टी सौरि कक्ष, मन माली करै व्याम ।। (2)

रति और काम अर्थात सौंदर्य तथा कामनायें वे सशक्त अस्त्र हैं जिनसे भौतिक ऐषणाएं बढ़ती हैं और फिर उन्हीं से बिंध जाती हैं । सुन्दरता व वासनाओं का मोहक संसार है जिसमें प्राणी सुधबुध खोकर धँसता जाता है । इसका साधन बनता हैं सम्पूर्ण सौर जगत अथवा दूसरे शब्दों में वह सौर कक्ष (प्रसूति का कोठा) जहाँ प्राणी जन्म लेता है । वहीं से या गर्भनाल से छूटते ही प्राणी माया के जंजाल में लिपटने लगता है– महात्मा तुलसी की उक्ति से यह उक्ति कितना साम्य रखती है – "भूमि परत भा डाबर पानी, जिमि जीवहिं माया लपटानी" । मन रूपी नाली इस जंजाल की बेलियों को पनपने का अवसर देती रहती है । इस प्रकार 'अणु' जीव माया के 'रति काम' वाणों से बिंधता रहता हैं ।

नारायण अंजलि भाग I :–(1) दो. क्र.–1544 पृ.क्र.–117,(2) दो. क्र.–266 पृ.क्र.–19.

एक और रूपक से माया की विषधरता प्रकट की गई हैं —

बाउर नाचै हाटिया, शीश पिटारी नाग ।
डसै न पावै औषधी, आय मैर मुख झाग ।। (1)

इसी माया से संलिप्त जीव को संसार की हाट (बाजार) में नाचते हुये दिखाया गया हैं जिसके शीश पर सॉपों की पिटारी रखी हुई है । यदि सांप पिटारी से बाहर आकर डस ले तो फिर उसकी औषधि नहीं मिलती, उस प्राणी को 'मैर' (विष की लहरें) आने लगते हैं मुंह से झाग गिरने लगता है । भरा हाट ये संसार है, सिर पर नाग की पिटारी माया की गुंजलक है जिसमें फंसने पर जीव के उद्धार की कोई भी युक्ति नहीं बचती । दुःख — दुःख रग — रग में फैल जाने पर वह केवल मुक्ति के लिये छटपटाता रहता है । मैर बड़ा भयंकर होता है और मुंह से झाग छूटना उस असहनीय यंत्रणा के प्रतीक हैं जो सॉंप काटा ही जान पाता है । इस रूपक से कवि ने माया की निर्मम जकड़ का वर्णन किया है ।

महाकवि बौखल ने दार्शनिक परिभाषाओं के अतिरिक्त माया को व्यावहारिक रूप में देखा है । संसार के प्राणियों पर उसके द्वारा डाला गया प्रभाव यह बताता है कि वह अनेक प्रकार के मोहक रूप धारण करके सामान्य व्यक्ति से लेकर राजा, रंक, फकीर, यती, सन्यासी सब को भ्रमाती रहती है जिससे कोई भी अपने सद्स्वरूप को नहीं पहिचान पाता और इसी कारण वह इसी जग में जंजाल में उलझता सुलझता रहता है । इसके अनेक वेष और अनेक मार्ग हैं, जिन्हें इसका ही परिवार कहा है कवि ने —

मैया तोर विकट परिवारा
लड़िका लाँघे सात समुन्दर, मिठुवा करि जल खारा
तीन वृंद त्री मोहिनी मादक, तीन बूंद नौ धारा
बालम मोर बहुत बाउर अलि, हमका लागि छिनारा
बुधिया भगतिन बहुत सयानी, घास मांस चरि चारा
जिया न जारि जुलुम बहुतैं जनि, तापति लाग अँगारा
पाँच नाग पच्चीस नगिनियाँ, जिनके रारि अहारा
'बौखल' सोई समझि सयाने, धावैं दाबि किनारा ।। (2)

माया का बड़ा परिवार वर्णनातीत है, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष आदि ने सात समुद्र पार जाकर अर्थात पूरे ब्रह्माण्ड को घेर रखा हैं और सहज विश्वास, प्रेम प्रीती, दया ममता आदि के जो मीठे—मीठे अनुभव हैं उन्हें खारा या अविश्वसनीय बना दिया है । सत रज व तम के प्रभाव त्रिगुण होकर नव की संख्या में बाँटकर शरीर के नौ द्वारों पर पहरा दे रहे हैं, परन्तु आत्मा विकल हो रही है कि उसका प्रियतम तो बहुत सीधा सादा है पर इस माया के परिवार की मार से ही में व्याकुल हूँ और ऊपर से मुझ पर ही लांछन लगते हैं कि इन्द्रियाँ मेरे वश में नही हैं । जागतिक क्रिया कलापों का संधान करने वाली बुद्धि चतुरा है जो मन और चित्त को वश में करने का प्रयत्न

नारायण अंजलि भाग I :—(1) दो. क्र.—284 पृ.क्र.—20,
नारायण नैवेद्य :— (2) पद सं.—450 पृ.क्र.—310.

करती है । यह माया बहुत से जुल्म करती है उन जुल्मों का ताप मन प्राण सबको झुलसा देता है । अन्नमय कोष से लेकर आनन्दमय कोष तक पाँच स्थानों पर भी इसका अपनी सखियों सहित डेरा पड़ा हुआ है जिसके कारण वहाँ विप्लव जैसा मचा रहता हैं । कवि का कथन है कि वही इस संसार में गुणी है जो इस पूरे परिवार से किनारा करके निकल जावे । अर्थात माया का जो इतना बड़ा प्रपञ्च जाल फैला है उससे तभी बचा जा सकता है जब परमात्मा की कृपा हो ।

इन्ही भावों को दूसरे प्रकार से वर्णन करते हुये कवि ने कहा है कि जीव के ऊपर बड़े–बड़े संकट है जो माया के द्वारा ही उत्पन्न व प्रचारित किये गये है –

अद्‌भुत माया मोह पसारी
अणु संयोग वियोग अवस्था, जीव देखि दश द्वारी
रंग रूप मन बिम्ब अनेकों, त्रीगुण चुनरी कारी
काम क्रोध मद लोभ ईर्ष्या सिर अभिमान पिटारी
पाँच मिठाई हाट लगावै, बडो बनो ब्यौपारी
काल कराल न अवसर चूकै, छिन चढ़ि वक्ष विदारी
दाँव पेंच निर्मूल बावरे, पड़ी रहे तरवारी
शून्य नगर चल पिय परदेशी, पन्थ अनन्त दुसारी
बौखल भनत त्यागि भ्रम संशय भव प्रपञ्च अपारी ।। (1)

इस माया के अद्‌भुत प्रसार में जीव को अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ता है । वह अपनी दशों इन्द्रियों से चौकन्ना होकर यह अनुमान लगाता है कि माया कितने ही रूप सँवारे पर जब अणुओं का संयोग होगा तो सृष्टि का विस्तार और वियोग होने पर उसका लय होना ही है, फिर ये रंग बिरंगे प्रतिबिम्ब सब पर क्यों डालती रहती है । इसके वंशवर्ती तो वे क्रोध, काम आदि दुर्गुण हैं ही, अभिमान भी इसका ही परिणाम है जिससे सारी सृष्टि व्याकुल हो रहती है । पॉच तत्वों का पूतरा यह शरीर ऐसा बाबला हो रहा है कि इसके विस्तार के ही साधन साज सामान जुटाता रहता है पर भूल जाता है कि काल बड़ा कठोर है, जो क्षण भर में छाती पर चढ़कर इस काया को समाप्त कर देगा और सारी युक्तियाँ निष्फल धरी रह जायेगीं । इसलिये कवि का आत्मा के लिये संदेश हैं कि संसार के अनेकानेक मार्गो को जो माया द्वारा निर्मित है और मोहक है छोड़ कर शुद्ध बुद्ध परम चैतन्य तत्व को पाने का प्रयत्न कर ले, यहाँ किसी प्रकार के संशय में पड़ने से हानि ही होगी क्योंकि गीता में कहा गया है – कि 'संशयात्मा विनश्यति' । अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये यह परम आवश्यक है कि इस भव (जगत) के सारे प्रपञ्चों को तू विसार दे । इस माया के बंधन से छूटना ही आवागमन के द्वारों के द्वारो को रूद्ध करना हैं जिसके लिये जीव आकुल रहता है –

केहि विधि मिलै जनम छुटकारा
दूध पिये दुइ दॉत दिखावै, बिगवा बैठि कछारा
भौतिक माया मोह मयावी, विकट जाल विस्तारा
चिन्तादाह देह करि झॉझरि, चूसि चाम परिवारा
'बौखल' फँसों फाँसि जग सारो, किनको कहौं सहारा ।। (2)

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–685 पृ.क्र.–198, (2)पद सं.–1223 पृ.क्र.–353.

आवागमन का कष्ट जीव के लिये कितना दुखदायी होता है यह इस पद के रूप में कवि ने प्रदर्शित किया है — कछार किनारे को कहते हैं — भवसागर के किनारे पर बैठ कर वही प्रसन्न हो पाता है जिसे ज्ञान व भक्ति के दो घूंट अमृतपान के समान मिल गये हों पर यह सबको कैसे मिले माया का यह भौतिक प्रसार जो स्वाद युक्त होने के कारण विकट बन्धनों में जीव को जकड़े है, कैसे छूटे । इसी चिन्ता में ज्ञान प्राप्ति के यत्नशील प्राणी की काया सूख रही है अतः कवि कहता है कि इस माया के विस्तार में तो सारा जग फँसा है — सहारा कौन देगा अर्थात् परमात्मा की शरणागति के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं हैं ।

ब्रह्म — भारतीय दर्शनों में ब्रह्म पर विचार करते समय उसके प्रमुख आधार माने गये हैं — धर्म, आस्तिकता, शिवतत्व, वैराग्य और बौद्धिकता । सभी दर्शनों (नास्तिक दर्शनिों को छोड़कर) में धर्म को, जो जीवन को एक सुनिश्चित दिशा व स्थिरता देता है — प्रमुख स्थान दिया गया है । वह इन्द्रियों से परे अतीन्द्रिय आनंद का व्याख्याता है, बुद्धि और तर्क शक्ति से उस आनन्द की सर्वोपरिता सिद्ध करता है तथा स्थावर जंगम के अस्तित्व के लिये अनिवार्य मानता है — इस प्रकार धर्म को एक तरह से दर्शन की धुरी माना गया है । कवि 'बौखल' की ब्रह्म विषयक अवधारणा में धर्म के स्थान पर विज्ञान व ईश्वर के स्थान पर सामाजिक साम्य की भावना को प्रमुखता दी गई है । वहीं ईश्वर है जो यद्यपि अगम अगोचर है तथापि न्यायाधारित अव्यक्त क्रियाशीलता के रूप में विश्व में परिव्याप्त है । वह सृष्टि का नियंता है अवश्य परन्तु कवि ने उसे किसी वैष्णवी दृष्टि से न देखकर एक वैज्ञानिक व समाज शास्त्र की दृष्टि से देखा है । कहा जा सकता है कि उन पर पाश्चात्य दर्शन के सिद्धांतों का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है । उन्होंने ब्रह्म को अणु परमाणुओं का — जिनके संघटन से सृष्टि बनी नियामक अधिक माना है और उसे ही उन्होंने ब्रह्म, ईश्वर, साई, गोविन्द आदि कहा है । उनके ब्रह्म विचार में सैद्धान्तिक व तात्विक व्याख्यायें न हो कर उसे एक दयालु, कृपालु से पृथक होकर जीवन जीने वाली और उसके विरह में तड़पने वाली जीवात्माओं की कातर पुकार की भावुक अभिव्यक्तियाँ हैं —

अलि री, स्वतः जनम दरशात ।
माया, ब्रह्म, जीव, अविनासी, जनक जननि नहि तात ।
बीजा वृक्ष अक्ष नहिं दीखें, झरि तरूवर प्रति पात ।
विलगि लपटि अटपट ये घटना, करत घात प्रतिघात ।
लबरिन गायो भेद न पायो, छः ऋतु आवत जात ।
एकै ब्रह्म भोग जग भोगें, जाय स्वर्ग उपगात ।। (1)

इस पद में ब्रह्म को अजन्मा, अविनाशी और स्वयंभू रूप में कवि ने चित्रित किया है, जिसका बीज, तना, धुरी कुछ भी नहीं दीखता ऐसे वृक्ष का रूपक कवि ने दिया है जिसके पात झड़े हुये हैं । समय का चक्र अनवरत रूप से घूमता रहता है पर इस पर न कोई परिवर्तन लक्षित होता है न कोई घटना घटती हैं बहुत—बहुत रूप में श्रुतियों आदि ने इस का वर्णन करना चाहा पर क्या कोई कर

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—148 पृ.क्र.—44.

सका कवि उन्हें लबार झूठा कहता है । उस एक ही ब्रह्म का ऐश्वर्य समस्त सृष्टि भोगती रहती है और स्वर्ग का सुख भी पा लेती है ।

मेरे नैन बसो नित साई ।
सोवत जागत सपने निशिदिन, प्रतिमा देत दिखाई ।
शैल शिखर उद्यान विपिन बन, लोचन ललित जनाई ।
गंग जमुन तिरवेणी संगम, मान सरोवर धाई ।
उर्मिल नदी नाव अरु सागर, नैन रुचिर परछाई ।
ऋतु मेघ विधुत जल वृष्टी, नीर कमल सुघराई ।
ऋतु परिवर्तन प्रतिमा तेरी, नहि परिवर्तन पाई ।
मन मंदिर मौनी बनि बैठयो, सबको हिय अपनाई ।
कैसे कहाँ विलग तुम 'बौखल', तुम बिन कौन जियाई ।। (1)

इस 'साई' को ही कवि का ब्रह्म कहा जा सकता है जिसमें पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्ष, आकाश में समाने वाला समस्त ब्रह्माण्ड, संवत्सरों में विभाजित अखण्ड काल, मन के भीतर बसा हुआ पूजाभाव, शान्त आत्मा, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्थायें सब कुछ उसी की प्रतिमा हैं । कवि स्वयं को भी उसी की आभा मानकर उसी की ज्योति से अपनी प्राण ज्योति जगाये रख कर उसे जीवनाधार मानता हैं । निर्गुण और सद्गुण उपासना का संपुटित भाव व्यक्त करने वाला यह पद ब्रह्म जिज्ञासा का सर्वोत्तम उदाहरण है इसी प्रकार –

जग में तुम बिन कौन हमारो
बिनती करहुँ बाँह गहि मोरी, निर्बल प्राण पुकारो ।......
तोहिं निहारौं तोहि अपनायो, फिर क्यों मोहि बिसारो ।......
मारग बीच पड़ी अब बिलखौं, कन्टन मग दरशायो ।
बिजुरी कड़कि प्राण भय ब्यापैं, अही मही फुंकारो ।।...... (2)

अंशी से वियुक्त आत्मा की भवजाल में पड़ कर उससे छूटने की आर्तपुकार व अनन्य शरणागति का अन्यतम उदाहरण है यह पद ।

अगले पद में कवि ने अकर्ता ब्रह्म के कर्तृत्व के विभिन्न आयाम दिखाते हुये उसकी सर्वसामर्थ्य और स्वयं निर्वंशी होने पर भी पुरुषार्थ चतुष्टय का साधक रूप इस पद में दिखाया है –

सजनी लोकनीति उजिपारा ।
एकै ब्रह्म स्वतंत्र केन्द्र महि, अन्तरिक्ष विस्तारा ।
निर्वंशी है करि पुरुषारथ, पालहि पल परिवारा ।
अपनो कारज आप ही साधै, लेत न तनिक सहारा ।। (3)

इस प्रकार हम देखते है कि ब्रह्म विषयक पुरातन मान्यताओं को भी मानते हुये उसका दयालु कृपालु रूप ही कवि को परम श्रेयस्कर लगा है ।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–43 पृ.क्र.–13,(2) पद सं.–651 पृ.क्र.–188,
(3) पद सं.–448 पृ.क्र.–130.

साधना मार्ग — ब्रह्म की भाँति ही कवि 'बौखल' का साधना मार्ग भी प्रचलित अर्थों में प्रयुक्त होने वाला मार्ग नहीं हैं । जब उनके ब्रह्म 'राम' निर्बल के बल 'राम' हैं तो उनकी पूजा का मार्ग भी वैसा ही होगा । कवि की दृष्टि में निर्बल की परिभाषा में श्रमिक व शोषित आते हैं क्योंकि वे सब ओर से उपेक्षित होते हैं । पूंजीवाद उनका निरंतर शोषण करता रहता है अतः वह श्रमिक व शोषित ही सहायता व सहानुभूति के पात्र होते है, उनकी पूजा ही 'राम' की पूजा है । दूसरी ओर वे राम भी प्रेम के भूखे हैं, वे हृदय के भीतर ही वास करते हैं कहीं बाहर किसी ठौर ठिकाने में नहीं, अतः उन्हें ज्ञान वैराग्य की बातें करके या कर्मकाण्डीय अनुष्ठान करके नहीं पाया जा सकता —

मो हिरदै हरि बैठकें प्रेम बीज दिया बोय ।
एक दिन फूलै बेलरी, सींचि रही नित रोय ।। (1)

उन्हें प्रेम से ही पाया जा सकता है, इसके लिये त्यागा करना है, अपना तन मन सब लुटा देना है, आपा खो देना है, एक दिन उस प्रेम की बेल अवश्य फूलेगी जिसे आंसुओं से सींच कर बढ़ाया जा रहा है । ये आंसू भी बड़े जतन के होते है — ये प्रीति के साक्षी बनते हैं —

इस प्रीति में अकथनीय पीर होती है —

पीर अनोखी प्रीति की , जेहि हिय उपजी प्रीति ।
स्वाद चाखि रहि मौन मन, यही प्रीति की रीति ।। (2)

कवि ने अपनी साधना के लिये यही प्रेम पीर और मिलन विरह का साधन मार्ग चुना है, इसमें उसका मन ही सब कुछ है, वही पूजा है, वही साधक है—

मन मुल्ला मन पादरी, मन पंडित प्रधान ।
मन भरमै परि भाँवरी, मन की साजि दुकान ।। (3)

मन के द्वारा की गई साधना और मन की सच्ची पुकार ही उनके लिये उत्तम मार्ग है ईश्वर प्राप्ति का; और इसके साथ ही दीन दुर्बल की सेवा उसका कर्म साधना मार्ग हैं, वे सब वर्तमान काल में इतने दूषित और आडम्बरी हो गये हैं कि कवि ने उन सब की बखिया उधेड़ते हुये उन पर करारी व्यंग्य बौछारें की हैं । मंदिरों, आश्रम कहे जाने वाले अड्डों व तीर्थ स्थानों आदि में इन बाह्याचारों की कलई खुलती देखी है कवि ने —

बुढ़वा वैरागी भयो, अँखियन सूझत नाय ।
परम हंस हो स्वर्ग पथ, कखरी नारि दबाय ।। (4)

और इसी प्रकार साधारण भोले भाले व्यक्तियों, परिवारों को उनके वाग्जाल में फंसते देखा —

वाग्जालि फँसि बावरे, मुक्ति खोजि बजार ।
हाड़ चाम देही घरे, मुख रंग बैठि लिलार ।। (5)

अब महात्मा कबीर के शब्दों से समानता देखें —

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन कांचै नाचै वृथा, साँचे राँचै राम ।।

नारायण अंजलि भाग II :—(1)दो.क्र.—2150 पृ.क्र.—186,(2) दो. क्र.—1780 पृ.क्र.—138,
नारायण अंजलि भाग I :— (3)दो.क्र.—1524 पृ.क्र.—115,(4) दो. क्र.—477 पृ.क्र.—35,
(5)दो.क्र.—479 पृ.क्र.—35.

कवि की यह भी परख है कि –

सत्य साधि जो जन चलै, अंग न आवै कीच ।
वैरी मरि माटी मिलै, द्वारि रहै नित मीच ।। (1)

कर्मयोगी कवि की यह मान्यता है कि –

मन में माला फेरिये, हाथ करें कछु काज ।
दीन हीन हित कीजिये, 'बौखल' सुखी समाज ।। (2)

मन की माला, हाथ से काम, दीन दुर्बल की पक्षधरता और विषमता से परे सुखी समाज यही कबि 'बौखल' का साधना मार्ग है ।

ज्ञान मार्ग — 'बौखल' के काव्य में ज्ञान का पक्ष बहुत प्रबल है जिसमें आध्यात्मिक तथा रहस्यवाद की अनुभूतियों का प्राधान्य है । कवि ने एक जिज्ञासु साधक की भाँति विश्व के प्रपञ्च को शोधा है, प्रपञ्च के नियंता के जितने भी कारक हैं सब पर तात्विक दृष्टि से विचार किया है और तत्वों के अंतरंग बोध से अपनी काव्यात्मक ऊर्जा को वाणी दी है । असीम के दुर्गम व्यूह को भेद कर उनका समीम ज्ञान के क्षेत्र में विचरण करता है, नितान्त निर्विषयी होकर केवल उस ज्ञानजन्य आवेश का मार्गान्तरीकरण करता है और इस प्रकार उनकी कविता अनुभूति यों अपने की गहनता की अभिव्यक्ति बन जाती हैं । एक कूट पद में उनकी यह अनुभूति असीम से एकाकार हो जाने और फिर उस आनन्द के वर्णन में व्यक्त हुई है –

मै नैहर में रहस्य रचाऊँ
कोउ कनावर खाय कलेवा, जनि सुत सोहर गाऊँ
माया पुरखिन साजि बँधावा, आपै नाच नचाऊँ
दीपक प्रीति पतंग न तौरा, अदभुत ज्योति जराऊँ
जरि नव यौवन जानि जहानी, छिन छिन पावक पाऊँ
मढ़ि चाम मृदंग पखावज, ताल धमार बजाऊँ
'बौखल' नाना मति वरदायिनि, नित नव छवि दरशाऊँ
ठगितन बायि बजरिया सुंदर, सबहिन ठगी ठगाऊँ ।। (3)

कवि का 'नैहर' यह संसार है जहाँ उसकी कामना उसे भावविह्वलता की दशा की ओर ले जाती है जहाँ उसे प्रिय से संयोग होने के माधुर्य का आभास होने लगता है । भले ही कोई 'कनाउर' (कनावड़ा) या विरह की पीड़ा उसका कलेजा खाये ले रही हो पर वह तो उस रसदशा में है जहाँ पुत्र जन्म का सा उत्सव अर्थात कोमलतम प्रतीति हो रही हे । यद्यपि माया ने बड़े–बड़े साज सजा कर उसे रिझाने और प्रिय संयोग के आनन्द से विरत करने का प्रयत्न किया है पर कवि की चंगचढ़ी कामना उसकी सारी करतूतों को व्यर्थ किये दे रही हें । उसकी लौ तो पतिंगें की दीपक से प्रीति के समान है जो प्रिय के दर्शन के आलोक से और द्विगुणित हो उठी है । प्रिय को रिझाने की अनोखी रीति उसे यही बताती है कि शरीर के चाम से मृंदग बना कर उससे धमाल राग बजावे और सुरत

नारायण अंजलि भाग I :–(1)दो.क्र.–961 पृ.क्र.–72,(2) दो. क्र.–1584 पृ.क्र.–120,

नारायण नैवेद्य :–(1) पद सं.–749 पृ.क्र.–216.

की ऊँची अटारी चढ़ जावे । सारी इन्द्रियाँ अग जग के विविध खेल खेलती हैं जिससे इस नवोढ़ा (लुमरी) कामना की खिलंदड़ी उम्र बावली सी हुई जाती है लेकिन फिर भी अपने स्नेह, अपनी प्रियतम तक पहुँच की प्रतीति पर इतना विश्वास है कि वह माया की ठगी वाली बस्ती में रहकर भी उन्हें स्वयं ही ठगने में समर्थ हो जाती है और स्वयं ठगी से बची रहती है ।

यह सुन्दर कूट पद माया और जगत के प्रपञ्चों से नितान्त निर्लिप्त, निर्मल आत्मा के पारमात्मा के मिलन स्थल के लिये आरोहण क्रम का उत्कृष्ट उदाहरण है । एक और उदाहरण –

जल भरि जात बही रे गगरिया ।
दादुर दून मुरैला बोलै, सूनी देख नगरिया
झंझा झूमि झकोरै बलभर, दियना जरै अटरिया
कसकै पीर तीर नहि निकसै, आँधर मारि नजरिया
ऊसरि बरस बीज नहि जामै, रोवै गगन बदरिया
झट पट चाल चलै रपटीली, सँकरी सजी डगरिया
भूषण सबै उतार सुहागिन, भुइयाँ डारि पेटरिया
'बौखल' सगरो छाँड़ि भरोसो, भींगै तोरि पियरिया ।। (1)

कवि की बावली विरहानुभूति और तपस्विनी शृंगारिक स्पन्दनों की साधना जैसे इस पद में मूर्तिमती हो उठी हैं । कवि कहता है कि ओ सुहागिन जल भर ले, तेरी गगरी बही जा रही है । आत्मा को सम्बोधन है कि बस अब यही समय है कि तू अपने आस्वाद्य को प्राप्त कर ले, आराध्य को खोज ले, काल बड़ा निर्दयी है । कवि का आराध्य निर्गुनियाँ है और उस की पावन ज्योति से कवि का अन्तरतम जगमग होता रहता है, वह ज्योति उसकी धारणा शक्ति में बस चुकी है, इसी से उसे ब्रह्मरंध्र में आलोक दीखता है और अमन्द आनन्द का रस बहता रहता है । उसके प्रेम की डगर बहुत सँकरी है, जीव वहाँ चलना चाहता है पर पैर रपट रपट जाता है अर्थात वह प्राणपण से प्रिय तक पहुंचना चाहता है गिरता पड़ता किसी भी तरह से क्योंकि वह अन्धा उसे नजर मार रहा है । यहाँ अन्धा (आँधर) शब्द बड़ा सारगर्भित है वही प्रिय के निर्गुण, अगम, अगोचर, अकर्ता रूप की व्यंजना करता है । कवि का अन्तर विषयों से इतना विरागी हो चुका है कि जैसे ऊसर में वर्षा होने पर भी बीज नहीं जमता वैसे ही उसके भीतर अन्य कोई कामना ही नहीं जागती प्रलोभनों के बाद भी । वह तो माया मोह के झंझाझकोर के बाद भी उस अटारी पर चढ़ना चाहती है जहाँ निरन्तर दीया जल रहा है, अमंद लौ का दिया दिप दिप जल कर उसे अपनी ओर खींच रहा है । यह अटारी ही वह गगन गुहा है, जहाँ से कबीर को रस वर्षा होती दीखती है और अनहद नाद सुनाई पड़ता है । कवि का कहना है कि और सुहागिन तू अपने सब भूषण उतार दे और पोटली भूमि पर गिरा दे अर्थात इस आत्मा के ऊपर माया, मोह के जितने भी आवरण चढ़े हैं उन्हें तथा जीवन में जो भी जोड़ा गांठा है सब को त्याग दे तभी सारे भरोसों को छोड़ कर तेरा प्रियतम से मिलना होगा निर्मल आत्मा, समर्पित आत्मा ही ब्रह्म से साक्षात्कार कर सकती है ।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–333 पृ.क्र.–97.

दृष्टव्य है कि कवि की संपूर्ण चेतना का केन्द्र बिन्दु महातत्व से आत्मतत्व का सान्निध्य प्राप्त करना है, यही कारण है कि उनका ज्ञान, उनका योग व साधना सब कुछ इसी के चतुर्दिक घूमता रहता है, चाहे उसे रहस्यवाद कह लें, चाहे दर्शन अथवा मिलन विरह के चटकीले चित्र या अन्तर्वृत्तियों का प्रस्फुटीकरण –

दश द्वारे की झोपड़ी, धरि दिश दीप जराय ।
सबै स्वाद मिलि एक हो, अन्तहिं बीन समाय ।। (1)

यह शरीर ही दश द्वारों की झोपड़ी है, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ ही वे द्वार हैं जिनसे संसार यात्रा में शरीर का संचालन परिचालन होता है – इन दशों के भीतर दीप जलते है अर्थात इन्द्रियों का भावबोध उसे नित्य यह संदेश देता रहता है कि जब कालपाश इन सब को समेट कर बांध लेगा तो वह निर्मिति करने वाला तत्व महातत्वों में समाजायेगा ।

दीपक जरै निज मौज में, जरि पतंग पछिताय ।
काको कौन जरावहि, को कहि भेद बुझाय ।। (2)

"प्रीतिकर काहू सुख न लह्यो" की सुन्दर अभिव्यक्ति है यह दोहा – दीपक कभी शलभ से जलने के लिये नहीं कहता, जलना तो उसकी स्वाभाविक वृत्ति है । शलभ का दीपक पर प्राण त्यागना भी उसकी प्रेम की पराकाष्ठा है अतः इसमें किसी का दोष नही है कि क्या शलभ अपने प्राण त्याग के लिये दीपक को जलने के लिये प्रेरित करता है याा कि दीपक उसे अपने पास खींचता है प्राण विसर्जन के लिये; यह तो नेह के अन्तर में छिपी ज्वाला है जिससे दोनों जलते हैं ।

योग मार्ग – 'बौखल' का काव्य यद्यपि मुख्यतया विरह काव्य है तथापि योग मार्ग से भी सम्बंधित क्रियाओं व अनुभवों की अभिव्यक्ति के दर्शन स्थान–स्थान पर होते हैं । अष्टांग योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि आते हैं – यम पाँच व्रतों का पालन होता है जिनमें सत्य अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचार्य आते हैं – और नियम पाँच सद्‌गुणों का समूह कहलाता हैं – शौच, सन्तोष, तपस् स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान । प्राण शक्ति को बढ़ाने वाला अंग प्राणयाम होता है जिसमें श्वास प्रश्वास पर नियंत्रण किया जाता है ताकि चित्त की वृत्तियों का संयमन हो सके । कुछ उदाहरण –

1. <u>सन्तोष धन</u> संसार का सर्वोत्तम धन हैं, परन्तु मानव इसके विपरीत आचरण ही करता पाया जाता है और भौतिकता को ही सब कुछ मान बैठता है –

अगणित वाचाली सुभट, भौतिक भव सम्मान
जीवहिं जग सन्तोष धन, मिलिवो कठिन महान ।। (3)

इसी प्रकार <u>सत्य</u> की वास्तविकता जिसकी समझ में आ जाती है वह फिर अन्य अनुसन्धानों से सर्वथा विरत हो जाता है –

अनुशासन आसन गहे, रहे सजाति ध्यान
परखि सत्य बाउर भयो, अन्तहिं अनुसन्धान ।। (4)

नारायण अंजलि भाग I :–(1)दो.क्र.–4062 पृ.क्र.–311,(2) दो. क्र.–4068पृ.क्र.–311, (3)दो.क्र.–1299 पृ.क्र.–98,(4) दो. क्र.–1298पृ.क्र.–98.

सांच ज्ञान उपजो नहीं, झूठ ज्ञान पतियाय ।
पूछे आपै आप सो, कहो कौन दिशि जाय ।। (1)
सांचो सांचो ही रहै, बहुतक धूरि उड़ाय
मेघ श्याम छाये गगन, रवि शशि नांहि दिखाय ।। (2)

2. अहिंसा परमोधर्म की उक्ति का कवि भी समर्थक है परन्तु वह बने हुये अहिंसकों पर करारा व्यंग करता है –

पंडित फेकै कामरी, अंग लपेटे चीर ।
संग परोहन पारखी, हरै न हिय की पीर ।। (3)
पीरन पीर बढ़ाय नित, मूड़ मुड़ाय मुरीद ।
मक्का की जारत चले, बलि दे भेड़ फरीद ।। (4)

3. इसी प्रकार अपरिग्रह पर भी कवि ने चोट की है अर्थात कुछ लोग अपरिग्रह के नाम पर संचय के ऊपर संचय करते जाते हैं और अंत मे रोना ही हाथ आता है –

मन बनिया बैरी भयो, ओछी तौलै तौल
हाट घाट गहिरे गयो, नगर बजायो ढ़ोल ।। (5)
पाप पुन्य की पोटरी सिर धरि पथ नरियाय ।
उठि पावै नहि अंत लौ, पचये रोग पिराय ।। (6)

4. अस्तेय

हिय लोचन पिय देखती, इन नैनन की ओट ।
बिलखि मरौं कैसे तरौ, बौखल नित नव चोट ।। (7)
हिय जरि भौतिक भावना, भव्य भवन दरशाय ।
'बौखल' अपनी ठौर में, सोवै सेज बिछाय ।। (8)
हिये नयन लागी लगन, आवरण देखि उठाय ।
पाय पात्र नीको अति, वस्तु सार समाय ।। (9)
हम तो अपने घाट में, मारि रहे तन साट ।
संस्कार जग जीव के, दरशै तत्व विराट् ।। (10)

कवि के ह्रदय में, मन में, आत्मा में यह निश्चल विश्वास जमा हैं कि इस जग का कर्ता ईश्वर ही हैं और उस ईश्वर में उसकी प्रगाढ़ श्रद्धा, भक्ति एवं अविचल प्रेम है । इन दोहों में स्पष्ट होता है कि वह ईश्वर उसे कभी विराट् तत्व के रूप में, कभी प्रियतम के रूप में, कभी हीरे के रूप में और कभी सार वस्तु के रूप में सदा अनुभव होता रहता है । हर बार कवि यह स्वीकार करता है कि आवरण– जो उसे नयन ओट, भौतिकता और अपने घाट के प्रतीक के रूप में दीखता है जब तक उसे प्रयत्न पूर्वक उठा न दिया जायेगा, उस परमात्मा का दर्शन होना कठिन है । अस्तेय के प्रमाण हैं ये दोहे ।

नारायण अंजलि भाग II :–(1)दो.क्र.–807 पृ.क्र.–60,(2) दो. क्र.–904पृ.क्र.–68,
(7)दो.क्र.–287 पृ.क्र.–20,(8) दो. क्र.–255पृ.क्र.–18,
(9)दो.क्र.–258 पृ.क्र.–18,(10) दो. क्र.–300पृ.क्र.–21,
नारायण अंजलि भाग I :– (3)दो.क्र.–660 पृ.क्र.–49,(4) दो. क्र.–695पृ.क्र.–52,
(5)दो.क्र.–1504 पृ.क्र.–114,(8) दो. क्र.–657पृ.क्र.–49.

5. ब्रह्मचर्य – सांसारिक विषय भोगों के भोग में संलिप्त रह कर मनुष्य इस अपार तेज को देने वाले यम का पालन प्रायः नहीं कर पाते हैं; परन्तु कवि प्रकारान्तर से इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करता है । वह स्वयं आजीवन ब्रह्मचारी रहा अस्तु उसे लगता है कि सारी सृष्टि केवल भोजन, मैथुन व शयन के वशीभूत होकर अपने को कृतकृत्य व धन्य मानती है –

भोजन, मैथुन शयन अति, जीवन मरण सुहार ।
पाँचों पर पाटी प्रबल, अंकित अंक ललाट ।। (1)
भोजन मैथुन उच्चतम, बौखल लक्ष्य कुलीन ।
सुख सुविधा सहजै चहै, महल बजावै बीन ।। (2)
पंच सूत्र सिद्धान्त लै, जीव मरण जग लीन ।
भोजन मैथुन शयन नित, रक्षा आत्म धुरीन ।। (3)

6. शौच – मनसा वाचा कर्मणा शुद्ध व पवित्र रहना शौच नियम के अर्न्तगत आता है । काया का मल तो स्नान से छूटता है परन्तु मन व वाणी की शुचिता के लिये मनुष्य उतना सचेत नहीं रहता। कवि व्यंग्यपूर्वक कहता है –

मन दुर्गन्ध न मेलिया, रहो सुगन्ध लगाय ।
चाहे चहुँ दिशि चाँदना, दीपक हिये बुझाय ।। (4)
बिनु पारस परखे अलि, लोह परख किमि होय ।
सपने को साबुन कवै, मैल चुँदरिया धोय ।। (5)
क्यों न जरै तन जीवड़ा, नहिं आवै पिय पास ।
किनको हिय मंदिर अति, जिनको देत निवास ।। (6)

यह हृदय मंदिर तो ईश्वर का निवास स्थान हैं परन्तु जब हृदय ही निर्मल न रहेगा तो ईश्वर को तू खोजता ही रहेगा और तेरी काया व जीव जलते ही रहेंगे, अतः मानसिक, कायिक, वाचिक शौच ही सच्चा काम्य होता है । कवि बिहारी के शब्दों में –

तौं लौं या मन सदन में, हरि आवैं केहि बाट ।
निपट जटे जौ लौ लगे, खुलैं न कपट कपाट ।। (7)

7. तपस्– कवि की वाणी में व्यंग्य का पुट सर्वत्र दिखाई देता ह । जो विचार या क्रिया कलाप कवि को अपने लक्ष्य आत्म ज्ञान के विपरीत लगते हैं उनके झूठे, प्रपञ्ची, ठग, आडम्बर और कृत्रिमता से भरे रूपों को सबके सामने उजागर करके वे सत्य तत्व को सामने लाना चाहते हैं इसमें उनकी व्यंग्यात्मक शैली सहायक होती है तप योग का वरिष्ठ अंग हैं पर इसे विकृत कर देने वालों की वे भर्त्सना करते हैं –

आडम्बर आर्थिक अलि, ठगा ठगी को पंथ ।
चेरा चेरी चौरिया, बाउर बनो महंथ ।। (8)

नारायण अंजलि भाग I :– (1)दो.क्र.–203 पृ.क्र.–14,(2) दो. क्र.–2728पृ.क्र.–208, (3)दो.क्र.–154 पृ.क्र.–11,(4) दो. क्र.–1509पृ.क्र.–1144, (5)दो.क्र.–393 पृ.क्र.–28,(6) दो. क्र.–180पृ.क्र.–112, (7)दो.क्र.–1122 पृ.क्र.–84,(8) दो. क्र.–990पृ.क्र.–74.

साधू जनमै आप तें, नहि जनमाये जाँय ।
औरन को दुख दर्द दै, नर पिशाच मर जाँय ।।　　(1)
करै न काम न राम रटि, वाणी जाल बिछाय
मूठी एक पिसान हित, घर घर अलि छुछुवाय ।।　　(2)

8. ईश्वर प्रणिधान — अपने प्रिय परमात्मा के लिये "ना मै देखूं और को ना तोंहि देखन देउँ" की भावना से भरित है कवि का हृदय । उसे तो जग में, मग में धरा, आकाश में, विद्युत मेघ में, सर सरित में, आशय यह है कि संपूर्ण बह्माण्ड में उसी प्रिय के दर्शन होते रहते हैं और उसी से मिलन के लिये आकुल आत्मा तड़पती रहती हैं —

मन में मनमोहन बसे, वाणी राग रसधान ।
नेह निभाये जात जग, करिहै काह जहान ।।　　(3)
चाह एक ही सों अली, औरन सों ब्योपार ।
'बौखल' वे जन धन्य हैं, एकै पीव पियार ।।　　(4)
अंतरंग बहिरंग एक रंग जिमि रूचि तन्डुल मॉड ।
क्यों भव भटकै बावरे, इछुदण्ड़ गुड़ खॉड ।।　　(5)

9. धारण और ध्यान के रूपक तो संपूर्ण काव्य में समाये हुये हैं क्योंकि कवि की संपूर्ण चेतना एक ही केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रित है, वह है उसका प्रिय । उससे दूर न होने की कल्पना ही उसका संपूर्ण ध्यान उसकी निर्गुणिया छवि पर लगाए रहती है, और विरह की पीर में काया झुलसती रहती है अतः ध्यान भी कहीं अन्यत्र नहीं जा सकता । इस ध्यान और धारणा की अनुभूति जितनी गहन हुई है कवि को, उतना ही उनका सूक्ष्म और सशक्त रेखांकन कवि ने किया है; और इस प्रकार वह परम तत्व विषयक चिंतन के रहस्य की पर्तें खोलने में सक्षम हो गया है — "तत्र प्रत्येयेकतानता ध्यानम्" वस्तु का पूर्ण दर्शन ही ध्यान कहलाता है ।

पुरूष परमाणु मध्य नित, आतम करै विकास
गोविन्द राधृ संयोग सों, गोलक होय विकास ।।　　(6)

नाचै हिय में चटक जुन्हैया ।
अन्तरिक्ष नव नारि नवेली, रहि बजाय सहनइयाँ ।
वलशा लपटि अनेक पखेरू, माठा मथत मथइयाँ ।
नवल निकुञ्ज नैन रतनारे, नाचै राधृ कन्हैया ।
दै घूंघट जग नाचि बहुरिया, संग संग नाच गुसैयाँ ।
'बौखल' होय न बीच बचारो, प्रीतम डार गर बहियाँ ।।　　(7)

जिस के विरह में जिस नवेली नारी (आत्मा) का गात झुलसता रहता है उसे ही अपनी कल्पना के द्वारा अपने निकट अनुभव करके उसका रोम रोम पुलकित हो उठा है हृदय में मानो आलोक की

नारायण अंजलि भाग I :— (1)दो.क्र.—990 पृ.क्र.—74, (2) दो. क्र.—2271पृ.क्र.—173, (3)दो.क्र.—3636पृ.क्र.—278,(4) दो. क्र.—2029पृ.क्र.—154, (5)दो.क्र.—186 पृ.क्र.—13, (6) दो. क्र.—163पृ.क्र.—12,

नारायण नैवेद्य :— (7) पद सं.—877 पृ.क्र.—252.

वर्षा हो गई है, अनहदनाद का अविरल स्वर गूंज रहा है और उस आत्मा को जब परम तत्व के सन्निकट आने का यह अवसर मिला है तो उसके आह्लाद की सीमा नहीं रही, लगता है उसका प्रियतम स्वयं उसके गले में बाहें डालकर उसके साथ नाच रहा है । नृत्य आह्लाद की चरम अभिव्यक्ति होती है जो प्रकृति और पुरुष के मोहक संगम से आकार ले रही है । कवि इस अमृत स्वरूप अनुभूति से आत्मस्थ सा हो जाता है, यहाँ पर पिण्ड ब्रह्माण्ड का भेद समाप्त हो जाता है । यह योग की इस स्थिति का द्योतन है जहाँ 'माठा मथत मथइयाँ' की चक्रगति से कुंडलिनी शक्ति के जागरण और उस के ऊपर उठने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है और एक लपट के रूप में शक्ति ऊर्ध्वमुखी होती हुई परम पुरुष के आधान में लय हो जाती है । सायुज्य मोक्ष के सुख का यही रहस्य है ।

इसी प्रकार कुंडलिनी जागरण के बाद के अनेक अनुभवों को कवि ने अटपटी भाषा में व्यक्त किया हैं । कुंडलिनी मूलाधार चक्र में साँप की तरह कुंडली बाँध कर स्थित रहती है और जब योग की साधना के द्वारा साधक जब उसे ऊर्ध्वमुख की ओर उठाता है तो जिस प्रकार साँप कुंडली से उठ कर फन फटकारता हुआ लम्बाई में बढ़ते हुये सीधा खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार यह शक्ति भी लहराती हुई सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती हैं । इस समय इस शक्ति के ऊपर उठने से एक विस्फोट सा होता है जिसे साधक सूर्य द्वार में अनुभव करता है । शरीरस्थ सुषुम्ना नाड़ी में सूर्य द्वार स्थित हैं । श्री वाचस्पति मिश्र, हरीहरानन्द, विज्ञानभिक्षु तथा राघवनन्द सारस्वत आदि विद्वानों ने सुषुम्ना द्वार को ही सूर्य द्वार बताया है और उसी में संयम करने को कहा है । सुषुम्ना शरीर का सबसे अधिक सूक्ष्म तथा प्रकाशशील अंश है, सूर्य से सम्बन्ध होने के कारण इसे सूर्यद्वार कहा गया है । योगवार्तिक कार श्री विज्ञानभिक्षु ने मैत्रायणी उपनिषद् की "अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्य स्थितो हृदि" — इस उक्ति का प्रमाण दिया है ।

जब साधक या योगी सूक्ष्म ध्यानस्थ हो जाता है तब संयम अधिक सूक्ष्म हो जाने से सूर्य के अध्यात्म स्वरूप विषयक संयम द्वारा क्रमशः सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम लोकों — स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्य लोकों का भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

वाचस्पति का मत है कि जब वास्तव में कुंडलिनी जाग्रत हो जाने पर सुषुम्ना में सारे स्थूल प्राणदि प्रवेश कर जाते हैं तभी साधक को अनेक प्रकार से विचित्र अनुभव होने लगते हैं और वह बिना भाषा के व्यवस्थित प्रयोग द्वारा अटपटे प्रतीकों व रूपकों के प्रयोग से व्यक्त करने लगता है । 'बौखल' के काव्य में इस प्रकार के अनुभवों का विशाल भण्डार है । उन्होंने कुंडलिनी को प्रायः सीधे सीधे नाग ही कहा है —

सोय सपेरा महल में, नागिन नाग नचाय ।
'बौखल' हो निर्भीक चित, मालपुआ नित खाय ।। (1)

बरसि बदरिया बावरी, सोवत नाग जगाय ।
बिलम गई आनै दिसा, कौतुक कला दिखाय ।। (2)

नारायण अंजलि भाग I :— (1)दो.क्र.—1089 पृ.क्र.—82, (2) दो. क्र.—374पृ.क्र.—27.

छाई जग कारी अंधियारी

पाँच पचीस संग झूलि दुलनिया, पंच रंग चुन्दर प्यारी
लम्बो घूंघट नाग छिपाये, सन सन चलति बयारी
नब्बे पाँच पचास परोहन, आपै आप अहारी
त्रीगुण तीर बेधि भव राख्यो, वायस हँसत बिदारी
संशय डारि धोय कजरा सो, नारी जाल पसारी
हीरा मन माणिक सँग राजै, जौहरी जनम अनारी
'बौखल' सत्य असत्य समुझि चित, दीपक देखि उजारी ।। (1)

इन उदाहरणों में – सपेरे (परमात्मा) का महल (ब्रह्मरंघ्र) में सोना, साँप का फन उठाकर नाचना, बदरिया (अमृत रस) का कपाल गुहा में बरसना, मालपुआ का खाना (परमानन्द का स्वाद लेना) सोते नाग का जागना, लम्बे घूंघट (मूलाधार से विज्ञानचक्र तक की यात्रा) में नाग का छिपना, सन् सन् बयार का चलना (कुंडलिनी के सुषुम्ना में प्रवेश के समय की तीव्र हलचल), नारी जाल का पसरना (विविध वासनाओं के संयत्र का स्तंभीकरण) तथा दीपक का उजारा (परम तत्व के ज्ञान का प्रत्यक्ष होना) आदि ऐसे रूपक हैं जिनसे कवि की कुंडलिनी जागरण की अभिभूत कर देने वाली साधनात्मक अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण होता है । इसी प्रकार कवि ने इससे भी आगे बढ़ कर 'समाधि' जो योग की अंतिम दशा व अंतिम लक्ष्य प्राप्ति का साधन है, के विषय में भी अपने अनुभव संसार को प्रत्यक्ष किया है ।

10. <u>समाधि</u> – "जब ध्याता, ध्यात व ध्येय इन तीनों के बीच कोई पृथक भाव न रहे तभी समाधि सिद्ध होती है । इसमें परमात्मा के आनन्द स्वरूप ज्ञान मे ही आत्मा मग्न रहता है । जैसे मनुष्य जल में डुबकी मारकर थोड़ी देर भीतर ही रुके रह कर बाहर आता है वैसे ही जीवात्मा परमात्मा के बीच मे मग्न होकर बाहर आ जाता है ।" (2)

यह मुक्ति से ठीक पहिले की अवस्था है, यह आनन्दातिरेक की वह अवस्था है जिसमें मुमुक्ष का बाह्य जगत से नाता पूरी तरह से समाप्त हो जाता है । योग साधना का यही लक्ष्य है। इसमें आत्मा देश काल का संक्रमण करके अपने सहज, शाश्वत और पूर्ण रूप में आ जाती है । पुरुष अपनी नित्य स्थिति में पहुंच जाता है ।

समाधि के विषय में व्यास भाष्यम् में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है । एक सूत्र है "त्रयमेकत्र संयमः" (एक विषयाणि त्रीणि साधनानि संयमः इत्युच्यते, तदस्य त्रयस्य तान्त्रिकी परिभाषा संयमः इति)

योग की सिद्धियों में बार बार संयम शब्द आया है अर्थात धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों की एक ही शास्त्रीय परिभाषा है, संयम में धारणा, ध्यान व समाधि का बोध होता है ।

समाधि दो प्रकार की होती है संप्रज्ञात व असम्प्रज्ञात । संप्रज्ञात समाधि में प्रारंभ के पाँच यम नियमादि अंग तथा असम्प्रज्ञात में बाद में तीन–धारणा, ध्यान व समाधि अंग आते हैं । इन्हीं को अंतरंग व बहिरंग भी कहा गया है इन्हें ही आन्तरिक व बाह्य भी कहते हैं । इन दोनों समाधियों में

---

(1) दयानन्द शास्त्रार्थ संहितो

सूक्ष्म अन्तर यह है कि जहाँ संप्रज्ञात समाधि में चित्त वृत्ति एकाग्र होकर भी चित्त अपने कार्य में लगा रहता है वहीं असंप्रज्ञात स्थिति में चित्त अपना एकाग्रता विषयक पूरा कार्य करके कारण में लय हो जाता है । इस अवस्था को 'निर्बीज' कहा गया है जिसमें चित्तवृत्ति का कार्य पूर्णतः समाप्त हो जाता है और संस्कारों से भी निवृत्ति मिल जाती है । यहाँ आकर जो अंतरंग होते है वे भी बहिरंग हो जाते हैं क्योंकि चित्त यहाँ आकर उस अवस्था में पहुंच जाता है जहाँ उसे किसी भी साधन की आवश्यकता ही नहीं रहती अतः धारणा, ध्यान और समाधि के प्रेरक तत्व भी अनावश्यक हो जाते हैं । यही निर्बीज अवस्था है ।

अंतरंग फूलि बसन्त नित, बहिरंग धूलि झुराय ।
एक फूल अनुभूति उर, एक बजार बिकाय ।। (1)
अंतरंग सूक्ष्म साधना, बहिरंग रूप विशाल
रचि आकार विकार युत, मुख धरि काल कराल ।। (2)
अंतरंग अलि बहिरंग भयो, अंतरंग कारण मूल ।
पथ पंथी प्रज्ञा प्रबल, निज स्वभाव अनुकूल ।। (3)
अंतरंग बहिरंग एक रंग, ज्यों मेहदी को पात
कहत सुनत जग तार्किक, एक तत्व दिन रात ।। (4)

प्रथम दोहा निर्बीज अवस्था को बता रहा है जहाँ अंतरंग धारणा, ध्यान व समाधि में आकर बहिरंग हो जाता है अर्थात वसन्त में फूल फूलने की सार्थकता है पर असंप्रज्ञात समाधि में आकर उस फूलने की प्रक्रिया की समाप्ति हो जाती है अतः वही सूखकर धूल हो जाते हैं । संप्रज्ञात में जिन फूलों (वृत्तियों) का विकास होता रहा हैं (यम नियादि आगे बढ़कर अंतरंग अवस्था में चित्त को व्यवस्थित करते हैं) अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं है और वे अंतरंग भी बाहर कर दिये जाते हैं क्योंकि चित्त निर्विकार हो चुका होता है । दूसरे दोहों में भी अंतरंग को सूक्ष्म साधना बताया गया है जबकि बहिरंग अर्थात् यम नियमादि का विशाल रूप प्रदर्शित है ।

दुलनियाँ कब जइहौ पिय देस
पानी पवन न पावक पजरे, धरणि धरी ना शेष
रवि मंडल नहिं बाग बगीचा, सुन्दर सुखद सुवेश
त्रितापिन माया नहि ब्यापै, काल रहे बिन केश
सूनो दर्पण हो प्रतिबिम्बित, आड़ी कला विशेष
बारह मासी बगरि बसन्ता, जीवित कहत संदेश ।। (5)

यह पद समाधि अवस्था का उत्तम उदाहरण है — साधक का संसार की हर वस्तु — पाँच तत्व, त्रिताप, द्विविध माया आदि सबसे पूर्णतया नाता टूट गया है यहाँ तक कि देश काल की सीमा में बद्ध जीव का संचरण तक बिसर जाता है और काल — (जो सर्वशक्तिमान व अनतिक्रम्य बताया गया है) तक, वहाँ ठूंठ सा— बिनुकेश खड़ा रह जाता है । यह अनुभूति ऐसी 'आड़ी कला' है जिसमें सूने दर्पण

नारायण अंजलि भाग I :— (1)दो.क्र.—201 पृ.क्र.—14, (2) दो. क्र.—207पृ.क्र.—14,
(3)दो.क्र.—196 पृ.क्र.—14, (4) दो. क्र.—187पृ.क्र.—13,

नारायण नैवेद्य :— (5) पद सं.—1083 पृ.क्र.—313.

में ही प्रतिबिम्ब दीखता है अर्थात् नितान्त निर्मल चित्त में आत्मा का साक्षात्कार होने लगता है । बारह मासी वसन्त का बगरना तो उस परमानन्द की अनुभूति की अकह कहानी बन गया हे । दृष्टव्य है कि प्रतिभाज्ञान सम्पन्न साधक संकेतों की भाषा में ही अपनी बात कहता है ।

भक्ति मार्ग की आवश्यकता –

ज्ञानमार्ग की जटिल अवधारणाओं को स्वीकार करते हुये भी सभी संप्रदायों, संतों व साधकों ने भक्तिमार्ग की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है । भक्ति अन्तरतम का वह मधुर रस है जिसमें, जीव बिना किसी परिश्रम के, आपादमस्तक डूब कर परमात्मा की प्राप्ति का सुगम मार्ग पा जाता है । उसके लिये न किसी साधना की आवश्यकता है न ही शरीर को किसी ताप की आँच में झुलसाने की अनिवार्यता । भक्ति को तो ऐसा रत्न कहा गया है जिसकी आभा से अन्तरतम जगमग होता रहता है । न जहाँ दिया की आवश्यकता होती है न बाती की । परम प्रभु के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, समर्पण व शरणागति ही वे तत्व हैं जो प्रभु को भक्त की ओर खींच लाते हैं । सारी भक्तवत्सलता का निचोड़ यही कहा गया कि भगवान स्वयं भक्त के वश में रहते हैं – "हम भक्तन के भगत हमारे" ऐसी एक रूपता जो बना सके, उससे बढ़कर और कौनसी साधना हो सकती है ।

भारतीय वाङ्मय में ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी सदा से बहती रही है । भक्ति की धारा यहाँ कभी सूखी नहीं, कभी सघन कभी विरल रूप से भारतीय जीवन में इसकी प्रतिष्ठा सदैव अकुण्ठ भाव से बनी रही है । वैदिक काल में ज्ञान व भक्ति की धारायें साथ साथ चलती रहीं हैं । मंत्र दृष्टा ऋषियों ने भाव–विभोर होकर परम प्रकाश स्वरूप परमात्मा की स्तुति में मनोहरी ऋचाओं का प्रणयन किया और नितान्त सहज बालभाव से ईश्वर के प्रति समर्पित होते हुये शरणागति का अलभ्य लाभ प्राप्त किया । उपनिषद् काल में ज्ञान की प्रधानता के कारण भक्ति की धारा को थोड़ा सा मार्गान्तरण करना पड़ा और पुराण काल तक आते आते पुनः भक्ति की मन्दाकिनी का प्रवाह उद्दाम वेग से चल निकला ।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी भक्ति का स्थान कभी गौण नहीं होने पाया । अध्ययन की दृष्टि से जो काल विभाजन किया गया है उसमें भी भक्ति से शून्य कोई काल नहीं रहा अतः यह सिद्ध होता है कि साहित्य कोई भी रहा हो, सम्प्रदाय कोई भी हो, विचारधाराएँ कहीं से भी अनुप्रेषित रही हों, भक्ति की अनिवार्यता सभी ओर स्वीकार की गई । आचार्य शंकर जैसे ब्रह्मवेत्ता ने भी भक्ति के महत्त्व को स्वीकारा और स्वयं अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुये भी भक्ति रस में आकण्ठ डूब कर 'सौंदर्य लहरी' जैसा अनुपम स्तुति ग्रंथ लिखा । महाभारत काल में पहिले ही श्री कृष्ण गीता के माध्यम से अनन्य भक्ति का शंखनाद कर चुके थे । शरणागति का महत्व इसी से स्पष्ट होता है कि कृष्ण का कथन –"सर्वधर्मान् परित्यजय मामेकं शरणं व्रज" भक्त को उस स्थिति में पहुंचा देता है जहाँ उन्हें स्वयं उसकी रक्षा का भार उठाना पड़ता है – "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते, तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहम्" । भगवान का यह सहज आश्वासन भक्त के लिये ही होता है ।

भारतवर्ष के मध्य काल के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उस काल में चारों ओर से भक्ति की अविरल धारायें बह रही थीं और तत्कालीन समाज की परिस्थितियों में भक्ति जन मानस को सान्त्वना प्रदान करने का एकमात्र सम्बल बन रही थी । पूर्व से चैतन्यदेव, गुजरात से नरसी भगत, पश्चिम से गुरू नानक देव, दक्षिण से रामानन्द, वल्लभाचार्य आदि अनेक संत शिरोमणि तथा उत्तर भारत में कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के सम्मिलित प्रयत्नों ने भक्ति के उच्चतर सोपान स्थापित किये थे तथा सकाम व निष्काम भक्ति के अनेक आधान भारतवर्ष भर में खड़े हो गये थे ।

भक्ति की प्रमुखतः चार धारायें विकसित हो गई थी, निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति, रामाश्रयी शाखा तथा कृष्णाश्रयी शाखा । निर्गुण भक्ति में भी ज्ञानाश्रयी व प्रेमाश्रयी दो धारायें वह रही थी और सगुण में राम व कृष्ण को आराध्य मानकर भक्तों को संजीवनी दी जा रही थी । भारत के चारों कोनों में वैष्णव धर्म की ध्वजा को ऊँचा उठाये रखने के उद्देश्य से चार धामों की स्थापना की गई थी जो आज भी और भविष्य में भी भक्ति भावना के चार प्रमुख स्तम्भ बने हुये हैं । इस सबके साथ ही साथ निर्गुणोपासना को अपना लक्ष्य बनाकर सगुण भक्ति की शाखा प्रशाखाओं में प्रवेश कर गये आडम्बर और पाखण्ड को तोड़ने का प्रयास किया था और धर्म सम्प्रदायों में फैले वितण्डावाद का जोरदार खण्डन किया था, कवि 'बौखल' भी उसी परम्परा के अनुयायियों में से हैं । वे पूरी तरह से आस्तिक हैं, भारतीय परम्परा में वर्णित प्रख्यात नायकों राम–कृष्ण आदि के स्वरूप को उन्होंने परब्रह्म के रूप में ही स्वीकार कर उनकी वन्दना में अपनी सृजन धर्मिता का उपयोग किया है । उन्होंने इन नामों को केवल अपने परम प्रिय, अपने परमाराध्य 'पिय' के रूपक में बाँध कर अपनी आत्मा की आकुल पुकार को उन तक पहुंचाने का माध्यम बनाया है । उनकी भक्ति भावना सहज ही अपने 'निर्गुनिया पिय' को पाने की उत्कृट अभिलाषा की अभिव्यक्ति बनती है –

एक देश नहि रमत अलि, सर्व देश रमि कन्त ।
रूप बताये बहुत जन, खोजि लेइ सोइ सन्त ।। (1)

नाचहु नैन निकुञ्ज नित, पावन प्रीति सुकन्त ।
बिरही दृग बरसे सदा, बारह मास बसन्त ।। (2)

रंग रंगाये नहि चढ़ै, आपे रंग चढ़ि जाय ।
मन में उपजी बेलरी, फूलै फलै समाय ।। (3)

प्रेम ज्योति दीपक जरै अलि जगमग उर मौन ।
बहै बयार झकोर दै, मोहित हो मन भौन ।। (4)

जीव अंश ईश्वर अलि, याते लीला धाम ।
चाम पूतरा नीत नव, गौर बदन अरु श्याम ।। (5)

नारायण अंजलि भाग II :– (1)दो.क्र.–518 पृ.क्र.–38, (2) दो. क्र.–3233पृ.क्र.–249,
(3)दो.क्र.–408 पृ.क्र.–30,

नारायण अंजलि भाग I :– (5)दो.क्र.–3185 पृ.क्र.–242,(6) दो. क्र.–1862पृ.क्र.–141,

अध्याय – 8

श्री बौखल के काव्य में बहुज्ञता एवं सांस्कृतिक तत्व

अध्याय - 8

श्री बौखल के काव्य में बहुज्ञता एवं सांस्कृतिक तत्व

आदर्श उस सर्वथा निष्कलुष एवं निर्दोष कृति की अनुकृति होते हैं जिनकी सर्जना परम पिता परमात्मा जगत हिताय, अनश्वर, कालातीत और सार्वभौमिक सत्यों को लेकर करते हैं, जो सत्य कभी क्षीण नहीं होते जिनकी आभा से आलोकधर्मिता का अस्तित्व बना रहता है, जो शाश्वत हैं और सनातन काल से आचरणीय व अनुकरणीय बने चले आ रहे हैं । ये आदर्श श्रुतियों की अनुश्रुतियों जैसे होते है अतः इनकी पावनता का स्पर्श ही वस्तु, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व को पवित्र बना देता है । जब ये आदर्श व्यवहार में उतरते हैं तब विश्व के कोलाहल शान्त हो जाते हैं । समरसता के स्रोत फूट कर कल्मषमयी धरित्री को संतापों की भीषण ज्वाला से परे हटाकर उसके प्रत्यंगों को शीतलता देते हैं । ऐसे ही आदर्शों की अनुगूंज सरस्वती की वीणा से निकलती है तो सामगान छिड़ जाता है, कालिदास की वाणी से निःसृत होती है तो शकुन्तला का लावण्य बन जाता है, कलाकार की तूलिका में समाती है तो अजन्ता की पुतलियां बन जाती है और महाकवि 'बौखल' के अंतःस्तल में गूंजती है तो नारायण नैवेद्य बन जाता है ।

'ज्ञ' धातु से निष्पन्न शब्द **'ज्ञान'** का अर्थ होता है जानने योग्य और जो उसे धारण करता है वह ज्ञाता होता है । धारक ज्ञान से सम्बोधि प्राप्त करके उसे धारणा में स्थिर करता है तभी ज्ञान स्थायी होता है । फिर जिस जिस विषय से वह ज्ञान सम्बद्ध होता है उस ओर उसकी रश्मियाँ प्रक्षेपित होती हैं वह ज्ञान सम्बद्ध होता है और तब वे विषय उसी प्रकार पुनः प्रकाशित हो उठते हैं जैसे सूर्य की रश्मियॉ वस्तु पर पड़कर उसे प्रकाशित कर देती हैं । ज्ञान तो एक है, अखण्ड है, उसके खण्ड नहीं हो सकते; परन्तु वह विविध विषयानुवर्ती हो सकता है, यही कारण है कि कोई व्यक्ति अनेक विषयों में बहुज्ञ हो सकता है और कोई अल्पज्ञ ।

कवि, कलाकार की संवेदना जितनी वस्तु की अन्तर्ग्राहिणी होती है उतनी ही बाह्य विषयों से भी संबद्ध होती है अथवा उससे शीघ्र समायोजन कर सकती है । सड़क पर पड़े किसी विकलांग व्यक्ति को देश कर अलग अलग व्यक्तियों की अलग–अलग तरह की प्रतिक्रियायें होती है—एक उसे देखकर तुरन्त चल देता है तो दूसरा सहानुभूति प्रकट करने लगता है । तीसरा ऐसा भी उस भीड़ में होता है जो उसे उठाकर अस्पताल पहुँचा कर दवा का प्रबन्ध करा देता है । ऐसा व्यक्ति सामान्य से सामान्य हो सकता है; परन्तु उसके अन्तर में कवि की आत्मा निवास करती है । वस्तु से ऐसा ही तरल तादात्म्य मानव को कवि बनाता है । एक बगीचे में फैली हरियाली व पुष्पवाटिका को देखकर भी विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियायें देखने को मिलती है । सामान्यजन की अपेक्षा उस दृश्य से पुलकित हो कर उसे शब्दमाल में या कैनवास पर उतार देने वाला व्यक्ति कलाकार ही हो सकता है । जो अन्तर्बाह्य जगत के जितने अधिक विषयों को चयनित कर उनकी सूक्ष्मिता व स्थूलता दोनों से तादात्म्य स्थापित कर के उन्हें अपनी कल्पना, अनुभूति और कौशल से निखार देकर अभिव्यक्त कर सकता है वह उतना ही बहुज्ञ होता है ।

इस धरातल पर महाकवि 'बौखल' के काव्य में बहुज्ञता व सांस्कृतिक तत्वों का आंकलन उनके रचना कर्म के विभिन्न आयामों की छवियाँ उपस्थित करेगा, अतः इसी दृष्टि से उनके पद व दोहे दृष्टव्य हैं ।

पुस्तक के प्रारंभ में अपने 'दो शब्द' में श्री बौखल ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि उनके जीवन में सामाजिकता का महत्व वैयक्तिकता से कहीं अधिक है और उनका संपूर्ण जीवन परकाज ही है —

मातु पिता पैंया परौं, दीन्ह जनम पर काज
अपनावहु मोहि जानि निज, विनवहुँ सकल समाज ।। (1)

"जीवन के प्रारम्भिक क्षण से लेकर आज तक जो व्यवहार मुझे मिला है और मैंने जो व्यवहार जगत को दिया है - नारायण नैवेद्य उस आदान प्रदान का दर्पण है । उस पर पड़ने वाले प्रतिबिम्बों में यदि आपको आकृति के दर्शन और अपने स्व से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैं अपनी कृति को सार्थक मानूंगा ।" (2)

जन्म लेते ही शिशु का सम्बंध अपने परिवार से जुड़ता है । फिर ज्यों—ज्यों वह वयस्क होता है उसके संपर्कों का क्षेत्र बढ़ता जाता है, इस प्रकार सर्वप्रथम "लोक" से उसका तादात्म्य होता है । लोक धर्म व लोक रूचि का उसके व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है अतः उसका विचार क्षेत्र व चिन्तन जगत भी लोक धर्माधारित लोक रूचि के आधार पर विकसित होता है । कवि ने लोक व्यवहार में आने वाले अनुभवों के वृहदंश को आत्मसात करके उसे वाणी दी है तथा लोक रूचि के अनुसार आचरण करने से व उसके फलस्वरूप जो सामाजिक नियमन होता है उस विषय में अपनी धारणाओं को नीति वचन और सूक्तियों सा रूप देकर उन्हें अभिव्यक्ति दी है ।

ज्ञान अखण्ड और "एक" है पर वह भी विभिन्न विधाओं में प्रतिफलित होता है तथा जगन्नियन्ता ब्रह्म जो एकोहम् बहुस्याम् के द्वारा स्वयं व्याख्यायित हुआ है । "एक" की विराटता के प्रमाण हैं ये । इस एक के संबंध में श्री 'बौखल' की अनेक उक्तियाँ इस प्रकार की हैं जो अनेक क्षेत्रों में उनकी बहुज्ञता का दर्शन कराती हैं ।

एक ईश एकै जगत, एकै नियम विधान ।
अलि अचरज की बातियाँ, भाषा भिन्न बखान ।। (3)
एक देश नहिं रमत अलि, सर्व देश रमि कन्त ।
रूप बनाये बहुत जन, खोज लेइ सोइ सन्त ।। (4)
एकै मूरि विविध फल, एकै जात मसाल ।
एकै काल कराल जग, एकै गगन विशाल ।। (5)
एक ब्रह्म भाषा विलग, बिरथै खड़ों विवाद ।
मिसरी चाखैं सौ जनें, 'बौखल' एकै स्वाद ।। (6)

नारायण अंजलि भाग I :— (1)दो.क्र.—34 पृ.क्र.—3, (2)"दो शब्द"—नारायण दास बौखल
नारायण अंजलि भाग II:—(3)दो.क्र.—523 पृ.क्र.—39, (4) दो.क्र.—518 पृ.क्र.—38,
(5)दो.क्र.—403 पृ.क्र.—37, (6) दो.क्र.—530 पृ.क्र.—39.

एक बूंद खासो जहर, अमृत सिंधु समाय ।
एक बूंद जल के परे, अगनी नहीं बुझाय ।। (1)
एकै गांठी आद की, सीचें गांठि अनेक ।
भाव भरो जैसो हिरदे, वैसो उपजि विवेक ।। (2)
एकै रस अस स्वादड़ो, पीये न जीय अघाय ।
गगरी लै ढूंढ़न चली, डगरी गई हिराय ।। (3)

प्रथम के तीन दोहों में ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन है और उसके प्रति जो जिज्ञासा आदि मानव के अन्तस्तल में काल का अतिक्रमण करती हुई विद्यमान है उसका समाधान खोजने के प्रयत्नां में भारतीय वाङ्मय की अपरिमित ऊर्जा लगी हुई है । कभी उसे नेति नेति से व्यक्त किया गया है तो कभी निर्गुण सगुण के नामों से अभिहित किया गया – इन्हीं विशिष्टताओं को कवि ने भाषा भिन्न वखान कर कर प्रत्यक्ष किया है ।

वह 'सर्व देश रमने वाला कन्त' कितने रूपों में स्वयं को लक्षित करता है इसकी खोज करने वाली आकुलता की ही 'सन्तई' की कसौटी है । इस 'एक' मूरि (मूल) का ही प्रतिफल विविधताओं से भरा संसार है, एक ही 'मशाल' 'ज्योति अथवा तेज' विश्व को आलोकित करता है, निरवधि कराल काल --जिसमें इन विविधताओं को पोषण मिलता है लय मिलती है – भी एक ही है तथा गगन की व्याप्ति भी अछोर, अतंहीन और एक ही है ।

ब्रह्म सम्बन्धी व्यर्थ के वितण्डावाद को कवि कितनी सुघड़ उपमा दे कर व्यर्थ कर देता है कि मिश्री को चाहे सौ जन खायें चाहे हजार पर उसका स्वाद एक ही मिठास देता है सब को –ऐसा ही ब्रह्म को मानो ।

जल के ऊपर विष की करालता का आरोप कर के कवि ने कहा कि वही जल जब शीतल है तब एक बूंद अग्नि का शमन नहीं कर सकती किन्तु जब उसी एक बून्द में विष का हलाहल घुल जाता है तब वह अमृत के सागर को भी विषैला बना देती है ।

कवि की कृषि संबन्धी जानकारी देने वाला दोहा बताता है कि किस प्रकार एक गाँठ धरती में दबकर अपना विस्तार करती रहती है – इसी प्रकार ह्रदय की भावभूमि में एक विचार उत्पन्न होकर अनेक विचारों अथवा विवेक को जन्मता व विस्तारित करता रहता है ।

जिसने सत् चित् आन्नद स्वरूप ब्रह्म के माधुर्य का परमानन्द पान कर लिया उसके स्वाद से वह ऐसा अभिभूत हो जाता है कि फिर किसी अन्य रस की न इच्छा रह जाती है न ही मन तृप्त होता है । वारम्बार उस परमानन्द के सागर में डूबने की ऐसी बलवती लालसा उत्पन्न हो जाती है कि उसी की खोज में आत्मा तल्लीन हो जाती है और फिर वह मार्ग ,जहाँ से होकर इस स्थल तक आया जाता है, वहीं सामने से खो जाता है अर्थात माया ममता युक्त सांसारिकता का समूल लोप हो जाता है । गगरी लेकर उसकी खोज करना और फिर डगर का भूल जाना इसी तन्मय अवस्था का द्योतक है ।

नारायण अंजलि भाग II:–(1)दो.क्र.–507 पृ.क्र.–37, (4) दो.क्र.–508 पृ.क्र.–38, (5)दो.क्र.–498 पृ.क्र.–37.

योग के अंग प्रत्यंगों क्रियाओं, साधना और परिणामों से कवि भली भाँति परिचित है । साधन और साध्य के उचित समायोजन की संज्ञा साधना है । साधना साध्य व साधन की एक रूपता को प्रत्यक्ष करती है । ध्याता ध्यान और ध्येय की त्रिपुटी सृष्टि के रहस्य के साक्षात्कार की त्रिवेणी समन्वय के संगम से संभव होती है , इन तीनों का एकीकरण जब हो जाता है तब चित्त का चाञ्चल्य दूर हो जाता है व यम नियमादि से होते हुये साधक की साधना क्रमशः ऊर्ध्व सोपानों को पार करती हुई समाधि अवस्था तक ले जाती है । 'बौखल' इस मुग्ध अवस्था को दाम्पत्य भाव से रंजित करके कहते हैं —

देवर रसिया मोहे पिया से मिलाय दे
चित्त निरोध निर्वीज समाधि, सुरति सजन से लगाइ दे
गंग जमुन के बीच महलिया, सुख में अब तो सोवाइ दे
मिथ्या ज्ञान ध्यान भ्रम भारा, आवण तनिक उठाय दे
मेरो मिलै सजाती साजन, दुखर वियोग मिटाय दे
विनय करौं पइय्याँ तोरी लागों, सहज सनेही बनाय दे
सुगम पंथ जो शून्य गगन को, अविलम्बै दरशाय दे
'बौखल' परिवर्तन भव मूली, एकै रंग रंगाय दे
बाँह पकरि जस लायो जग माँ, बैसेहि मोहि बुलाय दे ।। (1)

इड़ा, पिंगला नाड़ियों के बीच में रहने वाली सुषुम्मा का जहाँ अन्त होता है वहीं से हो कर शून्य गगन (ब्रह्म) का विस्तार आरंभ होता है जहाँ पर साधक अपने प्राण वायु को रंध्र स्थिर करके गगन गुहा से झरने वाले रस का पान करता है — इसे ही निर्बीज समाधि कहा गया है, यहीं पहुंच कर साधक की साधना पूरी होती है । कितनी मनोहारी मनुहार है प्रिय से कि जैसे मुझे संसार में भेजा था उसी प्रकार बाँह का सहारा देकर मुझे अपने पास बुला ले । सायुज्य मोक्ष का उदाहरण है यह सुन्दर पद । साथ ही इस पद में लोकाचार का सुन्दर निर्वाह हुआ है — भाभी अपने देवर से अपने मन की सब बातें बता लेती है । प्रिय से मिलने की बात किन्ही वृद्ध सम्बन्धियों से नहीं कही जाती पर देवर भाभी के प्रगाढ़ प्रेम को जानता है अतः उसी से यह बात कही गई है । पद में आत्मा रूपी प्रियतम परमेश्वर रूपी पति से मिलाने का अनुरोध मन रूपी देवर से कर रही है ।

इसी प्रकार का एक पद और जिसमें योगांगों व उनके परिणामों का वर्णन है —

मर बैरी मोर बलम छुड़ाइस
मैं सोई कैवल्य सेजरिया बाँह पकरि जगाइस
पंच देवरानी पचिस जेठानी ननदी तीन बनाइस
दस द्वार नौ महलिया, सखियॉ तीन सोवाइस
न्याधि तीन वेदना दासी, अस परिवार रचाइस
परिवर्तन परिणामी बगिया, भेद अनन्त सजाइस

नारायण नैवेद्य :— पद सं.—1050 पृ.क्र.—303

भय फूले फले अनेकन, राग द्वेष गुण गाइस
लख चौरासी नगर डोलती, नरवश नगर न पाइस
'बौखल' पंथ बताव दुलहिनी, परि झाँखर परिपाइस ।। (1)

मोक्षकामी शरीर को संसार के भ्रम जाल में पड़ना पड़ा है — आत्मा कैवल्य का सुख लूट रही थी पर अविद्या माया ने सृष्टि रच कर प्राणियों को उसमें भरमा दिया है । ब्रह्माण्ड में जो है वही इस पिण्ड में भी है — इस लिये प्रकृति का पूरा विधान शरीर में आ जुड़ा है । पंचमहाभूत शरीर रच रहे हैं अतः वह देवरानी (कनिष्ठा) के समान जीवात्मा से व्यवहार करती हैं । पंचमहाभूतो की पॉच तन्मात्रायें — शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, पॉच ज्ञान की तथा कर्म की इन्द्रियाँ तथा पंच प्राण जेठानी (वरिष्ठा) का सा व्यवहार करके जीव को अपने वश में किये रहती हैं । तीनों प्रधान नाड़ियों — इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना ननदों की भाँति समस्त क्रिया कलापों पर अधिकार किये रहती हैं । दशों इन्द्रियाँ बाहर का भेद भीतर पहुंचाती हैं और छः चक्र व सूर्य, चन्द्र, नाड़ी एक प्राण से मिल कर तीन होकर चक्रों से मिलकर नौ स्थान बना देते हैं ।

जहाँ से जीवात्मा को मोक्ष द्वार से दूर हो जाना पड़ता है । सत, रज, तम तीन गुणों की सखियाँ निरन्तर शयन किये रहती हैं अर्थात् उनमें सौम्य अवस्था बनी रहती है अतः शरीर धर्म चलते रहते हैं । दैहिक, दैविक, व भौतिक तीन तापों से उत्पन्न वेदना दासी धर्म निभाती है अर्थात इन तापों की आज्ञानुसार चलकर शरीर को कष्ट देती रहती है । इस प्रकार का यह भव जाल युक्त, क्लेश संयुक्त जीवन जीवात्मा को भोगना पड़ता है, जिसमें भय भी हैं सत्य से दूर करने वाले भ्रम भी हैं और अनन्त भेद उपभेद भी हैं जिनकी पकड़ में फंस कर राग द्वेषादि के मोह उसे कष्ट देते रहते हैं । यह तो एक जीव की कष्ट गाथा है । जब कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में उसे भटकना पड़ता है और प्रत्येक योनि में इतने ही परिवर्तनों के परिणाम भोगने पड़ते हैं तब वह अपने नियत गन्तव्य को कहाँ से पा सकता है । 'बौखल' की तड़प ये है कि अरी दुलहिन (आत्मा) तू ही सही मार्ग बता — क्योंकि इस झाँखर की बाड़ी में मार्ग मिलना दुष्कर हो रहा है । तू परम प्रिय के सान्निध्य में रही है अतः इस सत्य मोक्ष मार्ग के अन्वेषण में सहायक बने । षट्चक्रों के विषय में उनका कथन — छः चक्रन की चाकरी करै आगरी नार । सहस्त्रदल कमल चाखि रस, अलि लखि पीव पहार । कहा गया है कि सत्य का मुख सुवर्ण से ढका हुआ हैं "हिरण्यमयेनपात्रेणो पहितं सत्यस्य मुखम्" कवि का इस विष में अनुभव है —

साँच जाँच सबही कहै — साँच न परखै कोय
रंग चढ़ै नहि दूसरों, श्यामवरण रंग होय ।। (2)
सत्य सफेदी सों मढ़ो धरम करीरनि डारि
राजनीति पखना दिये, उड़ि सत रंग पौहारि ।। (3)

परन्तु वास्तविकता यह है कि सत्यसंधान करने वाला सत्य को खोज ही लेता है क्योंकि सत्य का तेज दुर्निवार है । वह अपना आलोक फैला कर ही रहता है —

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.— पृ.क्र.—
नारायण अंजलि भाग I:—(2)दो.क्र.—967पृ.क्र.—73, (3) दो.क्र.—957 पृ.क्र.—72.

सॉंचे पै परदा नहीं, झूठे पाठ पहोर
एकै रंग अनेक रंग, आवै समुझि निचोर ।। (1)
सॉंच छिपाये नहिं छिपै, आँच दिखाये कॉंच
दुर्लभ वाकी औषधी, जानि गिरो निज खॉंच ।। (2)

'सादा' जीवन उच्च विचार' वाली कहावत को भी कवि ने अपनी वाणी दी है —

सादा जीवन राखिये, बढ़ै न व्याधि कलेश ।
चन्द सूर अपनी धुरी, एकै वरण हमेश ।। (3)
सत्य आपनी राह में, अविचल रहो पुकार
मीच मिलन नित होत है, जीवन मिलन अपार ।। (4)

माटी माहात्म्य — महाकवि 'बौखल' उस धरती और माटी की उपज हैं जहॉं जीवन को गति देने वाली अनन्त चैतन्य शक्तियॉं क्रियाशील रहती हैं, जहॉं धरती के अन्तस से समृद्धि के स्रोत फूटते हैं । जहॉं की माटी की गन्ध में रणबांकुरों के बलिदानी रक्त की महक समायी हुई है, जिसके रज कण स्वर्ण, रजत के मोहक सौंदर्य से सुषमा मंडित होते रहे हैं, ऐसी धरती व उसकी माटी के विषय में कवि की अद्भुत जानकारी है । माटी किस प्रकार एक कुम्भकार को सर्जक की गरिमा प्रदान करती है उसे निर्माता का गौरव पूर्ण पद विन्यस्त करती है और प्रकृति इसी माटी के सहारे विश्व वैचित्र्य रचने में समर्थ होती है उस के विषय में कवि का कथन है —

माटी जनमी पदमिनी, माटी राजा रंक
माटी मर्म जो जानता रहे सदा निःशंक ।। (5)
माटी कुंजै कामिनी माटी खेलनहार
माटी सो मुख लाइये, 'बौखल' कहे कुम्हार ।। (6)

बाबा माटी गढ़ मटियारो
राजा राव वजीर मुसद्दी, नाजिम दृग झलकारों
माटी साज सिंगार पुतरिया, माटी गीत उचारों
साजिन्दे सारंगी साजै, चामहि चौप नगारो
माटी पाह पहरूवा चिलकै, माटी माट तगारो
माटी ओर न हेरत माटी, माटी गढ़ै सुनारो
माटी महल सिंहासन साजो, माटी ऊँच दुवारो
माटी मिलि माटी मटियाये, माटी मोल बखारो
'बौखल' या ब्रह्माण्ड छबीलो, माटी भरो पिटारो ।। (7)

नारायण अंजलि भाग I:—(1)दो.क्र.—955पृ.क्र.—72, (2) दो.क्र.—956 पृ.क्र.—72,
(3)दो.क्र.—969पृ.क्र.—73, (4) दो.क्र.—960पृ.क्र.—72,
(5)दो.क्र.—1713पृ.क्र.—130, (6) दो.क्र.—1710 पृ.क्र.—130,

नारायण नैवेद्य :— (7) पद सं.—130 पृ.क्र.—40.

समूचा विश्व प्रपंच इसी एक माटी से होता है । राजाराव की पदवियाँ धारण करने वाले, राजा के दरबारी, कर्मचारी, गायक, वादक, विभिन्न श्रेणी के अधिकारी सभी का ठाठ यही माटी सजाती है । सिंहासन गढ़े जायेंगे तो भी माटी से उपजे वृक्षों का काठ ही काम आयेगा । ऊँचे–ऊँचे महल अटारी बनेंगे तो द्वार भी उन्हीं के काठ कपाटों से बन्द होंगे ।

अन्त में श्री 'बौखल' का सुन्दर निर्णय कि इस छबीले ब्रह्माण्ड की सभी छवियां प्रकारान्तर से माटी ही गढ़ती है और सारा विस्तार (पिटारा) माटी के ही प्रताप से बढ़ा है ।

कस्तूरी मृग का माया आवेष्टन कैसे उसे भरमाता रहता है – कहाँ–कहाँ उसके उच्छ्वास भ्रमण करते हैं, किस मरीचिका में उसे माटी की शरण जाना पड़ता है, इसका वर्णन इस दोहे में मिलता है –

मृग माटी को पूतरा, बन बगराय सुवास
केहि अचरज लागै नहीं, धँसि दलदल उस्वास ।। (1)

इस माटी के करतब तो वही जानता है जिसने इसके भीतर पैठ कर मर्म को जान लिया है । कबीर भी तो कह गये –

"माटी कहे कुम्हार से तू क्या रूंधे मोहि, एक दिन ऐसा होयगा में रूधूंगी तोहि ।"

गणित – यह सम्पूर्ण जगत एक विराट् शून्य–विंदु का विस्तार है । गणपति गणेश ने इस बहुआयामी विस्तार को अपने लघु पद संचालन से बाँधकर अपनी विभुता का परिचय दिया था । यह पौराणिक आख्यान एक उपमान हो सकता है विराटता को सीमाबद्ध करने का; परन्तु सत्य यही है कि शून्य का विस्तार ही सृष्टि की परिसीमा है । रेखा, वर्तुल, परिधि, व्यास आदि इसी सीमा को प्रत्यक्ष करने के माध्यम हैं । यही गणित के आधार हैं । प्रत्यक्ष गणित में बिन्दु का महत्व स्पष्ट है । अणु समूह जिनसे सृष्टि की रचना होती है, का गयात्मक गणिताधारित व्यवहार सृजन और संहार का नियन्ता होता है । बीज, अंक और रेखा अणु अथवा बिन्दु के विभिन्न परिणाम हैं, इनके प्रभावों के आकलन में मात्रा व परिमाण को जन्ममिलता है, गणना और मापन प्राणि मात्र की आवश्यकता, अस्तित्व संरक्षण और पोषण के लिये अनिवार्य हैं; जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहारों का नियमन भी गणित के द्वारा होता है । पग पग पर गणित व गणिताधारित क्रियाओं की अनिवार्यता सिद्ध है; अतः श्री 'बौखल' ने गणित संबन्धी विषयों के लिये ऐसे सूत्र दिये हैं जिनसे एक ओर तो प्रकृती की विराट् लीला, उसके गोपन रहस्यों का प्रकटीकरण होता है, दूसरी ओर मानव जीवनाधारित क्रियायें, जो उन पर अवलंबित होती हैं – प्रत्यक्ष होकर सामने आ जाती हैं –

प्रकृति ने अपनो गणित, राख्यो अपने हाथ ।
विन्दु व्यास में रमि रह्यो, भरमै मानव माथ ।। (2)
प्रकृति के रहस्य की, मानव खोजि महान
गुणा भाग करतै गयो, जीवै बीत जहान ।। (3)

नारायण अंजलि भाग I:–(1)दो.क्र.–1534पृ.क्र.–116, (2) दो.क्र.–122 पृ.क्र.–9, (3)दो.क्र.–160पृ.क्र.–11.

गुणा और भाग प्रकृति के वैभव विस्तार और संकुचन के प्रतिरूपों के नाम हैं । अणु परमाणु के सांयोगिक विस्तार से प्रकृति मानव जगत की संघटना करती है, गणित की भाषा में यह 'गुणा' है । चार प्रकार के जीवों—उद्‌भिज, अंडज, स्वेदज और स्तनपोषी तथा स्थावर जंगम की उत्पत्ति व पोषण इसी गुणाधारित क्रिया से होता है, यह प्रकृति की विस्तार लीला है । जब वह त्रिगुणात्मिका रूप से अपने सत् , रज व तम स्वरूपों को समेटने का उपक्रम करती है तो उसके अवयवों में संकुचन उत्पन्न होता है । वे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होते जाते हैं यहाँ 'भाग' का स्वरूप परिलक्षित होता है । इस प्रकार से गुणा भाग के अन्तर्गत सृष्टि के गोपन रहस्यों का उद्‌घाटन होता है । अब इसी को मानव जीवन पर घटित करके देखें तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक शरीरधारी की दैहिक और मानसिक आवश्यकतायें तथा उनकी प्रतिपूर्ति गुणनफल की ही परिणामवाची अवस्थायें हैं ।

आयुपर्यन्त मानव जीवन इस गुणा की कभी सार्थक, अनुकूलित और कभी विभ्रममयी प्रतिपत्तियों में उलझता सुलझता रहता है, कभी अनुकूल परिणाम आने पर प्रफुल्लित व प्रतिकूल परिणामों पर दुखी होकर जीवन यात्रा को आगे बढ़ाता रहता है । और 'भाग' उस अवस्था में मूर्तिमान होता है जब समस्त क्रियायें लय को प्राप्त होने लगती हैं । धन और ऋण इन्हीं गुणा व भाग के पूर्व रूप हैं जो परिमाण और मात्रा की वृद्धि एवं ह्रास के लिये अपने आधार में परिवर्तन करते हैं । इन्ही का परस्पर मिश्रण व विघटन जड़ चेतन के क्रिया व्यापारों के लिये उत्तरदायी होता है —

बुधिया बहुतै करें विचारा
अणु मिश्रण विघटन सनातन, गुण स्वभाव अनुसारा
वृहद व्यास अतुलगति वर्तुल, अंकुर विन्दु विस्तारा
संयोगिक वैयोगिक प्रक्रिया, नियति काल निवारा
अणु अनुसार व्यवस्थित रचना, प्रकृति नियम पसारा
एक अनेक रचित रवि मण्डल, विंदू सूत्र सँभारा
गणित अंक की जानि गुसइयाँ, माप तौल संसारा
चेतन जीव अणु सहचारी, अनुशासित करतारा
'बौखल' जड़ चेतन की प्रक्रिया, निराकार साकारा ।। (1)

विज्ञान — वर्तमान युग विज्ञान का युग है । वैज्ञानिक उपलिब्धियों ने आकाश पाताल को एक कर दिया है, जल, थल, वायु, आकाश को मथ कर मानव जीवन को सुगम व सुकर बना दिया है । पृथ्वी का आकार सूचनाओं के आधार पर छोटा कर दिया गया और दिन पर दिन विज्ञान का क्षेत्र बढ़ रहा है और विश्व मानव उसके हाथ का खिलौना बन गया है । स्वयं विज्ञान का आविष्कारक होकर भी उसके परिणाम कभी तो उसके हित में होते है और कभी—कभी संहारक ताण्डव का आखेट बनता है मानव जीवन — कवि कहता है —

नारायण नैवेद्य :— (7) पद सं.—918 पृ.क्र.—

तुम विजयी जग भये विज्ञानी
सृष्टि रचना मूल जितनी, कीन्ही पूर्ति प्रमाणी
नापि हिमाचल रच्यौ समुन्दर, नापि अकाश महानी
मुर्दा खोदि जियावन लागे, खोजि रसायन पानी
तौलि बटखरा विश्व अचम्भित, करि अताव मनमानी
उत्तरी दक्षिणी ध्रुव मझाइन, अपनो गाय गुण गानी
विजय माल मानो मलियागिरी, पवनै सर्व गन्धानी
'बौखल' इतनो रोपि बखेड़ा, मूठी खाय पिसानी
प्रकृति कहुँ अँचार उघारै, जीवन अकथ नसानी ।। (1)

फिर भी विज्ञान की मानव जीवन के लिये महत्ता को कवि ने स्वीकारा है क्योंकि जटिलतम जीवन की समस्यायें विज्ञान की सहायता के बिना नहीं सुलझ सकती, इसे शासक व शास्ता दोनो समझ रहे हैं तभी कवि ने उनकी सहायता का लोहा मानते हुये वैज्ञानिकों की वन्दना की है –

वैज्ञानिक उर जन अली, कहाँ लौं होंय सहाय
आज विश्व के शासकी, रहे समुझि समुझाय ।। (2)
पैंय्या लागौं विज्ञानी, एकै पथ अपनाव
एक सरित घट घाटिया, लगै किनारे नाव ।। (3)

खगोल विद्या – गोचर विश्व ब्रह्माण्ड के क्रियाकलाप तो सार्वजनीन और बोधगम्य होते हैं । धरती पर व्याप्त जीवन की कलायें बुद्धि और तर्क तथा अनुमान पर आधारित होकर अपना रहस्य खोलती रहतीं हैं और मानव की उद्यमशीलता इसके नेपथ्य में सदा झाँकती रहती है । अतः ये सब प्रत्यक्ष होकर सामने आती रहती हैं; परन्तु खगोलशास्त्र इतना प्रत्यक्ष नहीं होता, उसकी संकल्पना के लिये आकाशीय विज्ञान को जानने की आवश्यकता होती है । श्री 'बौखल' ने सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा मण्डल, आकाशगंगा आदि की स्थिति उनका पृथ्वी पर प्रक्षेपण तथा उनके परिणामों पर भी लेखनी चलायी है –

सूर सदा देदीप्य जग, वर्तुल गति दिन रैन ।
त्रिशत साठ अहरह गण, बारह राशि गुनेन् ।। (4)
शून्य व्योम अक्षर भुवन, विन्दु विराट निवास
प्राण प्रजा पति भंग पिय, प्रेरक काल विकास ।। (5)
उतनो साजन साजिये, जो साधे सधि जाय
दीपावलि निशि अमा जग, अँधियारा अँधियाय ।। (6)

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–921 पृ.क्र.–265,
नारायण अंजलि भाग I:–(2) दो.क्र.–4354पृ.क्र.–32, (3) दो.क्र.–21पृ.क्र.–2,
(4) दो.क्र.–2747पृ.क्र.–209, (5) दो.क्र.–297पृ.क्र.–21,
(6) दो.क्र.–2635पृ.क्र.–201.

अणु स्वतन्त्र अनादि नभ, अणु गण अनुशासित ग्राम
अन्तरिक्ष ब्रह्माण्ड रचि सौर वंश विश्राम।। (1)

अनेक धर्मो का ज्ञान — "धार्यते इति धर्म" के अनुसार जो धारण किया जाता है वह धर्म है। यह धर्म आत्मा में धारण किया जाता है, फलतः समस्त मानसिक और शारीरिक क्रियायें धर्म से परिवेष्ठित हो जाती हैं। यह धर्म जो धारणाधारित होता है जीवन के प्रत्येक अंग से जुड़ा व प्रत्येक अंश से आचरणीय होता है। धारणा साधना पीठ होती है, इससे वैषम्य निवारण व समत्व बुद्धि का विकास होता है। समत्व बुद्धि 'समत्व योग उच्यते की अवधारणा को पुष्ट करने से विकसित होती है। यही धर्म वह सोपान हे जिसके द्वारा इहलोक और परलोक दोनो सँवरते हैं। धर्मोरक्षति रक्षितः की यथार्थता धर्म की गतिशीलता युगापेक्षित साधनों के सम्यक् समीकरण से बनी रहती है। वह युगापेक्षित आचार उपचारों से परिवार निष्ठा को सन्तुलित और व्यवस्थित रखती है। इस सन्तुलन को दृढ़तासे व्यवस्थित रखने के लिये ही 'संभवाभि युगे युगे' की प्रक्रिया अवतारों में आरोपित होती रही है, इसी से युगधर्म की धार्यता की रक्षा होती है।

धर्म के विषय में यह भारतीय दृष्टिकोण है। शुद्ध, प्रबुद्ध और निश्छल धारणा ही धर्म को समष्टि—पूज्य और मान्य बनाती है, इसमें छल दंभ, अन्धत्व और सीमातीत अतिचारिता के लिये कहीं भी स्थान नहीं होता। इसीलिये भारतीय धर्म की अवधारणा बड़ी सीधी सादी, विवेकसम्मत है, मृदु आचरणीय है, द्वन्द्वातीत है, मानसिक उलझाव, जटिलता या विग्रह से नितान्त असंपृक्त है। यही कारण है कि भारतीय जीवन को 'धर्म प्राण' जीवन की संज्ञा दी जाती है और मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त धर्माधारित आचरणों से इसका परिपालन किया जाता है जिसमें समष्टि की भागीदारी अनिवार्य रूप से रहती है।

धार्मिक व्यवहार में इसीलिये गहराई आ जाती है कि नैतिक आदेश को ईश्वरीय आदेश मान लिया जाता है और ईश्वरीय आदेश मान लेने पर कर्तव्य पालन करने में उत्प्रेरणा मिलने लगती है और कर्तव्य पालन सहज हो जाता है। परन्तु यदि हम धार्मिक उत्प्रेरणा की मदद न ले तो कर्तव्य पालन करने में पाशविक वृत्तियों और प्रलोभनों के द्वारा बाधायें उत्पन्न होने लगती हैं।

धर्म प्रेरणा के आ जाने पर संपूर्ण विश्व सीयराममय मालूम देता है और इसीलिये धर्मों के द्वारा विश्व सौहार्द संभव हो जाता है। अतः धार्मिक व्यवहार में संपूर्ण व्यक्तित्व की आबद्धता पाई जाती है। चूंकि संपूर्ण व्यक्तित्व धार्मिक व्यवहार में सक्रिय होता है इसलिये धार्मिक व्यवहार में प्रबलता एवं सबलता पाई जाती है। इसीलिये धार्मिक व्यवहार को ही समष्टि पूर्ण तथा सर्वागंपूर्ण कहा जाता है।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर धर्म की परिभाषा निम्नलिखित रूप से की जा सकती है —

"धर्म वह सर्वागं पूर्ण अभिवृत्ति है जो किसी समाज समादृत आदर्शपूर्ण विषय के प्रति आत्मसमर्पण एवं अन्तर्बद्धता के हेतु व्यक्ति को संपूर्ण जगत के प्रति अभिमुख करती है।" (2)

धर्म के सम्बन्ध में इतनी सटीक व्याख्या देने वाले डा. याकुब मसीह (पूर्व अध्यक्ष दर्शन विभाग मगध वि.वि. बोधगया)— भारतीय धर्म के मूल तत्वों से कितनी गहराई तक जुड़ कर उसे जीवन के लिये प्राणतत्व के समान मानते हैं, यह उनकी उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है।

नारायण अंजलि भाग II:—(1) दो.क्र.—3 पृ.क्र.—1, (2) डा. याकुब मसीह — 'समकालीन धर्मदर्शन'.

महाकवि 'बौखल' धर्म की इसी अवधारणा से संबुद्ध होते हैं । इसी पद्धति पर आधारित जीवन को आदर्श मानते हैं; परन्तु उन्हें क्षोभ तब होता है जब धर्म की इस सीधी अवधारणाा को मतमतान्तरों के जटिल जाल में उलझा कर जाति, वर्ण की व्यवस्थाओं के घेरे में बाँध कर फिर भी अनिवार्यतः उसका अविवेकपूर्ण पालन किया जाता है और इस प्रकार धर्म संकीर्णता की सीमाओं में आबद्ध हो जाता है और पारस्परिक सौहार्द के स्थान पर विद्वेष और असहष्णुिता को जन्म देता है । दुर्भाग्य से आज विश्व के पटल पर यही विकृत धर्म भावना फल फूल रही है तथा मानव मात्र विभाजित हो कर स्वयं अपने लिये ही अशान्ति के मार्ग का आवाहन कर रहा है । श्री 'बौखल' को अनेकानेक धर्मों के सिद्धांतों व व्यवहार की जानकारी है, सभी धर्मों के भीतर व्याप्त आदर्श, जो अनुकरणीय हैं — उनका पालन न होकर रूढ़िबद्धता के भीतर जब उनका कुपालन होता है तब 'बौखल' बड़ी ही खरी और बेलाग लपेट की भाषा में उनकी भर्त्सना करते हैं —

इनहु नहि जाना जग फानी
करि खतना एक श्रेणी थापी, इब्राहीम केनानी
राजद्रोह निर्वासन पायो, संग लै सारे रानी
पाई पनाह मिश्र में आई, अई चोखी मेहमानी
हब्बशी सत्ता हाजरा दाशी, इसमाइल सुत ब्यानी
ब्यायी बुढ़िया सारै रानी, इसराइल सुजानी
बुच्ची कीन हाजरा सौती, हुकुम यहोबा ज्ञानी
पिता पूत मिलि हुजरा राचो, भइ मक्का रजधानी
'बौखल' गुण अवगुण नहि जानै, ये इतिहास बखानी
हाशिम और उमंय्या जाये, जिनकी पीठ जुड़ानी
दुइनो लड़े इमामत के हित, पुत्र पौत्र बिलगानी
त्रीशत साठ देवता मक्का, इतने फिरका मानी
निज निज देव दै होम बलि सब, कोहउज सहदानी
पुत्र मोहम्मद मात आमना, पिता अब्दुल्ला दानी
पैगम्बर तुड़वाये देवता, धरों देव असमानी ।। (1)

हिन्दू धर्म की कर्मकाण्डों में उलझी और अंध विश्वास व रूढ़िवादिता से भरी देवी देवताओं की पूजा अर्चना पर भी कवि की तीखी प्रतिक्रियायें व्यक्त हुई हैं, जिस पोंगापन्थी में पड़कर देश की युवा शक्ति का क्षरण हो रहा है तथा धन का दुरुपयोग होता रहता है —

देवि मढ़िया मध्य बिरझानी
धूप दीप अगियारी मांगे, अजिया कै कुरबानी
गांजा, चिलम तपौना मांगै, बरुवा जूझी जहानी
नारियल निबुआ सात मिठाई, फुलवा महक महानी

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—590 पृ.क्र.—170.

मुर्गी अण्डा गेडुबा चेटुला, चढ़ि चढ़ाव मनमानी
लहँगा चुनरी चटक कंचुकी, बेंदिया भाल सुहानी
विधि सिंगार करि बैठि भवन में, हिंग्लाज महरानी
कला कुलीन कला धर देखों, अर्थ हरण हम जानी
'बौखल' पाथर प्रतिमा पथरी, सोन छत्र सिर वानी ।। (1)

श्री 'बौखल' की दृष्टि में इस प्रकार के हजारों हजार मठ मन्दिर बने हुये है जहां से अर्थ हरण की क्रिया अनवरत पूरी होती रहती है । एक व्यक्ति जो सामाजिक साम्य की चेतना लिये हुये है व्यर्थ के आडम्बरों में फँस कर क्षरण होती हुई देश की परिसंपत्ति पर कितनी तल्ख प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहा है – कि मठों मन्दिरों में प्रतिमा तो पाषाण की हैं परन्तु उसके शीश पर छत्र सोने का चढ़ा हुआ है । यह मनों सोना जो इस प्रकार छत्रों, चामरों, कनक शिखरों के रूप में अटा पड़ा है – यदि देश के व्यापार और अर्थ व्यवस्था के सन्तुलन में लगाया जाय तो जहाँ सामाजिक वर्ग वैषम्य और अर्थ वैषम्य समाप्त होगा वहीं देश की समृद्धि में भी वृद्धि होगी । श्री 'बौखल' के व्यंग्य का स्वर भी कितना तीखा होता है –

मुल्ला रब हलुआ अली, पंडित मोदक राम
मनसा वाचा कर्म रत, चर्चा आठों याम ।। (2)
मुल्ला सो मुल्ला मिलि, करैं बहुत बकवाद
भयो विलग पुनि पुनि मिलै, 'बौखल' भयो फिसाद ।। (3)

अन्त में कवि की चेतावनी कि इस धर्म धांधली में क्या रखा है – सब नश्वर है ।

मुल्ला मिलि माटी गयो, पंडित घाट जराय
कोई अमर नहिं बावरे, सबै तत्व रमि जाय ।। (4)

भारतीय मिथकों का ज्ञान – विश्व के किसी भी देश की साहित्यिक समृद्धि के पीछे उस देश, समाज और परिवेश के अतीत गौरव, ऐतिहासिकता, धर्म, दर्शन, पौराणिकता अथवा मिथकों तथा लोकमानस की विशिष्ट प्रवृत्तियों का समृद्ध योगदान रहता है । इतिहास मानव प्रगति का आधार होता है तथा प्रगति प्रेरणा पुञ्ज होती है, सर्जक इसी प्रेरणा से उपादान ग्रहण कर वर्तमान तथा भावी के लिये मधुराशि के वितरण में समर्थ होता है । इतिहास घटनाओं व सूचनाओं का संकलित पंजर मात्र नहीं होता वरन् उसमें घटनाओं के सूत्रधारकों के रूप में जिन सामान्य व विशिष्ट व्यक्तियों की कार्य सम्पदा संचित रहती है वही इतिहास के अवयव गढ़ने व उसमें रक्त मांस भरने का कार्य करती है । इतिहास में जहाँ भौतिकता का प्राधान्य होता है, पौराणिकता में महामानवों के भीतर के दैव–भाव की प्रतीति मुखर होती है । महापुरुषों की लोकयात्रा लोक कल्याणार्थ होती है अतः भारत के पौराणिक पुरुषों की गाथाओं से यहाँ का साहित्य अत्यन्त गौरवशाली, आदर्श व अनुकरणीय विभूति सम्पन्न हो गया है ।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–1229 पृ.क्र.–355.
नारायण अंजलि भाग I:–(2) दो.क्र.–1549 पृ.क्र.–117,(3) दो.क्र.–1724 पृ.क्र.–131,
(4) दो.क्र.–1723 पृ.क्र.–131.

श्री 'बौखल' की सृजनधर्मिता में इस अवदान को भी स्पष्ट देखा जा सकता है यद्यपि वे धार्मिक कर्मकाण्डीय जीवन पद्धति और उस पर आधारित विश्वासों, व्यवस्थाओं परिपाटियों आदि को मानने के सर्वथा विरूद्ध थे तथापि भारतीय जीवन के प्रकाश स्तम्भ स्वरूप मान्य महाकाव्यों और उनके वर्णित महामानवों के चरित्रों पर उनकी आस्था रही है । रामायण व महाभारत दोनों महाकाव्य तथा उनके उपजीवी अन्य ग्रन्थों में वर्णित कथाओं, उनके चरित्र नायकों तथा उनके द्वारा किये गये कार्यो, दी गई व्यवस्थाओं पर कवि का सकारात्मक दृष्टिकोण रहा है और उनकी स्वीकृति भी है । उन्होंने अनेक स्थानों पर इन पुराण पुरूषों, अवतारों की कथाओं से सम्बन्धित उल्लेख किये हैं, यद्यपि ये संदर्भ कवि की वैराग्य भावना के सम्पोषण में ही आये हैं –

जोगिया माटी मोह बखानो
नर नारायण पीर पैगम्बर, राम कृष्ण गुण खानी
गुरू गोरख दत्ता मुनि नारद, माटि अंग लपटानी
हनूमान गुण सागर साई, द्रोण भीष्म बलवानी
कौरव पाण्डव कंस अरू ऊधो, गोपी ग्वाल सुजानी
हरीचन्द सत वक्ता व्यासा, कवि कोविद बड़ ज्ञानी
विश्वामित्र वशिष्ठ अरू दशरथ, जनक भये निर्वाणी
मैत्रेयी गार्गी अनुसुइया, पद्मावत जग रानी
'बौखल' माटी सबै समाये, राजा करण सम दानी ।। (1)

केवल हिन्दू धर्म ग्रंथों के चरित्र नायकों के ही नही वरन मुस्लिम व ईसाई धर्मो के पुराण पुरूषों के भी अवदान को कवि ने मान्यता दी है, जो अवदान उन्होंने प्राणि मात्र के अपने अनुभवों के रूप में दिया था और इस प्रकार अपनी 'सर्वभूतहिते रताः' की कल्याणकारी छवि को अक्षुण्ण रखा था –

बाबा युगान्तर गुण गायो
राम कृष्ण सुकरात मुहम्मद, इब्राहीम जनायो
गौरव बौद्ध मछन्दर मूसा, ईसा राग सुनायो
चाणक्य शुक्र बिदुर मनु बेवत, चक्र पृथु पदपायो
रावण कंस प्रहलाद बालि, बलि हिरण्य कशिप सरसायो
हिरण्याक्ष अरू वराह वामन, वसुधा नापि नसायो
कपिल कणाद पंच मुख गौतम, व्यास वेद सरसायो
'बौखल' जग जाहिर जन जीवन, निज निज अनुभव गायो
बाँटत गये सबै प्राणिन को, जिन जितनो जग पायो ।। (2)

जैसा कि 'बौखल' के जीवन दर्शन से स्पष्ट होता है कि वे समाजवाद के पोषक थे और साम्राज्यवाद का सर्वथा त्याज्य मानकर ही उन्होंने वैयक्तिक चिन्तन और रचनाधर्मिता में आध्यात्मिक समाजवाद की पक्ष धरता को प्रमुख स्थान दिया है, उन्होंने इन पुराण गाथाओं और पुराण पुरूषों के

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–589 पृ. क्र.–170,(2) पद सं.–1047पृ. क्र.–303.

स्थान पर आये प्रसंगों से भी उसी समाजवद की अवधारणा को खोज निकाला है और दृष्टान्तों से सिद्ध किया है कि पारस्परिक सहयोग व मेल जोल अपनाने से ही समाज सुखी हो सकेगा –

जग माँ दुइ मारग मोरे भाई
एक राह रावण चलि जग में, राम राह अपनाई
एकै राह कंस दुर्योधन, एकै राह कन्हाई
एकै चहैं स्वदेश स्वतंत्रता, एक गुलाम बनाई
एक चहैं न्याय अनुशासित, सबकी होय भलाई
एक चाहैं सामन्तवाद हो, अन्तर्द्वन्द्व सवाई
एक समाजवाद चहि जग में, परिश्रमी सुख पाई
'बौखल' सबहि परस्पर मिलि जुल भेदभाव सुरझाई
मोरी समुझि सतत सेवकाई, सुखी परिवार इकाई ।। (1)

प्रकृति से तादात्म्य – श्री जय शंकर प्रसाद ने –

"हिमालय के आँगन में जिसे प्रथम किरणों का दे उपहार
प्रकृति ने हँस अभिनन्दन किया और पहिनाया हीरक हार' ।।

जैसी पंक्तियों से जिस भारत देश का अभिनंदन किया है उसके प्राकृतिक सौंदर्य ने किस सहृदय का मन नहीं मोह लिया । प्रकृति के जितने अद्भुत रूप इस देश में समय समय पर दिखाई देते है वैसे स्वरूपों का दर्शन विश्व के अन्यान्य देशों में दुर्लभ है । छः ऋतुओं के अनमोल उपहारों से धनी यह भारत की धरती किन–किन भंगिमाओं के साथ अपने सौंदर्य के निखार का दर्शन कराती है – कराती है – वर्णनातीत है ।

हिमालय से लेकर नीचे कन्या कुमारी तक सातों रंगों में रंगी रहने वाली इस धरती ने विधाता से अनुपम वरदान पाये हैं । शरद् की छिटकी चाँदनी में हिमालय पर्वत पर हिम की शुभ्रता से जिस आध्यात्मिक अनुभूति की अर्ध्वमुखी चेतना जागती है – मैदान में कल–कल छल–छल करती विशाल काय नदियों में मानो वह किलोल करने लगती है । नील गगन की छाया वक्ष पर समेटे इन नदियों के तीर पर फैली हरियाली अलसी, सरसों के फूलों की ओढ़नी ओढ़ कर जब हवा से अठखेलयां करती है तब अनायास ही श्री केदार नाथ अग्रवाल की पंक्ति–"वसन्ती हवा हूँ वसन्ती हवा" याद आने लगती हैं । पहाड़ों पर फूले लाल बुरांश व मैदानों के लाल गुड़हल धरती के माथे पर बिन्दी सी लगाते हैं । टेसू, गेंदा कजरौटी, गुलाब, कमल और न जाने कितने बेनामी फूलों की पीली, बैगनी, गुलाबी रंगत हरी साड़ी पर टंकी कामदानी जैसी लगती है । ऊषा संध्या की लाली, आषाढ़ की काली बदली, धारासार वर्षा वाले धूसर बादल और सबके ऊपर फागुनी गुलाल का चंदोवा – सब ओर रंग ही रंग । ऐसे रंगीले वेश वाले देश की प्रकृति भला किसका मन न मोह लेगी ।

यद्यपि श्री 'बौखल' ने अपने काव्य का विषय मुख्य रूप से श्रृंगार और विरह को बनाया है परन्तु उनकी कविता में उनकी चिन्ता का मुख्य विषय समाज, अर्थ व्यवस्था, उसकी विद्रूपता, दीन

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–1074 पृ. क्र.–310.

हीन दशा का चित्रण करना तथा पूंजीवाद, जनवाद, लोकतंत्र, शिक्षा पद्धति तथा राजनीति के छल छंद भरे चेहरे को उजागर करना है; इस सब के बाद भी उन्हें प्रकृति का मोह नहीं छोड़ सका । प्रकृति के सुन्दर रूपों के साथ साथ उन्हें सुन्दर बनाने वाले घटकों का भी उनको ज्ञान है । ऋतु परिवर्तन के साथ होने वाले परिवर्तनों का जीवन पर क्या प्रभाव होता है, वे प्रभाव कैसे परिलक्षित होते हैं, ग्रह नक्षत्रों की गतिमानता उनमें गति का स्फुरण कैसे उत्पन्न करती है – यह सब कवि के परिचय के क्षेत्र में है । वसन्त का आगमन कवि को मोह लेता है–

आयो वसन्त आयो वसन्त
कारी कोयलिया अम्बाडारिन, कूक रही मतवारी बन में
भाषा, भाव रस रसिक रसीले, थिरकिथिर कि पिय संग नाचि एकन्त
नाना रंग सुन्दर जलज जाल सर, वायु गन्ध उशीर अनन्दित
भौंर झौंर सुरभि सुमन सुचित चरिव, दौरि दिशायें तुरन्त
बारह राशी वर्ष भुंइ भरमी, अहरगण घुमि तीन सौ साठी
कर्क मकर दुइ रितु निखारैं, जीवन पाय सबै जग जन्तु
विविध वर्ण उपवन लहराई, विधि विधान मुदित मन प्राणी
'बौखल' निश्चित नियम मानसिक, योगानुशासित साधु सुसन्त–
आयो वसन्त आयो वसन्त (1)

यथेच्छ परिणाम उपयुक्त साधनों पर निर्भर करते हैं इस उक्ति को चरितार्थ करते हुये प्रकृति का वर्णन करते हुए कवि दूसरे पद में कहते हैं –

जीव जियत साधन अनुसारा ।
ज्यों–ज्यों सलिल सरोवर बाढ़ै, त्यों सरोज विस्तारा
जल विघटन मृणाल विवशता, पंकल धँसति दरारा
कमल कुमुदिनि मुकुलित वेशा, रवि शशि पाय उजारा
मयुर समाज मगन मन बाचै, निरखि व्योम घन कारा
कंकिनि कूक वसन्त बनाये, भौंर निकुंज बिहारा
स्वाती बरसि रैनि अंधियारी, चातक चोंच पसारा ।
'बौखल' जितनो साधन पावै, उतनो बढ़त विचारा
अपनी धुरी नियोजित निशिदिन, फूलि फले संसार ।। (2)

उपर्युक्त पद की ऊपर की पंक्तियाँ अनायास इस दोहे की याद दिला देती हैं –

बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ जाये
घटत घटत सु न फिर घटै, बरू समूल कुम्हलाय ।। (3)

'बरू समूल कुम्हलाय' और पंकल धँसति दरारा में कितना साम्य है ।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–37 पृ. क्र.–12, (2) पद सं.–944 पृ. क्र.–271, (3)

हरा बिरवा किस प्रकार हरा रहता है और किस प्रकार झुलस जाता है इसे प्रेम की उपस्थिति और तर्क की तुषारता से स्पष्ट किया गया है –

'बौखल' बिरवा प्रेम को, रहे हरो दिन रात
झुलसै तर्क तुषार सो, लोचन लहि बरसात ।।

नीति व आचार व्यवहार – मानव जीवन की सफलता के लिये मानव व मानव समूह द्वारा सत् की खोज के लिये आविष्कृत, बारम्बार प्रयोग में आकर खरे उतरे परीक्षित तथा सबके द्वारा समभाव से सम्यक् रूप से स्वीकृत कुछ मूलभूत तथ्यों को जो देश, काल, व्यक्ति की सीमा में न बंधे रहें तथा सीमा से बाहर जा कर अपनी निजता न खो दें – ऐसे सार्वभौम सिद्धांतों को "नीति" कहा जाता है । यह नीति ही एक प्रकार से जीवन की नियामक होती है चाहे वह व्यक्तिगत जीवन हो अथवा राष्ट्रीय जीवन; अतः संयम और अनुशासन के आद्यन्त दो छोरों से आवेष्टित इस नीति की हर क्षेत्र में अनिवार्यता सिद्ध हो गई है । ऐसे नीति सिद्धान्तों को जब लघु उक्तियों के कलेवर में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है तो वही नीति वचन हो जाते हैं । ये नीति वचन मनुष्य को अंधकार में प्रकाश दिखाते हैं, किंकर्तव्य विमूढ़ता में सही मार्ग दिखाते हैं, भय और भ्रम को छोड़ कर सन्मार्ग पर चलने का साहस देते हैं तथा क्रिया बहुल मानव जीवन में नीर क्षीर विवेकी हंस के समान सत् के ग्रहण व असत् के त्याग का परामर्श देते हैं ।

भारतीय मनीषियों ने - जिनके जीवन का ध्येय ही परार्थ चिन्तन था, इस प्रकार की नीतियों का निर्धारण कर के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को निरापद व सुगम बना दिया था जिनका अनुसरण कर के मानव मात्र स्व अर्थ पर चोट आये बिना सामाजिकता का निर्वाह कर सकता है और अपने आचरण के लिये निर्मल आत्मा के सामने साक्षी बना रह सकता है । ऐसे ही नीति वचन आप्त वचन कहे गये हैं ।

स्वभाव से ही यथार्थ चिन्तक, राजनीतिक छल छंदों से घोर घृणा करने वाले जुझारू प्रवृति के महाकवि 'बौखल' के लिये सामाजिक आचार की परिशुद्धता उतनी ही महत्व पूर्ण थी जितनी किसी आस्तिक को अपने ईश्वर पर आस्था, इसलिये उनका संपूर्ण काव्य नैतिकता और आचार शास्त्र की ज्योति शलाकाओं से प्रदीप्त है –

वाको संग न कीजिये, जे नही साँच सुहाय
बनि मितवा बंजी करै, अन्त दगा दै जाय ।। (1)

वैर भाव तजि जीवड़ा, हिय को भरम गँवाय
सोवै पैर पसार नित, कमरी अवनि बिछाय ।। (2)

कौन कहै काया अमर तत्व मिलै सड़ि काय
फिर क्यों करै कुपाधि जग, क्यों जग जीव तपाय ।। (3)

बिन पारस परखे अलि, लोह परखि किमि होय ।
सपने को साबुन कबै मैल चुंदरिया धोय ।। (4)

नारायण अंजलि भाग I:–(1) दो.क्र.–371पृ.क्र.–27,(2) दो.क्र.–389 पृ.क्र.–27,
(4) दो.क्र.–393 पृ.क्र.–28,
नारायण अंजलि भाग II:–(3) दो.क्र.–193पृ.क्र.–13.

इस मरणशील काया के पीछे अन्य जीवों को संतप्त करना कहाँ का न्याय है ।
जैसे स्वप्न में देखा साबुन, मैली चादर को नही धो सकता इसी प्रकार बिना सही व्यक्ति की पहिचान किये उसके द्वारा किसी कार्य की सफलता संदिग्ध रहती है । अतः पहिले सत्य तथ्य का पता लगा कर तब मित्रता करनी चाहिए ।

दूध फाटि पानी भयो, माखन गयो बिलाय
बिन मन मिले पसीजिबों, गांठी दाम गँबाय ।। (1)

बिना मन की भावनाओं का मेल हुये मित्रता निरर्थक हो जाती है जैसे दूध फट कर पानी को अलग देता है और उससे मक्खन पाने की आशा व्यर्थ हो जाती है । अतः जहाँ मन मिले वहीं मित्रता करनी चाहिए । **रहीम** का निम्नलिखित दोहा भी इसी भाव को लेकर लिखा गया था –

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ।।

पुनः कवि के अनुसार –

कोटि यज्ञ गुरू जप कियो, तुमुल सुशंख निनाद
कपटि मिले ना हरि मिलैं, निशि दिन हरि संवाद ।। (2)

निरन्तर किये जाने वाले हरि कीर्तन, शंखध्वनि, यज्ञ, जप, तप, गुरू सामीप्य आदि सब कुछ करते रहने पर भी यदि मन में कपट भरा है तो ईश्वर प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती है; अतः यदि साधक ईश्वर का सान्निध्य चाहता हो तो सारे बाह्य आडम्बरों को छोड़कर निष्कपट मन से भजन करना चाहिए ।

तौ लौं या मन सदन में, हरि आवैं केहि बार
निपट जटे जौ लों लगे, खुले न कपट कपाट ।। (3)

कबीर की फक्कड़ताई भी यही कहती हुई चली गई है –

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मॉहि
मनुआ तो चहुँ दिशि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ।।

दुखी व्यक्ति के लिये व्यावहारिक ज्ञान देते हुये कवि का कथन है –

रोय गाय गाथा कहौ, मन स्थिर होइ जाय
सुगम पंथ पंथी अथै, लक्ष्य आपनो पाय ।। (4)

यदि अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है तो चित की स्थिरता अति आवश्यक है । अतः मनके दुख को दूसरों से कह सुन कर चित्त हल्का कर लेना चाहिए तभी अपना मार्ग सुगम हो सकेगा और पथिक गन्तव्य पर पहुचं सकेंगा ।

नारायण अंजलि भाग I:–(1) दो.क्र.–2156पृ.क्र.–164,(2) दो.क्र.–2240 पृ.क्र.–170,
(3) दो.क्र.– पृ.क्र.– ,
नारायण अंजलि भाग II:–(4) दो.क्र.–371पृ.क्र.–27.

सार्वभौमिक सत्य –सूर्य का प्रकाश चौदहों भुवनों में घर घर में व्याप्त होता है वह अपने प्रकाश वितरण में कहीं संकोच या घटा बढ़ी नहीं करता – इसी प्रकार कुछ सार्वभौमिक सत्य होते हैं जो देश व काल की सीमा में कही भी नही बँधते, सब पर एक समान उनके परिणाम घटित होते हैं, ऐसे ही सत्य मनुष्य को जीवन की सच्चाइयों से अवगत कराकर सुख दुःख संयोग वियोग, आशा निराशा आदि के द्वन्द्वों में प्रफुल्लित व विचलित होने से बचाते हैं । मानव की प्रवृत्तियाँ व भौतिक जगत की घटनायें लगभग एक समान रहती हैं । अतः यदि सत्यों का ज्ञान रहें तो उन्हें सामान्य मानकर उनके प्रभावों से अछूता रहा जा सकता है –कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

सीमा साधे सब सधै, धरम करम वैज्ञान
'बौखल' बिन साधे सबै, विपदा सहे महान ।। (1)

साचो मारग छोड़िकै, झूठ लीन्ह अपनाय
'बौखल' मानुस याहि सों, माटी मोल बिकाय ।। (2)

स्वर्ग सोन के लालची, रहे जगत मँडराय
इतै उतै के नहि रहे, मरे चाम गठियाय ।। (3)

अपनो साधै स्वाद सब, आने स्वाद नसाय
निज निज साधे साधना, सुख संसार सवाय ।। (4)

नैन भाव भाषा रसै, बिन रसना रसियाय
चतुरे चाखैं मधुर मद, जो जग कहो न जाय ।। (5)

नारी नर के सँग रहे, नित निभाय सहयोग
प्रकृति बंधन में बँध, मिटैं मानसिक रोग ।। (6)

मन जगाये जागै नहीं, बिन जगाय जग जाय
कारण समुझि न पावहि, 'बौखल' बुधि बौराय ।। (7)

मीत मिलब कितना कठिन, सुख दुःख एकहि रीत
सुख स्वारथ साधक सहज, मन मौजी मुख गीत ।। (8)

चोट परे हीरा हँसे, तनिक न होय मलीन
करि आदर अँचरे धरै, जौहरि परखि प्रबीन ।। (9)

कनक देह जरि छार हो, कनक जरे नहि आग
मुख सों विष मेलै नहीं, दूध पियत नित नाग ।। (10)

शुक्ता मुख खोलै नही, स्वाती बरसि अकाश
परहित करिहैं कौन विधि, पौरूष हीन निराश ।। (11)

सबरे सँग प्रीती भई, जेहि मन बसि सब स्वाद
लागि स्वाद साधू भयों, नीरस तुमुल निनाद ।। (12)

नारायण अंजलि भाग I:– (1),(2),(3) दो.क्र.–1105,1099,1104पृ.क्र.–83, (4) दो.क्र.–1315 पृ.क्र.–99, (5) दो.क्र.– 1476 पृ.क्र.–112, (6) दो.क्र.–1490 पृ.क्र.–113, (7) दो.क्र.–1564 पृ.क्र.–118, (8) दो.क्र.– 1566 पृ.क्र.–119, (9) दो.क्र.–2020पृ.क्र.–153, (10) दो.क्र.–2246 पृ.क्र.–171, (11) दो.क्र.–2599पृ.क्र.–198, (12) दो.क्र.– 2462 पृ.क्र.–187.

लोखरी मारत बन फिरै, नहि मन मार गँवार
जो मन मारै आपनो, ताहि जान सरदार ।। (1)

पाथर मोम न होइ सकै, लोह होय ना सोन
जीव दहै जग जामिया, निरधारित जस जोन ।। (2)

कस्तूरी महकै विपिन, अलि वसन्त बौराय
कृष्णासार मृग भाँवरी, आँधर काह जनाय ।। (3)

ईश बसै आकाश में, दुनियाँ भूमि निहारि
स्वाभाविक स्थंभ लगि, उपजि विभिन्न विचारि ।। (4)

सांस्कृतिक तत्व — संस्कृति वह जीवन पद्धति है जिसकी स्थापना मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है, संस्कृति उन आविष्कारों का संग्रह है जिनका अन्वेषण मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिये किया है । इन अन्वेषणों में मानव तब सफल होता है जब वह अपनी आत्मा तथा वाह्य विश्व या प्रकृति दोनों का सत्कार करें । इस सत्कार के लिये व्यक्ति व समाज का पारस्परिक सहयोग व सहायता मिल कर संस्कृति का निर्माण करते हैं । व्यक्तियों के सामूहिक विकास के साथ—साथ संस्कृति का भी विकास होता है । पूर्ववर्ती पीढ़ियों की संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण कर ही परवर्ती पीढ़ियों का विकास संभव होता है । रामायण काल से महाभारत काल तक आने वाले समय में जो परिवर्तन हुये हैं वे इस विकास के साक्षी हैं ।

संस्कृति एक प्रकार से किसी भी देश के समग्र जीवन का अन्तरंग या आत्म तत्व होता है जिसका वाह्य पक्ष सभ्यता के रूप में प्रत्यक्ष होता है । संस्कृति जब विस्तार चाहती है तब अन्य संस्कृतियों से संघर्ष करती जूझती हुई उसे अपने में आत्मसात् कर लेती है । प्राचीन विश्व की संस्कृतियों का पारस्परिक आदान प्रदान नई संस्कृतियों को जन्म देता रहा है । यूनान ने भारतीय संस्कृति के दार्शनिक पक्षों को अपना लिया था और आर्यो की संस्कृति ने सैन्धव सभ्यता की लिंग पूजा को अपना लिया । अरब की इस्लामी संस्कृतियों ने भी भारत से हिन्दू संस्कारों के तत्वों के ग्रहण किया — इसी प्रकार यूरोप के देशों की संस्कृतियों का भी भारत की संस्कृति से मेल मिलाप व आदान प्रदान चलता रहा है ।

भारतीय संस्कृति प्रारम्भ से ही अपनी उदार दृष्टि व समन्वय तथा सहिष्णुता की भावना के कारण अधिक स्थायी व प्रसारवती रही है इसकी उत्कृष्टता के कुछ विशिष्ट कारण निम्न हैं —

1. **प्राचीनता** — यह अति प्राचीन है तथा ऋग्वेद जैसा प्राचीनतम ग्रन्थ तथा उसके परवर्ती बड़ा विशाल वैदिक वाङ्मय इसमें विद्यमान है । विश्व की कोई भी संस्कृति इसके समकक्ष नहीं है ।

2. **धर्म परायणता व आध्यात्मिकता** — धर्म और आध्यात्मिकता के सुदृढ़ स्तम्भों पर खड़ी यह संस्कृति मानव जीवन के ऐसे आदर्शों को उपस्थित करती है जिन के द्वारा विश्व की अन्याय संस्कृतियों के समान केवल भौतिक जीवन को नही वरन् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के चार चतुष्टयों पर आधारित सात्विक जीवन ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, इन चार पुरुषार्थो का समन्वय ही इसका प्राण है ।

नारायण अंजलि भाग I:— (1) दो.क्र.—2462पृ.क्र.—187,(2) दो.क्र.—2743 पृ.क्र.—209,
नारायण अंजलि भाग II:— (5) दो.क्र.— 65पृ.क्र.—6, (6) दो.क्र.—489 पृ.क्र.—36,

3. **दार्शनिक तत्वों की प्रधानता** – मानव जीवन केवल आहार, निद्रा, भय मैथुन का समुच्चय नहीं है वरन् वह चिन्तन प्रधान हैं चिन्तन के द्वारा उसने इस विश्व व विश्व नियन्ता के विषय में जिज्ञासायें की है, चिन्तन के द्वारा ही उसे इन जिज्ञासाओं की प्रतिपूर्ति के साधन मिले और ईश्वर (ब्रह्म) जीव, जगत की विराट् समस्याओं, उनके रहस्यों पर मनीषियों ने दार्शनिक सिद्धान्तों की रचना की । इहलोक, परलोक, जन्म मृत्यु आदि की विवेचना में इन्हीं की प्रधानता रही ।

4. देवपरायणता – धर्माधारित जीवन पद्धति होने का प्रबल और प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि मानव केवल लौकिकता की मरीचिका में फँस कर न रह जाये इसके लिये कुछ मानवेतर चरित्रों की कल्पना की गई जो अपने सौदंर्य और आचरण में अत्यन्त मोहक थे । इन्हें ही देव संज्ञा दी गई, जिनका अनुकरणीय आचरण मानव जीवन के लिये आलोक स्तंभ बन गया । इस प्रकार इस भारतीय संस्कृति ने देवपरायणता को जीवन की अनिवार्य क्रियाओं में सम्मिलित कर दिया ।

5. **एकीकरण व समन्वय भावना** – समस्त भारतीय चिन्तन एकत्व की भावना पर आधारित है । एकता ही यहाँ का मूल मंत्र है, वह व्यक्तियों की हो, विचारों की हो, प्रयत्नों की हो अथवा आचार व्यवहार की हो । धार्मिक क्षेत्र में अनेक मत मतान्तरों के होते हुये भी उन का अन्तिम अभीष्ट किसी एक सर्वमान्य सिद्धान्त का पोषण करना ही होता रहा है । यहाँ तक कि उस सर्व शक्तिमान परमेश्वर के लिये भी कहा गया है कि 'स एकाकी न रमते' अर्थात वह भी अकेला नहीं रमता, अनेक को साथ लेकर चलता है । इसी प्रकार समन्वय की भावना भी है जहाँ सभी मतमतान्तरों का एक मान्य सिद्धान्त पर समन्वय कर लिया जाता है, इससे एक ओर तो विचार विनिमय को उपयुक्त वातावरण मिलता है, दूसरी ओर वैषम्य का शमन होता है और तीसरे समन्वय से शक्ति शतगुण हो जाती है ।

6. भावना की एकता तथा प्रयास की अविच्छिन्नता – इस संस्कृति में जहाँ भेदभाव मूलक व्यवहार व प्रयत्नों को एक किनारे करके सबके साथ साम्य रखकर चलने के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है, जबकि प्रत्येक व्यक्ति या समाज की प्रत्येक इकाई को अपने लिये पूर्ण स्वतंत्र रखा गया है; तथापि भावना की एकता को सर्वोपरि रखा गया है, उदाहरण के लिये मातृपितृ भक्ति एक भावना ही है– इसी प्रकार जितनी भी सर्वोत्कृष्ट भावनायें हैं, उन पर पूरा समूह मन एक हो जाये और उसके लिये निरन्तर प्रयास किये जाते रहें, यह यहाँ का मुख्य चिन्तन रहा है – आगे बढ़कर यही भावना का एकत्व मनसा, वाचा कर्मणा तक विस्तारित हो जाता है ।

7. सर्वकल्याण भावना – जहाँ स्वार्थ को प्रश्रय न देकर सदैव परार्थ को प्रमुखता दी गई, पर दुःख कातर्ता जहाँ प्रत्येक व्यक्ति के रोम रोम में भरी हो, सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया । "सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।" जिस संस्कृति का मूल मन्त्र रहा हो, साधु सन्तों ने जहाँ पराई पीर जानने को ही परमभक्ति माना हो – "वैष्णवजन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे" के सच्ची वैष्णवता माना गया हो, जहाँ संस्कृत के कवि नाटककार सबकी कल्याण भावना के लिये भरत वाक्य लिखते रहे हों – अजात शत्रुता को जहाँ अन्तःकरण की निर्मलता की कसौटी माना जाता रहा है, ऐसी यह भारतीय संस्कृति विश्व में सर्वोच्च स्थान पर विगत अतीत से लेकर आज तक प्रतिष्ठित है, गौरवपूर्ण स्थायित्व जिसकी पहिचान बन गई है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि व्यष्टि और समष्टि में पारस्परिक अभेद दृष्टि का प्रयत्न भारतीय संस्कृति की अजस्र और अक्षय शक्ति का मूल स्रोत है । 'मूले मूलाभावत् मूंल मूंल' 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा वशिष्यते' की दार्शनिक व्याख्या है जो व्यष्टि एवं समष्टि के रथ के दोनों पहियों को सुनिश्चित और सुनियोजित मार्ग पर सहयात्री बनने के लिये सामञ्जस्य की धुरी का काम करती है ।

वाक् सिद्धि के सफल साधक, आध्यात्मिक मनोराज्य में विचरण करने वाले भावुक सन्त तथा साहसिक अभिव्यक्तियों के निर्भीक मुखर वक्ता महाकवि 'बौखल' के संपूर्ण चिन्तन में, उनके काव्य के उत्स के रूप में इस संस्कृति के तत्व अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ विद्यमान हैं । उन्होंने अपने हृदय मन्दिर में उनकी आरती उतारी है, स्वयं उसका एक अंश होने के कारण उन पर गर्व किया है और काव्य जगत को दी है एक अकिंचन वैरागी की जीवन व्यापी साधना की पुष्पांजलि ।

हाँ, यह अवश्य दृष्टव्य है कि कवि को अपने देश, अपने परिवेश में सर्वत्र व्याप्त सामाजिक विषमता के दंश ने इतना आकुल कर दिया है कि उनके अंग प्रत्यंग से मानो विषैली लपटें निकलने लगी हैं, उन्हें चारों ओर आग सी लगी दिखाई पड़ती है तभी उनका स्वर तीखे व्यंग्य से भर उठा है । सांस्कृतिक तत्वों को जब हम उनके काव्य में खोजते हैं तो स्पष्टतया यह ज्ञात होता है कि ये अभिव्यक्तियाँ भी व्यंग्य की क्षुरधार से अछूती नहीं रहीं —

बाबा क्यों अतीत गुण गावै
अभ्यासी परिवर्तन सदैव, परिवर्तन गर फाँसी
साजि समाज नवीन निरन्तर, जीर्ण कला पतियावै
जीव त्यागि निज देहु दुरंगी, प्रकृति परि मोहा
गोविन्द राधू जोरि युग गांठी, अद्भुत रहस्य रचावै
गहि अनुशासन पाट पटोरा, सुधि साजन बिसरावै
खोजहि रतन यतन करि लाखों, अकरम करम निभावैं
'बौखल' उरझि सुरभि नहि पावै, अटपट धार गंभीरा
नाविक नाव निकुञ्ज निहारो, भौर प्रीति रस पावै ।। (1)

जग जीवन सुफल बनावो री
पंच तत्व कायिक कुटिया में, सोवति सुरति जगावो री
बैर त्याग स्नेह अमित उर, निज बालम अपनावो री
युग युगान्त की रैन अंधेरी, मन मंदिर दीप जलावो री
तस्कर पांच छिपे तन नगरी, भावुक मारि भगावो री
करि प्रयास तजि द्वेष ईर्ष्या, उर तंत्री मधुर बजावो री
शून्य गगन आनन्द अनोखा, प्रिय नाचे तुम गावो री
माया जाल बगरि वैज्ञानिक, धरि धीरज सुरझावो री
साजि सुहाग सिंदूर लिलारे, प्रीतम नारि कहावो री ।। (2)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—28 पृ. क्र.—9, (2) पद सं.—26 पृ. क्र.—8.

दार्शनिक भाषा में तन मन के शत्रु बने मनोविकारों को अपने से दूर करके परमात्मा से मिलन के लिये आत्मा को प्रेरणा देते हुये सांसरिक जीवन को सफल बनाने के लिये परम गोपन वैकुण्ठ भाव का रसास्वादन इस पद में कराया गया है ।

नीचे के पद में सृष्टि जन्म के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालते हुये कवि ने मानव को वैज्ञानिक युग के शोषण से बचते हुये संस्कारी मानव बनने की प्रेरणा दी है – इसमें कवि ने इतिहास को साक्षी बनाया है –

कहि सबसो इतिहास पुकारी
मानव जनम लियो धरती पै, नंगी देह गुजारी
प्रकृति की गोदी में खेलैं, घास, मांस, अधिकारी
बीते युग दूसर युग आयो, बनो अगिन उपचारी
पाषाणी युग महती महिमा, भयो जगत धनुधारी
चित्रलिपि बौद्धिक युग आयो, करि संचय हितकारी
कला, ज्ञान, गुण रीति नीति रचि, पुनि सजाय पुरिवारी
वैज्ञानिक शोषण युग आयो, उपजीवी आचारी
ऊंच नीच दुइ उपजि भावना, बनि संस्कृति संस्कारी ।। (1)

परमेष्ठी अन्तरिक्ष में, स्वयंभू संकेत ।
रहस्यमयी गोतत्व नित, गोविन्द राधृ निकेत ।। (2)
योग अणु स्वभाव रूचि, सबरे अंग जनाय
मौन मनन मन कीजिये, जीवहि रहस्य रचाय ।। (3)

एकेश्वरवाद भारतीय संस्कृति का मूल स्वर है – एक, अजर अमर, अजन्मा, निराकर, निर्गुण, सर्वव्यापी परमात्मा नितान्त अकेला और एक हैं, उस पर भाँति–भाँति के स्वरूपों, धर्मो का आरोपण किया जाता है, भाँति–भाँति के रूपक रच कर उसके स्वरूप जानने के लिये मन्थन किया जाता है परन्तु वह तो नितान्त निर्लेप, निरंजन ही है –

कैसे गाऊँ तोरी कहानी
पास परोसी पूछन आये, लै विवाद अनुमानी
वाद विवाद विषाद विभेदा, उरझे पण्डित ज्ञानी
निर्गुण सगुण और त्रीगुण भाषा, मध्य प्रमाण प्रमाणी
करि वैदाई चुटुक वैदिया, माटी मोह गुमानी
वेद पुरान कुरान बाइबुल, माथा मथत मथानी
भेद न पावै झगर मचावै, भाषा भिन्न बखानी
'बौखल' जो निर्लेप निरंजन, वाकी काह पहिचानी
घड़ि घड़ि भाषा भाव विरोधी, मचि गइ ऐंचातानी ।। (4)

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–502 पृ.क्र.–145, (4) पद सं.–1034 पृ. क्र.–298,
नारायण अंजलि भाग I:– (2) दो.क्र.–113पृ.क्र.–8,(3) दो.क्र.–321 पृ.क्र.–23,

यह सारा जगत माया के प्रपंचों से भरा पड़ा है, माया अपनी आवरण और विक्षेप शक्तियों से अद्भुत रहस्यात्मकता को विश्व में फैलाती है जिसमें जीव की चेतना भ्रमित होती रहती है, जब कि प्रत्यक्ष में सत्य दीखने वाला सब कुछ उसी का प्रपंच होता है । ऐसे में श्री 'बौखल' शांत व स्थिर चित्त से जगत में होने वाले भौतिक परिवर्तनों की पड़ताल करने की प्रेरणा देते हैं जो सृष्टि रचना के प्राकृतिक नियमों का परिणाम होते हैं –

जोगिया जो प्रत्यक्ष सो माया
रवि मण्डलि नव रतन अनोखे, नियति स्वतः रचाया
उत्तर दक्खिन छः ऋतु रजनी, पूरब पच्छिम छाया
अब्द अर्ध लखि बिन्ध्य हिमालय, अभय सिन्धु लहराया
वसुधा गति स्थल जन बदलो, वर्तुल गती घुमाया
उत्तर शुक्र बृहस्पति दक्षिन, तनिक न नैन लखाया
भौगोलिक अद्भुत परिवर्तन, छः रितु भारत जाया
सृष्टि रचन अनेकों, मनुख खोजि नही पाया
'बौखल' चित्त स्थिर करि राखौ, क्यों बहुतक भरमाया ।। (1)

बाबा दुनियाँ देत दुहाई
एकै व्योम भूमि पाताला, एकै जलद जनाई
परमेश्वर की एकै भाषा, और कहाँ से पाई
रज रेतस मिलि विश्व रचाया, बस्ती विकट बसाई
महा महीम अर्थ अनुशासन, नियम अनेक रचाई
भेद असीम भरम उपजावै, मेधा की चतुराई
एक विचार अचार न दीखै, ईर्ष्या द्वेष बढ़ाई
मानव निज करतूत छिपावै, ईश्वर नाम लगाई
'बौखल' सत्य समाज बखानै, झूठ रहा अपनाई ।। (2)

भारतीय बहुदेववाद के विपुल विस्तार में गौरीसुत गणपति गणेश का स्थान सर्वोपरि है । वे अक्षादि, प्रथम पूज्य, विघ्नहरण, मंगलकरन देवता के रूप में सर्वदा आदृत हैं । गणपति जैसा प्रखर बौद्धिक, सूक्ष्म दृष्टा, बुद्धि प्रदाता, मनोवाञ्छा पूरक, फिर भी नितान्त सहज और यथेष्ट प्रयोग सुलभ देवता इस वाङ्मय में अन्य कोई देवनामग्रण्य नहीं है ।

श्री 'बौखल' ने गणपति को गणित के ज्ञान का अतुलनीय भण्डार बताते हुये एक पद में उनका वन्दन पारंपरिक रीति से किया है । प्रथम स्मरणीय व प्रथम पूज्य देव के रूप में उनका स्मरण करते हुये उन्हें संपूर्ण सृष्टि के विधान को एक अनुशासन में बाँध कर रखने की क्षमता वाले देवता कहा है,

---

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–732 पृ. क्र.–211, (2) पद सं.–183 पृ. क्र.–53.

वन्दना की है; परन्तु एक अन्य पद में उन्हें विश्व की जटिल समस्याओं के समाधान कर्ता के रूप में स्मरण किया है —

गणपति गुन गाऊँ युग चारी
मानेश्वरी गिरजेश कुमारी, जननि पुत्र अवतारी
केलि करै काननै गजानन, रवि शशि दिव्य उजारी
गणित आणविक गौरव गर्भित, क्रमांक उचारी
काल कलेवर भौतिक भोजन, परिवर्तन संसारी
जटिल समस्या रहस्य रसायन, उपादान उपचारी
वाह्य रूप प्रकृति नैसर्गिक, भौतिक तत्व अधारी
जनजीवन वैज्ञानिक जीवन, ज्ञान गणित गुंजारी
'बौखल' अनुनय विनय हमारी, महिमा तोर अपारी ।। (1)

गणपति गणित ज्ञान गुण खानी
सृष्टि तत्व गणित गुणी बन्धन, गणित स्वाँस जग प्राणी
नियम नियन्त्रित अति अनुशासित, करि उपकार महानी
गणित रहस्य गहन गुण गायो, विनिमय अंतरंग जानी
अणु परमाणु काल कलेवर, सरल स्वभाव बखानी
ब्रह्मा विष्णु महेश षडानन, शेष सहित वैज्ञानी
गणित माल हिय जपत निरन्तर, इन्द्राणी ब्रह्माणी
दैत्य दनुज जग मनुज निशाचर, कहि नित तोर कहानी
ऋषी मुनी देवी देव देवता, प्रथम सुमुरि जहानी ।। (2)

प्राणियों को जब तक संसार में रह कर जीवन यापन करना है तब तक प्रत्येक मनुष्य विरागी तो हो नहीं सकता है । जीवन यात्रा में उसे भौतिक संसाधनों की पूर्ति हेतु अर्थ की आवश्यकता तो रहेगी ही अतः अर्थ त्याज्य तो कभी नही हो सकता क्योंकि वही अर्थ धर्म और काम पुरूषार्थों को साधने का माध्यम भी है । अर्थ का उपयोग और उपभोग दोनो ही अर्जन के ऊपर निर्भर करते हैं । मानव किस प्रकार से अर्थ का अर्जन करता है और उस क्रिया में वह कितना निस्पृह रह पाता है विचारणीय विषय यही है । उसके धनार्जन और धन के उपभोग में कहीं 'पर पीड़ा' तो नहीं आ जाती है । इस सूत्र को लेकर ज्ञानियों मनीषियों, चिन्तकों ने इस विषय में बहुत सावधान व सजग रहने की चेतावनी दी है । महात्मा गांधी ने जीवन के लिये सात आलोक सप्तमहाव्रतों के रूप में निर्धारित किये हैं — सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अस्वाद और अभय इनमें से एक आलोक अपरिग्रह का अर्थ होता है — आवश्यकता से अधिक धन का संचय न करना, अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये धन संचय उचित है अधिक नहीं । श्री 'बौखल' ने इसी महाव्रत की प्रशंसा करते हुये अधिक संचय की

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—1019 पृ. क्र.—293, (2) पद सं.—518 पृ. क्र.—150.

निन्दा की है क्योंकि इससे जीवन सुगम होने के स्थान पर जटिल हो जाता है —

संचय अवगुण बहुतक भाई
संचय तीर तोप तरवारि, एक दिन प्रलय मचाई
संचय सोन तिजोड़ी राखै, चोर जगत अधिकाई
लोह अधिक धरि ओरन द्वारे, अपनी मीच बुलाई
परोपजीवी धैना धन्धा, जीवित आश पराई
बहुतक मीत बनाये भावुक, वैर अधिक उपजाई
करत अताव बढ़ावत संख्या, निश्चय जान जनाई
संचय साधि जीव उपयोगी, तजि जंजाल जनाई
'बौखल' जो जीवन सुख चाहो, निज हित करो कमाई ।। (1)

आध्यात्मिकता — वैराग्य भावना तथा जगत की क्षण भंगुरता — इस विराट् विश्व के फलक पर जब प्राणी जन्म लेता है तब उसके भीतर एक ही प्रश्न होता है — 'कोऽहम्'? में कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ क्यों आया हूँ? मेरे यहाँ आने का उद्देश्य क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजते खोजते उसका जीवन प्रारंभ होता है और इसी प्रक्रिया में वह समाप्त हो जाता है । इस आदि और अंत के बीच में यदि उसे सदज्ञान और सदगुरू मिल जाते हैं तो 'कोऽहम्' की यात्रा 'सोऽहम्' तक ले जाने में समर्थ होती है; परन्तु यह यात्रा है बड़ी कण्टकाकीर्ण । अणु परमाणुओं के संयोग से निर्मित इस जगत में जन्मा क्षुद्र प्राणी जब अपनी अपूर्णता से परिचित होता है अर्थात वह ऊर्णानाभता से परिचित होता है तब उसके प्रयत्न पूर्णता की ओर बढ़ने के लिये होने लगते हैं । धीरे—धीरे उसे ज्ञात होने लगता है कि मैं आकाश में छिटके ग्रह नक्षत्रों की भाँति अपने प्रियतम से बिछुड़ी हुई आत्मा हूँ तब उसमें भक्ति का उदय होता है और यही भक्ति संयुक्त जीवन — जो पल-पल अपने अंशी की महाछवि का अनुभव करते हुये उससे मिलने के अनेकानेक उपक्रम करने लगता है, उसके विरह में संतप्त होता रहता है, शिवम् और सत्यम् का सहारा लेकर अपनी आतुर पुकार को उस परम अंशी तक पहुंचाता है — यही जीवन प्रक्रिया आध्यात्मिक जीवन कहलाती है ।

काया डोल हिंडोलना, मनुवा डोल तरंग
करि भरमण ब्रह्मण्ड को, पुनि लौटे निज अंग ।। (2)

यह बीज तत्व है आध्यात्मिकता का । इसी बीज के विस्तृत होते जाने और विराट् वट रूप धारण कर लेने पर 'एक रूप विश्वरूप और विश्वरूप एक रूप' में समाहित हो जाते हैं । महाकवि 'बौखल' ने इस क्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है —

आध्यात्मिक तौली तुला, रस रंग छवि गुण एक
चतुर कवि कोविद कही, सरस्वति रूप अनेक ।। (3)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद सं.—1015 पृ. क्र.—292,
नारायण अंजलि भाग II:— (3) दो.क्र.— पृ.क्र.—

प्रकृति के द्वारा सृष्टि की रचना, पोषण व लय का सुन्दर वर्णन कवि ने इस रूप में किया है —

उदर प्रकृति प्रसव करि, पालै भोज खवाय
जबै अन्त हो नौकरी, आपे उदर समाय ।। (1)

उस पूर्ण प्रकाशमय की रूपरेखा तो वर्णित की ही नहीं जा सकती पर उसका आभास मात्र कभी - कभी निर्मल ज्योति के रूप में होता है । इस निर्मल ज्योति को देखने के लिये नितान्त निर्मल निःस्वार्थ चित्त चाहिए । उसी की अनुकम्पा से जब कभी क्षण मात्र के लिये यह सुअवसर उपलब्ध होता है तब स्वामी व दास की भावना मिट जाती है — आत्मा परमात्मा के सान्निध्य का आभास पाने लगती है —

पूर्ण परम आकाश अलि, रूप विराट निवास
निःस्वारथ निज ज्योति मय, नहि स्वामी नहि दास ।। (2)
कौन नाम गुण गाइये, निर्गुण निगम विदेह
बुधि छोटी महिमा बड़ी, निज ब्रह्माण्ड सुगेह ।। (3)
चंचल चित अलि काहु को, सधै न साधै अंग
कहै स्वाद नहि काहु सो, मरै दीप जरि भृंग ।। (4)

प्रिय के वियोग में जलते रहने का जो सुख है उसे अचंचल चित्त से ही पाया जा सकता है, निर्वात् निष्कम्प दीपशिखा में जब शलभ जल कर मरता है तब वह अपना वह स्वाद किसी से बताता है क्या ?

पच्चीस संग सहेलरी, हँसि खेलैं मिलि फाग
पँचरंग बसन सुमोहिनी, बरसि टेसु उर आग ।। (5)

पंचरंग चोला पहिन कर जीवात्मा के साथ पच्चीस सहेलियाँ रंग फाग खेल रही हैं परन्तु टेसू—जिसका पीत रंग फाग खेलने के काम आ रहा है, के हृदय में जो आग लगी हुई है, उसका अनुमान किसे है ?

वैराग्य भावना — मन के पखेरू को तन के पींजरे से जब कोई मोह नहीं रह जाता वह तन पींजरा उसके लिये वैसा ही व्यर्थ हो जाता है जैसे कीर पक्षी जब अपने पंख छोड़ देता है तो उन पंखों से उसे कोई मोह नहीं रह जाता है यद्यपि वे उसी के शरीर के अंश थे, वह उनकी ओर से नितान्त निर्मोही व उदासीन हो जाता है, यही है वैराग्य भावना जिसमें एक-एक करके सांसारिक वस्तुओं यहाँ तक कि अपनी शरीर तक से विरक्ति हो जाती है । शरीर धर्म मात्र चलाने के लिए उसका साथ देना पड़ता है कोई विरला ही संत इस निर्लेप अवस्था तक पहुँच पाता होगा। कवि श्री 'बौखल' की वैराग्य भावना अपने शरीर के चाम से विरक्ति में व्यक्त हुई है —

नारायण अंजलि भाग II:— (1) दो.क्र.—468 पृ.क्र.—34, (4) दो.क्र.—41 पृ.क्र.—4,
नारायण अंजलि भाग I:— (2) दो.क्र.—118 पृ.क्र.—9, (5) दो.क्र.—126 पृ.क्र.—9.

पुतरी चाम चितै चतुराई
ऋषि मुनि बँधे अटारी बिलखैं, गुरूजन करि सेवकाई
सन्त निवेरै झाम झमेला, चमकि चाम प्रभुताई
पीर औलिया दृग शर सूलै, रोय महन्त मझाई
कहँ लौ कहौं चाम की महिमा, मढ़ि ब्रह्माण्ड सवाई
सड़ि सड़ि चाम सुपंथ गंधैला, बुधिया चेत न आई
ऐसो अतिशय चाम पियारो, अमित विधान रचाई
महिमा चाम विविध विधि व्यापी, मरी चामि गोहराई
अचरज चाम सबै बिलमायो, 'बौखल' भेद बुझाई ।। (1)

इस शरीर से मोह छूटना ही वैराग्य है जिसे चाम के द्वारा व्यक्त किया गया है क्योंकि जब अन्त में इसे छूटना ही है तब इससे मोह ही क्यों हो ।

जग में तोरि चही नहि होई
काल बाँध तोही लै जइ हैं बाँह गहै नहि कोई
बिछुड़े साथी सपन के साथी, रहि जइहैं जिय रोई
कुटिल कुचाली रे नर पापी, जगत बीज तैं बोई
राजपाट अभिमान त्याग सब, अन्त अवनि उर सोई
भव्य भवन कनक निर्माणित, मधुमय जेइं रसोई
जाम अचानक सौदामिनि जरि, माखन मथनि बिलोई
नाना तजि उत्पात विमल मन, मत्सरता मद खोई
अपना आपा आप ही खोजो, मिलिहै होइहै जोई ।। (2)

नश्वरता-जीवन जगत की क्षण भंगुरता – **कबीर** ने कहा था –

पानी केरा बुलबुला, अस मानुस की जात
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा परभात ।।

संसार क्षण भंगुर है शरीर नाशवान है । इन दो तथ्यों को लेकर सृष्टि के आरंभ से अद्यावधि मनुष्य के लिये एक शाश्वत चेतावनी दी जाती है कि परमात्मा के दिये शरीर से परमार्थ साध ले अन्यथा एक दिन यह निर्मोही प्राण तुझे छोड़ कर चला जायेगा । यक्ष ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न में सबसे बड़ा आश्चर्य पूछा था – युधिष्ठिर का उत्तर था –

"अहनि अहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिरं
शेषानि जीवितमिच्छन्ति किमाश्चर्यमपरम् ।।

श्री 'बौखल' का भी यही कहना है कि केवल मिट्टी ही अपना अस्तित्व बनाये रखती है शेष सब

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–833 पृ. क्र.–240,(2) पद सं.–327 पृ. क्र.–

नाश होता चला जा रहा है — जीवन भी —

माटी मीच एकै अली, माटी रूप अनेक
भाँड़ा भाँडि रंगि रंगी, 'बौखल' करहु विवेक ।। (1)

कवि की चेतावनी है —

रहेगी न तेरी मस्त जवानी
आठ मास नौ गर्भ निवासी, जनम लियो दुनियाँ में
बाल काल हँसि खेल गंवायो, माता गोद भुलानी
निज मुख रूप देख दरपन में, फूलों नही समावै
कर्म कुकर्म नेक नहि सूझौ, तरुणाई उतरानी
तेल फुलेल देह करि लेपन, ऐंठि चले दिन राती
ये देही तेरे संग न जाई, होवै पानी पानी
करि अन्याय भजै भगवाना, मुक्ती चहै सवाई
'बौखल' करि उपकार विश्व में, होय सफल जिन्दगानी ।। (2)

सबकी कल्याण कामना — कबीर ने कहा था —

ना कोई मेरा ना कोई तेरा, दुनियाँ रैन बसेरा
या संसार कागद की पुड़िया, बुंद परे घुलि जाना है
या संसार झाड़ अरु झाँखर आगि लगे जरि जाना है
रहना नहि देस बिराना है

आखिर जब जीवन को समाप्त हो ही जाना है तो इसका संसार में आने का उद्देश्य ही क्या है ? यह उद्देश्य है कि परम पिता ने तुम्हें संसार में सब का कल्याण करने के लिये भेजा हैं, उसके आदेश का पालन करना ही संसार में आने का उद्देश्य है; इसलिये भारत का साधु सन्त, विचारक, चिन्तक, योगी, कवि, कलाकार सब अपनी अपनी भाषा में यही एक बात कहते हैं — दूसरों का हित करो ।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयं
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।। (3)

तुलसी ने भी संसार में आने पर दो ही काम प्रधान बताये जिससे मानव का स्वयं का व अन्य का भी कल्याण होगा —

तुलसी या जग आय कै, करि लीजो दुइ काम
दैबे को टूको भलो, लैबे को हरि नाम ।।

ये दो टूके क्या हैं ? यही टूके हैं जो किसी के द्वारा किसी को दिये जाकर उसका कल्याण करेंगे । परार्थ, परमार्थ, परस्वार्थ ये बीज शब्द हैं इस भारतीय संस्कृति के, जिनके द्वारा संसार की

नारायण अंजलि भाग I:— (1) दो.क्र.—1709 पृ.क्र.—130,
नारायण नैवेद्य :— (2) पद सं.—177 पृ. क्र.—52,
(3) सूक्ति सुधा संग्रह :— महर्षि वेद व्यास

भंबर में डूबती नैया को बचाया जाता रहा है, बचाया जा रहा है और आगे भी इसकी रक्षा की जायेगी। श्री "बौखल" का पद भी यही कहता है –

बाबा सब सों करहु मिताई
तुम अपने स्वारथ मत लागो, करो न आश पराई
हम तुमरे तुम हमरे दुख में, कपट रहित लपटाई
प्रीति बैर तजि बनि उपकारी, जल तोयद बरसाई
स्वाति सीप करे नहि आनन, चातक प्यास बुझाई
मनुज चेत करि निरखि सरोवर, सलिल सरोज मिताई
बगुला प्रीति मीन धरि गरवा, कटिया प्राण पिराई
"बौखल" प्रीति प्रतीति सुहावनि, काहु न मग अटकाई
विश्व प्रकृति मंडित करि मानौ, स्वगृह जीत सवाई ।। (1)

अन्त में श्री "बौखल" की जनवादी चेतना ही एकीकरण की परमौषधि है जो सारे भेदभाव मिटाकर जन जन को एक दूसरे के समीप ले आयेगी –

जनवादी व्यवहार हमारा
प्रीति की रीति निभाये हर्षित, मानव जगत हमारा
अधिकाधिक प्रभाव प्रसारित, भौतिक वंश विचारा
दीन हीन हित करि उत्पादन, अनुदान उपकारा
मुद्रा मध्यम बनी भावना, पूंजीवाद पसारा
समदर्शी सिद्धान्त साधि सब, साजि सुखद परिवारा
व्यक्तिवाद विवाद त्यागि नित, सर्व भौम उद्गारा
'बौखल' परम समाज वाद जग, बनि जीवन आधारा
मुदित महान सबै नर नारी, रहे बजाय नगारा ।। (2)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्री "बौखल" के काव्य में सांस्कृतिक तत्व पूरी निष्णातता से विद्यमान है, तभी यह सिद्ध होगा कि –

अयं निजः परोवेति, गणना लघु चेतसाम्
उदार चरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद सं.–97 पृ. क्र.–29, (2) पद सं.– पृ. क्र.– .
(3) सूक्ति सुधा संग्रह :– महर्षि वेद व्यास .

अध्याय – 9

महाकवि 'बौखल' के काव्य में कला पक्ष का विवेचन

अध्याय - ५
महाकवि 'बौखल' के काव्य में कला पक्ष का विवेचन

मानव मन की भावनाओं, आकाँक्षाओं, अनुभूतियों, उद्वेलनों तथा प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने एवं बौद्धिक क्षेत्र में उसके चिन्तन, मनन, विचारणा संकल्पों एवं प्रेरणाओं को मूर्त रूप देने में सहायक, इन वृत्तियों का कलेवर सँवारने वाला तथा इन्हें अभिव्यक्ति देने वाला सबसे प्रबल साधन भाषा है। यह विधाता द्वारा प्रदत्त वह वरदान है जो उसकी सृष्टि में किसी अन्य जीवधारी या प्राणी को नहीं मिला। अनुभूतियाँ पशु पक्षियों में भी होती है, संवेदना भी होती है, प्रेम, वात्सल्य, सहयोग, सहानुभूति, कामना, क्रोध, युयुत्सा आदि वृत्तियाँ भी होती है, पर वे उन्हें व्यक्त नहीं कर सकते, कुछ ध्वनियों या शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा ही वे इन्हें प्रकट कर सकते हैं। अतः मानव जाति को मिले इस अलभ्य वरदान का महत्व अन्य सभी सांसारिक वस्तुओं, वैभवों, विषयों व उपलब्धियों से बढ़कर है।

मानव की भाषा संस्कारों और परिवेश से परिष्कृत होती है, मन के राग उसे माधुर्य देते हैं, व्यवहार उसे विस्तार देता है, शिक्षा उसमें गहनता और ओज भरती है और काव्य भाषा में आत्मा के सौंदर्य का प्रतिबिम्ब उतार देता है।

भाषा मानव समाज में व्यवहृत होने वाली नितान्त व्यावहारिक प्रक्रिया है, व्यवहार परक होने के कारण गतिशीलता इसका धर्म है और रूप परिवर्तन सहज स्वभाव। भाषा का बाह्य रूप शब्द भण्डार से, व आंतरिक रूप अर्थ विस्तार से, अलंकरण से, शब्द शक्तियों से, छान्दस्, प्रयोगों से तथा ऊहात्मक विच्छित्तियों से सँवरता है। ये सब उसके सौंदर्य के साधक हैं।

सौंदर्य वह अभिवृत्ति है जिसके द्वारा आकर्षण का जन्म होता है। मानव जगत स्वभाव से ही सौंदर्य का उपासक रहा है –इसका कारण यही है कि वह अपने चतुर्दिक एक ऐसे आकर्षण की कामना करता रहता है जिसमें वह स्वयं को बाँध कर रख सके। इस स्वेच्छया स्वीकृत बंधन में भी इस प्रकार की एक परम संतुष्टि, परितृप्ति का भाव निहित रहता है जिसके कारण वह सदैव बाहर भीतर से प्रफुल्लित रह पाता है, यही प्रफुल्लता सौंदर्य की उपस्थिति के लिये अनिवार्य स्थान बनाती है।

साहित्य मानव जीवन का अभिन्नतम अंग है और उसके अंतर्गत आने वाला काव्य तो मानस की परितृप्ति के लिये कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सौंदर्यानुवर्ती होता है। काव्य की आत्मा 'रस' को कहा गया है अर्थात काव्य में आया रस तत्व ही उस आनन्द को उत्पन्न करता है जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर होता है जो केवल अनुभव किया जा सकता है शब्दों से व्यक्त नहीं हो सकता, वहीं काव्य के कलेवर की सौंदर्य वृद्धि के लिये उसके शिल्प में कलात्मकता का होना निर्सगतः अनिवार्य माना गया है। इसे ही किसी काव्य के कला पक्ष की समृद्धि कहते हैं।

श्री बौखल के काव्यान्तर्गत कला पक्ष के सौंदर्य का विवेचन इन्हीं पूर्व लिखित बिन्दुओं के आधार पर अवलोकनीय है–

(1) शब्द भण्डार— कवि का शब्द भंडार अत्यंत विपुल और क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उनके प्रकाशित हुये तीन ग्रन्थ हैं— (1) नारायण नैवेद्य (2) नारायण अंजलि भाग 1 व (3) नारायण अंजलि भाग 2.

नारायण नैवेद्य में 'पद' छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक पद में एक टेक (स्थायी) पंक्ति के अतिरिक्त लगभग छः से दस पंक्तियाँ होती हैं और इस प्रकार के 1304 पद उस ग्रंथ में संग्रहीत हैं। नारायण अंजलि 1 में 'दोहा' छन्द प्रयुक्त हुआ है जो 13 और 11 मात्राओं का होता है। इस प्रकार के 4083 दोहे इस भाग में व नारायण अंजलि भाग 2 में यही दोहे 3385 की संख्या में संकलित किये गये हैं।

इस प्रकार लगभग त्रिलक्ष संख्यात्मक शब्द सम्पदा इन ग्रंथों में समाहित हैं।

श्री बौखल की काव्य भाषा में वैविध्य है, वे किसी एक भाषा के मुहावरे में बँध कर नहीं चले हैं, मन की स्वच्छन्द उड़ान ने जिस भी भाषा के शब्द को अपना अभिप्रेत कथ्य व्यक्त करने में सक्षम पाया है उसका उन्होंने बेहिचक प्रयोग किया है। वैसे उनकी भाषा में ब्रज और अवधी मिश्रित खड़ी बोली का प्राधान्य है। उनका जन्म रुड़की जिले के अन्तर्गत हुआ था, वहाँ की भाषा का प्रयोग तो स्वयं सिद्ध ही है परन्तु कर्म क्षेत्र बाँदा जिलान्तर्गत कर्वी रहा जो पाठा क्षेत्र में आता है और वहाँ की भषा में बघेली का स्पर्श भी है। करवी से लगा हुआ सतना जिला है और सतना के बाद रीवाँ, जहाँ की भाषा पूर्णतया बघेली है अतः उनकी भाषा में करवी में बोली जाने वाली भाषा के शब्द मिलते हैं। मोटे तौर पर शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

<u>शुद्ध संस्कृत के तत्सम रूप —</u>

प्रतिद्वन्द्वी, राजतंत्र, लोकतंत्र, संस्कृति, मान्यता, बुद्धिजीविता, सत्यता, व्यावहारिक, अमृत, मधुरस, समीर, अनल, अनिल, अमल, कमल, प्रवासी, निर्मोही, जीर्ण—शीर्ण, चितवन, शरीर, पवन, पट, प्रीति, प्राण, ज्ञान, स्नेह, मृणाल, ऋतुपति, औषधि, संयोग, वियोग, तरुणाई, मन्मथ, मनोहरता, जीवन, विश्वास, कामिनी, अनमोल, रत्न, वैज्ञानिक, व्यथा, विपिन, शावक, कलात्मक, शरद, शलभ, वितान, शिरोमणि, वाण, दृग, आशा, निराशा, पतंग, वेदना, अनुराग, बसन्त, अक्षुण्ण, मरण, लोचन, सम्मेलन, पन्थ, परमार्थ, दुर्बल, विनिमय, वितरण — आदि सहस्त्राधिक शब्द प्रयुक्त हुये हैं जो कवि के समकालीन और बहुपठ होने का प्रमाण है।

काव्य पंक्तियों की सरसता व लालित्य को द्विगुणित करने वाले श्रुतिमधुर ब्रजभाषा के शब्द यथा — नैननि, रसिया, अमोले, सिंगार, बावरी, बतियाँ छलिया, गैल, कांकरी, बिरहिन, बादरा, अगिन, नीदिया, आँचर करेजो, छपाकर, लाँगर, पीर, भौंर, चखनि, कजरा, नीर, मीन, सुवना, जुन्हाई, बयार, लकुटि, बहुरि, चूनरि, अँसुवन, स्वांसा, मरोरि, बिछुरन, सुमिरन, सौकर, खरो, सगरो, झौंर, रतनार, आदि के मोहक प्रयोग मिलते हैं।

इसी प्रकार इस भाषा के क्रियापदों का भी सुन्दरता से प्रयोग किया गया मिलता है—

निकसी, बिछुरो, सिसकति, सोवति, तजहुँ, सौंपि, सिहरत, उठति, बिहंसति, पतियाय, गरजत, करकति, मरोरि, ठाढ़ो, दई, झाँपत, ढुरै, रसियाय, अटकि, बिसरि, संकुचाय, बिछुरत, बिलखति आदि।

श्री बौखल को अपने स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की जीवनावधि में विभिन्न भाषा भाषी लोगों से संपर्क में आने तथा प्रायः कार्यवश अवधी भाषा बहुल स्थानों में आने-जाने के अवसर मिले थे; अतः अवधी भाषा का भी प्रभाव उनके शब्द भंडार में पड़ा; अवधी के क्रियापदों का प्रयोग भी इस बात का पुष्ट प्रमाण है ।

अवधी भाषा के शब्द –

पाथर, असुरी, पुतरी, मारग, मनुज, मकरी, भरवार, मनुवा, अमोल, सुहावनों, लोभिया, निरबन्सिया, निठुर, चकरिया, मढ़िया, उमरि, अहारा, सवाई अगरो, आपनि, सकारे, सिरजनहार, मंझारे, सोरह, लबरा, सूझ, दारुन, अचारी, पाहन, पाहन, गुरुवाई, मुरहा, हमरे, मुकुती, बिलार, सयानो, कुमति, लड़िका, गुसइयां, टहलुआ।

अवधी भाषा के क्रियापद–

त्यागहु, अंचरे धरे, चाखन चाहै, कूदि बिकाय, बिदारि, पछिताय, उड़ावति, ऊपजे, निहारि, बौराई, निवारै, अमिय, पियाय, बिकरम, नसाय, जपति, ठाढ़ि, ठोंकि, सराहै, कहराय, बौरानी, सुमिरहु।

किन्तु सबसे अधिक प्रयोग ठेठ ग्रामीण आंचलिक शब्दों का ही हुआ है जो कवि को अपने परिवेश के अधिक निकट जान पड़े हैं–

चापर (चोकर), चुलुवा (दोनों हाथों की हथेलियों का बंधा चुल्लू), फेचकुर (मुंह से निकलने वाला झाग), किंगिया (एक स्थानीय बाजा), अताव (पाखण्डी), खसम, (पति) पतुरिया (वेश्या), सोहारी (पूड़ी) पनहीं (जूता), जुंधइयां (चांदनी) महतारी, धैना (शारीरिक चेष्टा) जमुकि (पास) जाता (चक्की), छेरी (बकरी), गरियार, धूरि, बुधिया, जोगिया, चदरिया, फन्द, पनारा (नाली), दमामा (नगाड़ा), बिलास, पखना (पंख) कजेरिया, (एक स्थानीय त्यौहार) पूत, गंधैला, बिरथा, मानुख, पौरुख, अलबेली, महलिया, अटा, दुवारे, कखरी (कोख), झांखर (कांटे), अघोरी, सूधो, निमकौरि, लिलार (माथा), गुमानी (अभिमानी), करेज (कलेजा), बिरझाने (रूठे), अंचरा, पेटारी, नतौरा (नाता) बेंदुलिया (बेंदी) उतान (ऊपर की ओर पैर किये), पिछौरा (दुपट्टा), रांड़ (विधवा), ठगुवा, कुलाछन (कुलक्षण), कलुआ (यमराज), भदेस, डगर (मार्ग), बिसहर (बिसैला), झांई, बारी (छोटी), मधुवा (शराब), भँडुवा (वेश्या के चाकर), कोरवा (गोद), कछार (किनारा), टका (पैसा), बाउर (पागल), अगियारी (हवन), चबैना, दुधारी, भुँई (पृथ्वी), झींझरा (दुर्बल), मूठी (मुट्ठी), आगी, चोखी, गोड़ (पैर), गुहार (चीत्कार), सुथनियाँ (निक्कर), घँघरिया, फूहर, बखरी (आँगन), सेहली (एक गहना), गुंज, गोफ (गले का आभूषण), नेरे (समीप), उघार (नंगेबदन), गदेलवन (लड़के), बछेरा, कूकुर, भेली (गुड़) नून (नमक) पिसान (आटा), ऊजर (सफेद)– आदि इस प्रकार के शब्द ही लगभग प्रत्येक पद में भरे हुयें है, इनसे कवि का तात्पर्य खुल कर सामने आ जाता है । उन्होंने लाघव की दृष्टि से क्रियापदों का प्रयोग कम ही किया है, दोहायों भी छोटा छन्द होता है अतः शब्दों से ही अर्थ की प्रतीति अधिक कराई गयी है, किंतु पदों में क्रियापदों का बाहुल्य है । क्रियापदों के उदाहरण–

बगरानी, गोहराइस, बिलमायो, रचाइस, पकरि, बिकानी, उनावैं, बिरुआई, बिसारी, जगाई

कै, पतियावै, भुइं आवा, बौरानी, बुताने, तँबुआ तानै, नरियाय, बांचै, गठियाइन, झुरान, जुहाई, बिलगाऊँ, नसाय, मुड़ाई, पतियावै, चुरत, बिगारति, भरमाय, पनपावै इत्यादि।

उर्दू भाषा के शब्दों का भी विपुल भण्डार उनके काव्य में मिलता है, उनका अध्ययन उन्हें सभी धर्मों के सिद्धान्तों का ज्ञान करा देता है, इस्लाम धर्म के पीर पैगम्बरों के बारे में उनकी जानकारी अद्‌भुत रही है। प्रायः अबू बकर, उस्मान, मूसा, दाऊद, अबराहिम (इब्राहीम) जैसे महापुरुषों के नाम उनकी रचनाओं में आते रहे हैं– उर्दू शब्दों के प्रयोग– जैसे–

जुलुम, जहान, कसूर, शमशीर, तुरुक, बहिस्त, उल्लाह, दोजख, तसबीर, निजामी, चोगा, फरोशी, निजाद, पीर, औलिया, जालिम, कुरबानी, इतर, गुलाम, हलाल, फानी, नबी, किरायत, सिजदा, रैय्यत, नौसेरा, खलीफा, हाँरूं काँरू, बुत, वजीर, पयादा, यहोबा, मुरीद, मुल्ला, कबर, यारी, जालिम, उस्मान, मंसूरा, फकीर, मुराद– जहाँ तहाँ मिलते रहते हैं। इन शब्दों के प्रयोग के साथ इनसे जुड़ी परम्पराओं के भी वर्णन प्रायः आ जाते हैं जो इस बात के प्रमाण है कि 'बौखल' किसी धर्म या मत के खांचे में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग नहीं करते।

संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त पदावली में कवि की भाषा का निखार कुछ और ही है, यद्यपि भाषा में लालित्य उत्पन्न करने की दिशा में संभवतः यह प्रयास रहा होगा कि ब्रजभषा आदि के शब्दाशं या क्रियापद उसमें समाहित हो जायें, कुछ दोहे इस प्रकार के उद्धृत हैं–

शुक्ताआशा, स्वातिकण, मुक्ता, आश मराल
बौखल किमि सुख सरसहिं, भव कठोर विधि जाल।। (1)

नौका भांवर में पड़ी, प्रबल तरंग प्रहार
चेत तनिक चित लाय कर, माझी खेवनहार।। (2)

काव्य कला अनुभूतिमय, वाणी व्यंजन मूल
शोधि सुझावत कविन कुल, सत्य सिद्ध अनुकूल।। (3)

जड़ चेतन संयोग अति, निर्मित कला अनेक
मूलं रसायन आणविक, भावुक भेद विवेक।। (4)

बात करे सिद्धान्त की, काम करे विपरीत
'बौखल' मिलैं न स्वयं में, खोज फिरो जगमीत।। (5)

अर्थ अंधेरी कोठरी, जो जीवन आधार
मानव पार न पाइयां, प्रकृति गहन प्रसार।। (6)

काम कसाई के करें, भेष धरे अनमोल
एक दिन जग से जायेंगे, अमृत में विष घोल।। (7)

मधुकर फिर क्यों प्राण गंवावो
पुनि पुनि फूलत फूल वाटिका, ललित लतायें लोलित ऋतुपति
आवागमन जग नियम सनातन, फिर क्यों शोक मनावा....... मधुकर

नारायण अंजलि भाग– I :(1) दो. सं.–2594 पृ.क्र.–198, (2)दो.सं.–1466पृ.क्र.–111, (3)दो. सं.–2335 पृ.क्र.–178, (4)दो.सं.–271पृ.क्र.–19,

नारायण अंजलि भाग– II:(5) दो. सं.–1113 पृ.क्र.–86, (6)दो.सं.–256पृ.क्र.–18, (7) दो. सं.–2724 पृ.क्र.–210.

पावस हरित पत्रपीले हों, शिशिर समीर उड़ाये पल में

पादप पुष्प प्राण एक दिन तजि, गति अन्तिम गुण गावो...मधुकर (1)

जहाँ इन उद्धरणों में तत्सस शब्दों की शालीनता है वहीं एकाध क्रियापद अन्य भाषा के आ गये है जिनसे पद में पैबन्द लगा सा तो नहीं लगता पर माधुर्य आ गया है।

ग्रामीण प्रयोग :—

पी मधुवा उछरै अधिक, बड़ो बजावे ढोल

खोजति हैं भगवानहि, अमरित में विस घोल।। (2)

पिता मोर मद्यप अलि, होत रारि परिवार

निज कुल की भई दुर्गति, जूनै कठिन अहार।। (3)

मद्यपों के घर की दुर्दशा की वर्णन संभवतः इसी भाषा में उपयुक्त हुआ है।

जासों सरै न काज कछु, ताहित जो छिन मांहि

बनिं काँटा करकै सदा, हिय को हरत उमाँहि।। (4)

इन दोहों में उछरै, अमरित, जूनै, सरै, हरत, उमाँहि—शब्द ग्रामीण हैं ।

कभी—कभी तो नितान्त देसी यहां तक कि श्रवण वर्जित (सभ्य समाज में) शब्द भी कवि ने अपनी गंवारू भाषा के शब्दों के साथ प्रयोग किये हैं—

खाय, हगै, प्रसव करै, माथे तिलक लगाय।। (5)

जब लौं मैं छिनरी रही, छुछुवावति दिन रैन। (6)

इस प्रकार भाषा का वैविध्य श्री 'बौखल' के काव्य में सर्वत्र उपलब्ध है।

अलंकार

'अलंकरोति इति अलंकारः' इस परिभाषा के अनुसार जो अलंकृत करे वह अलंकार है। अलंकृत करने का अर्थ है शोभित करना, सौंदर्य बढ़ाना। शरीर के सौंदर्य में वृद्धि करने वाले तत्व जैसे सुन्दर वस्त्र, आभूषण आदि अलंकार की श्रेणी में आते हैं। जिस प्रकार नारी के शरीर को आभूषण सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार काव्य में चमत्कार के द्वारा अलंकार काव्य के सौंदर्य को बढ़ाते हैं। स्वर्णाभूषण कटाव व जड़ाव के द्वारा निर्मित होकर अधिक आकर्षक हो जाते हैं उसी प्रकार कही जाने वाली बात में कुछ कौशल, कुछ बांकपन आ जाने से उसमें चमत्कार आ जाता है और कथ्य अधिक सुषमामंडित हो जाता है। चूंकि यह चमत्कार शब्दों के माध्यम से आता है अतः शब्दालंकारों को प्राचीन कवियों ने अधिक महत्व दिया है।

'अलंकार' का सामान्य अर्थ आभूषण होता है, जैसे आभूषण शरीर का अंग न होकर ऊपर से आरोपित होते हैं वैसे ही अलंकार भी काव्य के अंग या उसकी आत्मा न होकर उसमें सौंदर्य का वर्द्धन करने वाले कारक होते हैं, वे शैली से सम्बन्धित तत्व होते हैं। इस प्रकार अलंकार कथ्य न होकर कथन शैली के विशिष्ट प्रकार के होते हैं। काव्य में उपयुक्त स्थान पर अलंकारों का प्रयोग

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.— 352 पृ.क्र.—102,

नारायण अंजलि भाग — I :—(2) दो. सं.—827पृ.क्र.—62,(3)दो.सं.—830पृ.क्र.—62,

(4) दो. सं.—1810पृ.क्र.—143,(5)दो.सं.—1890पृ.क्र.—143,

(6) दो. सं.—1887पृ.क्र.—143.

किया जाना चाहिये तभी वे उसका सौंदर्य बढ़ा सकते हैं अन्यथा अनावश्यक प्रयोग से वे भार स्वरूप हो जायेंगे। अतः इन्हें साधन ही माना गया है शोभा बढ़ाने के लिये। 'दण्डी' के अनुसार ''काव्य शोभाकरान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते''।

परन्तु प्राचीन अलंकार वादियों—आचार्यों का मत है कि अलंकार स्वभावतः सौंदर्य प्रदान करने के साधन है। आचार्य भामह के अनुसार "जैसे स्त्री का सुन्दर मुख भी बिना आभूषणों के नहीं सजता।''

जयदेव के अनुसार— "जो अलंकारवादी शून्य शब्दार्थ में भी काव्य स्वीकार करते हैं वे ज्ञानी लोग अग्नि में भी अनुष्णता को स्वीकार करें" अर्थात उष्णता का जो सम्बन्ध अग्नि से है वही सम्बन्ध अलंकार का काव्य से है। आचार्य वामन ने अलंकार को सौंदर्य के पर्यायवाची के रूप के ग्रहण किया है। इन विद्वानों ने अलंकार को काव्य का स्थिर और अनिवार्य तत्व माना है; परन्तु मम्मट, विश्वनाथ आदि ने इस बात का खंडन किया है उन्होंने अलंकार को काव्य का आंतरिक रूवरूप न मानकर केवल बाह्य साधन ही माना है।

इन सभी आचार्यों के मतों को देखने से ज्ञात होता है कि यद्यपि अलंकारों का महत्व काव्य में सर्वोच्च्य नहीं होता फिर भी यह तो सत्य है कि वे काव्य में उस गुण की सृष्टि करने में समर्थ होते है जिसके कारण पाठक बार—बार अलंकृत काव्य की ओर आकर्षित होता है। कुशल कवि अलंकारों का प्रयोग करते समय इतना सचेत रहते हैं कि काव्य के मूल भावों पर अलंकार हावी न होने पावे बल्कि उनसे संपृक्त होकर इस प्रकार आगे बढ़ते जाये कि पाठक या श्रोता उनसे चमत्कृत भी हो जाये और उसे किसी अस्वाभाविकता का अनुभव न हो। काव्य का रसास्वादन करने के लिये कवि कथन के रूखे सूखे आकाश की अपेक्षा सतरंगे इन्द्रधनुष की आभा वाले नयनाभिराम रूप की कल्पना अधिक मोहक होती हैं— अलंकार यही सतरंगी आभा देने वाले साधन हैं।

विचारणीय है कि केवल सौंदर्य के बाह्य साधन होने पर भी अलंकारों का इतना महत्व क्यों है? नारी को प्राकृतिक रूप से सौंदर्य मिलता है पर फिर भी उसे आभूषणों का मोह रहता है और वे उसके सौंदर्य को बढ़ाते भी हैं, साथ ही यह मनोविज्ञान भी निहित रहता है कि बाह्य सौंदर्य की वृद्धि के साथ उसके आन्तरिक अहम् की भी पुष्टि होती है, और यही संतुष्टि उसके मुख को और अधिक सुन्दर बना देती है, उसका स्वाभाविक सौंदर्य द्विगुणित हो उठता है। यही दशा काव्य की है, अलंकारों से उसकी काव्य शोभा वृद्धि के साथ—साथ उसकी आन्तरिक ध्वन्यात्मकता भी रोचक और आकर्षक हो उठती है तथा सहृदय पाठक उस माधुर्य को ग्रहण करने लगता है।

आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी कहा है—"वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने के लिए भाव को उत्कर्ष पर पहुँचाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं।''

अलंकार और अलंकार्य (भाव) में वही सम्बन्ध है जो सम्बन्ध मुख चन्द्र पद में चन्द्र और मुख का है। मुख अलंकार्य है चन्द्र अलंकार है।

अलंकार न केवल नागर वरन् ग्रामीण जन की भाषा को भी आकर्षक बनाते हैं, प्रेम, वात्सल्य, घृणा आदि की भाषा में जो व्यंजना होती है उससे वह स्वयं अलंकृतवती हो जाती है।

अलंकारों के प्रकार — अलंकारों को प्रमुख तीन वर्गों में बांटा गया है—

(1) शब्दालंकार — जब शब्दों में चमत्कार निहित हो।

(2) अर्थालंकार — जब अर्थो में चमत्कार निहित हो।

(3) उभयालंकार — एक ही स्थान पर दोनों या दो से अधिक अलंकार उपस्थित हों वहां उभयालंकार होता हैं

श्री 'बौखल' के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण—

शब्दालंकारों के अन्तर्गत

अनुप्रास अलंकार—

काय डोल हिंडोलना, मनुवा डोल तरंग।
करि भरमण ब्रह्मण्ड को, पुनि लौटे निज अंग।। (1)

पुहुप पराग विराग लै, उपवन गमन वसन्त
झौंरि—झोंरि झुकि झुकि नित, बिछुरन मिलन कुअंत।। (2)

भरि झोरी रोरी चली, पिय संग खेलन फाग
सखी सयानी संग नहीं, कैसे मिले सुहाग।। (3)

खेलि खेलि खाली भई, लाली में भई लाल।
अलि मुख मारी मेलि मुख, खेलन खेल बिहाल।। (4)

खुरपा, कमरी, कॉंखरी, दमरी चमरी चोर।
चपस चितौनी चेतिया, हरिया आँखन कोर।। (5)

यमक—अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णो का पुनः श्रवण यमक अलंकार कहलाता है।(6)

श्याम सरोरुह श्याम सर, श्याम वर्ण तन भौर।
बसो श्याम अब नहीं तजौ, श्याम नैन मम ठौर।। (7)

यहाँ यमक अलंकार है क्योंकि श्याम शब्द की तीन आवृत्तियाँ हुई हैं। पर एक 'श्याम' का अर्थ कृष्ण व शेष का अर्थ काला है।

चकवा चाह दिनेश की, चन्दा चाह चकोर
चाह बखानों कौन विधि, चाह पतंग कठोर।। (8)

यह अनुप्रासलंकार का उदाहरण है, च वर्ण की आवृत्ति होने से अनुप्रास व चाह शब्द चार बार आने से व एक ही अर्थ देने से पुनरुक्ति प्रकाश है।

मंजु मनि मरकत मनि, इन्द्रनील मणि लाल।
मदन मधुर मूरत विमल, मन मोहन मदमाल।। (9)

'म' व 'ल' वर्णो की अनेक आवृत्तियों के कारण यह श्रुत्यनुप्रास का उदाहरण है।

नारायण अंजलि भाग – II:—(1) दो. सं.—184 पृ.क्र.—13,(2)दो.सं.—218पृ.क्र.—15,
(3) दो. सं.—206 पृ.क्र.—14,(4)दो.सं.—549पृ.क्र.—41,
(5) दो. सं.—539 पृ.क्र.—40,(7)दो.सं.—437पृ.क्र.—32,
(8)दो. सं.—2371 पृ.क्र.—183,(9)दो.सं.—2102पृ.क्र.—162
(6) "काव्य प्रकाश" — 9183.

मग साँकरि कांकरि गैर, सिर घट घूंघट गैल।
बहत पौन ढाकै उरज, लज्जा लोचन छैल।। (1)

प्रथम पक्ति के प्रथम चरण में सांकरि 'कांकरि' में 'क' वर्ण की दो बार आवृत्ति हुई है अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है। अंतिम चौथे चरण मे भी 'ल' दो बार आया है अतः अनुप्रास है।

रस रंग अंग दुति उमगि उर, उमरि वारि बुध प्रीति।
छुइ छाती छिन छिलकि तिय, छली छैल रति रीति।। (2)

यहाँ प्रथम व अंतिम चरणों में 'र' वर्ण की दो से अधिक आवृत्तियां तथा दूसरी पंक्ति में 'छ' वर्ण की कई आवृत्तियाँ श्रुत्यनुप्रास के उदाहरण है।

काह कवि अपनावहि, काको करि परित्याग।
काकी करि आलोचना, काको करि अनुराग।। (3)

'क' वर्ण प्रथम वर्ण होने व कई बार उसकी आवृत्तियां होने से अनुप्रास है।

जो लागी लागी कहै, सोवै गौड़ पसार।
देह दहै अंगार सम, अँसुवन बहि बहुधार।। (4)

यहाँ लागी शब्द दो बार आया है एक 'लागी' का अर्थ मन की लगी। अर्थात प्रेम की पीर है और दूसरी लागी का अर्थ तीक्ष्णता से है अर्थात यमक अलंकार हुआ। लोक कहावत है कि किसी तीखी बात के लिए 'लगती हुई बात' कहा जाता है। बिरहिणी नायिका अपनी व्यथा बताते हुए कहती है कि यदि मैं अपने मन की बात कह देती हूँ तो थोड़ी देर के लिए चैन मिल जाता है और पैर फैलाकर सोने का मन हो जाता है; पर उसी बात की तीक्ष्णता को याद कर के देह अंगारों जैसी जलती है जबकि आँखों से आँसू की धारा भी निरन्तर बहती रहती है। विरह की आंच के साथ–साथ यह पश्चाताप की भी ज्वाला है जिसके कारण आंसू थमने का नाम नहीं लेते। इस छोटे से दोहे में नायिका के आक्रोश, भर्त्सना, विश्राम व पश्चाताप के मनो भावों को सुन्दरता के साथ पिरोया गया है।

खरी खांड साई दियो, मूरख लियो मिलाय।
चाखे स्वाद न पाइयाँ, पुनि को स्वाद बताय।। (5)

यहाँ 'स्वाद' शब्द दो बार आया है जिसके दोनों बार भिन्न अर्थ हैं –

परमात्मा ने मनुष्य जीवन की 'खरी खांड' शुद्ध मिठास दी थी, परन्तु मूर्ख मनुष्य ने इसमें विषय वासनाओं की कटुता घोल दी। अब उसे चखने पर जीभ को वह अनुभूति नहीं होती जो शुद्ध मिठास चखने पर होती तो अब उसे जीवन के 'स्वाद' अर्थात उस आनन्द की प्राप्ति कैसे हो जो निर्मल आनन्द उसे परमात्मा की ओर से जीवन के रूप में सहेजा गया था।

खोजे मिलै न आतरो, जर्जर सकल शरीर।
बारि–बारि छुई बापुरी, मौनी मनै उशीर।। (6)

उपरोक्त दोहे में एक 'बारि' का अर्थ पानी तथा दूसरे 'बारि' का अर्थ आवृत्ति है। विरह के

नारायण अंजलि भाग– II:–(1) दो. सं.–2095 पृ.क्र.–162,(2)दो.सं.–2942पृ.क्र.–226,
(3) दो. सं.–1246 पृ.क्र.–96,(5)दो.सं.–559पृ.क्र.–41,
(6)दो.सं.–537पृ.क्र.–40,

नारायण अंजलि भाग – I :–(4) दो.सं.–1896पृ.क्र.–144.

कारण नायिका का शरीर इतना जर्जर हो गया है कि उसके शरीर के होने न होने का अन्तर ही खोजने पर भी नहीं मिलता, यही कारण है कि वह बेचारी मौन रहकर बार–बार उशीर (खस) से शीतल किया गया पानी छूती रहती है– ठंडे पानी से उस विरह की ज्वाला को शान्त करने का अवसर खोजती रहती है।

श्लेष– जहाँ एक ही शब्द दो अर्थ दे पर प्रयुक्त एक ही बार हो वहाँ श्लेष होता है। (1)

बिरहिन मूर्च्छा श्याम तन, चेते जिय अकुलाय।
रसिक भौंर बन बिहरै, पियत पराग अघाय।। (2)

यहाँ श्याम तन=कृष्ण का शरीर, श्याम तन= काला शरीर यह श्याम तन दूसरी बार काले भौंरे का विशेषण बनकर आया है। इस श्लेष युक्त पद में नायिका द्वारा नायक के लिए दिये गये उपालंभ का सुन्दर प्रयोग है। नायिका तो जब कृष्ण के तन (नायक के शरीर) की ओर देखती है तो जी की आकुलता के कारण उसे मूर्च्छा आ जाती है; परन्तु वही निर्मोही जब वन में रसिकता का बाना ओढ़कर पुष्पों का पराग पी पी कर तृप्त होता है तो नायिका का उद्वेग फूट पड़ता है। उसने काले भौंरे के ब्याज से– अनेक नायिकाओं से प्रेम करने वाले ठग नायक को तीखा उपालम्भ दिया है। यहाँ अन्योक्ति अलंकार भी है।

स्नेही हिय जानि अलि, बिरहा अभय मरोरि।
अन्तराल ज्वाला धधकि, सब अंग रक्त निचोरि।। (3)
स्नेही–प्रेम, स्नेही–तेल से भरे हुए

यहाँ स्नेही शब्द के दो अर्थ हैं एक प्रेम तथा दूसरा तेल से भरे हुए। विरहिणी नायिका अपनी सखी से इस निष्ठुर विरह की करतूत बता रही है कि इसने मेरे प्रेमी ह्रदय में सब अंगों का रक्त निचोड़ कर ज्वाला सी धधका दी है क्योंकि इस अभय, स्वच्छन्द विरह को प्रिय मिलन की आशा से विरक्ति है। दूसरी ओर इसे ज्ञात है कि मेरा ह्रदय स्नेहयुक्त (तैल युक्त) है अतः तैल के संयोग से अग्नि के प्रचण्डता से धधक उठने की सम्भावना है यह जानकर ही यह मुझे तड़पा रहा है।

काजर कारी कोठरी, लागि न काजर कोय।
विमल नेह नगरी बसी, हिरदै दीपक रोय।। (4)

नायिका के ह्रदय में निर्मल निश्छल प्रेम का विस्तृत संसार बसा हुआ है अपने प्रिय से उसे अगाध प्रेम है इसी से उसका यह संसार प्रेमी की दीप्ति से जगमगाता रहता है, परन्तु दूसरी ओर वह यह भी बताती है कि मेरे स्नेही ह्रदय में प्रेम का दीपक तैल के भरे रहने के कारण सदैव जलता रहता है उसी के धुयें से यह कोठरी काली काजल जैसी हो गई है, फिर भी यह काजल किसी को लगता नहीं है, यह बड़े अचरज की बात है।

काव्य जगत में यह तो प्रसिद्ध ही है कि प्रेम का रंग ऐसा अद्‌भुत होता है कि वह जितना चटक होता जायेगा उतनी ही उससे उज्जवलता आती जाती जायेगी, काजल या कल्मष को तो वहां कोई स्थान ही नहीं है।

---

(1) साहित्य दर्पण – 10/11

नारायण अंजलि भाग– II:–(2)दो.सं.–1438पृ.क्र.–111, (3)दो. सं.–1923 पृ.क्र.–149, (3)दो. सं.–2745 पृ.क्र.–211.

कविवर बिहारी के इस दोहे से उपर्युक्त दोहे का कितना साम्य है, देखें–

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहि कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रंग, त्यों त्यों उज्जवल होय।।

यहाँ श्लेष के साथ विरोधाभास अलंकार भी है।

<u>अर्थालंकार</u>–

अर्थालंकार काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य का द्योतन करने वाले तत्व होते हैं, जिनके प्रयोग से उक्ति वैचिंय होने के कारण काव्य में सौन्दर्य दिखाई देने लगता है। यह सौन्दर्य शब्दों में न होकर अर्थ में सन्निहित रहता है। शब्दालंकारों की भांति इसमें शब्दों के हेर–फेर से सौन्दर्य नष्ट नहीं होता, एक शब्द का अन्य पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी अर्थ की सुन्दरता ज्यों की त्यों रहती है। यह अर्थगत सौन्दर्य किसी युवती के आन्तरिक लावण्य की तरह होता है जो बाह्याभरणों की अनुपस्थिति में भी स्वयमेव दमकता रहता है यह आन्तरिक लावण्य होता है और सदा मनोहारी होता हैं

मुख्यतः अर्थालंकार तीन प्रकार के होते हैं–

(1) सादृश्य मूलक
(2) विरोध मूलक
(3) अन्य संसर्ग मूलक

महाकवि बौखल के विपुल रचनाकर्म में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है और जहाँ भी हुआ है उत्कट सजीवता के साथ ही हुआ है, यद्यपि उन्होंने जितने भी विषयों पर लेखनी चलाई है वे सभी सार्वभौमिक सत्यों के रूप में अधिक निखर कर सीधे–सीधे कलेवर में ही आये हैं, प्रयत्नसाध्यता कम ही स्थानों पर परिलक्षित होती है।

<u>उपमा</u>– अर्थालंकारों में उपमा का बहुत महत्व है, कवि अपनी बात कहने के लिए कल्पना के द्वारा सादृश्य मूलक कुछ विषय चुनता है तथा उससे समानधर्मिता प्रदर्शित करते हुए साम्यवाची शब्दों के प्रयोग से अपने विषय को हृदयंगम कराता है–

पिय वियोग बिलखति महीं, 'बौखल' जिमि घन माल।
सारंग वच उर धीर भो, सुनि आयो सुखपाल।। (1)

यहाँ वियोगी के हृदय की उपमा वर्षा से रहित सूखी दरेरा फटी हुई बेहाल पृथ्वी से दी है जैसे सूखी धरती मोर की बोली सुनकर प्रफुल्लित हो उठती है कि अब आकाश में घटायें आयेंगी और मुझे सुख देने वाली वर्षा होगी, उसी प्रकार वियोगी का हृदय भी बादलों का स्वर सुनकर प्रफुल्लित हो उठा है कि अब उसका प्रिय से मिलन होगा, वर्षा ऋतु में प्रवासी प्रियतम घर आने को सोच रहा होगा। यहाँ सारंग का अर्थ मोर व बादल दोनों हैं।

रंग–रंगाये नहि चढै, आपै रंग चढि जाय।
ज्यों बन उपजी बेलरी, फूलै फलै सवांय।। (2)

यहाँ पर 'जिमि' (ज्यों) सादृश्यवाची शब्द के द्वारा उपमा दी गई है। प्रेम का रंग बड़ा अद्भुत होता है, वह न तो किसी के कहने से चढ़ता है न ही उसमें किसी के प्रयत्न से बढ़ घट होती है, वह तो इतना स्वाभाविक होता है कि जिससे प्रेम होना होता है अपने आप ही हो जाता है। ना जाने कौन

नारायण अंजलि भाग– II:–(1)दो.सं.– पृ.क्र.– , (2)दो. सं.–387 पृ.क्र.–28.

सी चटकाई चित्त को छू जाती है। इसके लिए कहा भी गया है कि ''वा चितवन औरे कछू जेहि बस होत सुजान'' । कवि ने यहाँ इस स्थिति की उपमा वन वल्लरी से दी है जो स्वयमेव उगती, फूलती और सवाई होकर फैलती है, जिसे किसी के पोषण की आवश्यकता नहीं रहती।

बिरही पाँव पहार लौं, पूछि पिया को गाँव।
नैन नीर नदिया बहै, स्वांस डोलि अलि नाँव ।। (1)

विरही को प्रिय से वियुक्त हुये इतना समय बीत गया है कि वह अपने प्रियतम का गांव (ठौर ठिकाना) भी भूल गया है। अब जब वह उसके स्थान तक ढूंढने को चल पड़ा है तो उसके पैर पहाड़ से भारी हो उठे हैं। उससे आगे चला ही नहीं जाता, साथ ही नेत्रों से जो अनवरत जल प्रवाह हो रहा है वह मानों बढ़ी नदी के समान है जिसका पार करना ऐसी मानसिक स्थिति में असम्भव लग रहा है और उस बढ़ी हुई नदी में उसके ऊर्ध्व श्वासों से भरी हुई नौका डगमगा रही हैं ।

उक्त दोहे में उपमा के साथ–साथ स्वभावोक्ति और अतिशयोक्ति अलंकार भी स्वतः आ गये है। अवसाद की मनःस्थिति में पैरों का भारी हो जाना स्वाभाविक प्रतिक्रिया है इस अवसाद से विरह की उत्कटता व्यंजित हो रही है, फिर भूले हुए स्थान को खोजने के समय में मार्ग में नदी का आ जाना वह भी अश्रुजल की नदी–यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार भी स्वाभाविक रूप से आ गया है। इस बाधा के कारण प्रिय मिलन की आश भी क्षीण होने लगी है, श्वास की ऊर्ध्व गति से नाव की डगमगाहट होने के द्वारा इस मनःस्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

"प्रीति पाश परि प्राण अजि, बिरहिन गति जस मीन।
बिलखत स्वांस प्रस्वांस तन, विधि पदपक्ष विहीन ।। (2)

यहाँ 'पद' शब्द में श्लेष व पूरे पद में उपमा अलंकार है। इस दोहे में विरहिन नायिका की तलफन की उपमा पाश में फंसी हुई मछली से दी गई है, उसके तैरने वाले छोटे पंख व पैर दोनों ही जाल में आकर व्यर्थ हो जाते हैं, वैसे ही प्रीति के पाश में बंधी हुई नायिका भी पैरों व अपने पक्ष से नितान्त हीन हो जाती है, उसके पैरों की गति अवरुद्ध हो गई है, उसके क्रिया कलाप शून्य हो गये है, और उससे कोई सहानुभूति दिखाने वाला उसका पक्षधर भी नहीं रह गया क्योंकि अपनी वह वेदना किसी से कह भी तो नहीं सकती अतः पाशबद्ध मीन की भाँति केवल श्वास प्रश्वास लेकर ही अपनी वेदना से तड़पती रहती है जैसे मछली कुछ देर साँसे लेकर समाप्त हो जाती है। उपमा अलंकार का एक अन्य उदाहरण देखें –

"तेल तूल दोनों जरै, ईधन करि तम छारि।
ज्यों अलि हिय जिय विरह चुरि, नेह नगर उजियार ।। (3)

(4)
रूपक–एक वस्तु में दूसरी वस्तु को आरोपित करना ही रूपक होता है–

"प्रेम बेलि उर कलित अलि, विरहा ग्रीष्म लुवार।
तन उपवन मन माली, सींचहु सुरति संभार ।। (5)

कवि का कथन है कि हे आली। प्रेमी हृदय तो वल्लरी होता है जैसे वल्लरी माली के हाथों

नारायण अंजलि भाग– II:–(1)दो.सं.–1485पृ.क्र.–115, (2)दो. सं.–1615 पृ.क्र.–125
(3)दो.सं.–2627पृ.क्र.–203, (5)दो. सं.–1622 पृ.क्र.–125,
(4) काव्य प्रकाश – 10/93.

शीतल जल से सींची जाकर फलती फूलती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु आने पर वही गर्म हवा–लू के थपेड़ा से सूखने लगती है– वैसे ही प्रेमी हृदय प्रीति का निवास स्थान होता है जो प्रिय के स्नेह जल से सिंचकर लहलहाता रहता है पर जब प्रिय वियोग उपस्थिति होता है तो वहीं मुरझाने लगता है। कवि तन के उपवन में खिली हुई इस प्रीति वल्लरी को मन माली से निरन्तर 'सुरति' – प्रिय मिलन की उत्कटता–जल से सींचते रहने को कहता है जिससे उसे ग्रीष्म (विरह) की आंच में न जलना पड़े। प्रेमी हृदय का प्रीति से कभी नाता न टूटे जिससे उसकी सुरति की तीव्रता में सदा चौगुनी वृद्धि होती रहे।

प्रेम कटारी रिस भरी, रिसि रिसि टपकै घाव।
कहत बनत नहिं काहु सों, लेत बनत नहि दाव।। (1)

प्रेम कटार, बड़ी तीक्ष्ण होती है जिस मन में चुभ जाये उसका दुःख से निस्तार कठिन हो जाता है, रिस रिसकर के घावों से रक्त जैसे बहता रहता है, यह रक्त प्रीति के आलम्बन–प्रेमी की स्मृतियों की टीस के बार–बार उभरने से स्त्रवित होता है। यह पीड़ा अलक्षित होती है संसार के लिए, केवल भुक्तभोगी प्रेमी ही इसे अन्तर में छिपाये हुए सहता रहता है। और भी कष्टकर तो ये है कि इस पीड़ा को देने वाले के प्रति कोई कटुभाव भी नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह तो इस मरणान्तक कष्ट को देकर भी प्रिय के गुह्य मन में इष्ट की भांति बसा रहता है अतः किसी से दाव (बदला) भी नहीं लिया जा सकता।

प्रिय प्रतिमा विरह अनल, रक्त आंस चुईनैन।
विनय करत अलि उर जरै, निकसि जरत मुख बैन।। (2)

प्रियतम् की प्रतिमा, जो हृदय में बसी सी रहती है–तक का विरह इतना तीव्र होता है कि वह विरह अग्नि बनकर अग्नि धर्मी कार्य करने लगता है। शरीर का रक्त आंसू बन–बन कर टपकने लगता है। इस भयंकर अग्नि में भीतर बाहर जलना प्रिय की नियति बन गई है। यह–विरह अनल का वेग इतना तीव्र हो जाता है कि भीतर से अनुनय विनय करते समय तो हृदय ही जलने लगता है और यदि वह बाहर से वाचिक अनुरोध करे तो मुख से निकलते शब्द ही उसाँसों की प्रचण्डता से ज्वलनशील हो उठते हैं।

<u>दृष्टान्त</u>–उपमान, उपमेय और उनके साधारण धर्मो में बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है – (क) दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् (3)
(ख) दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम् (4)

परसि करबो कठिन जग, छली छोह पय पाथ।
हरो पात अलि अरुण रंग, पिसतै मेंहदी हाथ।।

शत्रु मित्र, छली, सज्जन, हित अनहित की पहिचान करना बड़ा कठिन होता है क्योंकि ऊपर से देखने में कुछ और ही दृष्य या स्वभाव दिखाई देता है पर समय पड़ने पर वास्तविकता समझ में

नारायण अंजलि भाग– II:–(1)दो.सं.–1604पृ.क्र.–124, (2)दो. सं.–1645 पृ.क्र.–127, (3) काव्य प्रकाश – 10/102, (4) साहित्य दर्पण – 10/50.

आती है जैसे मेंहदी की पत्ती का हरा रंग पिसने पर लाल दिखता व हाथों को लाल कर देता है।

प्रीति न टूटै जनम भर, जो हिय जाय समाय।
राहु मयंक मिलन अलि, लखि चकोर बिलखाय।। (1)
धरै उतारै केंचुली, विष नहिं तजत भुजंग।
बहै सुगंध बयार संग, चन्दर लपटि सुअंग।। (2)
अँचरे में हीरा धरे, जौहरि खोज जहान।
मन मलीन मूरख फिरै, गगन गहत पाखान।। (3)
लज्जवान डूबै तुरत, निर्लज डूबत नाँय।
'बौखल' छिपि सोना गयो, नाँव कीच धँसि जाय।। (4)

सोना वजनी होता है वह पानी में गिरते ही डूब जाता है परन्तु नाव काठ की होती है अतः वह पानी में डूबती नहीं बल्कि कीचड़ में ही धंसकर रह जाती है। सलज्ज और निर्लज्ज को सोने व काठ की नाव के दृष्टान्त से स्पष्ट किया गया है।

<u>विरोधाभास</u>– दो असमान वस्तुओं की क्रियाओं के परिणाम जब विरोधी रूप में सामने आने लगें तब वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है–विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः (5)

मरी न माहुर के पिये, जरी न आग अंगार।
नहि नाग नदिया बहै, बिरहिन बिलखि पहार।। (6)
ज्यों ज्यों बाढ़े अश्रुजल, बिरह ज्वाल अधिकाय
लगी बुझै नहि बावरी, बहुतक कारण पाय।। (7)

अश्रुजल के बढ़ने से आग को बुझ जाना चाहिए, पर वह पानी पाकर विरह की आग बुझाने की जगह और और बढ़ती जाती है।

आग लगी हिय प्रीति करि, बुझै शरीर समेत।
खोजत सिन्धु तड़ाग सर, योनी पाप परेत।। (8)

जब हृदय में प्रीति की आग लगी हो तो शरीर को भी जल जाना चाहिए परन्तु वह इस अग्नि में बुझ गया अर्थात समाप्त हो गया। यहाँ अश्रुजल व विरह ज्वाला में रूपक अलंकार है।

<u>सन्देह</u>– प्रकृत में कवि प्रतिभोत्थित अप्रकृत के संशय को संदेह अलंकार कहा जाता है–

संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः (9)

जोगी पीर बढ़ै अधिकाई
कछु जन कहैं गगन पिय खेलै कछुजन घर दरशाई ......
कछुजन कहैं ओट अँखियन के, कछुक जन कहि गुरूताई
कछुजन कहैं रूप अलबेला, कछुजन जग परसाई.......
'बौखल' समुझि न परै समस्या, भणि बुधिया चकराई ।। (10)

नारायण अंजलि भाग– II:–(1)दो.सं.–1601पृ.क्र.–124, (2)दो. सं.–951 पृ.क्र.–73 , (3)दो.सं.– पृ.क्र.– , (4)दो.सं.–326पृ.क्र.–23, (6)दो.सं.–2177पृ.क्र.–168,(7)दो.सं.–2189पृ.क्र.–169, (8)दो.सं.–2061पृ.क्र.–159,(5) काव्य प्रकाश–10/110

नारायण नैवेद्य :– (10) पद.सं.–1273 पृ.क्र.–367, (9) साहित्य दर्पण – 10/35/6

<u>असंगति</u>–

जहाँ पर कार्य तथा कारण की स्थिति भिन्न हो अर्थात कारण कुछ और है और उसका कार्य कहीं और हो अर्थात कार्य कारण में संगति न बैठे–वहाँ <u>असंगति</u> होता है ।

मद महकै देही जरै, अलि निरहा मधुमास
बहु अकाश धरणी तपै, जरै न जिये उस्वांस ।। (1)

बिरह अनल असुंआ बुझै, सुलगि सुलगि रहि जाय
बादर बरसै बूंदियां, झौंसो जिय अधिकाय ।। (2)

माहुर पी बौरी भई, नहि निकसे तन प्राण
बिरहा करिहै कौन गति, नटई रपटि कृपाण ।। (3)

इन तीनों दोहों में कार्य के कारण में असंगति है; क्योंकि मद महकने से देह को प्रफुल्लित होना चाहिए तो वह जल रही है और मधुमास आने पर मिलन होना उपयुक्त है तो वहाँ विरह जला रहा है (प्रथम दोहा) । दूसरे में – आँसुओं से अग्नि बुझ जाना चाहिए पर देह सुलग सुलग कर रह जाती है । बादल बरसते हैं पर शीतलता मिलने के स्थान पर जला हुआ जी और जल जाता है । तीसरे में – माहुर (विष) पीने पर मर जाना कार्य है पर प्राण नहीं निकल रहे ।

<u>विशेषोक्ति</u> –

जहाँ कारण होने पर भी कार्य न हो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है–

मम्मट लिखा है– विशेषोक्तिरखंडेषु कारणेषु फलावचः (4)

बिरहा पावक नहिं बुझै, अलि नित छैल समीप
छिन छिन छुई दग्धित हिये, तन पतंग लौं दीप ।। (5)

स्वाती बरसै बूंदियाँ, चातक नहीं अघाय
शुक्ता पालै हंस अति, आँचर दूध पियाय ।। (6)

नायिका के समीप हर समय प्रिय की उपस्थिति है जिससे विरहाग्नि को समाप्त हो जाना चाहिए पर वह शांत नहीं होती और शरीर पतंग की भांति दीपक पर जलता रहता है। (प्रथम दोहा)। दूसरे दोहे में–स्वाति बूंद के बरसने पर भी चातक तृप्त नही होता, जब कि उसकी प्यास स्वाति जल से बुझती है । यहाँ कारण होने पर कार्य नहीं हो रहा ।

चातक मरि बिन नीर अलि, बरसि गगन घनघोर
प्रीति रीति कछु और है, नैन नेह लगि डोर ।। (7)

यहाँ भी घनघोर वर्षा होने पर भी चातक के तृप्त न होने के दृष्टान्त से प्रीति की निराली रीति का उल्लेख किया गया है ।

सजल सघन बनि बादर, नित बरसै इन नैन।
शीतल उर आँगन रहे, विरह ज्वाल दहि मैन।। (8)

नारायण अंजलि भाग– II:–(1)दो.सं.–3169 पृ.क्र.–244,(2)दो. सं.–1287पृ.क्र.–100, (3)दो.सं.–2119पृ.क्र.–164,(5)दो.सं.–1597पृ.क्र.–123, (7)दो.सं.–358पृ.क्र.–26, (8)दो.सं.–1947पृ.क्र.–150,

नारायण अंजलि भाग–I:–(6)दो.सं.–986पृ.क्र.–74, (4) काव्य प्रकाश–10

पानी का अज़स्र स्रोत बनकर आये सघन बादल विरहिणी के नेत्रों में समा गये हैं, दिन रात बरसते रहते हैं, उनका प्रयत्न है कि हृदय का आँगन शीतल बना रहे परन्तु उतनी शीतलता पाकर भी यह पापी कामदेव (मैन) विरह की ज्वाला में पूरे शरीर को जलाता रहता है।

जिन नैननि निर्दय बसे, उन नैननि बरसात।
अचरज होवै अलि बहुत, बिरहा ज्वर जरिगात।। (1)

कितने आश्चर्य की बात है कि जिन नेत्रों को निर्दयी प्रिय के निवास होने कारण और विरह ज्वर से समस्त शरीर को जलाये जाने के कारण कठोर हो जाना चाहिए था वे ही अश्रुजल की बरसात करते रहते हैं अर्थात् कोमलतम अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति करते रहते हैं।

भ्रान्तिमान– अत्यन्त सादृश्य के कारण प्रकृत में अप्रकृत के निश्चयात्मक ज्ञान को भ्रान्तिमान अलंकार कहा जाता है– भ्रान्तिमानन्य संवित् तत्तुल्यदर्शने। (2)

गुखरू लागी पाँव में, रहि रहि हिये पिराय।
वैद औषधी देत मुख, नारि रही भरमाय।। (3)

नायिका को पैर में गुखरु गड़ी है (प्रिय के समीप जाने के मार्ग में) अतः रह रहकर हृदय में पीड़ा हो रही है, वैद्य बेचारा कुछ न समझकर मुख में औषधि दिये जा रहा है। स्त्री इसी भ्रम में पड़ी हुई है कि पीड़ा तो कहीं और किसी और कारण से हो रही है, पर दवा मुख में खाकर क्या पायेगी। यह तो उसकी व्याधि का उपचार नहीं है।

दै स्मृति निर्दय गये, बढ़ि वेदन दिन रात।
वैद औषधी कौन अँग, सगरो अँग पिरात।। (4)

वेदना देकर तो (अपनी स्मृतियों की) निष्ठुर प्रियतम् चला गया है, जो रात दिन बढ़ती ही जा रही है। वैद्य सभी अंगों में पीड़ा समझ रहा है वह किस किस अंग की पीड़ा के लिए दवा दे।

अपन्हुति–जहाँ उपमेय को बाधकर उपमान को आरोपित किया जाय–
प्रकृतं प्रतिबिध्यान्य स्थापनं स्यादपन्हुतिः। (5)

पत्र नहीं सन्तप्त उर, भाषा भाव अँगार।
पढ़ियो मित्र सुचेति ह्वै, आँस सुलोचन ढार।। (6)

नायिका प्रियतम के पास पत्र प्रेषित कर कह रही है कि यह पत्र नहीं है वरन मेरा सन्तप्त हृदय है जिसमें लिखी हुई भाषा नहीं बल्कि भावों के अंगारे भरे हुए है। अतः तुम बहुत स्वस्थ चित्त से इसे पढ़ना, तब तुम्हारे सुन्दर नेत्रों से आंसुओं की धार बह चलेगी।

नारायण अंजलि भाग– II:– (1)दो.सं.–3190पृ.क्र.–245, (3)दो.सं.–3036पृ.क्र.–234, (4)दो.सं.–2634पृ.क्र.–203,(6)दो.सं.–1842पृ.क्र.–142, (2)काव्य प्रकाश – 10/132 एवं साहित्य दर्पण 10/36, (5) साहित्य दर्पण – 10/38.

<u>शब्द शक्ति</u>—

शब्द का अर्थ के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है, वह शाश्वत है क्योंकि शब्द का प्राण अर्थ में ही बसता है, निरर्थक शब्द प्रलाप मात्र होता है, जिस प्रकार जल व उसकी तरंग में कोई भिन्नता नहीं है वैसे ही शब्द व अर्थ अभिन्न होते है। श्री तुलसीदास ने इसे ही सुन्दर उक्ति में कहा है—

गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।

संस्कृत कवि कुल शिरोमणि कालिदास ने शिवपार्वतीवन्दना में उन दानों की एकरूपता इन शब्दों में व्यक्त की है—

वागर्थाविव संपृक्तौ, वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ।।

(जिस प्रकार वाणी और अर्थ परस्पर मिले हुए होते हैं वैसे ही एक दूसरे से अभिन्न संसार के माता—पिता, पार्वती शंकर की वन्दना मैं वाणी और अर्थ की प्राप्ति के लिए करता हूँ।)
प्राचीन दार्शनिक और वैयाकरणों ने इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध की अनेक व्याख्यायें की है। उन्हीं के द्वारा पहिले वैदिक शब्दावली के अर्थ समझाने के लिए 'निघण्टु' शास्त्र की रचना हुई थी। आगे चलकर इसी आधार पर काव्यशास्त्र के आचार्यो को यह चिन्तन प्राप्त हुआ और उन्होंने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। शब्द से अर्थ की प्रतीति कैसे होती है— इस विषय पर विचार करते हुए प्राचीन आचार्यो ने शब्द की शक्तियों की कल्पना की है। उनके विचार से शब्द में कोई ऐसी शक्ति अवश्य होती है जिसके द्वारा वह किसी न किसी अर्थ को या एकाधिक अर्थो को प्रकट करने में समर्थ होता है। शब्द में अन्तनिर्हित इस सामर्थ्य को ही शब्द शक्ति कहा जाता है। इस शब्द शक्ति के अभाव में शब्दार्थ का ज्ञान असम्भव है।

प्राचीन आचार्यें की व्याख्याओं के अनुसार शब्द शक्तियाँ प्रमुखतः तीन मानी गई है— अभिधा, लक्षण और व्यंजना।

शब्द शक्तियों पर विचार करते हुए समय तीन बातें हमारे सामने आती हैं (1) शब्द (2) शब्द का अर्थ और (3) उस अर्थ को जानने का साधन। इसे ही दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि शब्द कारण है और अर्थ उसका कार्य। इस कार्य तक पहुँचने का साधन है शब्द—शक्तियाँ। इस साधन के बिना शब्द व अर्थ के सम्बन्ध को समझना या शब्द के भीतर निहित अर्थ सम्पदा को पहिचानना कठिन है।

इन तीनों शक्तियों का भी शब्द से अटूट सम्बन्ध हैं क्योंकि शक्तियों का आधार तो शब्द ही है। ये शब्द भी तीन प्रकार के होते हैं— (1) वाचक (2) लक्षक (3) व्यंजक।
<u>(1) वाचक—</u> जिन शब्दों को सुनने से ही उनके अर्थ का ज्ञान हो जाये— जैसे पुस्तक, गाय, यह शब्द का मुख्यार्थ या वाच्यार्थ है।
<u>(2) लक्षक—</u> जीवन में जब कभी ऐसा भी होता है जब शब्द के मुख्य अर्थ से काम नहीं चलता, उसमें बाधा उपस्थिति हो जाती है, ऐसी स्थिति में उस शब्द का कोई अर्थ ग्रहण करना पड़ता है जो मुख्य

अर्थ से किसी न किसी रूप से सम्बद्ध हो फिर भी उससे भिन्न हो। इस प्रकार जो अर्थ प्राप्त होता है उसे लक्ष्यार्थ या लाक्षणिक अर्थ कहते हैं। शब्द जब वाचक न रह जाये क्योंकि वह सदा ही वाचक नहीं रहता— तब वह शब्द लक्षक बन जाता है। उसका वाचक या लक्षक होना उसके प्रयोग पर निर्भर करता है। 'गाय' वाचक शब्द है जिसका अर्थ दूध देने वाला पशु विशेष होता है, यह सामान्य प्रयोग है; पर यही गाय शब्द जब किसी बालिका के लिए यह कह कर प्रयोग किया जाता है कि वह तो गाय ही है, तब इस गाय शब्द की लाक्षणिक अर्थ होगा कि वह बालिका गाय के समान सीधी सादी व पवित्र है क्योंकि सीधी, सादी, पवित्र होना गाय का विशेष गुण है। इस विशेषता के आधार पर या लक्षण से जो अर्थ से उस 'गाय' शब्द से निकलेगा वही लाक्षणिक अर्थ होगा। इसे ही शब्द की 'लक्षणा' शक्ति कहते है।

(3) व्यंजक— जब कभी वाच्यार्थ व लक्ष्यार्थ से भी शब्द का अभिप्रेत अर्थ न निकले तब किसी तीसरे गूढ़ अर्थ से काम निकालना होता है, यह तीसरा गूढ़ अर्थ ही व्यंजना होता है, इसमें व्यंग्य का होना आवश्यक है, ऐसे शब्द व्यंजक कहलाते हैं— जैसे किसी वज्र मूर्ख के लिए यह कहना कि तुम तो वृहस्पति का अवतार हो तो यहाँ बृहस्पति शब्द व्यंजक है जो महामूर्ख की व्यंजना कहता है। अतः वाच्याथ व लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी तीसरे अर्थ की प्रतीति कराने वाले अर्थ को व्यंग्यार्थ कहते हैं।

महाकवि 'बौखल' के काव्य में समाहित विशाल शब्द संपदा का अवलोकन इन्हीं शब्द शक्तियों के आधार पर दृष्टव्य है।

(1) प्रथम शब्द शक्ति 'अभिधा

मुख्यार्थ का बोध कराने वाली इस अभिधा शक्ति का गुण है— स्पष्टता, सामान्यता, अथवा लोकप्रसिद्धि से व्याप्त अर्थ का होना और सांकेकिकता। इस गुण के आधार पर अभिधा का अर्थ जानने के कई साधन आचार्यो ने बताये हैं— जैसे व्याकरण, उपमान, कोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, प्रसिद्धपद का सान्निध्य, विवृत्ति (व्याख्या, विवरण या स्पष्टीकरण, टीका) आदि।

वाचक शब्द कई प्रकार के होते हैं—

(1) रूढ़— वे शब्द जिनका विश्लेषण सम्भव नहीं होता और वे सम्पूर्ण अर्थ को व्यक्त करते हैं, न इनकी व्युत्पत्ति संभव होती है न ही इनके टुकडों के पृथक—पृथक अर्थ होते हैं— जैसे गाय, घोड़ा, पेड़, पौधा, दण्ड, गढ़ आदि। इनका अर्थ नितान्त सामान्य होता है।

(2) यौगिक— जिन शब्दों का विश्लेषण संभव हो तथा जिनके प्रत्येक अंग का पृथक अर्थ हो, जो प्रकृति और प्रत्ययों के योग से बनते हैं— जैसे भूपति—राजा। इसमें भू का भी अर्थ है और पति का भी।

(3) योगरूढ— जिने शब्दों की संरचना यौगिक शब्दों की तरह हो परन्तु अर्थ बोध में रूढ़ शब्दों के समान हो अर्थात् जिनका अर्थ रूढ़ हो, सम्पूर्ण हो और अखण्ड हो— योगरूढ़ कहलाते हैं— जैसे 'वारिज'। इसका यौगिक स्वरूप होगा वारि+ज। वारि का अर्थ पानी और 'ज' का अर्थ जन्म लेने वाला। इस तरह यौगिक शब्द के रूप में इसका अर्थ हुआ पानी में जन्म लेने वाला। परन्तु रूढ़ अर्थ हुआ 'कमल'। पानी में जन्मने वाले सीपी, घोंघे सिवार आदि नहीं। जलज, पीताम्बर, घनश्याम, पशुपति आदि ऐसे ही शब्द हैं।

(2) लक्षणा शक्ति— मुख्यार्थ में बाधा उत्पन्न करने पर रूढ़ि या प्रयोजन के कारण शब्द की जिस शक्ति से मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का बोध हो उसे लक्षणा कहते हैं। आचार्य मम्मट ने लक्षणा के लिए तीन बातें अनिवार्य बताई हैं— (1) मुख्यार्थ (2) मुख्यार्थ से अन्य अर्थ का सम्बन्ध (3) रूढि या प्रयोजन—जैसे— 'वह बालक तो शेर है' यहाँ शेर के पशु रूप से मुख्यार्थ समझने में बाधा आती है क्योकि यहाँ शेर की शक्ति का आरोप बालक में कर के उसे वीर बताया गया है अर्थात् वह बालक बहुत वीर है।

(3) व्यंजना — जहाँ दोनों मुख्य और लक्ष्य अर्थ के अतिरिक्त किसी तीसरे भिन्न अर्थ प्रतीत हो— जैसे वृषभानुजा और हलधर के वीर। प्रथम से राधा तथा द्वितीय शब्द से श्रीकृष्ण का अर्थ बोध होता है।

'व्यंजना' शब्द 'वि' उपसर्ग पूवर्क 'अञ्ज' धातु से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है देखना या प्रकट करना अतः व्यंजना शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है—शब्द की वह शक्ति जो विशेष रूप से देख सके। अथवा दूर के अर्थ को उद्भासित कर सके। इस शक्ति में अभिधा व लक्षणा से अर्थ —द्योतन की सामर्थ्य अधिक होती है। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि इस शक्ति से ज्ञापित अर्थ को समझने के लिए कुछ कल्पना अथवा ज्ञात—बोध का सहारा लेना पड़ता है इसलिए इसमें चमत्कार अधिक होता है तभी यह अधिक आनन्ददायी होती है। यह तीनों शक्तियों में श्रेष्ठ मानी गई है—

उदाहरण के लिए—

आतुर चढ़ी अटालिका, पुनि—पुनि चितवै गैल।
चन्द उदय बेरा भई, उयो न 'बौखल' छैल।। (1)

नायिका की मिलन की आतुरता की सुन्दर व्यंजना है इस दोहे में, वह चन्द्रोदय के समय की प्रतीक्षा में बार—बार अटारी पर चढ़ती है और बार—बार गली की ओर निहारहती है। क्योंकि चन्द्रोदय का समय ही नायक के आने का समय है, जब वह आता नहीं दिखता है तब नायिका चन्द्रमा पर भी अपने प्रियतम् का आरोप करके कहती है कि अभी भी वह छैला अथवा छलिया उदित नहीं हो रहा, यहाँ छैल शब्द से चन्द्र व प्रिय दोनों की व्यंजना की गयी है।

महाकवि 'बौखल' के काव्य में शब्द शक्तियों का विवेचना—

श्री 'बौखल' के काव्य की दो मूल प्रकृतियाँ है— प्रथम प्रकृति आध्यात्मिक है, दर्शन और वैराग्य उनकी अनुभूतियों को एक तटस्थ सी दिशा देते हैं जिसमें संसार की क्षणभंगुरता की गूंज है, उस नश्वरता के बीच में आत्मा परमात्मा के मिलन, बिछोह की गहनता दर्शाने वाले मनोवेगों, मधुर सम्बन्धों, आकांक्षाओं तथा जीव का सांसारिकता से असंपृक्त रहकर पारमार्थिक चिन्तन के धरातलों तथा विचारों के धीर मंथर प्रवाहों की विशद भाव सम्पदायें संजोयी हुई है। आत्मा जो परमात्मा से चिर विरहिणी है। उसकी आकुल आर्त पुकारों में जो सीधी, सच्ची, सरल, सहज व्यंजनाएं ह्रदय से निसृत हुई है वे इतनी मर्मस्पर्शिनी हैं कि एक सह्रदय आलोचक ने उनके विषय में लिखा है—

'बौखल' विरही दोहरा, सुनै पपिहरा जोय।
बौरो जियरा फिरत या, बौखल हियरा रोय।।

नारायण अंजलि भाग— II:— (1)दो.सं.—2053पृ.क्र.—159.

प्रेम और विरह की जितनी बांकी भंगिमाये उनके पदों में व्यक्त हुई हैं उनके कारण निश्चित ही कवि का स्थान संतों की कोटि में व उनका रचना जगत संत साहित्य के अन्तर्गत गिना जायेगा।

उनके कवि कर्म की दूसरी प्रकृति है सामाजिकता जिसमें मानव जीवन के भौतिक पक्ष को राजनीति से प्रभावित दिखाते हुए वर्तमान समय की विषम परिस्थितियों में श्रमजीवी वर्ग के जीवन की दुरवस्थाओं का बड़ा ही मर्मान्तवेधी वर्णन किया गया है। साथ ही उन दुःसह दशाओं में निर्बल वर्ग को रहने के लिए विवश करने वाले व्यक्तियों, परम्पराओं आदि का चित्रण शोषक वर्ग के विधानों के अन्तर्गत किया गया है।

इन दोनों प्रकृतियों से संबद्धित रचना कर्म का उल्लेख पूर्व के अध्यायों में विशदता से किया जा चुका हैं । यहां इनके सूक्ष्म सन्दर्भ देने का कारण यह है कि ये दोनों ही प्रकृतियाँ कवि के ह्रदय में उठने वाले भावों, विचारों व अनुभूतियों की सीधी, अकृत्रिम और बेलाग अभिव्यक्तियाँ चाहती हैं : अतः मानवमन की कातर पुकार का वर्णन करना हो या त्रासद परिवेश का मूर्तायन करना हो— श्री 'बौखल' की भाषा में अभिधा' शब्द—शक्ति अधिक मुखर, प्रभावी व जीवन्त बन पड़ी है। अन्य दोनों शक्तियाँ भी यथा स्थान परिवेश के चित्रण में कार्य कर रही हैं।

अतः उनके पदों व दोहों में प्रयुक्त अभिधा शक्ति के कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

सर्व प्रथम नारायण अंजलि के भाग एक में ग्रंथ का प्रारम्भ करते हुए कवि ने अणु परमाणु विनिर्मित विश्व एवं विश्वम्भर, दैवत् शक्तियों, गुरू, माता—पिता आदि प्रणम्य जनों, कवि कोविदों, बुद्धिजीवियों, समाज के उद्धारकों, सज्जनों, रण कौशल सुभटों तथा साधु सन्त समाज आदि की वन्दना सहज, नितान्त निस्पृह और सर्वथा विनम्र भाषा में की है। विनम्रता और निरभिमानता— जो कवि के विशिष्ट गुण हैं— का परिचय देते हुए उन्होंने रचना प्रारम्भ की है। सरल, मनोज्ञ, सन्तुलित एवं आडम्बरहीन भाषा में व्यक्त ये भाव अभिधा शब्द शक्ति के श्रेष्ठ उदाहरण हैं—

बन्दौ गुरु रज कंज पद, भरि हिय अमित हुलास।
जग जिज्ञासक जानि मम, दियो सुविमल विकास।। (1)

बन्दौ गिरा सुकंठिनी, नित्य नवीन विचार।
निज पथ ला:वति खैंचि मन, सफल सकल आधार।। (2)

ताहि नमः मम मौन मन, जाके शीश न पैर।
शंका संशय काल्पनिक, नित विचरै निर्वैर।। (3)

मातु पिता पायन परौ जिन जायो परकाज।
अपनावहु मम जानि निज, बिनवौ सकल समाज।। (4)

शिष्य जनम परहित लगो, बन्दौ गुरु पद कंज।
सपने मां बिनवौ सदा, कवि कोविद पद कंज।। (5)

अतिशय बिनवौ दार्शनिक, पथ निर्भय आचार।
आध्यात्मिक पथ दै दुई, दियो समान विचार।। (6)

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–01पृ.क्र.–01, (2)दो.सं.–18पृ.क्र.–2, (3)दो.सं.–42पृ.क्र.–03, (4)दो.सं.–34पृ.क्र.–34, (5)दो.सं.–24पृ.क्र.–02 (6)दो.सं.–29पृ.क्र.–03,

बन्दौ वैज्ञानिक हरषि, युग परिवर्तन कीन।
विश्व शिरोमणि जगत हित, पंथ प्रदर्शन कीन।। (1)
बन्दौ मेधा मण्डली, योगी साधि समाज।
अर्थ व्यवस्था सुखमयी, देश विदेश सुराज।। (2)
बन्दौं श्रम जीवी सुजन, जौन जगत के मूल।
पालहिं उपजीवी सदा, स्वतः खाय मुख धूल।। (3)
परमाणु प्रणवहुँ तुव, पंच व्यसन गुण गान।
काल कलाधर कलित कुल, कण–कण व्यापि जहान।। (4)

<u>लक्षणा शक्ति के उदाहरण</u>–

कलुवा नित माटी मुख खावै, चेतन दशा गिनाऊँ।
पुनि–पुनि सानि आतमा माटी, कस दरशन दरशाऊँ।। (5)

कलुवा (यमराज) नित्य ही माटी (शरीर) को खाता रहता है, फिर–फिर इस आत्मा को माटी (शरीर) में प्रवेश कराता रहता है, उसे कैसे दिखाऊँ? यमराज की मिट्टी खाना शरीरों की मृत्यु का लक्षण है और आत्मा को मिट्टी में सानना जन्म व मरण की आवृत्तियों हैं इस प्रकार शब्दों की लक्षणा शक्ति के दर्शन होते हैं।

जोगिया बरजै देश बिराना
रूप बनाय मरे भुंई लाखों, पढ़ि–पढ़ि वेद कुरान।
'बौखल' काल कमरि धरि दावी, सब उपदेश भुलाना।। (6)

योगी पराये देश में रहने को बरजता–(मना करता) है, वेद, कुरान, पढ़–पढ़कर पूरी आयु बीत गई परन्तु जब अंत समय आया तो काल ने धरकर कमर तोड़ दी– कोई पढ़ाई लिखाई या ज्ञान काम नहीं आया। यहाँ योगी का सांसारिकता के मोह से बरजना उसकी प्रकृति का लक्षण है और काल का कमर दाब लेना भी उसका लक्षण ही है। अर्थात् काल शरीरों का अन्त करता रहता है और अंत समय में सब पढ़ा लिखा बेकार हो जाता है। यहां एक रूढि अर्थात 'संसार काल का कलेवा है' के द्वारा मृत्यु के लक्षण बताये गये हैं। अतः यहाँ 'रूढ़ा लक्षणा' है।

काको काजर भयो पियारा
काजर रंगे सबै ठग ठगिया, काजल नेह अपारा।
'बौखल' कजरौटा ब्रह्मण्डा, बिरला बचै बिचारा।। (7)

यहाँ पर 'काजर' दुर्वृत्तियों का प्रतीक है, जिससे कोई भी नही बचता, सब जा जाकर उसी से अपार स्नेह करने लगते हैं। समस्त ब्रह्मण्ड कजरौटा (बच्चों का काजल रखने का डिब्बा) बन गया है। जिसकी कालिमा सब जगह व्याप्त हो रही है और इससे कोई बिरला ही बचकर निकल पाता है। यहाँ पर 'ब्रह्माण्ड' और 'कजरौटा' के मुख्यार्थ बाधित हो रहे हैं, जब इन शब्दों के अन्य अर्थ लेते है तभी वक्ता का आशय समझ में आता है। अतः यहां 'प्रयोजनवती लक्षणा' है क्योंकि यह एक प्रयोजन

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–08पृ.क्र.–01, (2)दो.सं.–14पृ.क्र.–02, (3)दो.सं.–11पृ.क्र.– 01, (4)दो.सं.–55पृ.क्र.–04, (6) पद.सं.–195पृ.क्र.–57,

नारायण नैवेद्य :–(5) पद.सं.– 550पृ.क्र.–159, (7)पद.सं.– 250पृ.क्र.–73.

अर्थात काजल से वस्तु काली हो जाती है और उससे बचना है– इस प्रयोग को दर्शा रहा है।

पुष्पायुध अलि धनु धरे, छेदत बहुतन माथ।
देखि चरित्र विचित्र तक, पाय बसन्त सनाथ।। (1)

यहाँ पुष्पायुध धनु का अभिधात्मक अर्थ तो फूल के हाथिया का धनुष है परन्तु साहित्य में पुष्पायुध धनुर्धारी का एक विशिष्ट रूढ़ अर्थ है। 'कामदेव' क्योंकि वह कुसमों का धनुष वाण लेता है अतः यहां वक्ता के अर्थ को समझने के लिए रूढ़ा लक्षणाका आश्रय लेना पड़ता है। आयुध का कार्य छेदन करना होता है, उसी प्रकार कामदेव भी उसी अर्थ में मनुष्य के मन को मथ डालता है और शरीर को जर्जर कर देता हैं।

व्यंजना–जहाँ शब्द व अर्थ से भिन्न अन्य व्यंग्य अर्थ की प्रतीति हो व्यंजना दो प्रकार की होती है शाब्दी व्यंजना (2) आर्थी व्यंजना। जहाँ शब्दों से ही व्यंग्य अर्थ भासित हो– जैसे–

विश्वरंग शाला सजी, नटवर नाचि बिधान।
पाँच तत्व रंग चूनरी, निर्मित दशो दिशान।। (2)

यहाँ 'पांच तत्व रंगी चूनरी' में शाब्दिक व्यंजना है क्योंकि पांच तत्व वे है जिनसे सृष्टि का निर्माण होता है यहां रंग व चूनरी दोनों के अर्थ है– सत रज तम का मेल और चूनरी अर्थात काया, दशों दिशाओं का अर्थ सृष्टि का व्यापक विस्तार। इस प्रकार शाब्दी व्यंजना से यह व्यक्त होता है कि पांच तत्वों व तीन गुणों से युक्त यह विस्तृत संसार एक बड़ी रंगशाला है जहां जीव–नट, भाँति–भाँति के विधान रचता, करतब दिखाता नाच रहा है अर्थात् जीवन यात्र पूरी कर रहा है।

बगुला जात मराल संग, चुनि चुनि मछरी खाय।
मुक्ता खोजे मानसर, निराधार रहि जाय।। (3)

यहाँ बगुला और मराल से असज्जन व सज्जन व्यक्तियों का आशय व्यंग्य है क्योंकि दोनों का ही रंग श्वेत होता है, परन्तु उनमें अन्तर तब पता चलता है जब उनकी प्रवृत्तियाँ सामने आती है। बगुला तालाब में चुन–चुन कर मछली खाता है जबकि हंस मानसरोवर में मोती चुगता है यदि श्वेत रंग पर मराल से अपनी समानता सोचता वक मानसर में जा पहुँचता है तो वहां से वह असफल होकर ही लौटता है। यह भी शाब्दी व्यंजना का उदाहरण है।

हिय अतंर मंतर जपै, माखन हाथ न आय।
पंच व्यसन आतम उरझि, कलुवा हाड़ चबाय।। (4)

मंतर, माखन, पंचव्यसन और कलुवा शब्दों में व्यंजना है।

दिखावटी भक्ति से कभी ईश्वर नहीं मिलता जबकि आत्मा पांच इन्द्रियों के रसभोग में लिप्त हो रही हो– ऐसी भक्ति न परमात्मा से मिलाती है न ही मोक्ष दिला पाती है, क्योंकि इन्द्रिय लिप्सा में जीवन बीत जाता है और यमराज तो अंत में शरीर की गति करता ही है। अतः इन शब्दों व इनके अर्थों से भी परे जो एक व्यापक और सार्वभौमिक सत्य इस दोहे में निहित है वही इस व्यंजना का सौन्दर्य है।

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–776पृ.क्र.–58, (3)दो.सं.–505पृ.क्र.–37,
नारायण अंजलि भाग– II:– (2)दो.सं.–1363पृ.क्र.–105(4)दो.सं.–261पृ.क्र.–18

बांझिन दूध दुहत हम हारे
विष उगलत मुख माहुर मेलति, अमिय सुताल पखारे
निर्जल ताल जाल लै बाउर, मछरी मारि मझारे
''बौखल' हिये त्यागि सब अचरज, मानस ठाढ़ि किनारे।। (1)

यह पदांश एक प्रकार की उलटबाँसी है जहाँ असंभव साधनों से असंभव साध्य का असिद्ध होना व्यंग्य है। दंभ व अभिमान में चूर मनुष्य का असंभव कार्य को संभव बताने की चेष्टा करना ही मानों बांझ गाय का दूध दुहना है। व्यक्ति के पास बुद्धि का अमृत सरोवर विद्यमान है पर वह उसे अनदेखा कर द्वंद फंद के उन कामों में व्यस्त रहता है जिनका आरम्भ भी विषैला और अंत भी विषुयक्त होता है; अन्ततोगत्वा उसे सार तत्व तो मिलना दूर, गांठ की सद्बुद्धि भी चली जाती है, जैसे निर्जल ताल के बीच में खड़े होकर मछली मारना। बौखल कहते हैं कि फिर ऐसा मनुष्य — जिसने कभी सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप या ईश्वरेच्छा से ऐसा आश्चर्य होते देखा था— अब ऐसे परिणाम की इच्छा छोड़कर हर संभव प्रयत्न या कुप्रयत्न करने के बाद हार मानकर एक किनारे खड़ा रह जाता है।

यहाँ पर आर्थी व्यंजना का चमत्कार दिखाई दे रहा है। पद की प्रत्येक पंक्ति का अर्थ अपने में एक तीसरा अर्थ समेटे हुए हैं कबीर की 'नाव बिच नदिया डूबी जाय'' जैसी उलट वाँसी का सौन्दर्य इन पंक्तियों में भरा हैं।

मधुमाखी मधु लै गई, छोड़ गई वनफूल।
क्यों रोवै मन बावरे, पवन उड़ावति धूल।। (2)

नियति की विभीषिका—मृत्यु, प्राणतत्व का हरण कर लेती है निर्जीव शरीर पड़ा रह जाता है। ऐ मूढ़ मानव तू इस अकाट्य सत्य के कार्यान्वियन पर क्यों रोया ? जैसे मधु ले जायें जाने पर फूल सूखकर झड़ जाता है और पवन उसे उड़ा देती है वैसे ही इस निर्जीव शरीर की चिता भस्म को भी हवा उड़ा कर ले जाती है।

पूरे दोहे में आर्थी व्यंजना का सौन्दर्य दृष्टव्य है, सभी शब्द अपने अर्थो से भिन्न अर्थ को व्यंजित करते है और साथ ही अनुप्रास की छटा भी मोहकता से परिव्याप्त है।

जीवन की अनुभूतियाँ, हिय में गई समाय।
प्राण पखेरु उड़ि गयो, रीती पड़ी सराय।। (3)

मनुष्य का जीवन कटु मधुर, अनुभवों, स्मृतियों, ऐषणाओं, अभिलाषाओं का समुच्चय होता है जिनका आगार हृदय में होता है। इस समुच्चय को लिए दिये जब प्राण का पंछी उड़ जाता है तब शून्य शरीर पड़ा रहता है। 'बौखल' इसी शून्य शरीर को 'रीती सराय' कहते हैं। यों सराय का अर्थ 'स्वल्प विश्राम के लिए निर्धारित कोई एक स्थान' होता है, परन्तु यहाँ पर 'सराय' से शरीर का तीसरा अर्थ व्यंजित होता है और उसका रीता होना—प्राणहीन होने का द्योतन कर रहा है।

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.— 880पृ.क्र.—253,
नारायण अंजलि भाग— I:— (2)दो.सं.—1546पृ.क्र.—117,(3)दो.सं.—1824पृ.क्र.—138,

बुधिया पीस रही जग सारा
राजस नीति बजुर जग जाँता, खनिज खाद्य भंडारा
सोनवा चक्र चलै चारों दिशि, मानुख मरै मंझारा
'बौखल' प्रलय पवन समेटे, जीव वंश जग छारा।। (1)

वर्तमान समय की विडम्बनाओं, विभीषिकाओं को 'बौखल' प्रलय प्रभंजन बताते हुए कह रहे हैं कि बौद्धिकता की असीम अछोर दिग्विजय ने, अधिकाधिक प्राप्ति की अदम्य लालसा ने जीवन के मधुरस को सुखा डाला है। अर्थ विस्तार को कुलिप्साओं से भरी नीति ने जीवन के लिए अनिवार्य प्रतिपूर्तियों तक को क्षत–विक्षत कर डाला है जिसके कारण मनुष्य का जीवन नष्ट प्राय होने की दशा में आ गया है। यहां 'बजुर जग जॉता' और 'सोनवा चक्र' में आर्थी व्यंजना का भाव सन्निहित है। ''जाँता' और 'सोनवा चक्र' में आर्थी व्यंजना का भाव सन्निहित है। 'जॉता' का अर्थ चक्की होता है जो ग्रामीण शब्द है परन्तु यहां पर चक्की के अर्थ में न आकर वज्र के समान अन्तक दुर्नीतियों का प्रतीक बनकर आया है। 'सोनवा चक्र' भी विषम विनिमय वितरण प्रणाली की जानलेवा परिणित का द्योतक हैं।

'सारा' शब्द में श्लेष अलंकार भी है। जिससे इस शब्द के दो अर्थ 'सम्पूर्ण' और 'सारतत्व' विज्ञापित होते हैं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि श्री 'बौखल' के काव्य का कला पक्ष भी उतना ही समृद्ध है जितना उसका भाव पक्ष। शिल्प का सौन्दर्य भी असंदिग्ध है।

<u>गुण</u>– प्रकृति या चरित्र की आन्तरिक संरचना के बाह्य प्रकाशन को 'गुण' की संज्ञा दी गई है। काव्यानन्द जिसे ब्रह्मान्द सहोदर कहा गया है, उसका रसास्वादन करने के लिए कविता की जिन अन्तर्विश्लेषी क्रियाओं की अनिवार्यता काव्य जगत में मान्य हुई है उनमें से 'गुण' भी है। जैसे शब्द शक्तियाँ होती है जो भावों की प्रेषणीयता में सहायक होती हैं, उसी प्रकार 'गुण' भी एक वैशिष्ट्य है शिल्प का, जो काव्य की भिन्न प्रकृतियों में अन्तर करके उन्हें पाठक या श्रोता को संवेदित करने में अपना योगदान देता है। जीवन की प्रहेलिका बड़ी जटिल होती है, मानव का अन्तर्तम किस किस पकार के निगूढ़ भावों की प्रतिसृष्टि होता है और कविता उस प्रति सृष्टि की संवाहिका; अतः उस कवि-संवेदना को भावक तक पहुंचाने की कला भी काव्य के अन्तर और बाह्य उपकरणों, अंगों, प्रत्यंगों की होती है। ये अंग प्रत्यंग शिल्प के अन्तर्गत होते है।

कविता की रचनात्मकता के विषय भिन्न–भिन्न होते हैं क्योंकि जीवन के क्षेत्र भी विविध प्रकार के होते है जिन्हें वह प्रतिबिम्बित करती है। जिस विषय या जिस प्रकृति की कविता होती है उस विषय को जिन प्रविधियों के द्वारा पाठक या श्रोता के सम्मुख बोधगम्य बनाकर प्रस्तुत किया जाता है वे प्रविधियाँ 'गुण' कहलाती है। जिस प्रकार शिल्प सौन्दर्य के अन्तर्गत आने वाले अलंकार कविता के कलेवर को सजाते हैं उसी प्रकार 'गुण' भी काव्य की प्रकृति का अन्तर्ध्वनन करते हैं। काव्य की प्रकृति में जो भिन्न प्रकार के भावों का समावेश होता है उन्हें, अभिव्यक्त करने में उनकी भिन्न कोटि निर्धारित करने में 'गुण' सहायक होते है।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद.सं.– 762पृ.क्र.–219.

काव्य के क्षेत्र में गुणों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया गया है–

(1) ओज गुण (2) माधुर्य गुण (3) प्रसाद गुण

स्पष्ट है कि कविता की ओज, माधुर्य व प्रसादिक वृत्तियों में अंशतः अंतर है वे एक दूसरे की प्रतिपूर्ति करती हुई भी कुछेक अंशों में भिन्न होती है। ओजगुण-काव्य में जहाँ वीरता, शौर्य का प्रदर्शन किया जाता है भाषा के माध्यम से, वहाँ वीरोचित भावों की व्यंजना के लिए ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग होता है, इस प्रकार की भाषा में शब्द संयोजन प्रायः घोष और परुष वर्णों को लेकर किया जाता है। शौर्य प्रदर्शन के लिए प्रायः क्रोध व अमर्ष के भावों को उपयुक्त माना गया है। युद्धादि के वर्णन, गर्वोन्नत सैनिकों के अभियान, शस्त्रों की झनझनाहट, गर्जनाओं आदि के वर्णन में जो 'गुण' चमत्कार उत्पन्न कर के दृष्टा के तद्प का आँखों देखा चित्र सा खींचने में समर्थ हो वह 'ओज गुण' कहलायेगा। वातावरण के अनुकूल ध्वनि आधारित वर्ण संयोजना से जो प्रभाव उत्पन्न होता है – वही गुण की सामर्थ्य है।

श्री 'बौखल' का काव्य क्षेत्र यद्यपि इस प्रकार के शौर्य वर्णन से सम्बद्ध नहीं है फिर भी उनके काव्य में सृष्टि विषयक चिन्तन में ओज गुण की झलक स्पष्ट दिखाई देती है–

परम पुरुष परमाणु विभु, कारण क्रिया कलान।
परोक्षता प्रत्यक्ष हो, विश्व विराट् महान।। (1)
सीमा रक्षक ताडुका, ताहि बधो श्री राम।
सैन्य सहित आगे बढ़े, सीमा थापि विराम।। (2)

<u>माधुर्य</u>– यह काव्य का दूसरा गुण है। जब अतिशय कोमल कमनीय भावों को उतनी ही सुकुमार भाषा में व्यक्त किया जाता है, वहाँ माधुर्य गुण होता है। श्रृंगार व वात्सल्य की भावनायें अत्यन्त कोमल होती हैं। दम्पत्ति का परस्पर हास विलास, वेषभूषा, मान मनुहार के चटकीले चित्र तथा शिशु की बालकेलियाँ, तोतली मधुर वाणी, गिरते पड़ते भागना उठना, और भोली मुख छवियाँ आदि देखकर कवि इन क्रियाओं का वर्णन जिन सुकुमार व्यंजनों में करता है, उससे मनमोहक माधुर्य की रस वर्षा हो उठती है। कोमल वर्णो की आवृत्तियाँ, आनुनासिक व अनुस्वार युक्त वर्णों का प्रयोग, ध्वनि मूलक वर्णों के संयोजन से माधुर्य गुण की अवतारणा करके कवि श्रोता या पाठक को आत्मविभोर कर देने में सक्षम होता जाता है। ह्रदय में संचित सुषमा मानो प्रत्यक्ष दृग्गोचर होने लगती है। रीतिकालीन कविताई में मधुर रस की छवियाँ अद्वितीय है। जिन्हें कवियों ने अपने काव्य की किलोल बना दिया हैं

बानी को सार बखान्यो सिंगार।
सिंगार को सार किसोर किसोरी।।

देव कवि जब वाद्य बजाती हुई नायिका का वर्णन करते हैं तो जो माधुर्य उनकी पद संयोजन में छलक उठता है वह अपनी उपमा नहीं रखता कहीं–

भरि रही भनक भनक, तारताननि की।
तनक तनक तामे, झनक चुरीन की।।

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–90पृ.क्र.–07.
नारायण अंजलि भाग– II:– (2)दो.सं.–811पृ.क्र.–61.

श्री 'बौखल' के काव्य में तो शृंगार का रस कला ही छलक रहा

मैं जानूँ मन लै गयो, छलिया छैल सुजान।
चकित चेति चित आपनो, झूंठो परखि जहान।। (1)
मंगिया सेंदुरा अरुप रंग, चमकति बेंदिया भाल।
हिये सूनो बिन साजना, 'बौखल' जग कंगाल।। (2)

और 'अरध नयन चितवत चलति, मधु रस मदन चुराय' पंक्ति तो मानो माधुर्य की रस गागरी ही है। इस पंक्ति का पूरक तीसरा व चौथे चरण दोहे का–

'मुकुलित पुष्प पराग लखि भौर हिये हुलसाय।।
भौंरे रूपी नायक के आनन्दातिरेक की मधुरिमा बिखेर रहा है।।

प्रसाद – काव्य का तीसरा गुण है 'प्रसाद'। कविता की भाव व्यंजना की अति सहज, सम्प्रेषणीय और सीधी अभिव्यक्ति होना जिससे कवि का प्रयोजन अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य, सूक्ष्मता व वैशिष्ट्य के साथ पाठक या श्रोता को सीधे हृदयंगम हो जाये तथा उसके रसात्मक बोध में किसी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न हो–वहां प्रसाद गुण माना जाता है। प्रसाद गुण में शब्दों का चयन बहुत सीधा और अर्थ गांभीर्य को सहजता से प्रकट करने वाला होता है। प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, अतः प्रसाद गुण का तात्पर्य होता है, वह रचना जो श्रोता, पाठक को सर्वतोभावेन प्रसन्नता से, उल्लास से, उत्फुल्लता से भर दे प्रसादान्त रचना कहलाती है। भावक कवि की सी रसात्मकता का अनुभव करता हुआ उस रसावेग मे उतनी ही सहजतासे डूबता हुआ उसके सौन्दर्य का अनुभावन कर सके। नीचे के उदाहरणों में कवि का सर्वभूतहितरत हृदय सबकी कल्याण कामना के उद्गार– जो सीधे सीधे उसके हृदय से निकले हैं– को उसी सहजता से पाठक तक पहुँचाने में समर्थ है–

नित सुमिरौ ऐसो सखा, सत पथ उच्च विचार।
कपट न राखै एक पल, बनि जीवन आधार।। (3)
विनय करहुँ पायन परौं, सुनहु समाज के जीव।
सबै सुखी सम्पन्न हों, अस करि निर्मित नींव।। (4)
अपने अपने गोत की चिन्ता सबै सवाय।
जिन हिय चिन्ता राष्ट्र की, उनके लागौं पाय।। (5)
उत्पादन अलि श्रेष्ठतम, केन्द्र विकेन्द्र उत्थान।
कला कृति राजस भवन, सुषमित मोद महान।। (6)

संसार में चातक का प्रेम प्रसिद्ध है, वह स्वाति का उज्ज्वल जल ही पीता है, उसके न मिलने

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–1542पृ.क्र.–117, (2)दो.सं.–1594पृ.क्र.–121, (3)दो.सं.58 पृ.क्र.– 05, (4)दो.सं.–50पृ.क्र.–04, (5)दो.सं.–1310पृ.क्र.–99, (6)दो.सं.–2650पृ.क्र.–202.

, पर पी पी रटता हुआ प्राण दे देता है परन्तु डाभर का गन्दा जल नहीं स्वीकार करता— कितनी सुन्दर भावग्राही उक्ति है—

चातक चित उज्जवल अलि, उज्जवल चाहै नीर।
पीव पीव निशि दिन रटै, डाभर पावै पीर।। (1)

विरहिणी की पीर और उसके मन में सतत प्रिय का निवास—दोनों ही ऐसी भावनायें है जिस के कारण सहृदय पाठक का मन एक सहज सात्विकी अनुभूति से भर जाता है। क्योंकि संयोग और वियोग दोनों वृतियाँ एक साथ ही उदित होती हैं —

नैन निकुंजनि नाचि नित, मन में रमि चितचोर।
बसि बसन्त हिय आँगना, बिरहिन विनय निहोर।।

इस पद में कवि सांसारिक मनुष्यों को सफल जीवन जीने की एक संजीवनी देते हुए कह रहा है कि यदि तुमको इस जड़ चेतन के संगम जीवन को आस्था, विश्वास,स्नेह और स्वावलम्बन के साथ जीना है तो तुम स्वयं अपने को इस योग्य बनाओ, विश्व प्रपंच तुम्हारे साथ रहेगा।

बाबा सबसो करहु मिताई।
तुम अपने स्वारथ मति लागो, करो न आस पराई।
हम तुमरे तुम हमरे दुःख में, कपट रहित लपटाई।
तजो विरोध बनो उपकारी, जल तोयद बरसाई।
स्वाति साँप कैर अहि आनन, चातक प्यास बुझाई।
मनुज चेत करि निरखि सरोवर, मिताई सरोज मिलाई।
बगुला प्रीति मीन धरि गरवा, कटिया प्राण मिटाई।
'बौखल' प्रीति पुनीत सुहावन, काहु न मग अटकाई।
विश्व प्रकृति मंडित करि मानौ, निज गृह जीव सताई।। (2)

इन दृष्टान्तों से स्पष्ट होता है कि श्री 'बौखल' की रचनाएँ समर्थ रचना धर्मिता गुणों से भरपूर हैं। काव्य के तीनों गुणों के उदाहरण उनके ग्रन्थों में विद्यमान हैं। जिस सात्विकता से वे विश्व मंगल दृष्टि का विस्तार करते हैं वह उनके निर्मल निश्छल अन्तःकरण की सदाशयता व प्रेम प्रीति के निर्वहन में चन्द्रचकोर की सी एकतानता की द्योतक है।

व्यंग्य— कविवर बिहारी का एक दोहा है—

सतसैया के दोहरे ज्यो नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर।।

आशय यह कि कवि कथ्य के रूप में ऐसी व्यंजना, जो थोड़े शब्दों में की जाये, अथवा वह कथन जो छोटा हो परन्तु जिसका प्रभाव अत्यन्त तीक्ष्ण हो और जो पाठक या श्रोता में तिलमिलाहट पैदा करें— व्यंग्य कहा जाता है।

व्यंग्य साहित्य लेखन की वह विधा है जो विषमता व असंगति पर भरपूर वार करती है फिर भी

नारायण अंजलि भाग– I:– (1)दो.सं.–2027पृ.क्र.–154,
नारायण नैवेद्य :– (2) पद.सं.– 97पृ.क्र.–29.

ऊपर से ऐसा सहलाने वाली कि चोट खाये की पीड़ा भी उजागर हो जाये परन्तु उससे रोते भी न बने। व्यंग्य व्यंजना का ताप होता है, जहाँ बात को सीधा न कहकर थोड़ा घुमा कर कहा जाता है और वह घुमाव ऐसा होता है— इतना सजीव व सटीक होता है कि भाषा तो एक ओर रखी रह जाती है और उसमें व्याप्त भाव का ताप सामने आ खड़ा होता है। पाठक का ध्यान तुरन्त ही उस वाक्य की आंच पर जाता है जिसे व्यंग्य के द्वारा खौला सा दिया गया है।

मनुष्य का जीवन सम भी होता है और विषम भी, किसी घटना या चरित्र में अन्तर्निहित विसंगति को जब शब्दकार अपने संस्पर्श से उजागर करता है तब व्यंग्य की धारा बड़ी पैनी हो जाती है, उस का दंश बहुत चुभने वाला हो जाता है। व्यंग्य में वह शक्ति होती है कि बिना कहे ही व्यंग्य के द्वारा कवि का मन्तव्य पूरा हो जाता है— जैसे किसी व्यक्ति को देख कर यह कहना कि —'बगुला चलै हंस की चाल' तो मात्र इतने थोड़े शब्दों से ही किसी सफेद पोश ढोंगी के पूरे चरित्र का द्योतन हो जाता है।

'बौखल' एक स्थान पर कहते हैं—

सभ्य सृजन सोई जगत, चाट और की खीर।
निर्भय जीवै जनम भर, निर्दय हिय नहि पीर।। (1)

यहाँ पराये माल पर गुलछर्रे उड़ाने वाले सभ्य, सज्जन का शब्द चित्रही मानो खींच दिया गया हो।

व्यंग्य में भावों की सघनता को, उनकी गूढ़ता को, इतनी पारदर्शिता के साथ गूंथ दिया जाता है कि पाठक के सामने उनका भला बुरा जो भी प्रभाव होना होता है, तुरन्त कौंध कर सामने आ जाता है और पाठक चमत्कृत हो उठता है।

चुनि समाज सरकार को, भेड़ बकरिया भाँड़।
अलि गणतन्त्र विभाग बनि, बांटै खारी खाँड।। (2)

आज के लोकतान्त्रिक समाज पर करारा व्यंग्य है यह जहाँ भेड़ बकरी और भाँडों के समान निरक्षर भट्टों द्वारा प्रतिनिधि चुनकर सरकारें बनाई जाती हैं जो स्वयं मलाई खाकर जनता को खारी खाँड (शकर) बांटती है।

व्यंग्य में निहित भाव बहुत सरल परन्तु पैने होते हैं जिनसे असहनीय चोट लगती है—

भगवन तेरे नाम से, लेन देन अविराम।
लेकिन तेरे कोष में, पहुँची नहीं छदाम।।

यह दुनिया भर के पंडों, पुजारियों, मुल्लाओं, पीरों आदि पर गहरा व्यंग्य है जहाँ ईश्वर के नाम पर अर्थ की नोच खसोट होती रहती है। व्यंग्य का यह भी प्रभाव होता है कि जिस स्वार्थ के चश्में को लोगों ने पहिन रखा होता है, व्यंग्य उसे झटक कर उतारने का काम तो करता ही है, साथ ही उसका प्रभाव यह भी होता है कि पाठक उससे तिलमिलाते हुए भी उसके भीतर निहित सत्य का साक्षात्कार करने के लिए विवश हो जाता है। व्यंग्य में प्रायः इशारे या संकेत होते है। जो अपने लक्षित गुण, धर्म पर सीधी रोशनी डाल देते हैं—

नारायण अंजलि भाग– I:— (1)दो.सं.—936पृ.क्र.—70,
नारायण अंजलि भाग– II:— (2)दो.सं.—1280पृ.क्र.—99.

राम रमै सब बावरे, ताहि न गुण न स्वभाव।
नाना स्वांग सँभारि कै, नाचै अपने गांव।। (1)

यहाँ पर 'रमै' शब्द वह संकेत है जो राम के स्वरूप का कवि का अभीष्ट धर्म है, इसके द्वारा ही वह उसका निर्गुण रूप व स्वांग भरने वालों का नचैया रूप प्रत्यक्ष कर देते हैं।

एक व्यंग्यकार ने कहा है— जब जीवन की सच्चाई को, जो विरोधाभासों से भरी हुई है, कवि निष्ठापूवर्क बयान कर देता है, तब वह व्यंग्य हो जाता है। एक विचार यह भी है कि व्यंग्य में जहाँ चोट करने का भाव रहता है वहाँ उस विकृति या विसंगति का कारण जानने व जो उस विषमता से पीड़ित रहता है उसके प्रति प्रेम व प्रशंसा के भाव भी जोड़ने से व्यंग्य अधिक मुखर व धारदार हो जाता है।

व्यंग्य व हास्य में अन्तर यह होता है कि जहाँ हास्य केवल मनोरंजन के लिए होता है, वहाँ व्यंग्य तनाव को दूर करता है, गुदगुदाने व कचोटने के साथ राहत भी देता है।

व्यंग्य दो धारी तलवार कहा गया है जो समझदार पाठक के लिए होता है और पाठक को समझदार बनाता भी है।

श्री बौखल का काव्य चूंकि सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक दृश्य पटलों पर आधारित है। अतः उनमें सीधी चोट करने का प्रयत्न अधिक ही दिखाई देता है। उनके वर्ण्य विषय के अन्तर्गत सत्ता प्रतिष्ठान, सत्ताधारी नौकरशाह, अधिकारी वर्ग, पुरोहित वर्ग, पूंजीपति, जमींदार, व्यापारी, महाजन आदि हैं जो शोषक वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं, वहीं दूसरी ओर निर्धन कृषक, मजदूर, कामगार, भूखे नंगे फटेहाल श्रमिक, चने चबैना पर गुजर बसर करने वाले, सतुआ चाट कर भूख बुझाने वाले शोषित वर्ग के लोग हैं। अतः दोनों के बीच जो संघर्ष की भावना पनपती रहती है जिसे शोषित वर्ग प्रकट भी नहीं कर सकता उस धुंधवाती जिजीविषा के कठिनतर जीवन मार्ग पर चलने के हाड़ तोड़ परिश्रम के कँटीले वर्णन हैं उनके काव्य में जो सीधे सीधे व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं। धर्म के धन्धे उन्हें कैसे लूटते खसोटते हैं। एक पद —

धैना करके कौन बतावै।
रोट,लंगोट चढ़ाय चुनरिया, पाथर को पतियावै।
पूजक नल दलदल घसि गासै, रचि रचि कथा सुनावै।
कौतुक सबै आर्थिक जानौ, संचित धन हमि खावै।
गुरु चेला, गुरुवाइन मिल जुलि, घण्टा गगन बजावै।
स्वसिद्धान्त समर्थन हेतु, जन जीवन उरझावै।
रचि रचि पोथी थोथी अगणित, ईश्वरी मुहर लगावै।
'बौखल' जालिक को सब घिरवै, साँचन नैन दिखावै।
भेष मदारी धरि भुइँ डोलै, सोइ जगत पतियावै।। (2)

समाज के जितने भी अगुवा, नेता व जितने भी परिवार के नाते रिश्ते होते है, सभी दीन हीन को चूसने में ही लगे रहते हैं— यहाँ तक कि वह अपने ऊपर आत्म विश्वास रखकर अपने काम को नहीं कर

नारायण अंजलि भाग– II:— (1) दो.सं.—389 पृ.क्र.—28,
नारायण नैवेद्य :— (2) पद.सं.— 916 पृ.क्र.—263.

पाता— इसका एक चित्र उपस्थित है—

बिलरिया लूट रही मनमानी।
वंश भयंकर याको बगरो, सास ससुर पितियानी।
सार बहनोई पिता महतारी, पुत्र पौत्र पटरानी।
एकै जन्नत गाय प्रसंसा, दै टोपी तुरकानी।
एकै नेता बने दुरंगी, नैन भुजा फरकानी।
मटकै बहुतक बीच बजरिया, लिहै किताब विधानी।
एकै बने दरोगा डोले, कहै मथुरिया बानी।
'बौखल' कस घाटै नहि जियरा, का कहु करै किसानी।। (1)

कवि की दृष्टि में आर्थिक वैषय के इतने भयावह परिणाम दिखाई दे रहे हैं कि वर्ग भेद की चक्की में पिसने वाले गरीब का जीना कठिन हो गया है। एक ओर वह मूल्यहीन श्रम करने के लिए अभिशप्त है। दूसरी ओर वेतन की न्यूनता के भार से दबा जा रहा है। अतः पूरी व्यवस्था पर कवि व्यंग्यात्मक चोट करता है—

बाबा वेतन भार महानी।
सबै स्वाद लड्डुवन के लागे, सत्य असत्य भुलानी।
अतर गुलाबी सूंघि सुगंधी, बिटिया भई दिवानी।
धीवर का सुत भयो दरोगा, मात पिता भरि पानी।
उमरि बुढ़ाई दादा दादी, जीवित आश विरानी।
अफसर पूत पतोहू विधायक, मैया मथै मथानी।
कचरै कूट खाय बहु बिलमै, करि परिवार किसानी।
'बौखल' फोड़ि खोपड़िया रोवै, जनता बहु विलसानी।। (2)

<u>शैलियाँ</u> — शैली रचनाकार के आन्तरिक व्यक्तित्व की बाह्य अनुकृति होती है। उसके मानसिक गठन, चिन्तन व विचारों, भावों की एक प्रकार की छायाप्रति होती है शैली, जिसमें उन का अंकन लेखनी संभूत होकर मूर्तिमान हो उठता है। भावों का भाषा में इस प्रकार से संगुंफन होता है कि व्यक्तित्व की छाप अलग से दिखाई देने लगती है। यद्यपि भाव और भाषा दोनों वहीं होते हैं फिर भी अलग—अलग रचनाकारों की शैली भिन्न हो जाती है। ऐसा क्यों है ? इसका कारण यह है कि भाषा के माध्यम से अपने भावों, विचारों को अभिव्यक्त करते समय कवि की अपनी निजता का एक ऐसा घुलनशील तत्व भाषा के जल में जा मिलता है, उसमें निमज्जित हो जाता है कि वह दूसरे से सर्वथा भिन्न हो जाती है और वह निजता स्वच्छ जल वाली नदी के तलहटी में पड़ी वस्तुओं की भांति,पारदर्शी होकर प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती है। यही शैली की विशेषता और उसके अन्यों से भिन्न होने के कारण है।

विरह वर्णन के तीन उदाहरणों से यह एकदम स्पष्ट हो जाता है—

"हौं तो मोहन के विरह जरी रे तू कस जारत"
"विरह अगिनि तन तूल समीरा, स्वास जरई छन मांहि सरीरा"

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.— 284पृ.क्र.—82,(2) पद.सं.— 1209पृ.क्र.—349.

नैन नीर धरती ढुरै, पावक विरह बयार।
पाँच तत्व तन झोपड़ी, मिलन आश भरतार'' ।। (1)

तीनों ही उदाहरणों में विरह से शरीर के जलने की वर्णन है; परन्तु फिर भी तीनों ही भिन्न रचनाकारों की कृतियाँ जान पड़ती है। प्रथम सूर की, दूसरी तुलसी की व तीसरी 'बौखल' की उक्तियाँ है।

इसके अतिरिक्त अन्य कारण यह है कि वर्ण्य विषय भी विविध प्रकार के होते हैं जिनकी अपनी अपनी प्रकृतियाँ भी अलग अलग होती हैं। अतः उन प्रकृतियों के अनुसार भावों व भाषा का संयोजन करना पड़ता है। दूसरे रचनाकार की भाषा में कभी-कभी क्षेत्रीयता का प्रभाव आ जाता है। विधा का अन्तर भी शैली की भिन्नता में प्रभाव डालता है। एक ही रचनाकार की पद्य व गद्य की शैलियों में अन्तर आ जाता है। गद्य में भी निबन्ध व रिपोर्ताज़ की शैलियाँ भिन्न हो जाती है । निबन्धों में भी यदि गहन गंभीर विषय पर लिखना है और उसमें कुछ नई खोज या नये सिद्धान्त निकालने है या नई स्थापना करनी है तो शैली गवेषणात्मक हो जायेगी परन्तु यदि किसी घटना प्रधान विषय पर लिखा जाना है तो वहाँ की शैली वर्णनात्मक हो जाती है। आलोचना के आधार पर लिखे गये लेखन में विवेचनात्मक शैली प्रयुक्त होती है। इसी प्रकार कहीं पर व्यंग्य लेखन या कटाक्ष किये जाने हों, मनोरंजन व हास्य के लिये लेखन हो तो शैली स्वयमेव व्यंग्यात्मक हो उठती है। कुछ पूर्व सिद्धान्तों को समय की कसौटी पर कसते हुए कुछ निष्कर्ष निकालने हों तो शैली व्याख्यात्मक हो जाती है।

काव्य के क्षेत्र में भी शैलियों में यही भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। कविता में जहाँ शृंगारिक वर्णन आता है वहां प्रायः सभी कवि भावात्मक शैली का ही प्रयोग करते हैं। प्रेम दीवानी मीरा अपने गिरधर नागर की शोभा बखानते हुए कहती है–

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
मोर मुकुट कटि कांछनि सोहै, उर वैजन्ती माल।

वहीं 'प्रसाद' अपने प्रिय के तन की शोभा इस प्रकार वर्णन करते है–

चंचला स्नान कर आवै, चन्द्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा, आलोक मधुर थी ऐसी ।।

श्री 'बौखल' ने अपने श्याम को जो नयनों में बसाया तो उनकी यही मनुहार है– यही आकाँक्षा है कि वे अब वहाँ से हटें नहीं–

श्याम सरोरूह श्याम तन, श्याम वर्ण तन भौंर।
बसो श्याम अब नहि तजो, श्याम नयन मम ठौर।। (2)

मोरे नैन बसो नित साईं।
सोवत जागत सपने निसि दिन, प्रतिमा देत दिखाई।
शैल शिखर उद्यान विपिन बन, लोचन ललित जनाई ।। (3)

श्री बौखल के काव्य में प्रेम की व्यंजना भी बड़े उदात्त रूप में प्रत्यक्ष हुई है। पावन प्रेम संसार में जीवित रहने का सार है।

नारायण अंजलि भाग– II:– (1) दो.सं.–2514 पृ.क्र.–194, (2) दो.सं.–437 पृ.क्र.–32
नारायण नैवेद्य :– (3) पद.सं.– 43 पृ.क्र.–13.

जिन्होंने इस प्रीति की रस माधुरी का पान किया, वे ही धन्य हैं–

प्रेम बिनु सूनो सब संसार
चोंच पसारि मौन मन चातक, रीतो गगन निहार।
क्षितिज आलिंगन अश्रुधार लै, पखना प्रीति पसार।
स्वाती चाह चौगुनी बाढ़ी, बिरहा पीर अपार।
कैसे प्राण रहे या देही, जीवित अधर अधार।
चैत चांदनी चमचम चमके, ऋतुपति साजि सिंगार।
कूकि कूकि कोयल नित नाचै, तरू रसाल की डार।
'बौखल' प्रेम पियो जिन प्याला, पाय पंथ विस्तार।
जन जीवन की अँखियाँ झूलै, दै जग गयो सिंगार।। (1)

कवि के ह्रदय में विरह की पीर इतनी घनेरी है कि उसे जीवन का सम्बल, अपना नैया खिवैया ही बैरी लगने लगा है– और संसार ही भारी भार लगने लगा है–

हमरे बेर बैरी मांझी हमार।
बिन पिय सोये सेज नगिनिया, निशिदिन उठि फुंकार।
बरसै नीर अगम अँधेरिया, बिजुरी करि चित्कार
झंझरि नाव करीरनि भांवर, टूटि गई पतवार।
करि करुणा रोई दुई अखियाँ, बही उष्ण जलधार।
जिय बीतै तस जियरा जानै, सपन भयो संसार।
'बौखल' मांझी सोय सुख निदिया, भव भयो भारी भार।
अबकी बेर उबरि न डूबौ, करि कहना भरतार।। (2)

कैसी करुण पुकार है अपने भरतार से कि इस बार इस भव सागर से तार दो और फिर मुझे इस संसार सागर में डूबने के लिए न आना पड़े प्रभु! मेरा उद्धार करो।

विरह की पराकष्ठा है यह, तपन की चरम सीमा

बिरही बादर बरसिनभ, लै अँसुवा घनघोर।
इन्द्र धनुष लोहित वरण, बिरही रक्त निचोर।। (3)

इस दोहे से बरसने वाले बादलों का आँसुओं से भरा होना व इन्द्रधनुष का रंग विरहिन के रक्त से रंगा हुआ होना देखकर बरबस श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की उक्ति याद आ जाती है–

"लोहू पियो जो वियोगिन को, सो कियो मुख लाल पिसाचिन प्राची"

सूर भी प्रकृति पर वियागिन के दुःख का आरोप करते हुए कहते हैं–

पिया बिनु नागिन कारी राति
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया, डसि उलटी है जात।

इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि श्रृंगार में चाहे संयोग हो या वियोग– कवियों द्वारा भावात्मक

नारायण नैवेद्य :– (1) पद.सं.– 244 पृ.क्र.–71,(2) पद.सं.– 897पृ.क्र.–258,
नारायण अंजलि भाग – II :–(3) दो.सं.–1430पृ.क्र.–111.

शैली ही अपनाई जाती है। श्री 'बौखल' के काव्य में शताधिक पद व सहस्त्रधिक दोहे इसी वियोग वर्णन में भावात्मक शैली में लिखे गये हैं। श्री 'बौखल' की प्रेम व्यंजना में एक विशेषता और है कि जब वह अतिशय अनुभूतिपरक हो जाती है तो उसमें रहस्यात्मकता का पुट आ जाता है। ऐसे पदों को पढ़ते समय अवधूतों सन्तों की अटपटी सी बानी पढ़ने का आनन्द आने लगता है। एक पद इसी अगम अवस्था को वर्णन करने का प्रयास सा लग रहा है कि कवि कैसे किन शब्दों में उस अनिर्वचनीय दशा को प्रकट करे–

काह कहौं जग अगम कहानी
बाहिर भीतर लाने लोना, बसै आवरण पानी
बिना ज्ञान की लोनी दुलनियां, हिये भरम लपटानी,
माथे बिंदिया मध्य आरसी, बिम्ब परधि अनुमानी
काँकर कुलिश भेद नहि जानै, झूठ जौहरी बानी
मनुवा मध्य मधु मद टपकै, पी अंगुरि बौरानी
अटपट शब्द सहज सो दूरी, फिरै मस्त मस्तानी
घट के बासी शब्द न आवै, केसे कहौ बखानी
'बौखल' गोता मारि जलधि सब, गह तत्व इतरानी।। (1)

इस पद में लोनै लोना,भरम, आरसी, अटपट, मस्तानी, घट,गोता,उतरानी, मधु,अगम जैसे शब्दों का वाक्यों में संयोजन इस बात का साक्षी है कि यह पद अतिशय भावात्मकता की शैली में लिखा गया है।

<u>प्रश्नात्मक शैली</u>– महाकवि 'बौखल' को अपने सामने दिखाई देने वाले संसार में – जो आर्थिक विषमता से बहुत बुरी तरह से त्रस्त है– न तो ईश्वर द्वारा किया गया न्याय समझ में आता है न मानव कृत कानूनो विधानों का। उनके मन में एक ही प्रश्न विभिन्न रूपों में कौंधता रहता है कि जब ईश्वर ने एक ही हाड़, चाम, मन मस्तिष्क वाले मनुष्यों को एक समान बनाया है तो फिर उनके जीवन यापन की स्थितियों में इतना गहरा भेदभाव क्यों है ? वर्ण व्यवस्था से पूर्णतः असन्तुष्ट श्री बौखल ने अपने दोहों व पदों ने इस पर बड़ी तल्ख प्रतिक्रियायें दी हैं। उन्होंने ऊँच–नीच के भेदभाव, पारस्परिक विश्वास, सौहाद्‌र्य की क्षति, धार्मिक आडम्बरों की खेप, अमीरी का बेशर्म, प्रदर्शन और गरीब के मुंह का छिनता कौर, उदण्ड बाहुबलियों की बरजोरी व परिश्रमी के आँसू व गुहार, लोकतंत्र की झूठी व्यावहारिकता, और स्वार्थ का नंगा नाच आदि व इसी प्रकार की सैकड़ों समस्याओं से जूझने वाले ज्वलंत प्रश्न उपस्थित किये हैं। उनकी यह प्रश्नाकुलता ही उन्हे उनके भीतर के सच्चे समाज हितैषी और स्वस्थ परंपरा के पोषक, रुढ़िमुक्त धार्मिकता के अनुयायी व निश्छल हृदय के कवि के रूप में सामने ला खड़ा करती है।

नारायण नैवेद्य :– (1) पद.सं.– 957पृ.क्र.–275.

एक दार्शनिक प्रश्नावली का उदाहरण—

किसकी रही अमर सुलतानी ?
दारा सिकोह बहादुर भारी, रण कटार चमकानी
अन्तिम दशा भई जो उनकी, को कहि सत्य सुबानी
उमर उस्मान खलीफा नामी, जिनकी जमात तुरकानी
सिजदा परन न पाये तनिकों, भई ह्रदय हैरानी
नौरोशाह रोम को शासक, विप्लव भयो तूफानी
हारूँ कॉरू रैयत चाहै, नौसेरा ईरानी
काल गले में सबै समाये जन्म लियो सो फानी
'बौखल' सरे मद्द मंसूरा, बाकी रही कहानी।। (1)

धार्मिक आडम्बर क्यों और किसने फैलाये, क्यों परिश्रम से जी चुराया, क्यों पराये माल में गुलछर्रे उड़ाये, ऐसे भक्तों से एक प्रश्न है—

भगतन को भगवान बुलायो ?
सब कुछ दै दुनियां में भेजो, क्यों कमाय नहि खायो ?
कैसे बने सन्त सन्यासी, जन जीवन उरझायो ?
ढोंग बनाय जाल जल डारि, मारि मछरि घर लायो
नून तेल बहु सोधि मसाला, विधिवत भूंजि पकायो
सुखी विशेष, छांडि कस चिन्ता, खायो माल परायो ?
गाल बजावत उमरि बिताई, शोषण बहुत बढ़ायो
अपना नाज कूदि दिन राती, ईश्वर नाच नचायो
'बौखल' कमर सरंगी लै—क्यों, मोहि लुगरा पहिरायो ? (2)

ईश्वर कृत समानता के विधान में मानव ने अपने अपने अलगाव के नियम क्यों गढ़ लिये, जन्म मृत्यु के लेखे में सब एक से पर जीवनयापन में सब अलग, यह किसने किया ? हर धर्म के पोंगापंथी ठेकेदारों ने—

हिन्दू तुरुक कहाँ से आये ?
जीव चलें सब एकै घर से एकै घरे समाये
एकै माटी सबै लपेटे, एकै नियम निभाये
मुल्ला पंडित पोप पादरी, रचि रचि जाल बिछाये
ठगा ठगी की बात करैं सब, क्यों दल दल निरमाये ?
एकै रवि चन्दा ब्रह्माण्डा, एकै रब सिरजाये
एकै रुधिर मांस जग जीवन, योनी पूत कहाये
गुरु कस बने मदारी जग में, सबहीं नाच नचाये ?
'बौखल' दुखी कारी करतूती, भेद बहुत उपजाये।। (3)

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.— 387पृ.क्र.—112, (2) पद.सं.—470पृ.क्र.—136, (3) पद.सं.— 243पृ.क्र.—71.

कबीर ने भी दुखी होकर पूछा था— कुछ ज्यादा तल्ख भाषा में—

"जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया—आन बाट है काहे न आया ?"

कवि ने मनुष्यों को सदा समभाव से रहने के लिये प्रेरित किया है क्योंकि एक समय में अधिक समृद्ध होकर तथा कभी नितान्त तूमड़ के समान तुच्छ होकर रह जाना क्या श्रेयस्कर है ?

आज सुघर कल तोमड़ी, फिर कैसो अभिमान ?
सदा रहो समभाव लै, सहज होय कल्यान।। (1)

परोपजीवी व्यक्ति, कवि के लिये बड़ी निन्दा का विषय है जो पराये श्रम पर मौजें उड़ाता है क्योंकि उसके इस कार्य से से कितने सताये गये श्रमिकों की आहें जुड़ी रहती है। कवि का प्रश्न है कि इस जटिल और जड़ हो चुकी व्यवस्था का समूलोच्छेदन कौन करेगा ?

जीवन पथ बैठो सुचित, परोपजीव जीव
श्रमिक फिरै उदास चित, कौन हिलावै नींव ? (2)

इसी प्रकार कवि को सत्य रूपी हीरा गंवा देने का बहुत दुःख है क्योंकि इस झूठों की नगरी में सत्य की पहिचान कर ही कौन सकता है। हीरे की परख जौहरी कर सकता है परन्तु जहां पारखी स्वयं चोरों की नगरी में निवास करता हो तो उसकी वृत्तियाँ तो अपने आप चोरों सी हो जायेंगी। सत्य का हीरा वहाँ कहाँ छिपाया जा सकता था ?

चोरन की बसि नागरी, 'बौखल' सत्य गंवाय
परखि न आवै जौहरी, कासों कहौं बुझाय ? (3)
काम करै नहि अपना, औरन कहै निकाम
'बौखल' ऐसे मनुज को, कौन करे प्रणाम ? (4)
राव रंक जग कौन है, लबरा, रचि दरबार ?
बंसुरी की ध्वनि लय दुई, बेना बाजि किवार (5)
मांझी औघर हे अलि, कौन लगावै पार ?
यहि लग बिलखै बावरो, सूनो लखि संसार।। (6)

<u>व्यंग्यात्मक शैली</u>—

नारायण नैवेद्य व नारायण अंजलि दोनों भाग के रचयिता महाकवि 'बौखल' की चित्तवृत्ति अपने रचना कर्म के अन्तर्गत यदि सबसे अधिक कहीं रमी है तो वह है पूरी व्यवस्था के ऊपर करारे व्यंग और कटाक्ष करते हुये सबकी पोल खोलना, चाहे वे नौकरशाह हो, चाहे पंडित पुरोहित, मुल्ला अथवा सम्पन्न स्थिति में रहने वाले शोषक वर्ग के प्रतिनिधि। चाहे वे मूंड मुड़ाये सन्यासी हों या लोकतंत्र के रखवाले नेता व सत्तासीन अधिकारी। कवि का सबसे अधिक आक्रोश उन सजे बजे पाखण्डी साधुओं जोगियों व कठमुल्लाओं पर है जिन के मन, वाणी और कर्म में कहीं कोई तालमेल नहीं है, विषय वासनाओं में फंसे और "नारि मुये घर संपतिनासी—मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी" के प्रतिरूप, वेष में पाखण्ड छिपा पाने में असमर्थ फिर भी भोले लोगों को ठगने में प्रवीण। ऐसे लोगों पर

नारायण अंजलि भाग – I :–(1) दो. सं.–1156पृ.क्र.–87,(2)दो.सं.–1978पृ.क्र.–150,
(3) दो. सं.–1991पृ.क्र.–151,

नारायण अंजलि भाग– II :–(4)दो.सं.–1039पृ.क्र.–80,(5) दो. सं.–396पृ.क्र.–29
(6)दो.सं.–1268पृ.क्र.–98.

'बौखल' ने जम जम कर व्यंग्योक्तियों के कोड़े बरसाये हैं। इस व्यंग्यात्मक शैली में लिखे गये पदों व दोहों की संख्या अनुपात में सबसे अधिक है। अपनी ठेठ देशज भाषा की पैनी छुरी से उन्होंने सबके जिरह बख्तर काटे हैं और उन्हें उनकी मूल–प्रवृत्तियों के साथ बीच बाजार में खड़ा कर दिया है, कुछ पद इसी के साक्षी हैं–

मुल्ला पंडित बहुत सयाने
एक ब्रह्म एक उल्लाह थापिन, गैबगती अनुमाने
स्वर्ग बहिस्त नरक अरू दोजख, भणि भाषा ऐनाने
चोगा चपकन चुस्त पैजामा, ऐबा अंग सजाने
चोटी दाढ़ि धागा तसबीह, लागे पाय पुजाने
ठगा ठगी की घड़ी योजना, पंथी लागि फंसाने
मुक्ती और निजाद निजामी, मारग बहुत बखाने
इतनै धरम इमान है इनका, दौलत लगे कमाने
बौखल देखे बात फरोशी, मानव मूड़ मुड़ाने।। (1)

श्री 'बौखल' तथा कथित सभ्य संसार का नक्शा किस प्रकार खींचते हैं–

बाबा दुनियां सभ्य भई
गोरू बछेरू एक न पालैं, छानैं दूध दही
निज निज चतुराई सब भूले, मान न काहु कही
काठ नाव डूबि जल गहिरे, कागद नाव बही
न्याय न चाहत कोऊ जग में, कपटी बात कही
चोर जुआरी दगाबाज की, परियोजना लही
बुद्धिमान ज्ञान गुन सागर, या जग मथर मही
जन जन को दारुन दुख देवैं, शासक रीति नई
विज्ञानी प्रकृति जननी की, ओझरी खींच लई।। (2)

यह तो एक सार्वभौमिक सत्य है कि वर्तमान समय में चारों पुरुषार्थों में से अर्थ ही प्रधान नायक बन कर समाज में उतरा है, वही केन्द्र है जिसके चारों ओर समाज की सारी व्यवस्थायें व सम्पूर्ण क्रियाकलाप घूमते हैं। अर्थनीति ने ऐसा जटिलजाल मानव समाज में फैला दिया है कि उसकी पकड़ से छूट पाना असंभव हो गया है– एक चित्र

अर्थ जानि जग जटिल घनेरा
बाजीगर बाँदर मिलि दुइनो, खाइन धान कचेरा
विषधर बन्दी नाचि पेटारी, महुअर नाचि सपेरा
अर्थ देव तुम सब सुख छीना, भेद भाग जग हेरा
दारूण द्वेष ईर्ष्या व्यापी, भुई संग्राम करेरा
बहुतक चोर बने सेनापति, बहुतक बनि तन पेरा

नारायण नैवेद्य :– (1) पद.सं.– 548पृ.क्र.–159,(2) पद.सं.–206पृ.क्र.–60.

बहुतक तोहि सुमिरि लपटाने, बहुतक गुरु अरु चेरा
तैं अपनी चोरी पै राजै, कन्त सबै जन फेरा
सब सिद्धान्त के तुमही स्वामी, तोर न टूटै घेरा।। (1)

पूरा समाज ही मानो अकर्मण्यता का शिकार होकर रह गया है व प्रलोभनों की बाढ़ में सब अचेत से बहे जा रहे हैं—

बाबा करै न चाकरी, दाई करै सिंगार
बनियां बैठो ओबरी, लरिका खेलि शिकार।। (2)

विषय भोग में फँसे एक बूढ़े वैरागी का शब्द चित्र दृष्टव्य है—

बुढ़वा बैरागी भयो, अँखियन सूझत नाय
परमहंस स्वर्ग चले, कखरी नारि दबाय।। (3)

राजनीति की शतरंजी चालों से लाभ उठाने का एक सहज नुस्खा—

नेता सो नाता करो, जो चाहो धन धाम
भ्रष्टाचार की मोटरी, शीश धरी सुरधाम।। (4)

सच बोलना दुधारी तलवार है, सच कहने वाले की क्या दशा होती है—

सत्य कहै जूते सहै, अलि ये हाल समाज
इकलो डोलै राह में कोई न पूछै मिजाज।। (5)

सामाजिक वर्गों में इतना भेदभाव व विषैलापन प्रवेशकर गया है कि कवि को इस शासन व्यवस्था से ही वितृष्णा हो गयी है, इससे तो फकीर होना भला—

जोगिया गावै राग हमीरा
मनुज देखि कारी करतूती, केहि होय न पीरा
हींग कपूर न पावै रोगी, बहुतक पावै जीरा
श्रमिक कै पेट कुकुरिया भूंकै, गणिका बाजि मंजीरा
सैनिक साध महा का धोखा, रक्त बहे रण तीरा
जीवन दाता काल खरानो, भयो हलाहल नीरा
मेधावी मानुष रचि रचना, उपजिविपति गंभीरा
अन्न जल राजा जुगवत नाहीं, जुगवै हंड़ियन हीरा
'बौखल' त्यागि सुखद नव आशा, बनबो भला फकीरा।। (6)

इस प्रकार श्री 'बौखल' का सम्पूर्ण साहित्य एक टकसाल बन गया है जहां खरे व खोटे सिक्के अलग अलग खाँचों में बंट कर, पुकार पुकार कर अपनी कहानी कह रहे हैं।।

नारायण नैवेद्य :— (1) पद.सं.— 904पृ.क्र.—260,(6)पद.सं.— 693पृ.क्र.—200,
नारायण अंजलि भाग— I:—(2) दो. सं.—454पृ.क्र.—33,(3) दो. सं.—477पृ.क्र.—35,
नारायण अंजलि भाग— II :—(4) दो. सं.—1224पृ.क्र.—94,(5) दो. सं.—1242पृ.क्र.—96,

उपसंहार

उपसंहार

'जयन्ति ते सुकृतिनः रस सिद्धाःकवीश्वराः' में सूक्तिकार ने काव्य के अनुशंसन एवं उसकी प्रभविष्णुता का मापदण्ड ही नहीं निर्धारित किया अपितु यशः काय शेष कवि की सार्वजनीनता का संकेत किया है । बात यह है कि हृदयस्थ रागात्मक अनुभूतियों का प्रकाशन कवि युगीन सापेक्ष्य रूप में करता है। कालावधि समाप्त होने पर सामान्य रचनाएँ काल के गर्त में विलीन हो जाती हैं । ऐसे समय दिक्काल जयी कवि और उनकी अमर रचनाएँ अपनी कीर्ति अक्षुण्ण रखती हैं । कहना नहीं होगा कि हमारे आलोच्य महाकवि नारायण दास 'बौखल' ऐसे ही कवि हैं जिनकी रचनाओं में एक ओर मध्यकालीन ज्ञानाश्रयी शाखा की साधना परक एवं अनुभूति परक अभिव्यञ्जनाएँ हैं तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन में, जगत जगञ्वाल में फँसे मानव की जिव्हा-लौल्य एवं तज्जन्य विषमताओं का सुनिश्चित चिन्तन व्यक्त हुआ है । ऐसे कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध में किया गया है । इस अध्ययन हेतु शोध प्रबन्ध को नौ अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

महाकवि नारायणदास 'बौखल' केन्द्रित इस शोध कार्य के प्रथम अध्याय में उनके जन्म स्थान, परिवार, माता पिता, शिक्षा—दीक्षा तथा स्वातन्त्र्य सेवा का विवरण दिया गया है । उनकी स्वातंत्र्य सेवा का विवरण देने के लिये बांदा जनपद जो पवित्र बुन्देलखण्ड भूमि का एक भाग है, के ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व साहित्यिक परम्पराओं के धनी मानी स्वरूप का वर्णन किया गया है। यह एक प्राचीन नगर है जो पुराकाल में ऋषि वामदेव की तपस्थली रहा है, महर्षि वाल्मीकि का आश्रम यहीं लालापुर में है, 'चित्रकूट' का परम पावन तीर्थस्थल है, रामकथा के अमर गायक तुलसीदास का जन्म स्थान 'राजापुर' में है। भगवान शिव के हलाहल विषपान की भयंकर दाह को शान्त करने वाला स्थान 'कालिंजर' व उसका अभेद्य दुर्ग है।

यह नगर राजा विराट की नगरी रहा है जहां धनुर्धर अर्जुन ने अपने अज्ञातवास का एक वर्ष बिताया था। अप्रतिम वीर आल्हा ऊदल के शौर्य की गाथा संजोये 'महोबा' है। कोशल नरेश प्रसेनजित की राजधानी कौशाम्बी (मऊ) बांदा में है। यह नगर ललित काव्यधारा के प्रणेता 'पद्माकर (कवि शिरोमणि) तथा वृहत्कथा के लेखक 'वररुचि' के जन्मस्थल होने से गौरवान्वित है। वर्तमान समय के प्रख्यात जन कवि श्री केदारनाथ अग्रवाल भी इसी नगर के कमासिन ग्राम के थे। स्वनामधन्य कवि व लेखक राम रसिकेन्द्र शारद रसेन्द्र, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, श्रीमती कान्ति खरे, गोविन्द मिश्र, अजित पुष्कल आदि शताधिक की संख्या में इसी जनपद में हुये हैं।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी यह जनपद पीछे नहीं रहा। यहां के निवासी दृढ़—संकल्पी, परम्परा समृद्ध तथा त्याग व बलिदान का जीवन जीने वाले रहे हैं। अंग्रेजों की दुर्दमनीय नीतियों का जमकर सामना करने वाले बाँदा निवासियों ने गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से लेकर सन् 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' तक में सक्रिय सहयोग देकर अमर सेनानियों की भूमिका का

निर्वाह किया है। इन सब घटनाओं व सेनानियों का सचित्र वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात श्री 'बौखल' का जीवन वृत्त है। वे उ0 प्र0 के सहारनपुर जिले के रुड़की नामक स्थान में सन् 1904 में जन्में । वे श्री रामकृष्ण व माता इतवरिया देवी के पुत्र थे, वे प्रजापति जाति के थे व उनका पालन पोषण संयुक्त परिवार में हुआ था जहाँ उन्हें पारिवारिक संस्कार मिले थे जो उनके मार्गदर्शक बने। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के लिये मौलवी वशीरुद्दीन को नियुक्त किया गया, परन्तु औपचारिक शिक्षा में मन न लगने के कारण वह आगे न बढ़ सकी। जीविका के लिये अंबाला जाकर सिलाई का काम सीखा। उनकी बहिन श्यामकली का विवाह बांदा जनपद के कर्वी (चित्रकूट के समीप) में हुआ था। परिस्थितियोंवश श्री 'बौखल' को सहारनपुर छोड़कर कर्वी आना पड़ा और अंततः कर्वी व बांदा ही उनके स्थायी निवास स्थान व कर्मक्षेत्र बने। वे आजीवन अविवाहित रहे।

स्वयंरुह वृक्ष के समान विकसित उनका जीवन व व्यक्तित्व बाँदा नगर के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के सम्पर्क में आकर स्वयं भी उसमें सहयोगी व भागीदार बना। यहीं उनके अन्तःस्थल से कविता की धारा फूटी व उन्होंने सेनानी तथा भावभक्त कवि दोनों के जीवन एक साथ जियें। वे क्रान्तिकारी भी बने तथा गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से लेकर सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तक उनका सक्रिय सहयोग रहा। उन्हें एक बार छः माह दुबारा 9 माह की जेल की सजा मिली तथा अन्यान्य अभियोगों में अनेक बार हवालात आदि जाना पड़ा।

इस सबका तिथिवार वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

<u>द्वितीय अध्याय</u> में श्री 'बौखल' के समग्र साहित्य की विवेचना की गयी है। श्री बौखल द्वारा रचित साहित्य प्रमुखतः चार शीर्षों में विभाजित किया जा सकता है जो कि – 1. प्रकाशित काव्य 2. अप्रकाशित काव्य, 3. कथा साहित्य (अप्रकाशित) व 4. निबन्ध (अप्रकाशित)।

प्रकाशित काव्य साहित्य में श्री बौखल द्वारा रचित पदों व दोहों के संकलन के रूप में नारायण नैवेद्य, नारायण अंजलि भाग–1 व नारायण अंजलि भाग–2 ये तीन ग्रंथ हैं । नारायण नैवेद्य में श्री बौखल के पदों का संकलन है इसमें विविध बहुरंगी चित्र उकेरे हैं। वर्तमान राजनीतिक दशा का वर्णन प्रमुखता से किया गया है। आध्यात्मिक समाजवाद की स्थापना हेतु पीठिका तैयार की गयी है। श्रृंगार, रस के दोनों पक्षों– संयोग तथा वियोग का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत है। भारतीय जीवन दर्शन तथा सांस्कृतिक परम्पराओं से सम्बन्धित पद भी बहुलता से मिलते हैं। कर्मकाण्ड तथा आडम्बरों की खिल्ली उड़ाने वाले भी अनेक पद इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। लोकतंत्र तथा अर्थव्यवस्था भी विषय बने हैं।

नारायण अंजलि भाग–1 में 'दोहा' छन्द का प्रयोग कवि ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये किया है। इस लघु छन्द में कवि ने मानव जीवन, दर्शन, संस्कृति तथा समाज के विविध परिदृश्य प्रस्तुत किये हैं। भाग–1 में दार्शनिक चिन्तन से सम्बन्धित दोहों की बहुलता है। विज्ञान की वर्तमान समाज में उपयोगिता बताने वाले दोहे भी मिलते हैं। श्रमिक वर्ग तथा कृषक वर्ग से कवि की सहज सहानुभूति

इन दोहों में दृष्टिगत होती है, क्योंकि समाज में उच्च वर्ग तथा धनी वर्ग निरन्तर इन वर्गों का शोषण करता रहता है जो स्वातंत्र्यचेता तथा प्रबुद्ध व्यक्तित्व के स्वामी श्री 'बौखल' को उद्वेलित करता रहता है। प्रमुख रूप से कवि समाज—सुधार तथा वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन की कामना करता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति व दर्शन से प्रभावित श्री 'बौखल' वर्तमान में भी उन मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं। जीव, ब्रह्म, प्रकृति तथा माया को आधार बनाकर अनेक दोहे रचे गये हैं। लोकतंत्र को भी रचनाओं में लिया गया है।

नारायण अंजलि भाग— 2 में कवि संसार में अपने अनुभव जन्य प्रयोगों को भाषा का आधार देकर दोहों ने प्रस्तुत करता है। स्वभावतः इस ग्रन्थ में भी कवि ने दर्शन, समाज व संस्कृति से सम्बन्धित दोहे प्रस्तुत किये हैं। विज्ञान से सम्बन्धित दोहे भी संग्रहीत हैं। किन्तु भाग—2 का प्रमुख आधार—विषय श्रृंगार रस है। इसमें दोनों पक्षों का सबल चित्रण है, किन्तु विरह वर्णन में कवि की रुचि अधिक झलकती है। प्रिय तथा प्रेमिका, नायक तथा नायिका आधारित जीव—ब्रह्म का विरह वर्णन अत्यन्त मनोहारी तथा सुन्दर है। आध्यात्मिक समाजवाद जो कवि का सर्वप्रिय विषय है, उसका वर्णन करने वाले दोहे भी नारायण अंजलि, भाग—2 में भी संग्रहीत हैं।

अप्रकाशित साहित्य के अन्तर्गत श्री 'बौखल' का रचना संसार विविध विधाओं में बँटा है। यह सभी कहीं एक जगह संग्रहीत या संकलित नहीं है। पुराने रजिस्टरों, कापियों तथा कुछ खुले पन्नों में जो यत्र—तत्र बिखरी सामग्री मिली है उसमें उर्दू कविताएँ, कुछ कहानियाँ व निबन्ध आदि रचे गये हैं। उर्दू शायरी में देश प्रेम की कविताएँ, इश्क़ मजाजी व इश्क़ हक़ीक़ी तथा सामाजिक जीवन को दर्शाने वाली रचनाएँ हैं।

एक अपूर्ण उपन्यास 'मृत पत्नी की खोज' मास्टर साहब की विभिन्न संस्कृतियों के समागम की इच्छा दर्शाता है। कुछ व्यंग्य कथाएं भी उनके द्वारा रची गयी हैं। वैदिक ज्ञान, विज्ञान, धर्म, विश्वशान्ति तथा बुद्धि जैसे विषयों पर 'बौखल' जी ने अपनी लेखनी चलायी है। ये निबन्धों के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुई हैं। पेन्सिल के धुँधले अक्षरों, में तथा पुराने पड़े पन्नों से यह साहित्य वैभव उठाने का यथासम्भव प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय में महाकवि 'बौखल' के काव्य में सामाजिक जीवन की अवधारणा का स्वरूप व्यंजित किया गया है। यहाँ लिखा गया है कि व्यष्टि समष्टि की अभिन्न इकाई होता है, वह समाज की निर्मिति का अनिवार्य घटक है, परन्तु उसका अस्तित्व समष्टि में ही सार्थक होता है, यह बीज बिन्दु है श्री 'बौखल' की सामाजिक चेतना का। उनके काव्य में 'सामाजिक जीवन की अवधारणा' अध्याय में सर्वप्रथम तो इस तथ्य को खोजने का प्रयास किया गया है कि उनकी चेतना इतनी अधिक समाजोन्मुखी कैसे बनी ? वे कौन से कारण थे जिनसे उन्होंने समाज को व्यक्ति से अधिक महत्व दिया।

उनकी दृष्टि से व्यक्ति के समस्त क्रियाकलापों का केन्द्र समाज ही है क्योंकि अर्थ व्यवस्था की धुरी समाज पर केन्द्रित हो कर ही घूमती है। कवि ने अपनी कहनी (आत्म कथ्य) में स्वयं लिखा है कि "जीने की कला व जीवन के विज्ञान के प्रशिक्षण के लिये जिस वातावरण की आवश्यकता आज

के प्राणी समाज को है उसके निर्माण को मैने अपने काव्य की विषय वस्तु बनाया है । इस संदर्भ में मैने जीवन और जगत के अस्तित्व के लिये आवश्यक प्रकृति के बहिरंग और अंतरंग पक्षों का भली भाँति निरीक्षण किया है......... इसी दृष्टि को रखकर मैने आध्यात्मिक समाजवाद का स्वप्न अपने वाङ्मय में सँजोया है।"

इस कथ्य के आलोक में देखने से ज्ञात होता है कि कवि का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को समाज में सामञ्जस्य बना कर रहने की कला व विज्ञान का प्रशिक्षण देना है, कवि की दृष्टि में यह इतना पवित्र कार्य है कि इसे उन्होंने आध्यात्मिक समाजवाद की संज्ञा प्रदान की । व्यक्ति स्वच्छन्द होता है परन्तु जब उसे सामाजिक जीवन की कला आ जाती है तब वह स्वच्छन्दता स्वानुशासनाधारित होने के कारण स्वतः के साथ दूसरे का मार्ग अवरुद्ध नहीं करती । यही स्वानुशासन आधारित जीवन पद्धति सामाजिक जीवन की सफलता की कुंजी है । यही इस अध्याय की विस्तृत व्याख्या है।

'स्व' का 'पर' से कभी कोई विरोध न हो तो 'स्व' व 'पर' के संघर्ष की संभावना ही नहीं है यही प्रथम पाठ है जो कवि ने अपने पारिवारिक जीवन से सीखा है । आगे चलकर यही धारणा तब और परिपुष्ट हुई जब कवि ने राजनीतिक जीवन में प्रवेश किया और सामाजिक जीवन के संघर्ष व उसके कारणों को खुली आँखों से देखा । भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की समयावधि में कुछ ऐसे आधारभूत तथ्य व बुनियादी मूल्य सामने निकलकर आये थे जो तत्कालीन समाज को प्रभावित कर रहे थे । उस समय पूँजीवाद व उपभोक्तावाद जनजीवन को अपने शिकंजे में पूरी तरह से जकड़े हुये थे और श्रमजीवी प्राणी उस भयानक चंगुल में फँसने को अभिशप्त था । कवि के संवेदनशील मन ने इन दो विरोधी भावनाओं के ज्वार को प्रत्यक्ष देखा, तभी उनके मन में सामाजिक समरसता के विचारों ने दृढ़ स्थान बनाया । वे प्रत्यक्ष देख रहे थे कि पूँजीवाद व उपभोक्तावाद के प्रतिनिधि व्यक्ति या व्यक्ति समूह होते हैं और उनके कुचक्रों में पिसने वाला होता है श्रमजीवी प्राणियों का समाज; अतः इस वैषम्य को दूर करना कवि का आग्रह बन गया । श्रम जहाँ सहकारिताधारित होता है वहीं उस श्रम का परिणाम (अर्थ व्यवस्था) भी समान रूप से वितरित होना चाहिए । यदि इतनी समानता न हो सके तो कम से कम हर व्यक्ति को इतना मिलता रहे कि वह भूख की ज्वाला में न जले । वे गाँधी जी के इस विचार को मान्यता देते थे कि जैसे भगवान के दिये हवा पानी पर सबका समान अधिकार है उसी प्रकार जीवनोपयोगी साधन भी सबको सुलभ होने चाहिए यही इस अध्याय में वर्णित विषय का सार संक्षेप है ।

<u>चतुर्थ अध्याय</u> में महाकवि 'बौखल' के काव्य में प्रगतिशील विचारधारा की समीक्षा की गयी है । प्रगति का अर्थ होता है किसी दिशा में विशिष्ट रूप से आगे बढ़ना । साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशीलता का आशय होता है एक विस्तृत चिन्तन वाले परिक्षेत्र में पारम्परिक विचार बोध को लेकर की जाने वाली रचनाओं का लीक से हट कर वैचारिक भावभूमि पर आधारित कथ्य को अपनाना और उसी नई ऊर्जा के साथ उसे अभिव्यक्ति देना ।

वर्तमान युग में समय के साथ बदलते परिप्रेक्ष्य में साहित्य में भी विचार धाराओं में परिवर्तन अवश्यम्भावी था । भारतीय मनीषा के नवजागरण का प्रभाव सभी क्षेत्रों-शिक्षा, विज्ञान, अर्थ तंत्र,

समाजशास्त्र आदि के साथ-साथ साहित्य पर भी पड़ा और उसका क्षेत्र जन जीवन के यथार्थ और उसकी विसंगतियों के चित्रण तक विस्तृत हुआ; परन्तु यथार्थ का यथातथ्य चित्रण ही उसका लक्ष्य नहीं रहा, वरन् उस यथार्थ को वर्तमान स्वरूप देने में जिन कारकों का हाथ रहा उनका बड़ी बेबाकी और निर्ममता के साथ फिर भी सुधारात्मक दृष्टिकोण को लेकर चित्रण होने लगा जिससे समाज की कटुताओं, वैषम्य व विसंगतियों को उन लोगों की खुली आँखों तक पहुँचाया जाने लगा जो इसकी भयावह मार झेलने को अभिशप्त थे और इस प्रकार एक प्रबुद्ध जागरूकता के साथ इस नव चेतना को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य साहित्यकार के कन्धों पर आ गया ।

साहित्यकार जब इस दायित्व का वहन करने लगता है तब यथार्थ की सीमायें टूटने लगती है और उसमें वे आयाम सम्मिलित होने लगते हैं जो दूर दृष्टि, अग्रगामिता, सुधार, विकास व नव चेतना के साथ आते हुये अवांछनीयता के त्याग को अपरिहार्य बना देते है और तब उस प्रगतिशील अभिव्यक्ति में नई ऊर्जा व धार आ जाती है ।

इस अर्थ में श्री 'बौखल' पूरी तरह से प्रगतिशील विचारधारा के पोषक हैं व उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता को एक पावन कवि-निष्ठा मानते हुये इसका निर्वहन किया है । इस अध्याय में उन्होंने अपने जीवन दर्शन को कृषकों मजदूरों पर केन्द्रित किया है । इसकी अनुगूंज साहित्यिक वातावरण में सुनाई देने लगी थी । रूस की बोल्शेविक क्रान्ति का प्रभाव भी कवियों पर पड़ रहा था । अतः उन्होंने भी अपने चिन्तन को पूंजीवाद और शोषण कर्ता की अमानवीयता से त्रस्त जन जीवन पर केन्द्रित किया । कवि ने शोषित व सर्वहारा वर्ग की दयनीयता, विवशता, पीड़ा व उससे मुक्ति के अवरुद्ध मार्ग को उजागर किया । उनका लक्ष्य शोषक की अहमन्यता तथा उससे उत्पन्न सामाजिक त्रासदी की ओर समाज का ध्यान खींचना व अन्य वर्गो की सहानुभूति जगाने का प्रयत्न करना रहा।

सामाजिक वैषम्य बढ़ाने में राजनीति की कुटिल चाल, नेताओं का दोहरा चरित्र, शोषितों की कुचली हुई मानसिकता तथा अवसरवादी जनप्रतिनिधियों के दंभी मिथ्याचारी चरित्र के योगदान को प्रत्यक्ष करना उन्हें अभीष्ट रहा । राजतंत्र व प्रजातंत्र के मौलिक भेद को तथा समाज में उनकी टकराहट को प्रत्यक्ष करते हुये साम्यवाद की पक्षधरता पर अपनी मुहर लगाना कवि को एक कारगर उपचार प्रतीत हुआ; इसे ही देश विदेश के कवियों की कविताओं के उदाहरणों से पुष्ट किया गया है।

अर्थतंत्र की जटिलता, असामान्य वितरण प्रणाली के दोष, उसकी दुश्चिन्ताओं से मानव को मुक्त कराने का प्रयास तथा जीवन के प्रति सुधारात्मक दृष्टि कोण जिससे परोपजीविता के दंश से जन जीवन पीड़ित न हो — यही इस अध्याय की विषय सामग्री है ।

<u>अध्याय पाँच</u> में श्री नारायण दास बौखल के काव्य में राजनीतिक चिन्तन को यथेष्ट समय व स्थान मिलाहै। देश की स्वतंत्रता के युद्ध में प्राणपण से योगदान देने वाले कविवर श्री बौखल ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आदर्शों व सिद्धान्तों को ध्वस्त होते देखा था। अपनी कल्पनाओं के रामराज्य तथा वास्तविकता के मध्य के अन्तर को उन्होंने अपनी कविता का विषय बनाया। उनके

राजनीतिक चिन्तन में लोकतंत्र, शासन, शासक वर्ग तथा व्यवस्थाओं पर खुल कर विचार–विमर्श हुआ।

इस अध्याय में प्राचीन शासन व्यवस्थाओं तथा आधुनिक शासन व्यवस्थाओं के बारे में गहन चिन्तन किया गया है। राजतंत्र तथा वर्तमान में इसके स्वरूप का चित्रण श्री बौखल ने अनेक पदों व दोहों में किया है। राजतंत्र की बुराइयों का चित्रण यथेष्ट मिलता है।

लोकतंत्र के बारे में श्री बौखल निरन्तर अपने परिचितों व इष्ट मित्रों से विचार–विमर्श करते रहते थे। उसके परिणामस्वरूप तथा स्वयं के अनुभव जन्य विचार इनके ग्रन्थों में मिलते हैं। इनके काव्य में लोकतंत्र का वर्तमान स्वरूप, इसकी खामियाँ तथा उसके आदर्श स्वरूप का अत्यन्त सटीक व जनता को मार्गदर्शन देने वाले काव्य का विवेचन किया गया है।

भारतवर्ष की गणतंत्रात्मक पद्धति के लाभ से भी बौखल जी प्रभावित थे। इन्होंने कुछ पद इस पद्धति के पक्ष में भी लिखे हैं, जिनकी विवेचना की गयी है।

कविवर श्री बौखल ने शासक वर्ग के आदर्श स्वरूप व वर्तमान स्वरूप पर अपना दृष्टिपात् किया है। शासक वर्ग के नैतिक चरित्र की अवधारणा इनके पदों में स्पष्ट होती है। शासन में केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण जैसे तत्वों से भी ये परिचित हैं जिनका परिचय इस अध्याय में दिया गया है।

अन्त में कवि की वर्तमान शासकगणों को दी गयी राय, चेतावनी तथा कवि के हृदय की पीड़ा का अध्ययन किया गया है। कवि चूंकि स्वयं देश को स्वाधीन कराने में अपनी युवावस्था को हूत कर चुका था तथा उसकी दृष्टि ने भविष्य के लिये स्वप्न संजोये थे। वे स्वप्न देश के नीति निर्धारकों व स्वार्थी नेतागणों के चलते छिन्न–भिन्न हो गये। अतः उनके काव्य में प्रखर विरोध मुखर हुआ है। तेजस्वी व्यक्तित्व कुंठाग्रस्त न होकर सिंह की हुंकार के समान अपनी आवाज ऊँची करता है तथा परिवर्तन की गर्जना करता है। इन्हीं तत्वों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

छठवें अध्याय के अन्तर्गत श्री 'बौखल' के साहित्य संसार में अवस्थित रस शास्त्र का विवेचन किया गया है। अपने विषयों के अनुरूप श्री बौखल ने विविध रसों का परिपाक अपने काव्य में किया है। सर्वप्रथम शृंगार रस से अनुप्राणित पदों व दोहों का अध्ययन किया गया है। कवि ने शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है तथापि नारायण अंजलि भाग–2 में प्रमुख रूप से वियोग शृंगार तथा विरह वेदना का प्रयोग है।

नारायण नैवेद्य में अनेक सुन्दर पद संयोग शृंगार पर आधारित है। इसके माध्यम से जीव तथा ब्रह्म के मिलन सम्बन्धी रुपक काफी संख्या में नैवेद्य में संकलित है। अंजलि भाग–1 में भी ढेर सारे दोहे संयोग शृंगार के विविध पहलुओं को दर्शाते हुए रचे गए हैं।

सामाजिक जीवन तथा श्रमिकों की दुर्दशा का वर्णन करने में कविवर बौखल ने करुण रस

का आश्रय लिया है। करुण रस के अनेक उदाहरण उनके काव्य में मिलते है।

भारतीय जीवन दर्शन तथा अध्यात्म से सम्बन्धित पदों व दोहों में विषय के अनुरुप शान्त रस का परिपाक हुआ है। अहिंसा, त्याग तथा धैर्य भारतीय चिन्तन के मुख्य आधार हैं तथा इन पर बात करते हुए श्री बौखल ने शान्त रस में निमज्जित काव्य रचा है।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य अत्यन्त दूषित हो गया है। एक स्वातंत्र्य—योद्धा तथा विचारक के लिए देश की तत्कालीन स्थिति नितान्त अवांछनीय थी। वर्तमान समय में भी राजनीति की वही स्थिति है। साथ ही आधुनिकता की दौड़ में युवावर्ग अपनी जड़ों से दूर होता जा रहा है। धर्म व बाह्य आडम्बरों पर कवि ने जो छींटाकशी करी है तथा अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है वह हास्य रस के सुन्दर उदाहरण हैं। व्यंग्य मिश्रित हास्य हमारे देश की आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार हम देखते है कि मास्टर श्री नारायण दास बौखल ने सहज रूप से साहित्य रचना करते हुए तथा अपने भावों को अभिव्यक्ति देते हुए प्रायः सभी रसों का संस्पर्श अपने काव्य में दिया है।

सप्तम अध्याय महाकवि 'बौखल' के काव्य में दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत जिस विषय वस्तु का विवेचन किया गया है वह है मानव मात्र की उस जिज्ञासा को शान्त करने वाले तत्व जो उस अखिल ब्रह्माण्ड में विस्तीर्ण अणु परमाणु विनिर्मित सृष्टि के उद्‌भव, पोषण व लय में प्रश्नवाचक रूप में समायी हुई है। यह द्वन्द्वात्मक व जिज्ञासा मूलक सृष्टि कब व कैसे बनी, इसका सृष्टा कौन है, जीव क्या है, जगत कैसे अस्तित्व में आया-ईश्वर की अवधारणा क्या है। संस्कृत की 'दृश्' धातु से निष्पन्न 'दर्शन' शब्द किस प्रकार से इन सारे प्रश्नों के समाधान में सहायक होता है। मानव की आत्यन्तिक दुःखों से निवृत्ति किस प्रकार से हो सकती है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थ क्या हैं - इनसे मोक्ष प्राप्ति कैसे संभव है, मुक्त जीव व बद्ध जीव में क्या अंतर है - इन सब प्रश्नों के समाधान के लिये क्या प्रयत्न किये गये - प्रमुख चिन्तक कौन हुये, उनके चिन्तन एक दूसरे से किन अर्थों में भिन्न हुये - आदि ही इस अध्याय की विषय सामग्री है।

इसके लिये प्रथमतः भारतीय पाश्चात्य दर्शनों का तुलनात्मक विवेचन उनके प्रवर्तकों व सिद्धांतों सहित प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य दर्शन में 'फिलासफी' दर्शन का पर्याय माना गया है। पाश्चात्य दर्शन छः माने गये हैं — (1) मेटाफिजिक्स, (2) एपिस्टोमालॉजी, (3) लॉजिक, (4) एथिक्स, (5) एस्थेटिक्स, (6) साइकोलॉजी। इन छहों दर्शनों की संक्षिप्त व्याख्या की गई है। भारतीय दर्शनों में छः आस्तिक दर्शन हैं — (1) मीमांसा, (2) वेदान्त, (3) सांख्य, (4) योग, (5) न्याय तथा (6) वैशेषिक। इन छहों आस्तिक दर्शनों की विशेषताएँ व इनके प्रवर्तक ऋषियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन दर्शनों की मूलभूत विषय सामग्री है — जीव, जगत, ब्रह्म, माया, ईश्वर, कर्म सिद्धांत, मोक्ष, ज्ञान मार्ग, भक्ति, धर्म आदि। इन सब विषयों के सम्बन्ध में जिज्ञासा तथा उनके समाधान की युक्तियों के द्वारा सांसारिक प्राणी की दुःख निवृत्ति इनका परम लक्ष्य रहा है — इन बातों

पर प्रकाश डाला गया है।

नास्तिक दर्शन – (1) चार्वाक, (2) जैन, (3) बौद्ध वेद को न मानने वाले नास्तिक दर्शन हैं इनकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है ।

इनके पश्चात श्री 'बौखल' के काव्य में इन्ही दार्शनिक सिद्धांतों का शोध किया गया है । कबीर आदि सन्तों के समान श्री 'बौखल' का कार्यक्षेत्र भी इष्ट लोक व परलोक (परमात्म तत्व) में प्राणि मात्र के अस्तित्व की खोज करना रहा है । प्रतीक रूप में उन्होंने आत्मा व परमात्मा को प्रिया प्रियतम मानकर काव्य रचना की है जिसमें प्रियतम से विमुक्त आत्मा के विरह का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है । उनके काव्य में विशेष रूप से निर्गुण उपासना प्रत्यक्ष हुई है तथा योग दर्शन के अंग प्रत्यंगों को बड़ी ही रहस्य मयी उक्तियों के द्वारा स्पष्ट किया गया है । उन पर शंकर के मायावाद का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है; परन्तु उन्होंने माया को व्यावहारिक रूप में देखा है । 'मैया तोर विकट परिवारा' कह कर संसार में प्राणियों को उलझाये रखने वाले माया के विस्तृत जंजाल का जो प्रभावी चित्रण उन्होंने किया है उसे विशेषरूप से उभार कर दिखाया गया है । इस बात पर विशेष बल इस अध्याय में दिया गया है कि उनके दार्शनिक सिद्धान्त न तो प्राचीन परिपाटी के पृष्ठपोषण हैं न ही अव्यावहारिक । वे सिद्धान्त शास्त्रीयता की अपेक्षा सामाजिकता के अधिक निकट हैं ।

महाकवि 'बौखल' के काव्य में बहुज्ञता एवं सांस्कृतिक तत्व का निरूपण आठवें अध्याय में किया गया है । श्री 'बौखल' की बहुज्ञता का परिचय प्राप्त कराने वाले उन विषयों, सिद्धांतों, परम्पराओं आदि की पड़ताल की गई है जो उस बहुमुखी व्यक्तित्व की निर्मिति में मुख्य घटक बने ।

'ज्ञ' धातु से निष्पन्न शब्द 'ज्ञान' का अर्थ होता है जानने योग्य और उसे जो धारण करता है वह ज्ञाता होता है । धारक ज्ञान को धारण करके उसे धारणा में स्थिर करता है तभी ज्ञान स्थायी होता है और उस की रश्मियाँ जिस वस्तु पर पड़ती हैं उसे प्रकाशित कर देती हैं । ज्ञान अखण्ड है उसके खण्ड नहीं हो सकते परन्तु वह विविध विषयानुवर्ती हो सकता है और कोई कल्पना धनी कवि विविध विषयों की अनेकवर्णी छवियों को आत्मसात करके उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही प्रतिच्छवियों में कर सकता है । श्री 'बौखल' का काव्य इस बात का सटीक उदाहरण है ।

श्री 'बौखल' कल्पनाशील कवि तो थे ही, सांसारिक विषयों के व्यवहार ज्ञान में भी निष्णात थे, अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से वे बहुश्रुत व बहुज्ञ हो गये थे । वे न केवल भारत व एशियाई देशों की सभ्यता संस्कृति से परिचित थे वरन् उन्हें सेमेटिक जातियों तथा उनकी वंशपरम्पराओं आदि का भी ज्ञान था । उनके वर्ण्य विषयों में खगोल, भूगोल, विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, इतिहास, ज्योतिष, गणित, भौतिकी, कृषि, सांख्यिकी आदि सबका व्यावहारिक ज्ञान प्रतिफलित हुआ है, इन सब से सम्बन्धित पद व दोहों में परिव्याप्त सौंदर्य का प्रकटीकरण करना इस अध्याय में अभीष्ट रहा है ।

वे भारतीय संस्कृति के शुभ व शुभ्र पक्ष के आराधक थे; परन्तु कहीं भी मिथ्याचार व आडम्बर उन्हें मान्य नहीं थे । व्यक्ति से बढ़कर समाज ही उनका इष्ट था, उसकी आध्यात्मिकता ही समाज के शास्त्र में परिवर्तित हुई हैं । उनके काव्य संसार में सांस्कृतिक तत्वों के भीतर अध्यात्म, दर्शन व ज्ञान की अखंडता के अनेक पार्श्व परिलक्षित हुये हैं – उन्होंने 'एक' वर्ण की महिमा पर बड़ी सूक्ष्म

दृष्टि से विचार किया था जो ईश्वर व जीव, जगत के एक होने व पुनः विस्तारित होने की प्रक्रिया पर प्रकाश डालती है । ब्रह्म एक है व "एकोऽहम् बहुस्याम्" का यही रहस्य है । इसी प्रकार इस अध्याय में माटी माहात्म्य, अनेक धर्मो के भीतर छिपी परमात्मा संबंधी एकरूपता, भारतीय मिथकों (पौराणिकता) का ज्ञान, प्रकृति से मानव का तादात्म्य, आध्यात्मिकता तथा वैराग्य भावना, वैज्ञानिक सत्यों की सहायता से मानवता का कल्याण, ब्रह्माण्ड व पिण्ड के भीतर एक ही से तत्वों की उपस्थिति, त्रिगुणात्मिका प्रकृति का प्रभाव, गुणत्रय, षट्चक्र, यौगिक क्रियाओं द्वारा इन षट्चक्रों के भेदन का रहस्य, कर्मकाण्डों की उलझी रूढ़िवादिता और उन पर करारे व्यंग आदि वर्ण्य विषयों की व्याख्या सोदाहरण की गई है ।

स्वभावतः विरागी से कवि ने संसार की नश्वरता व क्षणभंगुरता के वर्णन तो किये हैं परन्तु कहीं भी निराशावाद को स्थान नहीं दिया और अंत में सर्वकल्याण भावना तथा जनवादी चेतना पर कवि की आस्था और विश्वास का निरूपण किया गया है ।

नवम् अध्याय में श्री बौखल के काव्य संग्रहों के कला पक्ष का विवेचन है जिसमें निम्नलिखित विन्दुओं पर सोदाहरण विचार प्रस्तुत किये गये है—

(1) शब्द भण्डार— श्री बौखल की रचनाओं में भाषा का वैविध्य है, किसी एक भाषा के मुहावरे में बँध कर नहीं चले हैं उनके मन की स्वच्छन्द उड़ान ने जिस भाषा के शब्दों द्वारा वर्ण्य विषय को अभीप्सित ढंग से व्यक्त करना चाहा उसका ही प्रयोग बेधड़क होकर किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग उन स्थानों पर प्रचुरता से हुआ है जहाँ संस्कृत निष्ठ भाषा व खड़ी बोली का उपयोग किया गया है। अपने वैचारिक वैभव एवं दार्शनिक व आध्यात्मिक विषयों के प्रकाशन में इस प्रकार के शब्दों का उपयोग उपयुक्त भी था । इसके बाद ब्रजभाषा, अवधी उर्दू व ग्रामीण बोलियों के शब्दों व क्रियापदों का चयन उन्होंने सामाजिकता व वैयक्तिक अनुभूतियों के प्रकाशन के लिये किया। उनके काव्य का कलेवर विविध प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित है व प्रभावशाली बन पड़ा है। शब्दा-लंकारों में अनुप्रास व श्लेष विशेष रूप से व कहीं कहीं यमक भी प्रयुक्त हुये हैं। अर्थालंकारों में विशेष रूप से उपमा व रूपक की अपेक्षा विरोधाभास अपन्हुति, विशेषोक्ति—दृष्टान्त आदि अधिक प्रयुक्त हुये है क्योंकि कवि ने चुभती हुई बातों को इन्हीं के द्वारा अभिव्यक्त करना अधिक उपयुक्त माना है अलंकारों के बाद आती हैं शब्द शक्तियाँ—जिनके द्वारा अभीप्सित विषय को सटीक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। अभिधा, लक्षणा व व्यंजना तीनों शक्तियों को कवि ने उपादेय माना है परन्तु स्थान विशेष पर ही इन का सफल प्रयोग हुआ है—जैसे अणु परमाणु विनिर्मित जगत के वर्णन या अपने गुरुजनों, प्रणम्यजनों, बुद्धिजीवियों सज्जनों कवि को विदों आदि के सम्मान प्रदर्शन में अभिधा शक्ति का, राजनीति के शतरंजी खेलों की बिसात बिछाने वाले नेताओं के कार्य कलापों के वर्णन में लक्षणा का और अपने प्रणयविरह की अनुभूतियों—जैसे मिलन के सुख व विछोह की पीड़ा आदि के धूपछाँही मनोवेगों को व्यक्त करते समय व्यंजना का अधिक सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। व्यन्जना शक्ति का उपयोग उन स्थानों पर भी बहुत अच्छे ढंग से किया गया है जहाँ सामाजिक वैषम्य की कटुता व उसके कारक—शोषक वर्ग की दुधारी तलवार शोषित समाज के ऊपर निर्ममता

से गिरती हुई दिखाई गई है । गुणों के बाद जिस सर्वाधिक सशक्त विधा का सहारा कवि ने लिया है वह है व्यंग्य, क्योकि व्यंग्य तो मीठी छुरी होता है और श्री बौखल इस छुरी से समाज के स्वार्थियों, सफेदपोशों, चाटुकारों, बगुला भगतों की चमड़ी उधेलने में बड़े कुशल है । उनका व्यंग्य बड़ी गहरी मार करने व उसे सबको दिखाने में सफल हुआ है । उन्होंने शब्द गुणों – ओज, माधुर्य व प्रसाद का अवसरानुकूल सफल व सटीक प्रयोग किया है, जिनमें से माधुर्य व प्रसाद अधिकता से प्रयुक्त हुये हैं । कवि ने विभिन्न प्रकार की शैलियों को– जैसे भावात्मक शैली (शृंगार वर्णन) प्रश्नात्मक शैली (जगत की नश्वरता आदि के वर्णन) तथा व्यंग्यात्मक शैली (सामाजिकता व सुधारात्मक तथ्यों के वर्णन) का प्रयोग किया है ।

ग्रन्थ-सूची

(1) श्री नारायण दास बौखल के प्रकाशित ग्रन्थ—

1. नारायण नैवेद्य
2. नारायण अंजलि भाग—1
3. नारायण अंजलि भाग—2

(2) श्री बौखल का अप्रकाशित साहित्य (पाण्डुलिपियों से)

(3) सहायक ग्रन्थ

1. ऋग्वेद
2. मुण्डक उपनिषद्
3. वृहदारण्यक उपनिषद
4. वैशेषिक सूत्र
5. महाभारत — वेद व्यास
6. श्रीमद् भागवत
7. योग दर्शन — पातंजलि
8. वेदान्त दर्शन-शारीरिक भाष्य — शंकराचार्य
9. मनु स्मृति
10. कल्याण का वेदान्त अंक
11. पॉलिटिका — अरस्तू
12. कामद क्रान्ति
13. विश्व इतिहास की झलक — पं. जवाहर लाल नेहरू
14. लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त — स्टालिन
15. भारतीय दर्शन — आचार्य बलदेव उपाध्याय
16. मानविकी पारिभाषिक कोष — संपादक - डॉ. नगेन्द्र
17. भारतीय दर्शन — डॉ. पारस नाथ द्विवेदी
18. भारतीय दर्शन — डॉ. सतीश चट्टोपाध्याय
19. वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त — डॉ. बलदेव उपाध्याय
20. दयानन्द शास्त्रार्थ संहिता
21. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ
22. काव्य दर्पण — राम दहिन मिश्र

23. बाँदा वैभव – रमेश चन्द्र श्रीवास्तव
24. सूक्ति सुधा संग्रह
25. युग की गंगा – केदार नाथ अग्रवाल
26. कबीर ग्रन्थावली – सं. - श्याम सुन्दर दास
27. गाँधी, नेहरू, टैगोर – डॉ. एच.एल. पाण्डेय
28. भारत में राष्ट्रवाद – सं. - सत्या राय
29. गुल मेहंदी – केदार नाथ अग्रवाल
30. देश - देश की कविताएँ – सं. - केदारनाथ अग्रवाल
31. यूनीफाइड राजनीति विज्ञान – बी.एल फड़िया
32. कौटिल्य कालीन भारत – आचार्य दीपंकर
33. हमारा संविधान– सुभाष काश्यप
34. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि – ए.आर. देसाई
35. क्रान्ति गीत – लल्लन
36. गुप्तचर की डायरी – अप्रकाशित
37. समाजवादी विचारक डॉ. लोहिया
38. सामाजिक पुनर्निर्माण का समाज शास्त्र – डॉ. बी.डी. गुप्त
39. अखबार – सत्याग्रही
40. बाँदा की हस्त लिखित पत्रिका